BO-06

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

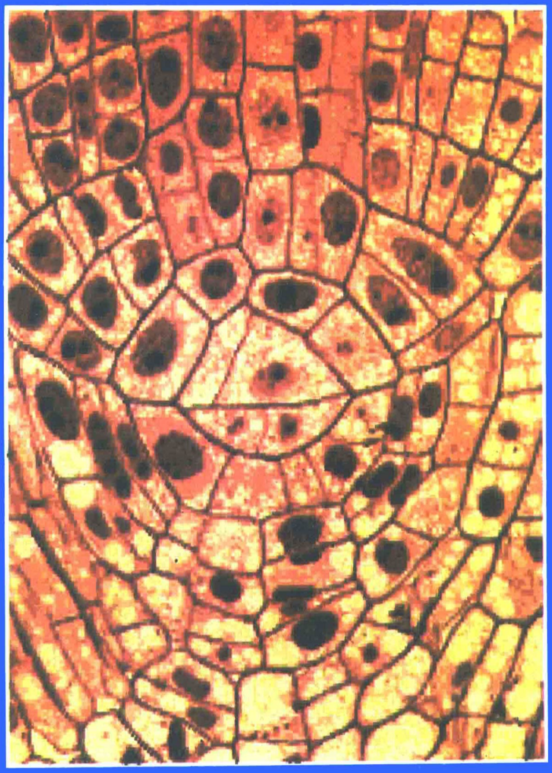

कोशिका विज्ञान, आनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन

BO - 06

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

कोशिका विज्ञान, आनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच

कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,

कोटा

संयोजक/समन्वयक / सदस्य

विषय समन्वयक

प्रो.(डॉ.) पी.सी. त्रिवेदी

वनस्पति शास्त्र विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

सदस्य सचिव / समन्वयक

डॉ. अशोक शर्मा

सह- आचार्य, राजनीति विज्ञान

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

1. **प्रो. एस.वी.एस. चौहान**
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   बी.आर.अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा
2. **प्रो. एन. सी. ऐरी**
   विभागाध्यक्ष, वनस्पति शास्त्र विभाग
   एम.एल.सुखड़िया विश्वविद्यालय,उदयपुर
3. **प्रो. एस.के. माहना**
   विभागाध्यक्ष, वनस्पति शास्त्र विभाग
   महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय,अजमेर
4. **प्रो. त्रिभुवन सिंह**
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
5. **डॉ. डी. के. अरोड़ा**
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
6. **डॉ. श्रीमती प्रमिला शर्मा**
   जैव प्रौद्योगिकी विभाग
   महर्षि अरविन्द कॉलेज,मानसरोवर, जयपुर
7. **डॉ. आर. एस. धनखड़**
   विभागाध्यक्ष, वनस्पति शास्त्र विभाग
   राजकीय महाविद्यालय, सीकर

सम्पादन एवं पाठ लेखन

सम्पादक

प्रो.(डॉ.) पी.सी. त्रिवेदी

वनस्पति शास्त्र विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

लेखक

1. प्रो. त्रिभुवन सिंह
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
2. डॉ. जमनालाल शर्मा
   विभागाध्यक्ष, वनस्पति शास्त्र विभाग
   राजकीय महाविद्यालय, कोटा
3. डॉ. इन्दुरानी शर्मा
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   राजकीय महाविद्यालय, कोटा
4. डॉ. नलिनी द्विवेदी
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   वैदिक कन्या महाविद्यालय,राजापार्क, जयपुर
5. डॉ. सोनाली पाण्डे
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   महात्मा गांधी इंस्टीट्यूट ऑफ एप्लाईड साइन्स,जे.ई.सी.आर.सी.,सीतापुरा, जयपुर

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. नरेश दाधीच	**प्रो. अनाम जेटली**	**प्रो. पी.के.शर्मा**
कुलपति	निदेशक	निदेशक
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन- जनवरी 2009

सर्वाधिकार सुरक्षित : इस सामग्री के किसी भी अंश की वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में 'मिमियाग्राफी'(चक्रमुद्रण) के द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

निदेशक(अकादमिक) द्वारा वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा के लिए मुद्रित एवं प्रकाशित।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

कोशिका विज्ञान, आनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन

इकाई संख्या		पृष्ठ संख्या
1.	कोशिका (The Cell)	8–48
2.	कोशिका अंगक (Cell Organelles)	49–79
3.	गुणसूत्र संगठन (Chromosome Organization)	80–102
4.	गुणसूत्र विपथन (Chromosome Abberations)	103–125
5.	कोशिका विभाजन (Cell Division)	126–145
6.	डी.एन.ए. एवं आर.एन.ए. (DNA and RNA)	146–177
7.	जीन की संरचना, प्रोकैरियोट्स एवं यूकैरियोट्स में जीन अभिव्यक्ति का नियमन (Structure of Gene, Regulation of Gene Expression in Prokaryotes and Eukaryotes)	178–220
8.	आनुवांशिक कूट : ट्रिप्लेट कोड, कूट के लक्षण एवं महत्व; श्रृंखला प्रारम्भन एवं श्रृंखला समापन कोडोन, वॉबल परिकल्पना, उत्परिवर्तन एवं आनुवांशिक कूट (Genetic Code : Triplet Code,Properties and Importance of Genetic Code; Chain Initiation and Termination Codons,Wobble Hypothesis, Mutations and Genetic Code)	221–233
9.	अतिरिक्त केन्द्रीय जीनोम; माइटोकॉन्ड्रियल एवं प्लास्टिड डी.एन.ए. की उपस्थिति एवं कार्य; प्लाज्मिड्स; ट्रान्सपोजन्स (Extra nuclear Genome; Mitochondrial and Plastid DNAs and their functions; Plasmids; Transposons)	234–265
10.	आनुवांशिक वंशागति (Genetic Inheritance)	266–285
11.	जीन अन्तर्क्रियाएँ (Gene Interactions)	286–307
12.	कोशिकाद्रव्यी वंशागति (Cytoplasmic Inheritance)	308–318
13.	पादप प्रजनन : परिचय एवं उद्देश्य, पादप प्रजनन की विधियाँ (Plant Breeding : Introduction and Objectives, Method of Plant Breeding)	319–336
14.	संकर ओज तथा अन्तःप्रजनन अवनमन बहुगुणिता एवं उत्परिवर्तनों का पादप प्रजनन मे योगदान, भारत एवं विश्व के प्रमुख पादप प्रजनन वैज्ञानिक एवं योगदान, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान केन्द्र (Hybrid Vigour, and Inbreeding Depression, Importance of Polyploidy and Mutation in Plant Breeding,Plant breeding Scientist of India and Abroad and their Contribution,Major National and International Plant Breeding Centres)	337–354
15.	हरित क्रान्ति, स्वपरागित परपरागित एवं कायिक प्रवर्धित फसलों में पादप प्रजनन की विधियाँ (Green Revolution,Plant Breeding in Self Pollinated,Cross Pollinated and Vegetatively Propgated Crops)	355–380

प्रस्तावना

प्रस्तुत पुस्तक **“कोशिका विज्ञान ,आनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन”** वर्धमान महावीर विश्व विद्यालय, कोटा द्वारा प्रस्तावित पाठ्यक्रमानुसार बी. एस. सी. भाग द्वितीय के वनस्पति शास्त्र द्वितीय प्रश्न -पत्र के अध्यापन हेतु सृजित की गई है । पुस्तक की भाषा -शैली को सरल ,रोचक एवं सुग्राह्य बनाने का अथक प्रयास किया गया है । आवश्यकतानुसार समानार्थी अंग्रेजी शब्द,फ्लोचार्ट,नामांकित चित्र एवं सारणियाँ भी दी गई है। पुस्तक की विभिन्न ईकाइयो को विद्वान लेखको द्वारा लिखा गया है| लेखकों ने पुस्तक को पथ्यपरक बनाने के लिए प्रामाणिक ग्रन्थो की सहायता प्राप्त की है।, इन रचयिताओं के लिए कृतज्ञतापन इन पंक्तियों के माध्यम से प्रस्तुत है। यह पुस्तक विद्यार्थियों के लिए प्रतियोगी परीक्षाओं हेतु भी सही मार्गदर्शन प्रदान करने मेन सहायक होगी।

पुस्तक को अधिक उपयोगी एवं प्रामाणिक बनाने हेतु प्रबुद्ध पाठकों एवं जागरूक विद्यार्थियों के रचनात्मक सुझाव सादर आमंत्रित है।

इकाई 1 : कोशिका (The cell)

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 कोशिका सिद्धान्त

1.3 कोशिका सिद्धान्त का महत्व

1.4 कोशिका : सामान्य परिचय

- 1.4.1 प्रोकेरियोटिक कोशिका की अतिसूक्ष्म रचना
- 1.4.2 कोशिका द्रव्य
- 1.4.3 प्लूरोनिमोनिया के समान जीव: PPLO
- 1.4.4 यूकेरियोट्स
- 1.4.5 कोशिका के आमाप में सीमित करने वाले कारक

1.5 कोशिका की सूक्ष्म रचना

1.6 कोशिका भित्ति

- 1.6.1 कोशिका भित्ति की संरचना
- 1.6.2 परासंरचना
- 1.6.3 कोशिका भित्ति की उत्पत्ति व वृद्धि
- 1.6.4 कोशिका भित्ति का स्थूलन
- 1.6.5 रासायनिक परिवर्तन
- 1.6.6 कोशिका भित्ति के कार्य

1.7 प्लाज्मा कला

- 1.7.1 सामान्य लक्षण
- 1.7.2 रासायनिक संरचना
- 1.7.3 अतिसूक्ष्म संरचना
- 1.7.4 प्लाज्मा कला के विभिन्न मॉडल
- 1.7.5 प्लाज्मा कला के गुण

1.8 सारांश

1.9 शब्दावली

1.10 संदर्भ ग्रंथ

1.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.12 अभ्यास प्रश्न

1.0 उद्देश्य (objective)

इस इकाई का उद्देश्य

1. कोशिका की संरचना का अध्ययन करना ।
2. कोशिका सिद्धान्त का महत्व तथा उसके अपवाद का अध्ययन ।
3. प्रोकेरियोटिक कोशिका की संरचना का अध्ययन ।
4. यूकेरियोटिक कोशिका की संरचना का अध्ययन ।
5. कोशिका के घटक जैसे - कोशिका भित्ति का संगठन तथा कोशिका झिल्ली की परासंरचना एव कार्य का अध्ययन।

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

कोशिका किसी भी जीवित पदार्थ की सूक्ष्मतम संरचनात्मक एवं प्रकार्यक इकाई है । चाहे वह जीव एककोशिकी हो जैसे जीवाणु, माइकोप्लाज्मा, अमीबा अथवा बहुकोशिकी जैसे विभिन्न प्रकार के उच्च पादप व जन्तु कोशिका। सभी कोशिका में जीवित पदार्थ कोशिका द्रव्य (cytoplasm) तथा एक या अधिक केन्द्रक (nucleus) तथा लाइपोप्रोटीन से बनी अर्धपारगम्य झिल्ली द्वारा घिरी रहती है । इस कोशिका द्रव्य में विशेष कोशिकांग जैसे माइटोकॉन्ड्रिया, हरितलवक, राइबोसोम, अन्तःप्रद्रव्यी जालिका, गॉल्जीकॉय आदि पाये जाते हैं जो कोशिका को जीवित रखने के लिए विशेष जैविक क्रियाएँ सम्पन्न करते हैं । कोशिका के केन्द्रक में उपस्थित क्रोमोसोम्स में आनुवांशिक पदार्थ डी.एन.ए पाया जाता है ।

कोशिका विज्ञान या कोशिका जीव -विज्ञान, विज्ञान की वह शाखा है जिसके अर्न्तगत कोशिका का अध्ययन किया जाता है । कोशिका विज्ञान (cytology) [ग्रीक शब्द kytos vessel or cell पात्र या कोशिका +logos- a discourse अध्ययन करना] का शाब्दिक अर्थ है कोशिका सम्बन्धी विज्ञान । आधुनिक समय में कोशिका विज्ञान जीव विज्ञान की एक महत्वपूर्ण शाखा है जिसके अन्तर्गत मुख्यत : कोशिकीय संगठन व संरचना, कोशिकांग तथा कोशिका से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार्यों का अध्ययन किया जाता है ।

1.2 कोशिका सिद्धान्त (The Cell Theory)

कोशिका विज्ञान के प्रारम्भिक इतिहास के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इस विज्ञान को विकसित करने में सूक्ष्मदर्शी यंत्र के आविष्कार व उत्तरोत्तर विकास ने मुख्य भूमिका निभायी ।

सर्वप्रथम डच वैज्ञानिक फ्रैंसिस और जाकारिस जैनसन (fransis and Zacharis Janssen) ने 1590 में 10 x और 30x आवर्धन क्षमता वाले संयुक्त सूक्ष्मदर्शी का आविष्कार किया, जिसका उपयोग उन्होंने सूक्ष्मजीवों के अध्ययन के लिए किया । जिसके पश्चात् सन् 1661 में एम. मेलपीगी ने पादप व जन्तु उत्तकों के पतले हिस्सों का अध्ययन कर बताया कि ये संरचनात्मक इकाईयों के बने होते हैं । एन्टोनी वॉन ल्यूवेनहॉक (1670) ने 270 x आवर्द्धन क्षमता वाले सूक्ष्मदर्शी से वर्षा के पानी में प्रोटोजोआ, जीवाणु आदि कुछ सूक्ष्म एककोशिकीय जीव देखे जिन्हें एनिमलक्यूल्स नाम दिया । इस प्रकार यह संभव हो पाया कि पादपों व जन्तुओं का शरीर कोशिकाओं से बना होता है ।

कोशिकीय अवधारणा को अधिक बल राबर्ट हुक (Robert Hooke,1665) की खोज से मिला । हुक के अनुसार संभाग दिखने वाला शरीर अनगिनत कोशिकाओं से मिलकर बना होता है ।

उन्होंने यह निष्कर्ष कॉर्क की पतली काट के अध्ययन से मधुमक्खी के छत्ते के समान कोष्ठ देखकर निकाला । ये कोष्ठक ही कोशिका (Cell) कहलाये। इसके पश्चात् सर 1833 में राबर्ट ब्राउन ने ट्रेडेस्केन्शिया पौधे की कोशिका में सघन पिण्ड देखा जिसे केन्द्रक कहा । वॉन मॉल तथा पुरकिन्जे (1835, 1837) ने कोशिका में उपस्थित द्रव्य को जीवद्रव्य कहा । इसी समय दो जर्मन वैज्ञानिकों मैथियास श्लीडेन (1838) ने पौधों और थियोडोर श्वान (1839) ने जन्तुओं के अध्ययन के बाद स्व सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिसे कोशिका सिद्धान्त (Cell theory) कहते हैं । इस सिद्धान्त के अनुसार कोशिकायें सजीव है तथा समस्त जीव चाहे वह पौधे हो अथवा जन्तु कोशिकाओं के समूह से निर्मित होते हैं, ये कोशिकायें पूर्ववर्ती कोशिकाओं के विभाजन से बनती है । तथा कोशिकाएँ ही शरीर की रचनात्मक (structural) व क्रियात्मक (functional) इकाईया हैं । इस सिद्धान्त को बल रूडोल्फ विर्स्चॉव (1855) के द्वारा दिये गये निष्कर्ष से मिला ।

आधुनिक कोशिका सिद्धान्त निम्न प्रकार से है -

(1) समस्त जीवों का शरीर कोशिकाओं का एक समूहन मात्र है अर्थात कोशिकायें समस्त जीवों की शरीर की संरचनात्मक इकाई है ।

(2) जीवों में होने वाली विभिन्न जैविक क्रियाएँ कोशिका के अन्दर ही सम्पन्न होती है अत: कोशिकाएँ ही सजीवों की क्रियात्मक इकाईया (physiological units) है ।

(3) कोशिकाएँ आनुवांशिकी की इकाई भी है क्योंकि इनके केन्द्रक में आनुवांशिकी पदार्थ संचित रहता है जो पीढ़ी दर पीढ़ी गमन करता है ।

(4) नयी कोशिकाओं का उद्भव (origin) पूर्ववर्ती जीवित कोशिकाओं में विभाजन के फ्लस्वरुप होता है । नयी कोशिकाओं का बनना सूक्ष्मजीवों में जनन का साधन है तथा बहुकोशिकीय जीवों में जनन तथा शारीरिक संरचना को बनाये रखने में मदद करता है ।

नवीनतम खोजों के आधार पर कोशिका सिद्धान्त पूर्णत : तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता जोकि सभी जीव कोशिकीय नहीं होते जैसे जीवाणु, अकोशिकीय प्रोटोजोआ, नील -हरित शैवाल जिसमें झिल्ली आबद्ध विभिन्न कोशिकांग व विशिष्ट केन्द्रक अनुपस्थित होते हैं । इसी प्रकार विषाणु (viruses) प्रकृति में क्रिस्टलीय (निर्जीव) रूप में पाये जाते हैं । प्रत्येक विषाणु एक न्यूक्लिक अस्त (DNA या RNA) से बने केन्द्रीय कोर, प्रोटीन आवरण से घिरी रहती है । ये परपोषी कोशिका में ही सजीवों की भाँति जैविक क्रियाएँ सम्पन्न कर पाते हैं, ये कोशिका सिद्धान्त के अपवाद है ।

1.3 कोशिका सिद्धान्त का महत्व (Significane of cell Theory)

कोशिका सिद्धान्त की आधुनिक संकल्पना जीवाणु से लेकर मानव तक, विविध प्रकार के जीवों में संरचनात्मक एवं क्रियात्मक सम्बन्धों पर प्रकाश डालती है । समस्त कोशिकाओं के, चाहे उनकी स्थिति एवं कार्य कुछ भी हो, कोशिका द्रव्य में एक केन्द्रक होता है तथा सभी कोशिकाओं में चाहे वे आदिम हो या विकसित, एक ही प्रकार की उपापचय क्रियाएँ (unity of function) होती है । इससे पता चलता है कि समस्त जीव आज से करोडों वर्ष पूर्व एक ही प्रकार की आदिम कोशिकाओं से विकसित हुये हैं ।

सारणी 1.1 : कोशिका जैविकी का संक्षिप्त इतिहास

वर्ष	**वैज्ञानिक**	**खोज विवरण**
1590	जेड़ जेन्सन तथा एच। जेन्सन (Z. Janssen and J. Janssen)	संयुक्त सूक्ष्मदर्शी का आविष्कार
1661	एम. मेलपीगी (M. Malpighi)	रक्त- वाहिनियों की खोज
1670	**ए**न्टॉनी वॉन ल्यूवेन हॉक (Antony von Leeuwenhoek)	संयुक्त सूक्ष्मदर्शी की खोज। जन्तु कोशिका को 'Animalcules' खा व जीवाणु शुक्राणु व लाल रुधिर कोशिकाओं का अध्ययन ।
1671	एम। मेलपीगी (M. Malpighi)	
1672	कॉर्टी (Corti)	जीवद्रव्य (Protoplasm) की खोज की।
1781	फोन्टाना (Fontana)	केन्द्रिक (Nucleolus) की खोज।
1831	रॉबर्ट ब्राउन (Robert Brown)	कोशिका में केन्द्रक (Nucleus) की खोज की।
1838	मेथियस जे। श्लीडेन (Mathias J. Schleiden) एवम्	जर्मन पादप व जन्तु वैज्ञानिकों ने कोशिका सिद्धान्त (Cell theory) प्रतिपादित किया।
1839	थियोडोर श्वान (Theodor Schwann)	
1846	हयूगो वाँन मोल (Hugo van Mohl)	पादप कोशिका के जीवद्रव्य का अध्ययन किया।
1858	रूडोल्फ विर्चो (Rudolf Vircho)	कोशिका सिद्धान्त की पुष्टि की व एक विचार प्रतिपादित किया की कोई भी नयी कोशिका पूर्वस्थित जीवित कोशिका से ही बनती है ("Omnis cellula e cellula")।
1861	डी. बेरी एवम् मैक्स शुल्जे (De Bary & Ma Schulltze)	प्रोटोप्लाज्म सिद्धान्त दिया, जिसके अन्तर्गत जीवद्रव्य को जीवन का आधार बताया गया ।
1880	ई. स्ट्रांसबर्गर (E. Strasburger)	केन्द्रक की संरचना व केन्द्रक विभाजन का अध्ययन किया। केन्द्रक में स्थित तरल पदार्थों को "न्यूक्लियोप्लाज्म" तथा बाहर स्थित तरल को "साइटोप्लाज्म" नाम दिया ।

1865	हैकल (Haeckel)	पादप कोशिकाओं मे प्लास्टिड्स की खोज की।
1882	डब्ल्यू. फ्लेमिंग (W. Flemming)	सर्वप्रथम माइटोकॉण्ड्रिया को देखा । माइटोसिस (Mitosis) शब्द दिया व इस विभाजन का अध्ययन किया।
1886	आर. आल्टमेन (R. Altmann)	माइटोकॉण्ड्रियाको विस्तार से देखा।
1888	डब्ल्यू. वाल्डेयर (W. Waldeyer)	केंद्रक की धागेनुमा संरचना को क्रोमोसोम्स (Chromosomes) नाम दिया।
1881	टी. बॉवेरी (T. Bovery)	सेन्ट्रोसोम का अध्ययन कर सेन्ट्रियोल का वर्णन किया।
1891	वीजमेल व स्ट्रासबर्गर (Weismann & strasburger)	अर्धसूत्री विभाजन (Meiosis) की खोज की।
1898	केमिलो गॉल्जी (Camillo Golgi)	गॉल्जीकाय (Golgi apparatus) की खोज की।
1900	जिगामांडी (Zigmondy)	अतिसूक्ष्मदर्शी (Ultramicroscope) का आविष्कार किया।
1902	डब्ल्यू.एस . सट्टन (W.S. Sutton)	आनुवंशिकता में अर्धसूत्री विभाजन के महत्व को बताया तथा आनुवंशिकता का गुणसूत्र सिद्धान्त प्रतिपादित किया।
1926	स्वेडबर्ग (Svedberg)	अल्ट्रा-सेन्ट्रीफ्यूज (Ultracentrifuge) की खोज की।
1932	नोल व रस्का (Knoll & Ruska)	इलेक्ट्रॉनसूक्ष्मदर्शी (Electrons microscope) का निर्माण किया।
1935	जरनिके (Zernicke)	दशा तुलनात्मक सूक्ष्मदर्शी (Phase contrast microscope) का निर्माण किया।
1941	फ्रिटज लिपमेन (Fritz Lipman)	ऐडिनोसिन ट्राई-फॉस्फेट (ATP) के कार्य बताये।
1941	क्लॉडे (Claude)	राइबोसोम्स (Ribosomes) को सर्वप्रथम देखा।
1943	बर्क (Burch)	प्रतिबिम्बक सूक्ष्मदर्शी (Reflecting microscope) का निर्माण किया।

1945	कून्स (Coons)	प्रतिदीप्ति सूक्ष्मदर्शी (Fluorescence microscope) की खोज की।
1945	पोर्टर (Porter)	अन्तः प्रद्रव्यी जालिका (Endoplasmic reticulum) को देखा व कोशिका में इसके महत्व को समझाया।
1953	जे.डी. वाटसन,एफ.एच.सी. क्रिक तथा एम. एच. एफ. विल्किन्स (J.D. Watson, F.H.C. Crick And M.H.F. Wilkins)	डी.एन.ए. का प्रारूप (Model) प्रस्तुत किया, जिसके लिए इन्हें 1962 में नोबल पुरस्कार दिया गया।
1955	क्रिस्टॉन डि. डुबे (Christan de-Duve)	कोशिका मे लाइसोम्स को सबसे पहले देखा।
1959	जे.डी. रॉबर्टसन (J.D. Robertson)	प्लाज्मा झिल्ली (Plasma membrane) की संरचना का अध्ययन कर इकाई कला (Unit membrane) का सिद्धान्त प्रतिपादित किया।
1967	कॉर्नबर्ग (Kornberg)	डी.एन.ए. का प्रयोगशाला मे संश्लेषण किया।
1968	एम.डब्ल्यू.नीरेनबर्ग एच. जी. खुराना, आर. एच. होले (M. W. Nirenberg, H. G. Khorana, R. H. Holley)	आनुवंशिक कूट (Genetic code) का अध्ययन किया व जीन्स का कृत्रिम निर्माण किया।
1969	टॉलबर्ट (Tolbert)	पर ऑकसीसोम्स (Peroxisomes) की खोज की।
1970	डेनियली (Danielli)	परखनली में कोशिका निर्माण ।
1970	हैरिस (Herris)	डी.एन.ए. व आर.एन.ए. की संकरण तकनीकी बतायी।
1972	सिंगर व निकल्सन (Singer & Nicholson)	प्लाज्मा झिल्ली का तरल मोजेक मॉडल (Fluid mosaic model of plasma Membrane) प्रस्तुत किया।
1974	डुबे (Duve)	लाइसोसोम्स (Lysosomes) की खोज की ।
1983	बारबरा मेक्क्लिन्टॉक (Barbara Mac-Clintoch)	मक्का मे जम्पिंगे जीन्स (Transposons) की खोज की ।
1989	बाइशॉप व वार्मस	जीन्स का कोशिका वृद्धि तथा विभाजन पर नियंत्रण व

1992	(Bishop & Varmus) फिशर,एडमंड तथा क्रेब्स (Fisher, Edmond & Kerbs)	कैन्सर से सम्बन्ध का अध्ययन किया। प्रोटीन फॉसफोराइलेशन (Protein phosphorylation) का अध्ययन किया।

1.4 कोशिका : सामान्य परिचय (Cell : General Introduction)

आधुनिक खोजों के आधार पर कोशिका की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है । कोशिका सभी जीवों के आधारभूत संगठन एवं क्रियाओं की वह सूक्ष्मतम किन्तु पूर्ण अभिव्यक्ति है जो बाहर की ओर एक अर्ध - पारगम्य कोशिका भित्ति द्वारा परीसीमित होती है जिसमें अन्य जीवित प्रणालियों से मुक्त माध्यम में जनन या पुनरुत्पादन की क्षमता होती है । अत : प्रत्येक कोशिका में निम्नलिखित अंगक अवश्य होते हैं ।

1. **कोशिका झिल्ली** (Cell Membrane) यह कोशिका को परिसीमित करती है और कोशिका के अन्दर आने या बाहर निकलने वाले पदार्थों का नियन्त्रण करती है ।
2. **उपापचय यन्त्रावली** (Metabolic Machinery) : यह कोशिका के अन्दर खाद्य पदार्थों में संचित ऊर्जा को मुक्त करती है । माइटोकॉन्ड्रिया कोशिका के उपापचय अंगक है ।
3. **जैव संश्लेषण यन्त्रावली** (Biosynthetic Machinery) : इनके द्वारा प्रोटीन संश्लेषण होता है । राइबोसोम तथा RNA प्रोटीन संश्लेषण में सहायक होते हैं ।
4. **आनुवांशिक संग्रह केन्द्र** (Store House of Hereditary Informations) : केन्द्रक के अन्दर उपस्थित DNA में आनुवांशिक सूचनायें संचित रहती है । DNA की प्रवृत्ति से नयी संतति कोशिकायें बनती है त था कोशिका में होने वाली सभी क्रियाओं का नियंत्रण DNA द्वारा होता है ।

अत : समस्त पृथ्वी पर पाये जाने वाले समस्त जीवों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(a) **अकोशिकीय जीव** (Acellular Organism): इन जीवों के शारीरिक संगठन में कोशिकीय संरचना नहीं पायी जाती जैसे - वाइरस ।

(b) **कोशिकीय जीव** (Cellular Oraganism) : वे जीव जिनका शरीर एक या एक से अधिक कोशिकाओं से मिलकर बना होता है । उदाहरण: जीवाणु, पादप व जन्तु ।

सभी कोशिकीय जीवों को उनमें पाये जाने वाले कोशिकीय संगठन के आधार पर दो समूहों में बाँटा गया है ।

(i) **प्रोकेरियोट्स** (Prokaryotes): प्रोकैरियोटिक कोशिका (Pro = Primitive = आध, karyon- nucleus केन्द्रक) की संरचना आद्य व अपूर्ण होती, क्योंकि इनमें केन्द्रक कला (nuclear membrane) नहीं होती । आनुवांशिक पदार्थ (nucleoid) कोशिका द्रव्य में पाया जाता है । कोशिका के अन्य कोशिकांग (द्वि तथा एकस्तरीय) झिल्ली आबद्ध नहीं होते हैं । राइबोसोम 70S प्रकार के होते हैं । उदाहरणतः ' जीवाणु नीलहीरत शैवाल, स्पाइरोकीट,

रिकेट्स. माइकोप्लाज्मा । इनमें केवल एक गुणसूत्र होता है जो केवल एक द्विकुण्डलिनी अणु का बना होता है । प्रोकेरियोटिक कोशिका, यूकेरियोटिक कोशिकाओं से निम्न बातों में भिन्न होती है ।

(1) केन्द्रक पदार्थ के चारों ओर केन्द्रक कला की अनुपस्थिति ।

(2) माइटोकॉन्ड्रिया, क्लोरोप्लास्ट, गॉल्जीकाय तथा लाइसोसोम आदि का अभाव ।

(3) आनुवांशिक पदार्थ केवल एक गुणसूत्र का बना होता है, जिसमें डी.एन.ए. का दोहरा स्ट्रैण्ड या कुण्डल होता है ।

(4) गुणसूत्रों में क्षार-प्रोटीन हिस्टोन का अभाव होता है ।

(5) केन्द्रिका अनुपस्थित ।

(6) कोशिका भित्ति कार्बोहाइड्रेट्स व एमीनो अम्लों की बनी होती है ।

(7) कोशिकाकला कोशिकाद्रव्य में अन्र्तवलित होती है तथा इस पर श्वसन एन्जाइम होते हैं

(8) कोशिकाद्रव्य में अमीबाभ व धारप्रवाही गतियों का अभाव होता है ।

1.4.1 प्रोकेरियोटिक कोशिका की अतिसूक्ष्म संरचना : जीवाणु

जीवाणु अतिसूक्ष्म एककोशिकीय जीव है । ये इतने सूक्ष्म होते हैं कि छापे के एक विराम बिंदू में लगभग 2,50000 जीवाणु समा सकते हैं । इनकी कोशिका में डी.एन.ए; आर एन.ए. प्रोटीन्स,लिपिड, पॉलीसेकेराइड्स आदि पदार्थ पाये जाते हैं । कोशिका में इन पदार्थों को संश्लेषित करने की क्षमता होती है । ज्यादातर ये परजीवी या मृतोपजीवी होते हैं । परजीवी जीवाणु जन्तुओं में तथा पौधों में विभिन्न रोग उत्पन्न करते हैं जबकि अधिकतर मृतोपजीवी जीवाणु मनुष्यों के लिए लाभदायक होते हैं ।

(1) **आकार** (Size) : जीवाणु का आमाप माइक्रोन में नापा जाता है । एक माइक्रोन 1/1000 mm या 1/100000 cm के बराबर होता है । जीवाणु कोशिकाओं का आकार अलग - अलग होता है । औसतन जीवाणु कोशिका का व्यास 1.25u होता है । सबसे छोटी जीवाणु कोशिका डायलिस्टर न्यूमोसिनटस (Dialister pneumosintes) होती है जिसकी लम्बाई 0.15-0.3 u होती है । सबसे बड़ी जीवाणु कोशिका स्पाइरीलम वोल्यूटेन्स (Spirillum volutans) की होती है । जिसकी लम्बाई 13- 15u होती है ।

(2) **आकृति** (Shape) : आकृति के आधार पर कोहन (Cohn) ने जीवाणु को निम्न वर्गों में बांटा है -

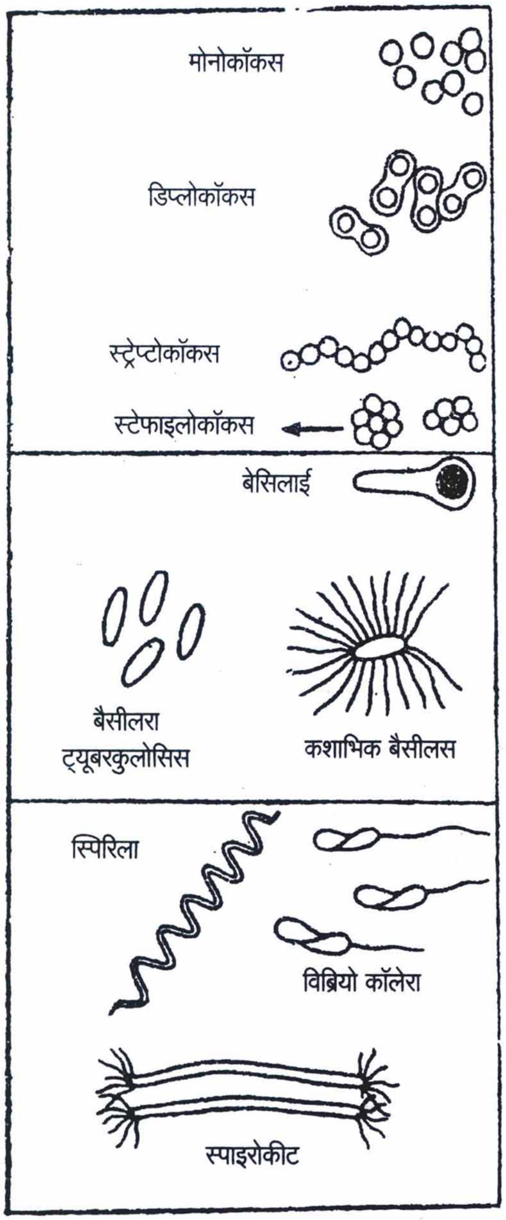

चित्र 1.1 : विभिन्न प्रकार के बैक्टीरिया

(i) **छड़नुमा** (Bacillus) : इन जीवाणुओं की आकृति शलाका के समान होती है । कोशिकायें एकल होती है या आपस में जुड़ कर लम्बी श्रृंखला बनाती है । अधिकतर ये अचल होते हैं किन्तु कुछ कशाभ होने के कारण चल होते हैं । ये निम्न प्रकार के होते

(1) डिप्लोबेसिलस -ये जोड़ों में होते हैं ।

(2) स्ट्रेप्टोबेसिलस -ये अपने सिरों द्वारा एक -दूसरे से जुड़े रहते हैं और धागे के समान एक सूत्र बनाते हैं उदाहरणतः: बेसिलस एन्थ्रेसिस ।

छड़नुमा जीवाणु मनुष्यों में गम्भीर रोग उत्पन्न करते हैं जैसे माइकोबेक्टीरियम टयूबरकुलोसिस (क्षय रोग), कोरनीनेक्टीरियम डिप्थेरी (डिफ्थीरिया) ।

(ii) **गोलाकार** (Coccus) : इन जीवाणु कोशिकाओं की आकृति गोलाकार होती है । ये निम्न रूपों में पाये जाते है ।

(i) माइक्रोकॉकस कोशिका गोल व एकल होती है ।

(ii) डिप्लोकॉकस दो कोशिकाओं का समूह होती है जैसे डिप्लोकॉकस न्यूमोनि ।

(iii) स्ट्रेप्टोकॉकस बहुत सी कोशिकाएँ जुड़ कर एक लम्बी श्रृंखला बनाती है जैसे स्ट्रेप्टोकॉकस लेक्टिस।

(iv) स्ट्रेफिलोकॉकस जीवाणु अंगूर के गुच्छों के समान रहते हैं जैसे स्ट्रेफिलोकॉकस आरियस (संक्रमण से छाले)

(v) सारसिनी तीन तलों में विभाजन के फलस्वरुप ये घनाकार पैकेट के रूप में रहते हैं ।

(vi) ट्रेटाकॉकस ये चार-चार के समूह में रहते हैं ।

(3) **सर्पिल जीवाणु** (Spirillum) : ये जीवाणु सर्पिलाकार या कुण्डलित होते हैं जैसे स्पाइरिलियम तथा स्याइरोकीट।

(4) **विब्रिओ** (Vibrio) : ये कम कुण्डलित कोमा (,) की आकृति के जीवाणु होते हैं । जैसे विब्रिओ कॉलेरा।

संरचना (Structure): जीवाणु सरलतम रचना वाले अतिसूक्ष्म जीव है जिनकी संरचना को सरल सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखना सम्भव नहीं । इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखने पर एक प्रारूपी जीवाणु कोशिका में निम्नलिखित रंचनाएँ दिखाई देती है :

(अ) बाह्य आवरण (Outer Covering): जीवाणु कोशिका चारों ओर से तीन परतीय आवरण से घिरी रहती है-

(a) **कैप्सूल** (Capsule) : अधिकतर आध कोशिका (prokaryote), भित्ति के चारों ओर एक म्यूसीलेज स्रावित करते हैं जिसे स्लाइम कहते हैं । कुछ जीवों में म्यूसीलेज सरल, अनिश्चित मोटाई की परत के रूप में पाया जाता है जिसे स्लाइम सतह कहते हैं । लेकिन कुछ प्रोकेरियोट्स में स्लाइम कोशिका भित्ति के बाहर एक निश्चित मोटाई की परत के रूप में पाया जाता है जिसे जीवाणु कोशिका में कैप्सूल तथा नील-हरित शैवाल में शीथ (sheath) कहते हैं ।इनकी रासायनिक संरचना मुख्यत: पॉलीसेकेराइड्स पोलीपेप्टाइड तथा लाइपोप्रोटीन पाये जाते हैं । अधिकतर रोगनजक जीवाणु कोशिका के चारों और कैप्सूल होता है ।

(b) **कोशिका भित्ति :** केवल मोलीक्यूटस को छोड़ कर शेष सभी आध कोशिकाओं में कोशिका भित्ति पायी जाती है इसकी मोटाई लगभग 10/um या अधिक होती है । इसकी रासायनिक संरचना लिपिडस, प्रोटीन्स, कुछ अकार्बनिक पदार्थ तथा विशिष्ट अमीनो अम्ल डाइअमीनोपिमलिक अम्ल तथा म्यूरिन शर्करा की बनी होती है। कुछ नील-हरित शैवालों में कोशिकायें आपस में कोशिकाद्रव्यी सम्पर्क सूत्रों से गुजर कर दो कोशिकाओं की प्लाज्मा झिल्ली को जोड़ते है जिससे एक कोशिका से दूसरी कोशिका में कोशिका द्रव्य का आदान-प्रदान होता है ।

सन् 1884 में क्रिश्चियन ग्राम (C.Gram) ने जीवाणुओं को अभिरंजित करने की तकनीक बनायी । इस तकनीक का प्रयोग करके यह ज्ञात हुआ कि कुछ जीवाणु ग्राम स्टेन (क्रिस्टल

वायलेट तथा आयोडिन का मिश्रण) द्वारा अभिरंजित हो जाते हैं तथा कुछ नहीं होते । एक जीवाणु जो इस अभिरंजक से अभिरंजित हो जाते हैं ग्राम घनात्मक जीवाणु की कोशिका भित्ति में पॉलीसेकेराइड्स, म्यूकोपेप्टाइड्स ,टीकोइक अम्ल पाये जाते हैं तथा इनकी कोशिका भित्ति में पेप्टीडॉग्लाइकन (peptidoglycan or murein)या म्यूरिन शर्करा की अधिकता होती है । दूसरी और ग्राम ऋणात्मक जीवाणु की कोशिका भित्ति में अत्याधिक लिपिड्स प्रोटीन तथा पॉलीसेकेराइड से बनी हुई परत पायी जाती है जिसमें टीकोइक अम्ल अनुपस्थित होता है इनकी कोशिका भित्ति इतनी अधिक पतली होती है कि इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा इकाई कला के समान दिखाई देती है ।

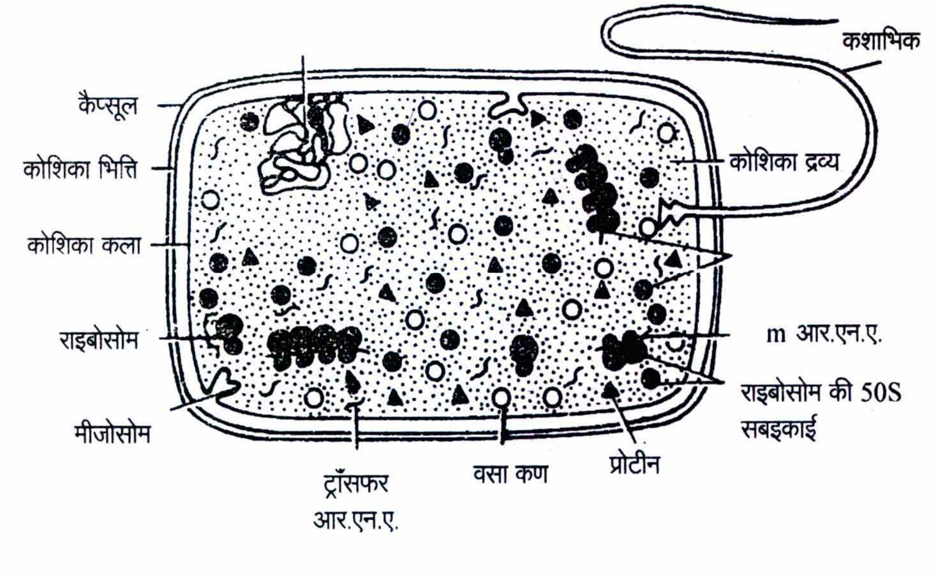

चित्र 1.2 : एक बैक्टीरियम कोशिका

(c) **प्लाज्मा कला** (Plasma Membrane) : यह कोशिका भित्ति के अन्दर की तरफ पाई जाने वाली झिल्ली है जो कोशिका द्रव्य को घेरे रहती है । इसकी मोटाई करीब 7.7-10.0nm, होती है जिनकी मोटाई 2 .0-2.5- nm होती है । इसके मध्य स्थान पाया जाता है जिसकी मोटाई 3.5-5.0nm होती है । यह अवकलीय पारगम्य झिल्ली होती है जो कि कोशिका के अन्दर आने -जाने वाले पदार्थों का नियमन करती है । यह लाइपोप्रोटीन की बनी होती है तथा इसकी सतह पर श्वसन के लिये विभिन्न एन्जाइम (विकर) पाये जाते हैं । आद्य कोशिका में प्लाज्मा कला ही यूकेरियोटिक कोशिकाओं में पाये जाने वाले कोशिकांग माइटोकॉन्ड्रिया का कार्य सम्पन्न करती है ।

जीवाणुओं में यह झिल्ली संरचनात्मक रूप से रूपान्तरित होकर विभिन्न संरचनायें जैसे मीजोसोम्स या कॉनड्रोइड्स तथा डेस्मोसोम्स का निर्माण करती है । मीजोसोम्स के विभिन्न कार्य होते हैं जैसे कोशिका विभाजन के समय जहाँ पट का निर्माण होता है वहाँ मीजोसोम्स पाये जाते हैं । श्वसन क्रिया के दौरान होने वाले इलेक्ट्रान स्थानान्तरण में मदद करना तथा डी.एन.ए. के द्विगुणन के लिए आवश्यक एन्जाइम्स भी इसी पर पाये जाते हैं । ये पुत्री कोशिकाओं में आनुवांशिक पदार्थ के वितरण में भी मदद करते है।

1.4.2 कोशिका द्रव्य (Cytoplasm) व इसके घटक (Constituents)

यह घना कोलॉइडी द्रव्य होता है जिसमें ग्लाइकोजन, प्रोटीन्स तथा वसीय कण पाये जाते हैं । इसके अतिरिक्त पॉली - β -हाइड्रॉक्सी ब्यूटाइरिक अम्ल, ग्लूकोज बहुलक वोल्यूटिन कण तथा सल्फर पाये जाते हैं । कोशिकाद्रव्य दानेदार होता है इसमें अनेक धानियाँ (vacuoles) होती है । इसके अतिरिक्त कोशिकाद्रव्य में असंख्य सूक्ष्मकण भी होते हैं जिनको राइबोसोम (ribosomes) कहते हैं । ये उच्च पादपों के राइबोसोम के समान झिल्लीयुक्त नहीं होते तथा 70S प्रकार के होते हैं । इनमें समान मात्रा में प्रोटीन व आर.एन.ए. होते हैं, ये प्रोटीन संश्लेषण के स्थान हैं । कुछ प्रकाश -संश्लेषी जीवाणुओं में क्रोमेटोफारस में बैक्टीरियोक्लोरिफिल पाया जाता है । कोशिका में झिल्ली आबद्ध संरचना जैसे गॉल्जीकॉय, अन्त : प्रद्रव्यीजालिका, लाइसोसोम्स, सेन्ट्रियोल आदि अनुपस्थित होते हैं गतिशील जीवाणु की कोशिकाओं में एक या अधिक कशाभ होते हैं जिनकी सहायता से वे गति करते हैं ।

(1) **केन्द्रक पदार्थ** (Nuclear Material) : कोशिका द्रव्य के केन्द्र में उपस्थित हल्का केन्द्रकी क्षेत्र न्यूक्लिओइड या जीनोफोर कहलाता है । नील -हरित शैवालों में यह क्षेत्र न्यूक्लिओप्लाजमिक क्षेत्र कहलाता है । न्यूक्तिओइड वलयाकार (Circular) दोहरे तन्तुको युक्त (double stranded) DNA अणु का बना होता है जो एक गुणसूत्र को दर्शाता है ।

डी.एन.ए. वलय अत्यधिक वलित (folded) होता है जो प्लाज्मा झिल्ली से एक बिन्दु से संलग्न अवस्था में पाया जाता है । न्यूक्लिओइड क्षेत्र में कोशिकाद्रव्य क्षार स्नेह (basophilic) होता है । DNA की लम्बाई 800- 1100μm तथा मोटाई 8- 10 nm होती है तथा एक न्यूक्लिओइड में 2000 - 4000 तक जीन्स होते हैं तथा इसका अणुभार 25109 dalton के लगभग होता है । कोशिका में डी.एन.ए. तथा आर.एन.ए. का अनुपात

4:8 होता है । जीवाणु के डी.एन.ए. में चार क्षारक साइटोसिन, थायमिन, ग्वानिन तथा एडेनिन के अतिरिक्त 6 मिथाइल अमीनोप्यूरिन तथा 5 मिथाइल साइटोसिन भी मिलता है । डी.एन.ए. के साथ प्रोटीन II संलग्न रहती है जो हिस्टोनप्रोटीन की भाँति ही क्रियाशील रहते हैं । न्यूक्लिओइड 60% DNA, 30% R.N.A तथा 10% प्रोटीन पाया जाता है ।

(2) **प्लाजमिड** (Plasmid) : कुछ जीवाणु में मुख्य गुणसूत्रों के अतिरिक्त एक या दो अतिरिक्त गुणसूत्र और होते हैं इन्हें प्लाज्मिड कहते हैं । ये बाहय गुणसूत्री तत्व होते है । जो स्वतन्त्र रूप से स्वयं की प्रतिकृति

(replica) बनाने की क्षमता रखते हैं । जब प्लाज्मिड जीवाणु डी.एन.ए. गुणसूत्र के साथ जुड़ जाते हैं तब एपीसोम कहलाते हैं । प्लाज्मिड भी दोहरे तन्तुक (double stranded) DNA के बने होते हैं लेकिन इसमें पाये जाने वाले जीन जीवाणु की आनुवांशिकी का निर्धारण नहीं करते है । इस पर लगभग 50 - 100 जीन होते हैं जिनकी लम्बाई 100kb होती है । प्लाज्मिड डी.एन.ए. 25μm लम्बा तथा जिसका अणुभार 5×10^7 dalton होता है। जीवाणु कोशिका में प्लाज्मिड संयुग्मन में भाग लेते हैं तथा उर्वरक कारक (fertility factor) कहलाते हैं । इसी प्रकार R कारक कुछ औषधियों के प्रति जीवाणु को प्रतिरोधक बनाते हैं ।

(3) **अन्य संरचनाएँ :** अधिकतर जीवाणु कोशिकाओं में गति के लिए एक विशिष्ट कोशिकी अतिवृद्धि पायी जाती है जिसे कशाभिका कहते हैं । सामान्यत ' कशाभिका का व्यास लगभग 10-20nm तथा लम्बाई 20µm तक हो सकती है । ये एक प्रोटीन फ्लेजेलीन के बने होते हैं तथा प्रत्येक कशाभिक मुख्यत : तीन भागों से मिलकर बनी होती है - सूत्र (filament), हुक (hook) तथा आधारकाय (basal body) इसके अतिरिक्त कुछ जीवाणु की सतह पर रोम के समान अतिवृद्धियां होती है जोकि फिमब्रीन प्रोटीन के बने होते हैं । ये संलग्न का कार्य करती है तथा फिमब्री या रोम (fimbriae or pilli) कहलाती है। उपरोक्त संरचनाओं के अतिरिक्त जीवाणु कोशिका द्रव्य में गैस रिक्तिकाएँ, वॉल्यूटिन कण, ग्लाइकोजन कण व लिपिड बूँदे पायी जाती है।

1.4.3 प्लूरोन्यूमोनिया के समान जीव

(Pleuropneumonia like organism- PPLO)

ये जीवाणु सदृश्य जीव होते हैं किन्तु इनकी कोशिकाओं में कोशिकाभित्ति व मीसोसोम नही होते । ये सरलतम कोशिकाएँ मानी जाती है इनके कोशिकाद्रव्य में प्रोटीन संश्लेषण शर्करा के अनॉक्सी श्वसन तथा ATP के जैव -संश्लेषण के लिए एन्जाइम होते हैं । इनमें DNA पुनरावृत्ति, अनुलेखन व अनुलिपिकरण के एन्जाइम भी होते हैं । न्यूक्लाइड क्षेत्र में द्विरज्जुकी डी.एन.ए. का वृत्ताकार अणु होता है ।

1.4.4 यूकेरिओटिस (Eukaryotes)

यूकेरिओटिक कोशिकाएँ (Eu =well or good = सच्चा karyon= केन्द्रक) में सुस्पष्ट व विकसित केन्द्रक पाया जाता है । इनमें केन्द्रक दोहरी झिल्ली से घिरा रहता है । कोशिकाओं के अन्य कोशिकांग जैसे माइटोकॉन्ड्रिया, हरितलवक इत्यादि भी दोहरी सुविकसित झिल्ली से घिरे होते हैं । उदाहरणार्थ : एककोशिकी जीव यीस्ट, प्रोटोजोआ, कुछ शैवाल व विभिन्न बहुकोशिकी पादप जन्तुओं को रखा गया है ।

कोशिका की आकृति : विभिन्न जीवों में कोशिकाओं की आकृति उनके द्वारा होने वाले विशिष्ट क्रियाओं द्वारा निर्धारित होती है । कुछ कोशिकाओं की आकृति अनियमित होती है जैसे अमीबा व श्वेत रक्त कोशिकाओं की आकृति सामान्यत : गोलाकार होती है लेकिन विभिन्न कार्यों को करने के लिए कूटपाद का निमार्ण होने के कारण इनकी आकृति अनियमित हो जाती है । बहुत से जन्तु कोशिकाओं में कठोर प्लाज्मा झिल्ली होने के कारण इनकी आकृति स्थिर होती है जैसे **युग्लीना, पैरामीशियम** । बहुकोशिकीय झिल्ली में जीवों में विभिन्न आकृति की कोशिकाएँ पायी जाती है जैसे बहुभुजी (polyhedral), गोलाकार (spherical), तर्कुरूपी (spindle shaped), लम्बवत् (elongated) शाखित (branched) आदि । कोशिका की आकृति को प्रभावित करने वाले बाह्य कारक दाब व पृष्ठ तनाव (pressure and surface tension) आदि है तथा इसके अन्दर होने वाली विशेषीकृति क्रियायें आन्तरिक कारक है । इसी कारण से कोशिकाओं की आकृति में अत्यधिक विविधतायें देखने को मिलती है ।

आकार (Size). कुछ पादप व जन्तु कोशिकाएँ आकार में बड़ी होती है इन्हें नग्न आँखों से देखा जा सकता है । उदाहरणार्थ पादपों में **सायकस पादप** का बीजाण्ड तथा जन्तुओं में **ऑस्ट्रीच** पक्षी का अंडा आकार में सबसे बड़ी कोशिका होती है । इसी प्रकार मनुष्यों में तंत्रिका कोशिका की पूंछ करीब एक मीटर लम्बी होती है । पादपों में **मनीला हेम्प** के रेशे करीब एक मीटर लम्बाई के होते हैं । एककोशिकी शैवाल ऐसिटेबुलेरिया की कोशिका की ऊंचाई 10 cm होती है । कुछ कोशिका इतनी छोटी होती है जिन्हें केवल सूक्ष्मदर्शी द्वारा ही देखा जा सकता है ।

कोशिका के भाप की इकाईया :

1. मिलीमीटर (mm) - 1mm = 1000µ
2. माइक्रोमीटर (um) या माइक्रोन µ-1 µ=1000 mµ (मिलीमाइक्रोन)
3. नेनोमीटर (nm) या मिली माइक्रोन (mµ)
4. ऐंग्स्ट्रॉग (Å) - 1 Å =10-1 mµ= 10^{-4} µ= 10^{-7} mm
5. 1 mµ = 10Å

प्रोकेरियोटिक कोशिकाओं का आकार प्राय : 1 µm - 10 µm तक होता है । सामान्य जीवाणु कोशिका का आकार 0.2 - 5.0 µm होता है । सबसे छोटी कोशिका **माइक्रोप्लाज्मा गेलीसेप्टीकम** है जिसका आकार 0.1 µm होता है जो कि जीवाणु कोशिका व वाइरस के आकार के मध्य का है ।

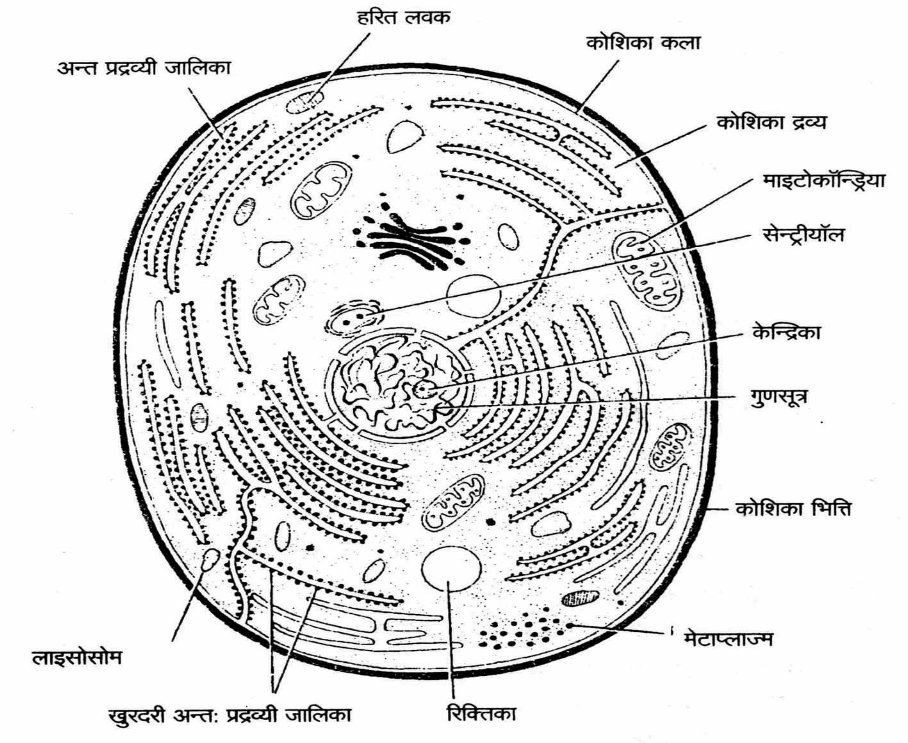

चित्र 1.3 : प्रारूपी प्राणी - कोशिका की संरचना का चित्रीय निरुपण

1.4.5 कोशिका के आमाप को सीमित करने वाले कारक

Factors Restructuring the cell size)

दो मुख्य कारक कोशिकाओं के आकार को सीमित करते हैं -

(i) **न्यूक्लिओसाइटोप्लाज्मिक अनुपात** (Nucleocytoplasmic Ratio) : आर.एन.ए संश्लेषण एवं प्रोटीन संश्लेषण द्वारा केन्द्रक कोशिका की विभिन्न प्रक्रियाओं का नियमन करता है । एक बड़े आमाप की कोशिकाओं को अधिक कोशिका द्रव्य चाहिए जिसके लिए इसे अधिक प्रोटीन एव अधिक आर.एन.ए. की मात्रा स्थिर रखनी पड़ती है जो एक निश्चित आमाप तक ही कोशिका की प्रक्रियाओं का नियमन कर सकता है । आमाप में इससे अधिक वृद्धि होने पर केन्द्रक का कोशिकीय प्रक्रियाओं पर नियन्त्रण ठीक प्रकार से नहीं रहता । इसी कारण एक निश्चित साइज तक पहुँचने के बाद कोशिका की वृद्धि रूक जाती है ।

(ii) **सतह का क्षेत्रफल** (Surface Area) : छोटी कोशिकाओं की सतह का आपेक्षित क्षेत्रफल अधिक होता है । आमाप में वृद्धि से यह अनुपात क्रमिक रूप से कम होता जाता है कोशिका की सतह का क्षेत्रफल इसके वातावरण एवं कोशिका के बीच पोषक तत्व तथा ऑक्सीजन के आदान -प्रदान का नियमन करके इसके आयतन को नियंत्रित करता है । यही कारण है कि उपापचय रूप से सक्रिय कोशिकाएँ छोटे आमाप की होती है ।

कोशिका की संख्या : कोई भी जीव एककोशिकीय अन्यथा बहुकोशिकीय होता है । कोशिकाओं की संख्या प्राय : जीव के आकार पर निर्भर करती है, अर्थात् जितना बड़ा आकार होगा उतनी ही अधिक कोशिकाओं का बना होगा । अधिकतर बहुकोशिकी जीवों में कोशिका की संख्या अनिश्चित होती है लेकिन कुछ बहुकोशिकी जीव, जैसे नीमेटोड्स तथा रोटीफरस में कोशिका की संख्या आनुवांशिक रूप से निश्चित होती है । इस प्रकार कोशिकाओं की संख्या निश्चित होना हेल कहलाती

सारणी 1.2 : प्रोकैरिओट्स व यूकैरिओट्स में अन्तर

(Differences between Prokaryotes and Eukaryotes)

क्र.स	गुण	प्रोकैरिओट्स	यूकैरिओट्स
1.	सामान्य लक्षण (General characters)	सभी सूक्ष्मजीवी,एक कोशिकीय या बहुकोशिकीय सूत्रवत् या कवक जाल फलकाय युक्त जटिल कोशिकीय संरचना।	अधिकतर बड़े जीव,बहुकोशिकीय जटिल या एक कोशिकीय आकारिकी के कुछ संघीय कवकजालीय ।
2.	कोशिका परिमाप(Cell Size)	अधिकतर कोशिकाएँ सूक्ष्म (0.5-10μm) कुछ 50 mμ	अधिकतर कोशिकायें बड़ी (5-100 μm), कुछ 1 mm से भी बड़ी ।
3.	कोशिका भित्ति (Cell wall)	म्यूकोपेप्टाइड	कोशिका भित्ति काइटिन

		(mucopeptide) से बनीकोशिका भित्ति जिसमें Vit-C आवश्यक नही उपस्थित माइकोप्लाज़्मा मे अनुपस्थित (Peptidogylcan)	(chitin), सेल्यूलोज (cellulose) व ग्लाइकोप्रोटीन(glycoprotein) जिसमें हाइड्रोक्सीलेटेड अमीनो अम्ल होते है, से बनी हुई। Vit-C आवश्यक ।
4.	कोशिका झिल्ली (Plasma membrane)	सरल श्वसन क्रिया मे काम आने वाले एन्जाइम्स, प्लाज्मा झिल्ली पर उपस्थित ।	जटिल व विभेदित । माइक्रोविली (microvilli) व अन्य संरचनाएँ उपस्थित ।
5.	कोशिकांग (Cell organelles)	बहुत कम झिल्ली रहित कोशिकांग उपस्थित	विभिन्न क्रियाओं को सम्पन्न करने के लिए एक अथवा दो झिल्ली शीट कई कोशिकांग उपस्थित ।
	(i) राइबोसोम्स(Ribosomes)	70S प्रकार के	80S प्रकार के
	(ii) अन्त: प्रद्रव्यी जालिका (Endoplasmic Reticulum)	अनुपस्थित	उपस्थित, कार्य पदार्थो का स्थानान्तरण करना।
	(iii) गॉल्जीकाय(Golgi body)	अनुपस्थित	उपस्थित स्त्रावी अंग है ।
	(iv) लायसोसोम्स(Lysosomes)	अनुपस्थित	उपस्थित,कोशिकीय पाचन में
6.	केन्द्रक(Nucleus)	सुस्पष्ट केन्द्रक अनुपस्थित व न्यूक्लिओइड कहलाता है।फुलजिन अभिक्रिया प्रदर्शित नही करता ।	सुस्पष्ट केन्द्रक उपस्थित, जिसमेंDNA, RNA तथा प्रोटीन से मिलकर बने क्रोमोसोम्स उपस्थित । फुलजिन अभिक्रिया से लाल रंग का दिखाई देता है ।
7.	केन्द्रक कला(Nuclear membrane)	अनुपस्थित	उपस्थित
8.	क्रोमोसोम्स की संख्या(Chromosome Number)	एक (केवल DNA का बना हुआ)	एक से अधिक

9.	केन्द्रिका(Nucleolus)	अनुपस्थित	उपस्थित
10.	केन्द्रक द्रव्य(Nucleoplasm)	अनुपस्थित	उपस्थित
11.	हिस्टोन प्रोटीन(Histone protein)	अनुपस्थित	उपस्थित
12.	कोशिका विभाजन (Cell division)	समसूत्री व अर्धसूत्री विभाजन अनुपस्थित । गुणन (multiplication) मुकुलन द्वारा। असूत्री विभाजन पाया जाता है। सेन्ट्रियोल, तर्कु तन्तु तथा सूक्ष्म नलिकायें अनुपस्थित ।	समसूत्री व अर्धसूत्री विभाजन पाया जाता है। कुछ में सेन्ट्रियोल पाया जाता है। सभी में तर्कुतन्तु एवम् सूक्ष्म नलिकायें उपस्थित। गुणन (multiplication) दोनों प्रक्रियाओं द्वारा, कुछ में मुकुलन द्वारा भी ।
13.	लैंगिक तंत्र **(Sexual system)**	अधिकतर प्रोकैरिओट्स मे अनुपस्थित, जहाँ उपस्थित उनमें डाटा से ग्राही में एक दिशा में आनुवंशिक पदार्थ (DNA) का स्थानान्तरण (Formation of Partialdiploids) ।	अधिकतर रूपों में पाया जाता है । निषेचन में नर तथा मादा समान मात्रा में आनुवंशिक पदार्थों का सहयोग करते है।
14.	परिवर्धन(Development)	युग्मन से बहुकोशिकीय परिवर्धन नही होता है। ऊतक विभेदन (tissue Differentiation) व कायान्तरण (metamorphosis) अनुपस्थित।	अगुणित रूप (haploids) अर्धसूत्री विभाजन से व द्विगुणी रूप (diploids) निषेचन से उत्पन्न युग्मनज से बंटे है। ऊतक विभेदन व कायान्तरण उपस्थित।
15.	उपापचय (Metabolism)	विभिन्न उपापचयी क्रियाएँ होती है। अकार्बनिक पदार्थो के ऑक्सीकरण के लिए माइटोकॉन्ड्रिया जैसी	विभिन्न उपापचयी क्रियाओं के लिये झिल्ली आबद्ध पुटिकाये उपस्थित, जैसे- माइटोकॉन्ड्रिया, क्लोरोप्लास्ट आदि ।

		पुटिकाये	
16.	प्रकाश संश्लेषण(Photosynthesis)	कुछ जीवाणु व नीले-हरे शैवालों में प्रकाश संश्लेषण क्रोमेटोफोर्स में होता है। इस क्रिया में O_2 उत्सर्जन अनुपस्थित। लिपिड्स, ओलिक अम्ल, स्टीरॉइड्स, अमीनोग्लाइकोसाइड व एंटीबायोटिक्स बंटे है।	पादप कोशिकाओं मे प्रकाश संश्लेषण क्लोरोप्लास्ट में होता है। O2 उत्सर्जित होती है । इरगेस्ट्राल, कोलिस्ट्रॉल, एल्केलॉइड्स फ्लेवीनॉइड्स तथा विभिन्न द्वितीयक उत्पाद बंटे है।
17.	गतिशीलता (Motility)	कुछ जीवाणुओं में गति कशाभिका द्वारा। कशाभिका फ्लेजिलिन की बनी हुई एकल फाइब्रिल युक्त, लेकिन 9+2 विन्यास अनुपस्थित। कोशिका द्रव्य में किसी प्रकार की गति नही होती है।	गति कशाभिका द्वारा। कशाभिक अनेक फाइब्रिलयुक्त, 9+2 विन्यास प्रदर्शित करते है। अमीबिक गति व जीवद्रव्य भ्रमण (Cylosis) आदि गतियाँ होती है।
18.	ऑक्सीजन सहनता(Oxygen tolerance)	पूर्णतया विकल्पी अनॉक्सी श्वसनीय या ऑक्सी श्वसनीय	मुख्यतः ऑक्सी श्वसनीय।
19.	एंटीबायोटिक संवेदनशीलता(Antibiotic Sensitivity)	उपस्थित	अनुपस्थित।

1.5 कोशिका की सूक्ष्म संरचना (Ultra Structure of the Cell)

आधुनिक भाषा में कोशिका को गत्यात्मक एवं व्यवस्थित आणविक फैक्ट्री कहते हैं जिसका अपना निजी "पावर हाउस" है जिसमें ऊर्जा संचित रहती है, इसके अपने 'समन्वय केन्द्र ' हैं जो विभिन्न क्रियाओं में समन्वय बनाये रखते हैं इसके अपने स्वयं के मस्तिष्क केन्द्र है जहाँ जीवन सम्बन्धी निर्देशों की प्रतिलिपी संचित रहती है तथा इसके अपने रासायनिक संयोजन केन्द्र होते हैं जहाँ जीवन के लिए उपयुक्त मूलभूत रसायनों का निर्माण होता है ।

इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी की सहायता से कोशिका की जटिल संरचना का विस्तृत अध्ययन सम्भव हो पाया है । आधुनिक शोधकर्ताओं ने अपनी खोजों के आधार पर कोशिका संरचना की विस्तृत जानकारी दी । थ्रेडगोल्ड (Threadgold 1969) ने कोशिका को थ्री -फेज सिस्टम माना ।

इसकी आधारभूत संरचनात्मक इकाईया निम्न हैं.

(1) कलाओं का तंत्र (membrane system)

(2) सूक्ष्म नलिकाएँ या तंतु (microtubules or fibres)

(3) कोशिकीय कण (cell granules)

(1.) कलाओं का तंत्र (membrane system) : कोशिका झिल्लियों का तंत्र है जिसमें कोशिका कला (cell membrane) से लेकर केन्द्रक कला (nuclear membrane) तक सभी संरचनाएँ विशेष संगठन वाली झिल्लियों से बनी है । इन झिल्लियों का संगठन सभी जगह समान होता है । इसलिये इन्हें इकाई कला (unit membrane) कहा जाता है । प्रत्येक इकाई कला लाइपोप्रोटीन्स की बनी होती है जिसकी मोटाई 75- 100Å तक होती है । रॉबर्टसन (1959) के द्वारा दिये गये इकाई कला सिद्धान्त के अनुसार यह त्रिस्तरीय कहलाता है । इसके दो भाग किये जा सकते हैं ।

(i) प्रथम समूह में प्लाज्मा झिल्ली तथा उससे बनने वाली रिक्तिकाओं (vacuoles) को रखा गया है । अन्य झिल्लियों की अपेक्षा प्लाज्मा झिल्ली की मोटाई कुछ अधिक होती है (90Å - 100Å)

(ii) दूसरे समूह में विभिन्न कोशिकांगों जैसे गॉल्जीकॉय, माइटोकॉन्ड्रिया, अन्त : प्रद्रव्यी जालिका, केन्द्रक कला तथा लाइसोसोम आदि को घेरने वाली कलाओं को रखा गया है ।

(2.) सूक्ष्म नलिकाएँ या तंतु (Microtubules of fibres) : ये कोशिका संरचना की द्वितीय आधारभूत इकाईयाँ हैं । सूक्ष्म नलिकाएँ इकाई कला के रूपान्तरण से बनने वाली खोखली संरचनायें होती है । जबकि तंतु ठोस होते हैं तथा उपतंतुओं के मिलने से बनते हैं । क्रियात्मक दृष्टि से तंतु दो प्रकार के होते है :

(i) निष्क्रिय संरचनात्मक तंतु : इस श्रेणी में विभिन्न अन्त : कोशिकी तंतु जैसे टोनोफाइब्रिल्स, क्रोमेटिन तंतु , डी.एन.ए. तंतु, न्यूरोतंतु तथा बाह्य कोशिकी कोलाजन क्रोमेटिन तंतु, डी.एन.ए., तंतु, न्यूरोतंतु तथा बाह्य कोशिकी कोलाजन (Collagen) तथा इलास्टिन (Elastin) आते है ।

(ii) सक्रिय तंतु : इस श्रेणी में स्पिन्डल सूत्र, सीलिया, कशाभिकाएँ त था मायोसूत्र आते हैं ।

(3.) कोशिकीय कण (Cell granules) : कोशिकीय कण कोशिका संरचना की तीसरी आधारभूत इकाई है । कोशिका में सामान्य रूप से पाये जाने वाले कण राइबोसोम्स त था माइटोकॉन्ड्रिया में पाये जाने वाले कण है ।

प्रोटोप्लाज्म (Protoplasm)

(1.) **कोशिका द्रव्य : कोशिका काय** (Cytoplasm : Cytosome) : जीवद्रव्य से केन्द्रक को निकालकर शेष भाग कोशिका द्रव्य या कोशिका काय कहलाता है । इसके दो भाग किये जा सकते हैं ।

(अ) एक्टोप्लास्ट या कोशिका कला (Ectoplast or cell membrane): यह इकाई कला जीवद्रव्य को आबद्ध किये रहती है । यह एकवर्णकी या अवकलीय पारगम्य कला है, अत _ विभिन्न प्रकार से कोशिका के अन्दर आने जाने वाले पदार्थों का नियमन करती है ।

(ब) मीजोप्लास्ट (Mesoplast) : कोशिका कला के अन्दर शेष कोशिका द्रव्य को मीजोप्लास्ट कहते हैं । इसके अनेक भाग हैं जो एक समांगी व अविरत (homogenous and continuous) हायलोप्लाज्म (hyaloplasm) में रहते हैं । इस द्रव में पड़ी हुई वस्तुएँ कोशिकीय अर्न्तवस्तुएँ (Cell inclusions) कहलाती है ।

(2) **कोशिकीय अर्न्तवस्तुएँ** (Cell inclusions) : ये दो प्रकार की होती है

(i) सजीव अन्तर्वस्तुएँ (Living inclusions) : ये उपापचयी रूप से सक्रिय कोशिकांग (metabolic active organelles) है । जैसे अन्त : प्रद्रव्यी जालिका, माइटोकॉन्ड्रिया, गॉल्जीकॉय, तारककाय, लवक, राइबोसोम्स, माइक्रोसोम्स, लाइसोसोम्स, अन्य सूक्ष्म संरचनाएँ, केन्द्रक, रिक्तिकायें ।

(ii) अजीव अर्न्तवस्तुएँ (Non- living Inclusions) : ये कोशिकाओं में होने वाली विभिन्न उपापचयी क्रियाओं के कारण बनने वाले पदार्थ हैं । ये निर्जीव होते हैं । मुख्यरूप से इन्हें तीन भागों में बाँटा जा सकता है -

(1) संचित पदार्थ (Reserve material)

(2) स्रावक पदार्थ (Secretory material)

(3) उत्सर्जी पदार्थ (Excretory material)

पादप एवं प्राणी कोशिकाएँ दोनों ही यूकेरियोटिक कोशिकाएँ कहलाती है । इनमें सुनिश्चित केन्द्रक तथा विभिन्न कोशिकीय अंगक होते हैं । काफी कुछ समानता होने पर भी पादप व प्राणी कोशिकाओं में अग्रलिखित अन्तर है ।

सारणी 1.3 : पादप एवं प्राणि - कोशिकायें

(Plant and Animal Cells)

पादप कोशिका	**प्राणि - कोशिका**
1. प्राय : प्लैज्मा झिल्ली के चारों ओर सेलूलोस की बनी दृढ़ एवं निर्जीव कोशिका भित्ति होती है (कवकों में इसका अभाव होता है) ।	1. कोशिका - भित्ति नहीं होती ।
2. परिपक्व कोशिकाओं के मध्य भाग में एक बड़ी धानी होती है जिसके कारण भित्ति के साथ -साथ एक स्तर के रूप में होता है ।	2. धानियाँ नहीं होती ।
3. कोशिकाद्रव्य में लवक होते हैं । क्लोरोफिल युक्त हरे लवक हरित लवक कहलाते हैं । ये प्रकाश -संश्लेषण द्वारा कार्बनिक भोजन का निर्माण करते हैं । (बैक्टीरिया कवकों में लवक नहीं होते)।	3. लवक (plastids) नहीं होते ।
4. सेन्ट्रोसोम व सेण्ट्रियोल अनुपस्थित होते हैं ।	4. सेन्ट्रोसोम व सेण्ट्रियोज

	उपस्थित होते हैं ।
5. गॉल्जी कॉम्पलेक्स कम विकसित एवं छितरा हुआ इसे डिक्ट्रियोसोम (dictyosome) कहते हैं ।	5. गॉल्जी कॉम्पलेक्स पूर्ण होता है । विकसित एव स्पष्ट होता है ।

1.6 कोशिका भित्ति (Cell wall)

पादप कोशिकाओं में कोशिका भित्ति का पाया जाना उनका एक विशिष्ट लक्षण है । पादप कोशिकाओं में जीवद्रव्य द्वारा स्रावित निर्जीव पर्त जो कि सजीव प्लाज्मा झिल्ली के बाहर स्थित रहती है तथा सम्पूर्ण जीवद्रव्य इकाई के चारों ओर एक रक्षात्मक कवच बनाती है, कोशिका भित्ति कहलाती है । यह जीवद्रव्य के चारों ओर एक ढाँचा बनाकर उसे रक्षण और निश्चित आकृति देती है और इसी कारण पादप को यांत्रिक दृढ़ता मिलती है । इसकी सूक्ष्म संरचना में दो घटक तंतुक(fibrils) तथा मैट्रिक्स (matrix) पाये जाते हैं । ये पॉलीसेकेराइड्स की बनी होती है जिसमें सैल्यूलोज तंतुक तथा हेमीसैल्यूलोज व पैक्टिक पदार्थ मैट्रिक्स बनाते हैं । पॉलीसेकेराइड्स के अलावा कुछ कोशिकाओं में कोशिका भित्ति के परिवर्धन की विभिन्न अवस्थाओं में अन्य पदार्थ जैसे प्रोटीन, लिग्निन, लिपिडस, सुबेरिन, क्यूटिन, मोम, रेजिन, गोंद, तथा टेनिन आदि पदार्थों का जमाव होता है । जन्तु कोशिका में कोशिका भित्ति का अभाव होता है लेकिन युग्लीना तथा पैरामीसियम की कोशिकाओं के चारों ओर प्रोटीन की एक पर्त होती है जिसे पेलिकल कहते हैं।

1.6.1 कोशिका भित्ति की संरचना (Structure of Cell wall)

पादप कोशिकाओं की कोशिका भित्ति में तीन मुख्य स्तर होते हैं - मध्य पटलिका (middle lamella), प्राथमिक भित्ति (primary wall) तथा द्वितीयक भित्ति (secondary wall)

(1) मध्य पटलिका (Middle lamella) : यह आन्तरकोशिक मैट्रिक्स है जो संलग्न कोशिकाओं को परिधारित किये रखती है । यह सदैव ही संलग्न कोशिकाओं की प्राथमिक कोशिका - भित्तियों के बीच में मिलती है । यह कैल्शियम एव मैंग्नीशियम पैक्टेट्रस की बनी होती है । इसके अतिरिक्त इसमें एक प्रोटीन घटक भी उपस्थित होता है ।

(2) प्राथमिक भित्ति (Primary wall) : यह वास्तविक कोशिका भित्ति है जो नयी बनी कोशिका में विकसित होती है । यह एक महीन स्तर के रूप में जीवद्रव्य से विकसित होती है तथा पैक्टेट्स व सैल्यूलोज तथा हेमीसैल्यूलोज व पॉलीसैकेराइड्स की बनी होती है ।

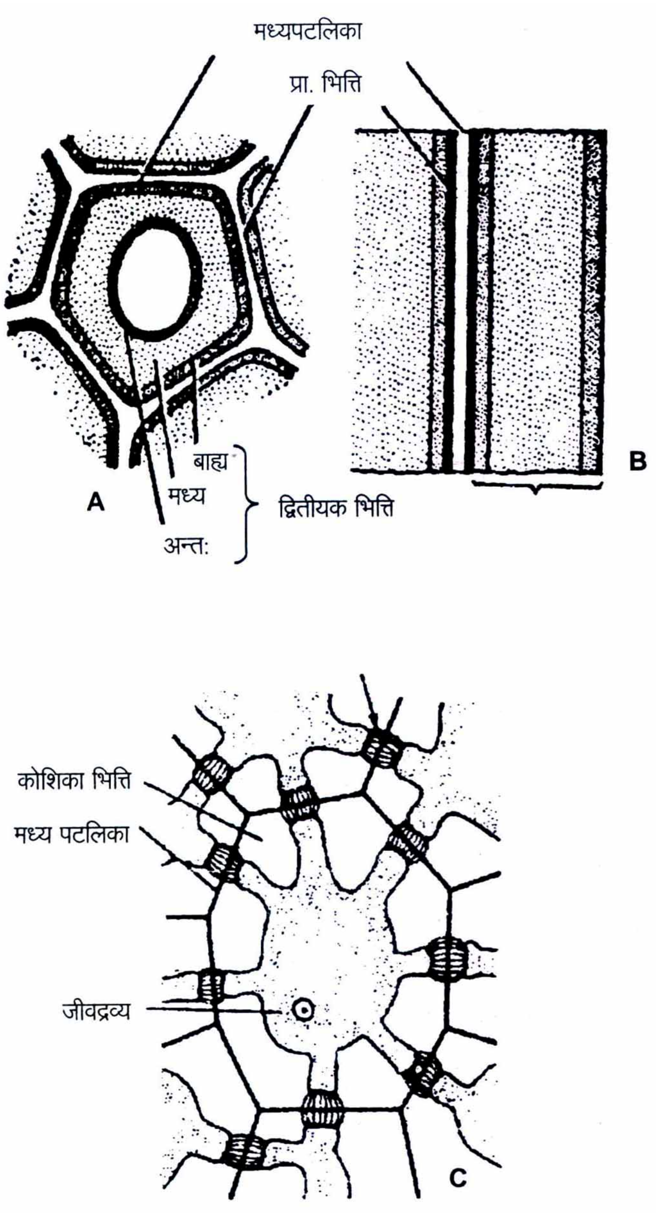

चित्र 1.4 : कोशिका भित्ति की संरचना

(3) **द्‌वितीयक भित्ति (Secondary wall)** : यह प्राथमिक भित्ति के अन्दर की ओर स्थित होती है । यह केवल पूर्ण वृद्धि प्राप्त कोशिकाओं में विकसित होती है । यह अत्यधिक मोटी एवं दृढ़ होती है और कोशिका को अत्यधिक तनन सामर्थ्य प्रदान करती है । यह सैल्यूलोज हेमीसैल्यूलोज व अन्य कुछ पॉलीसेकेराइड्स की बनी होती है । इन पदार्थों के अतिरिक्त अकार्बनिक लवण, टेनिन्स, मोम, कैल्शियम यौगिक, सिलिका, लिग्निन, सुबेरिन व क्यूटिन आदि भी द्‌वितीयक भित्ति में निक्षेपित होते हैं । द्‌वितीयक भित्ति के अतिरिक्त भीतर की ओर एक अन्य स्तर होता है । जिसका रासायनिक द्‌वितीयक भित्ति से भिन्न होता है । इस स्तर को तृतीयक स्तर कहते हैं जो सैल्यूलोज की बजाय जाइलोन (xylon) का बना होता है

। इन तीन स्तरों में मध्यस्तर सबसे मोटा होता है । तथा इन स्तरों के निर्माण के पश्चात कोशिका भित्ति का लचीलापन समाप्त हो जाता है तथा यह दृढ़ व कठोर हो जाती है ।

प्लाज्मोडेस्मेट्रा (Plasmodesmata) : ये संलग्न कोशिकाओं के सम्पर्क स्थानों पर मिलने वाले स्थूलित क्षेत्र है । प्रकाश सूक्ष्मदर्शी द्वारा ये गहरी अभिरंजित कायों के रूप मैं दृष्टिगत होते हैं किन्तु इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा ये संलग्न कोशिकाओं की प्लेज्मा झिल्लियों की भीतरी सतह पर बटन के समान स्थूलनों के रूप में दिखाई देते हैं । इन स्थूलनों में महीन कोशिकाद्रव्य तन्तुक होते हैं जिन्हें टोनोफाइब्रिल्स कहते हैं । प्लज्मोडेस्मेटा वाले स्थानों पर प्लैज्मा झिल्लियों के बीच 300-500Å चौड़ा आन्तरकोशिक अवकाश होता है जिसमें सघन पदार्थ भरे रहते हैं । यह माना जाता है कि प्लैज्मोडेस्मैटा कोशिका के आसंजन में सहायक होते हैं और कोशिकाओं को निश्चित आकृति, दृढ़ता तथा अवलम्बन प्रदान करते हैं ।

1.6.2 कोशिका भित्ति की परारचना (Ultrastructure of Cell wall) :

कोशिका भित्ति एक त्रिपरतीय संरचना है जिसमें सभी परतों की संरचना तन्तुकीय (fibrillar) होती है । प्रत्येक तन्तुक लम्बा व शाखित हो सकता है । यह स्वयं लगभग 250 सूक्ष्म तन्तुको (microfibrillas) द्वारा बना होता है । सूक्ष्म तन्तुक स्वयं भी 20- 22 अति सूक्ष्म तंतुको द्वारा बने होते हैं जिन्हें मिसेल (micelle) कहते हैं । एक मिसेल की रचना लगभग 100 सैल्यूलोज अणुओं की लम्बी श्रृंखलाओं के एक साथ, एक स्थान पर लगे होने से होती है । इस प्रकार तन्तुकीय संरचना से बने जाल में अन्तर तन्तुकीय स्थानों में हेमीसैल्यूलोज तथा पैक्टिन के कण (amorphous particles) भरे रहते हैं । प्राथमिक भित्ति में शुरू में माइक्रोफाइब्रिल्स व्यवस्थित रूप में नहीं पाये जाते हैं । लेकिन कोशिका के परिपक्व होने पर ये माइक्रोफाइब्रिल्स धीरे - धीरे लम्बाई में व्यवस्थित होने लगते हैं । द्वितीयक भित्ति में माइक्रोफाइब्रिल्स समानान्तर (parallel) रूप से व्यवस्थित रहते हैं । माइक्रोफाइब्रिल्स के मध्यवर्ती स्थानों में कार्बोहाइड्रेट्स के दूसरे यौगिक, क्यूटिन, सुबेरिन, हेमीसैल्यूलोज, पैक्टिन तथा लिग्निन आदि निक्षेपित रहते हैं ।

द्वितीयक भित्ति भी सेलूलोज की बनी होती है तथा इसके मैक्रोफाइब्रिल्स प्राथमिक भित्ति के समान विन्यासित होते हैं । किन्तु प्रत्येक मैक्रोफाइब्रिल के माइक्रोफाइब्रिल समान्तर क्रम में अति सघन रूप से विन्यासित होते हैं ।

1.6.3 कोशिका भित्ति की उत्पत्ति व वृद्धि (cell wall origin and growth)

अनुमान है कि नई कोशिका भित्ति तथा मध्य पटलिका कोशिका विभाजन के समय अन्त 'प्रद्रव्यी जालिका से निर्मित होते हैं । कोशिका पट्टी के निर्माण के लिए अन्त:प्रद्रव्यी जालिका तथा गॉल्जी उपकरण द्वारा व्युत्पन्न तीन प्रकार की संरचनाएँ बनती है । (1) अन्त :प्रद्रव्यी जालिका के खण्ड (2) 20mμ परिमाप वाली पुटिकाएँ जो कि गॉल्जी उपकरण से टूटती है तथा (3) 250mμ परिमाप वाली बड़ी पुटिकाएँ जिन्हें फ्रेग्मोसोम्स कहते हैं, ये तीनों संरचनाएँ मिलकर फ्रेग्मोप्लास्ट उपकरण कहलाती है । टीलोफेज प्रावस्था के अन्त में जैसे ही गुणसूत्र तर्कु के ध्रुवों तक पहुँचते हैं, पैक्टिन की अत्यधिक मात्रा से युक्त तथा 2.0 mμ व्यास के छोटे -छोटे द्विस्तरीय वेसीकल

या फ्रेग्मोप्लास्ट मध्यवर्तीय रेखा पर एकत्रित होकर कोशिका पट्टी बनाते हैं । संलग्न वेसीकल की भित्तियाँ विघटित होकर कला के समान रचना बनाती है । इसे मध्य पटल कहते हैं । कुछ स्थानों पर वेसीकल की विघटित भित्तियों में अपूर्ण संलग्नता के फलस्वरुप छिद्र बन जाते हैं । मध्य पटल के दोनों ओर एक केन्द्रीय कतारों में सेल्यूलोज फाइब्रिल्स एकत्रित हो जाते हैं । जो अन्त में प्राथमिक कोशिका भित्ति बनाते हैं ।

कोशिका पट्टी के निर्माण के लिए अन्त प्रद्रव्यी जालिका के खण्ड व पुटिकायें मध्यवर्ती क्षेत्र मे पंक्तिबद्ध हो जाते हैं तथा कोशिका के आर -पार पहुँचकर कोशिका द्रव्य को दो भागों में विभक्त कर देते हैं । बाद में पुटिकाएँ जुड़ कर एक झिल्ली जैसी संरचना बनाती है । यह झिल्ली पुत्री कोशिकाओं की प्लाज्मा झिल्ली से जुड़ जाती है, दोहरी झिल्ली के मध्य उपस्थित पैक्टिन सामग्री बाद में मध्य पट्लिका का निर्माण करती है । पुटिकाओं में पैक्टिन भरा होता है तथा कुछ स्थानों पर संलग्न अपूर्ण रह जाता है जिससे प्लाज्मोडेस्मेटा का निर्माण होता है 20 mμ वाली पुटिकाओं के दोनों और फ्रेग्मोसोम्स दिखाई देते हैं जो झिल्ली के बने होते हैं, इनमे कणात्मक मेट्रिक्स पाया जाता है इनका व्यास 250 mμ होता है तथा ये मध्य पटलिका पदार्थ को अपना योगदान देते हैं तथा वाद में ये समाप्त हो जाते हैं ।

इस प्रकार कोशिका पट्टी के विकसित होने के पश्चात पुत्री कोशिकाओं का जीवद्रव्य अपनी प्राथमिक भित्ति के पदार्थों का स्राव करता है प्राथमिक भित्ति का निर्माण मध्य पटलिका पर सैल्यूलोज तथा पैक्टिन के जमाव के कारण होता है । प्रारम्भ में यह भित्ति लचीली होती है तथा खिंचने का सामर्थ्य रखती है जिसके कारण कोशिका का प्रसरण संभव होता है । फैलने के कारण प्राथमिक भित्ति खिंच जाती है जिससे इसके कणों के बीच -बीच में स्थान बनते रहते हैं जिनमें अन्य पदार्थ कणों के रूप में आकर मिलते हैं । इस प्रकार नये कणों का पहले से उपस्थित कणों के बीच -बीच में संचयन द्‌वारा कोशिका भित्ति की वृद्धि कणाधान वृद्धि (intussusception) कहलाती है जिसके द्‌वारा एक स्तर का निर्माण होता है । कोशिका के पूर्ण परिमाण की प्रप्ति के पश्चात दृढ़ द्‌वितीयक भित्ति का संचयन होता है । भित्ति पदार्थ प्राथमिक भित्ति पर निश्चित पर्तो के रूप में संचयित हो जाता है, जिससे पूरी भित्ति की मोटाई में वृद्धि पर्त के रूप में होती है । इसे स्तरा धान (apposition) द्‌वारा वृद्धि कहते हैं ।

1.6.4 कोशिका भित्ति का स्थूलन (Thickening of the Cell Wall)

पादपों में कुछ कोशिकायें विशिष्ट कार्य सम्पन्न करती है, जैसे वाहिनी व वाहिनिकायें संवहन का कार्य तथा दृढ़ोतक की कोशिकायें पादप को दृढ़ता प्रदान करने का कार्य करती है । इन कोशिकाओं में पूर्णरूपेण कोशिका भित्ति निर्माण, आकार व परिमाप ग्रहण करने के पश्चात् कोशिका भित्ति का स्थूलन होता है जो कि प्राय : लिग्निन द्‌वारा होता है । दृढ़ोतक की कोशिकाओं में लिग्निन का जमाव समान रूप से पूर्ण पर्त के रूप में होता है जबकि संवहनी कोशिकाओं में भित्ति पर विभिन्न रूपों में लिग्निन का जमाव होता है, जिससे निम्न प्रकार के आकार बनते हैं -

(1) **वलयाकार** (Annular) : जब कोशिका भित्ति के अन्दर की सतह पर लिग्निन छल्लों के रूप मे जमा होता है, इसे वलयाकार (annular) स्थूलन कहते हैं । स्थूलन का प्रत्येक छल्ला

समानान्तर होता है । प्रोटोजाइलम की वाहिका तथा वाहिकाओं में इस प्रकार का स्थूलन देखने को मिलता है ।

(2) **सर्पिल** (Spiral) : लिग्निन का निक्षेपण सर्पिल पट्टी के रूप में जमा हो जाता है यह भी प्रोटोजाइलम की वाहिका तथा वाहिनिका में पाया जाता है ।

(3) **जालिकारूपी** (Pitted) : लिग्निन की पट्टियां आड़ी तिरछी होकर आपस में जुड़ जाती है जिससे भित्ति पर एक जाल सा बन जाता है ।

(4) **गर्तमय** (Pitted) : जब पूरी भित्ति पर लिग्निन लगभग समानरूप से जमा हो जाता है पूरी भित्ति स्थूलित हो जाती है किन्तु जगह - जगह पर खाली स्थान रह जाते हैं, यह लिग्निन रहित खाली स्थान गर्त कहलाते हैं तथा इस प्रकार का स्थूलन गर्तमय या Pitted कहलाता है । गर्त दो प्रकार के होते हैं

(i) **साधारण गर्त** (Simple Pits) : इस प्रकार के गर्त कोशिका भित्ति पर आकृति गोल, अण्डाकार या खिंचे हुए (oblong) दिखाई देते हैं । ये गर्त जोड़ों में दो कोशिकाओं की भित्ति पर आमने -सामने बनते हैं । दोनों कोशिकाओं की भित्ति पर उपस्थित गर्त जोड़ों को केवल मध्य पटलिका व प्राथमिक भित्ति ही अलग - अलग करती है। अत : यह झिल्ली सरल गर्त जीवित व निर्जीव दोनों प्रकार की कोशिकाओं में मिलते हैं किन्तु काष्ठ पेरेनकाइमा, फ्लोयम पैरेनकाइमा, सहकोशिकाओं तथा रेशों में ये अधिकता से मिलते हैं । ये एन्जियोस्पर्म के वाहिका तथा वाहिनिका में भी मिलते हैं ।

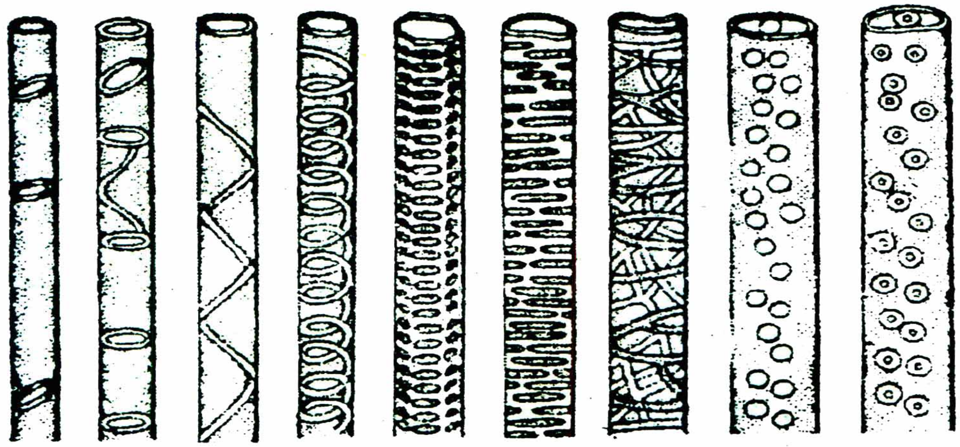

चित्र 1. 5 : कोशिका भित्ति पर विभिन्न प्रकार के स्थूलन : A. वलयाकार, B. व C. सर्पिल, D.सीढ़ीनुमा,E. जालिकारूपी, F. साधारण गर्त (Pits) G. परिवेशित गर्त (bordered pits)

(ii) **परिवेशित गर्त (Bordered pits)** : इस प्रकार के गर्त का आकार कीपाकार (funnel shaped) होता है । क्योंकि इस प्रकार के गर्त में सम्पूर्ण गहराई तक एक सा क्षेत्र नहीं पाया जाता है । अत : गर्त कीप की आकृति बना लेता है । इस प्रकार के गर्तो की गुहा समान व्यास की न होकर भित्ति के समीप चौड़ी तथा कोशिका की ल्यूमेन की ओर कीप

के समान संकरी होती है । इस प्रकार के गर्त परिवेशित गर्त कहलाते हैं । इन गर्तों में कोशिकाओं का स्थूलित पदार्थ ल्यूमेन की ओर वृद्धि करके गर्त के चारों ओर एक महरान सी बना लेता है। गर्तों को बंद करने वाली झिल्ली केन्द्रीय भाग में कुछ स्थूलित सी होकर टोरस बनाती है । पृष्ठ दृश्य में परिवेशित गर्त अण्डाकार या वृत्ताकार प्रतीत होते हैं । परिवेशित गर्त जिम्नोस्पर्म केट्रीकीड्स तथा एन्जियोस्पर्म केट्रीकीड्स एव वैसल्स में बहुलता से मिलते हैं ।

गर्तों में से द्रव्य पदार्थों का विसरण होता है । परिवेशित गर्तों में टोरस के बद होने तथा खुलने के कारण यह पदार्थों के विसरण का नियमन करता है ।

1.6.5 कोशिका भित्ति : रासायनिक परिवर्तन (Cell Wall: Chemical Changes)

ज्यादातर सभी पादपों में कोशिका भित्ति का रासायनिक संगठन सैल्यूलोज व पैक्टिक पदार्थों द्वारा होता है । किन्तु कोशिकाओं के पुराने हो जाने पर यांत्रिक सहायता के लिए कोशिका भित्ति पर अन्य रासायनिक पदार्थों जैसे लिग्निन, सुबेरिन, क्यूटिन पैक्टिन, खनिज लवण, टेनिन तथा रेजिन आदि जमा हो जाते हैं । कोशिका भित्ति में होने वाली रासायनिक परिवर्तन निम्न प्रकार के हो सकते हैं ।

(1) **लिग्नीभवन** (Lignification) : लिग्निन एक कठोर व जटिल पदार्थ है जो कुछ हद तक पानी को अपने में सोख लेता है तथा बाद में पानी के लिए अपारगम्य हो जाता है यह सैल्यूलोज या अन्य कार्बोहाइड्रेट्स के रूपान्तरण से बनता है । सैल्यूलोज से बनी प्राथमिक भित्ति पर इसका जमाव कोशिका भित्ति को स्थूलित कर दृढ़ व कठोर बना देता है । कोशिकायें मृत व यांत्रिक मदद करने वाली होती है । इनमें जीवद्रव्य समाप्त हो जाता है प्राय : वाहिनी, वाहिनिकायें, व दृढ़ोतक की कोशिकाएँ प्राय: लिग्नीकृत होती है तथा पादप को यांत्रिक शक्ति प्रदान करता है ।

(2) **क्यूटिनीकरण** (Cutinization). इसमें सैल्यूलोज व पैक्टिन पदार्थ क्यूटिन में रूपान्तरित हो जाते हैं । क्यूटिन एक मोम समान पदार्थ है जो तने, पत्तियों तथा अनेक फलों के चारों ओर सतत् आवरण बनाता है । यह अपारगम्य होता है और पौधों की सतह से जल के वाष्पीकरण को रोकता है । यह पौधों के वायवीय भागों की बाह्य त्वचा पर एक पर्त के रूप में जमा हो जाता है । क्यूटिन वसीय अम्लों का एनहाइड्राइड होता है । पौधों में वाष्पोत्सर्जन को अधिक प्रभावी ढंग से रोकने के लिए कभी -कभी क्यूटिकल पर एक मोमी पर्त पायी जाती है जिसे ब्लूम कहते हैं ।

(3) **सुबेरिनीकरण** (Suberization) : यह सुबेरिन के निक्षेपण के कारण होता है । रासायनिक रूप से सुबेरिन अनेक प्रकार की वसाओं का मिश्रण है । यह जल के लिए पूर्ण रूप से अपारगम्य होता है । कोशिका भित्ति पर इसका जमाव सुबनी भवन (Suberization) कहलाता है । यह सामान्य रूप से मध्य पटलिका (middle lamella) पर जमा हो जाता है सुबेरिन युक्त कोशिकायें मृत होती है । कॉर्क कोशिकाएँ इसका उदाहरण है ।

(4) **खनिजीभवन** (Mineralization) : इसमे कोशिका भित्ति में विभिन्न प्रकार के खनिज पदार्थ अन्तर्भरित हो जाते हैं । सिलिका, रेत के कण, कैल्शियम कार्बोनेट, कैल्शियम ऑक्जलेट

आदि खनिज पदार्थ सामान्य रूप से कोशिका भित्ति में निक्षेपित रूप में मिलते हैं । सिलिका मुख्य रूप से विभिन्न घासों, गेहूँ मक्का, तथा गन्ने की पत्तियों तथा इक्वीसीटम के तनों में मिलता है । कैल्शियम ऑक्जलेट के कण अनेक पौधों मे मिलते हैं । बरगद तथा इण्डिया रबर की पत्तियों में $CaCO_3$ के कण अंगूर के गुच्छों के रूप में होते हैं ।

(5) **काइटिनीकरण** (Chitinisation) : कुछ शैवाल तथा अधिकांश कवकों की भित्तियां काइटिन की बनी होती है । यह काइटिन के निक्षेपण के कारण होता है । उच्च पादपों में काइटिन नहीं मिलता । वास्तव में काइटिन जन्तु जगत का विशिष्ट पदार्थ है । कीटों का यह बाह्य कंकाल बनाता है ।

(6) **श्लेष्मीय पदार्थ** (Mucilagenous substances) : श्लेष्मीय पदार्थ सैल्यूलोस के म्यूसिलेज या श्लेष्म में रूपान्तरण से बनते हैं । पानी का शोषण करने पर श्लेष्म फूलकर एक श्यान पदार्थ बनाता है । इसमे जल रोके रखने की क्षमता होती है । यह मरुस्थलीय पादपों की माँसल पत्तियों गुड़हल की पत्तियों तथा भिण्डी के फूलों में बहुलता से मिलती है । ग्वारपाठा की पत्तियाँ व ईसबगोल के बीज ।

(7) **पैक्टिन का बनना** (Formation of Pectin) : फलों के पकने पर उनकी कोशिकाओं की भित्ति का रासायनिक संगठन बदल जाता है । वैसे इन कोशिकाओं में मध्य पटलिका केल्शियम तथा मैग्निशियम पैक्टेट की बनी होती है तथा प्राथमिक व द्वितीयक भित्तियाँ सैल्यूलोज व पैक्टिन की बनी होती है । फलों के पकने के समय इन भित्तियों में पैक्टिन नामक पदार्थ बन जाता है, यह घुलनशील है ।

1.6.6कोशिका भित्ति के कार्य (Function of Cell Wall)

6. कोशिका भित्ति का मुख्य कार्य पौधों को यांत्रिक शक्ति प्रदान करना है ।

(1) यह कोशिका को एक निश्चित आकार व सुरक्षा प्रदान करती है ।

1.7 कोशिका कला या प्लाज्मा कला
(Cell Membrane or Plasma Membrane)

प्लाज्मा झिल्ली या कोशिका कला कोशिका के कोशिकाद्रव्य का वह बाह्य सीमांत है जो कोशिका को बाह्य पर्यावरण से पृथक करती है और कोशिका में प्रवेश करने वाले व उससे बाहर आने वाले अणुओं व आयनों पर नियन्त्रण रख कोशिका द्रव्य व बाह्य पर्यावरण के बीच आयनिक सान्द्रता को बनाए रखती है । नेगेली तथा क्रेमर (Nageli and Cramer 1855) ने इस झिल्ली को कोशिका कला (cell membrane) तथा प्लोव (Plove,1931) ने जीवद्रव्य झिल्ली नाम दिया । यह झिल्ली ठोस, अघुलनशील, प्रत्यास्थ और वरणात्मक पारगम्य होती है । यह कोशिका द्रव्य का ही एक हिस्सा है । पादप कोशिका में यह कोशिका भित्ति तथा कोशिका द्रव्य के बीच में पायी जाती है किन्तु जन्तु कोशिका में यही कोशिका का बाह्य आवरण होती है । यह बहुत ही पतली संरचना है अत : इसे इलैक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा ही देखा जा सकता है, इसे जीव तन्त्रों (living system) से विलगित (isolate) किया जा सकता है, इसका कृत्रिम संश्लेषण भी संभव

है । प्लाज्मा कला अत्यधिक महीन होती है । यह लगभग 75Å मोटी होती है किन्तु विभिन्न प्रकार की कोशिकाओं में इनकी मोटाई

75 - 10Å होती है । इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी से देखने पर प्लैज्मा झिल्ली एक त्रिस्तरीय रचना के समान प्रतीत होती है जिसमें निम्नलिखित स्तर होते हैं -

(i) 20Å में मोटा बाहय सघन स्तर ।

(ii) 20Å मोटा भीतरी सघन स्तर ।

(iii) बाहय व भीतरी स्तरों के बीच 35Å चौड़ा पीले से रग का एक मध्य स्तर (चित्र 1.6) ।

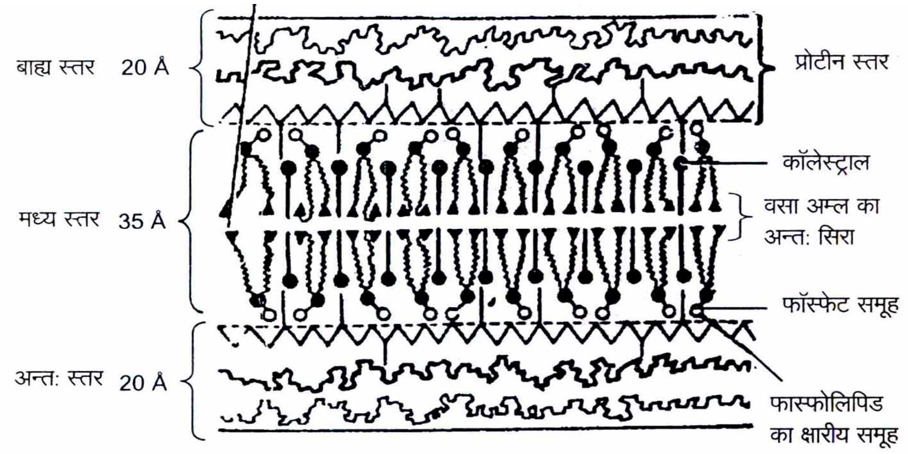

चित्र 1.6 : प्लाज्मा की परारचना

प्लैज्मा झिल्ली के बाहय व भीतरी स्तर प्रोटीन अणुओं के तथा मध्य स्तर फॉस्फोलिपिड अणुओं के दो स्तरों का बना होता है । प्लाज्मा झिल्ली की त्रिस्तरीय रचना सर्वप्रथम डेनिएली एवं डेविडसन (Danielli and Davidson, 1935) में प्रस्तुत की थी तथा हार्वे व डेनिएली (Harvey and Danielli) ने इसका प्रकल्पित मॉडल प्रस्तुत किया था ।

1.7.1 जैविक कला के सामान्य लक्षण

(General features of Biological Membranes)

(1) सभी कोशिका में प्लाज्मा झिल्ली पतले स्तर के रूप में 75 - 105Å मोटी होती है ।

(2) यह मुख्य रूप से लिपिड्स (lipids) तथा प्रोटीन्स (proteins) से बनी होती है ।

(3) झिल्ली में पाये जाने वाले लिपिड अणु छोटे होते हैं । प्रत्येक अणु के दो भाग होते हैं जिनमें एक भाग सिर या ध्रुवीय सिरे में जल घुलनशील ग्लिसरॉल (hydrophilic) तथा दूसरा दो पुच्छ, जल में अघुलनशील वसा अम्ल (hydrophobic) अध्रुवीय सिरे होते हैं । लिपिड अणु ही जलीय माध्यम में द्विअणुक परत (bimolecular layer) बनाते हैं ।

(4) प्लाज्मा झिल्ली में पाये जाने वाले प्रोटीन ही विभिन्न पदार्थों के आवागमन के लिए पम्प द्वार, ग्राही तथा विकर की तरह कार्य करते हैं । इसके अलावा ए.टी.पी. संश्लेषण में मदद करते हैं ।

(5) झिल्ली असममित संरचना है, जिसमें बाहर व अन्दर वाली सतह की संरचना प्राय : अलग - अलग होती है ।

(6) यह जल के प्रति पूर्णतया पारगम्य किन्तु अन्य पदार्थों के प्रति चयनात्मक पारगम्य होती है।

1.7.2 प्लाज्मा कला की रासायनिक संरचना

(Chemical Structure of Plasma Membrane)

प्लाज्मा कला की रासायनिक संरचना के मुख्य अवयव प्रोटीन तथा लिपिड होते हैं । इसके अलावा अल्प मात्रा में

(1% से 5%) कार्बोहाइड्रेट तथा जल (20%) पाये जाते हैं । विभिन्न कोशिकाओं की प्लाज्मा झिल्ली में प्रोटीन तथा लिपिड की आपेक्षिक मात्राओं में भिन्नता पायी जाती है ।

(i) **लिपिड** (Lipids) : प्लाज्मा झिल्ली की सम्पूर्ण रासायनिक संरचना में लगभग 20 - 80% तक लिपिड्स पाये जाते हैं । कला में प्रमुख लिपिड अवयव फॉस्फोलिपिड कोलेस्ट्रॉल तथा ग्लाइकोलिपिड हैं । विभिन्न कोशिका कलाओं में इन अवयवों की आपेक्षिक मात्राएँ भिन्न होती है । आंतरिक कलाओं में लिपिड्स केवल फॉस्फोलिपिड अथवा कोलेस्ट्रॉल के रूप में हो सकती है । फॉस्फोलिपिड मुख्य रूप से लेसिथिन तथा सीफेलिन का बना होता है । यह सम्पूर्ण लिपिड मात्रा का 55% से 75% भाग बनाता है । बचा हुआ भाग स्फीगोलिपिड तथा ग्लाइकोलिपिडस द्वारा बनता है । जैसे फॉस्फोलिपिडस, लिपिड के दो स्तरों के बीच कोलस्ट्रॉल के साथ पाए जाते हैं । जैसे फास्फोटाइडल कोलीन, लेसिथिन, स्फीन्गोमाइलिन । अम्लीय फॉस्फोलिपिड लगभग 20% होते हैं, ऋण आवेशित होते हैं और लिपिड्स प्रोटीन की पारस्परिक क्रियाओं के कारण कला में प्रोटीन के साथ जुड़े रहते हैं उदाहरणार्थ फॉस्फोटाइडिल सीरिन, फॉस्फेटाइडिल ग्लिसरॉल, सल्फोलिपिड ।

प्लाज्मा झिल्ली में लिपिड संरचनात्मक आधार बनाते हैं तथा पारगम्यता नियंत्रित करते हैं । प्रत्येक लिपिड अणु में दो भाग होते हैं -

(अ) जलस्नेही या ध्रुवीय सिरा (Hydrophilic / Polar end) : फॉस्फोलिपिड अणु का जलस्नेही सिरा गोल होता है । जलस्नेही सिरा कोलीन फॉस्फेट का बना होता है । इसे शीर्ष भाग भी कहते हैं ।

(ब) जलविरागी या अध्रुवीय सिरा (Hydrophobic/ Nonpolar end) : यह फॉस्फोलिपिड का पूँछ भाग कहलाता है । यह वसा अम्लों के दो अणुओं का बना होता है, जिनके -COOH समूह ग्लिसरॉल अणु से जुड़े होते हैं और ग्लिसरॉल अणु शीर्ष भाग के फॉस्फेट समूह ($-PO_4$) से जुड़ा होता है । प्लाज्मा कला के लिपिड स्तर में दोनों पर्तों के फास्फोलिपिड अणु इस प्रकार विन्यासित होते है कि उनके अध्रुवीय जल विरागी सिरे परस्पर सम्पर्क में होते हैं तथा ध्रुवीय जल स्नेह लिपिड स्तर की सतह की ओर होते हैं (चित्र 1.7) ।

लिपिड के कार्य-

(1) लिपिड प्लाज्मा कला का ढाँचा बनाता है ।

(2) लिपिड स्तर आयनों व ध्रुवीय अणुओं के लिए पारगम्यता अवरोध(permeability barrier) बनाता है ।

(ii) **प्रोटीन** (Proteins) : प्रोटीन सभी जैविक कलाओं के प्रमुख हैं । यूकेरिओट्स में प्लाज्मा झिल्ली प्राथमिक रूप से पारगम्य अवरोध की तरह कार्य करती है अत: इस झिल्ली में प्रोटीन की मात्रा लगभग 50% तथा लिपिड की मात्रा भी 50% होती है । जैसे - माइटोकान्ड्रिया क्लोरोप्लास्ट तथा प्रोकेरिओटिस में पायी जाने वाली कला जो ऊर्जा स्थानान्तरण में सक्रिय भूमिका निभाती है । प्रोटीन केवल एक यांत्रिक संरचना ही नही बनाते बल्कि कोशिका अथवा अंगक से पदार्थ को बाहर ले जाने अथवा उसके अन्दर लाने में सहायक होते हैं । इन्ही में नियमनकारी या पहिचान के गुण भी होते हैं । संरचनात्मक प्रोटीन के अलावा प्लाज्मा झिल्ली में अन्य प्रोटीन एन्जाइम, एन्टिजन और ग्राही अणुओं के रूप मैं कार्य करती है । संगठन के आधार पर कला में पायें जाने वाले प्रोटीन दो प्रकार के होते हैं -

(a) **बाहा परिधीय प्रोटीन** (Peripheral or Extrinsic Proteins) : ये प्रोटीन लिपिड -द्विस्तर की दोनों सतहों पर फॉस्फोलिपिड अणुओं के ध्रुवीय शीर्ष भाग से सम्बन्धित होते हैं । ये पानी में घुलनशील होते हैं और सरलता से अलग किए जा सकते हैं । इनके घ्रुवीय एमीनो अम्ल प्रोटीन स्तर की तरह पर होते हैं । बाध्य प्रोटीन प्लाज्मा मेम्ब्रेन की भीतरी या कोशिका द्रव्यी सतह (cytoplasmic face) पर अधिक होते हैं और बाहरी सतह पर कम।

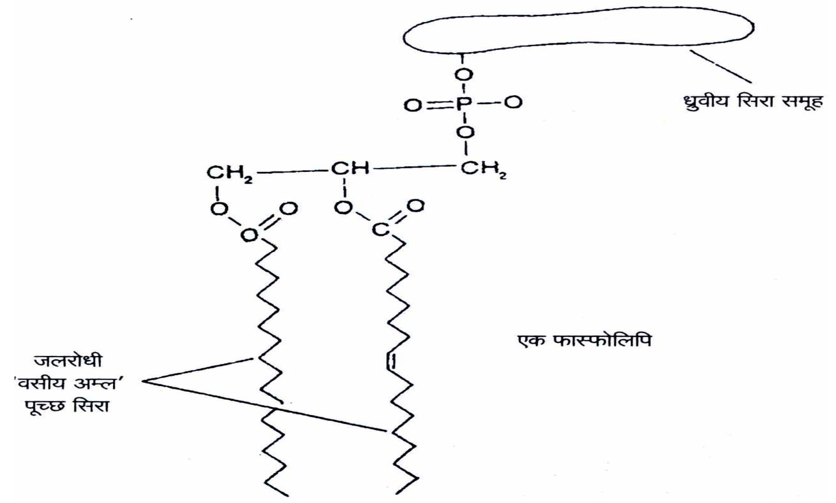

चित्र 1. 7 : फास्फोलिपिड का एक अणु

(b) **आन्तरिक परिधीय प्रोटीन** (Integral or Intrinsic Proteins) : इस प्रकार के प्रोटीन लिपिड स्तर में आशिक या पूर्ण रूप से धंसे रहते हैं । इनके ध्रुवीय जलस्नेही सिरे लिपिड स्तर से बाहर निकले होते हैं । तथा अध्रुवीय जलरागी सिरे लिपिड स्तर के अन्दर घंसे होते हैं । ये जल में अघुलनशील होते हैं और इनको प्लैज्मा मेम्ब्रेन से अलग करना सरल नहीं है । ये कुल प्रोटीन का 70% भाग होती है इनके ध्रुवीय सिरे कला की सतह से बाहर निकले रहते हैं । जबकि अध्रुवीय क्षेत्र झिल्ली के अन्दर की तरह धँसी हुई रहती है । इन प्रोटीन के अमीनो अम्ल जल विरागी पार्श्व श्रृंखला वाले होते हैं (hydrophobic side chain) तथा दो फास्फोलिपिड के वसा अम्ल की गुच्छ के साथ जल विरोधी बंध (hydrophobic bonds)

बनाते हैं । ये प्रोटीन जल में अघुलनशील होते हैं, किन्तु इन्हें कुछ डिटरजेंट या कार्बनिक विलायको द्वारा कला से पृथक किया जा सकता है । ये प्रोटीन ऑलिगोसैकेराइड से जुड़कर ग्लाइकोप्रोटीन तथा फॉस्फोलिपिड से जुड़कर लाइपोप्रोटीन बनाते हैं प्लाज्मा कला पर ग्लाइकोप्रोटीन एन्टीजन को जोड़ने का कार्य करता है जबकि लाइपोप्रोटीन सिनैप्टिक प्रेषी (synaptic transmitter) का कार्य करता है । प्रोटीन प्लाज्मा कला को यांत्रिक शक्ति देते है त था पदार्थ के आवागमन में सहायक होते हैं । झिल्ली की प्रत्यास्थता इन्हीं के कारण होती है ।

(c) **कार्बोहाइड्रेट्स या शर्करा** : यूकेरियोटिक कोशिकाओं की झिल्ली में प्राय 2 - 10% तक कार्बोहाइड्रेट्स, ग्लाइकोप्रोटीन तथा ग्लाइकोलिपिड के रूप में पाये जाते हैं । अन्य कार्बोहाइड्रेट जैसे हैक्सोज, हैक्सेज अमीन, फ्यूकोज और सिथेलिक अम्ल आदि भी सामान्य रूप से पाये जाते हैं । ये झिल्ली की बाहरी सतह पर पाये जाने वाले प्रोटीन से जुड़े रहते हैं ।

(d) **विकर** (Enzyme) : विभिन्न प्लाज्मा कलाओं में लगभग 30 प्रकार के एन्जाइम पाये जाते हैं । उदाहरण 5 न्यूक्लियोटाइडेज, Na^+, K^+ एक्टीवेटेड ए.टी.पी.एज, फॉस्फेटज आदि (चित्र 1.8) ।

1.7.3 प्लाज्मा कला की सूक्ष्म संरचना (Ultra structure of Plasma Membrane)

इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी में प्लाज्मा कला त्रिस्तरीय दिखाई देती है ।

(a) **बाह्य सघन परत** (Outer Dense Layer) : यह परत प्रोटीन की बनी होती है तथा 20Å तक मोटी होती है ।

(b) **अन्त : सघन परत(**Inner Dense Layer) : यह भी प्रोटीन की बनी 20Å मोटी परत होती है जो कोशिका द्रव्य की ओर होंती है ।

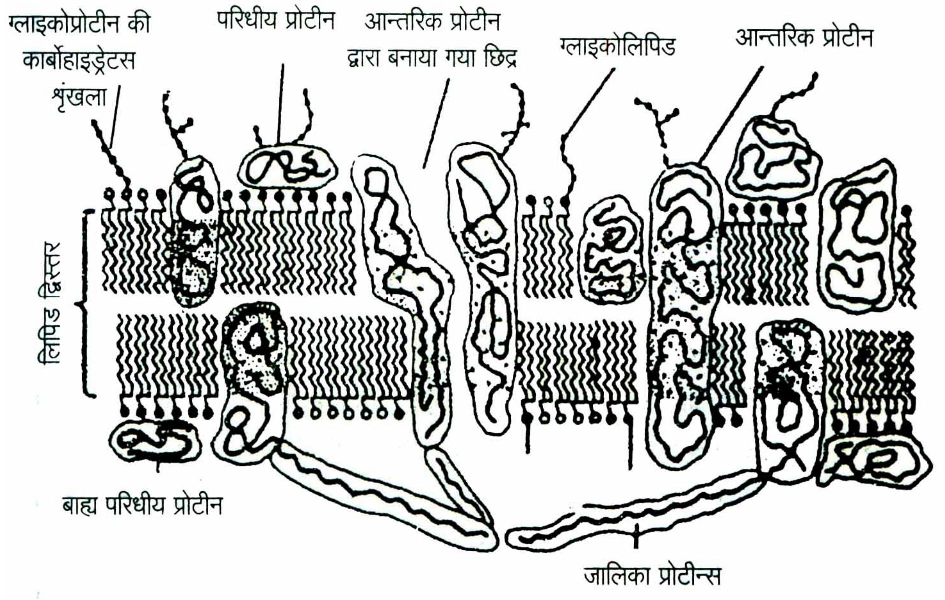

चित्र 1. 8 : प्लाज्मा कला का परिकल्पित मॉडल

(c) **मध्य पतर** (Middle layer) यह लगभग 35Å मोटी, पीले रंग की तथा बाह्य व अन्त परतों के बीच सैण्डविच रहती है तथा फॉस्फोलिपिड की बनी होती है । यह त्रिआणविक लिपिड परत होती है जिसमें लिपिड के जलविरोधी (hydrophobic) अध्रुवीय शीर्ष अंदर की तरफ तथा ध्रुवीय जलस्नेही सिरे बाहर की ओर होते हैं । जलस्नेही सिरे 20-25Å मोटी प्रोटीन परत द्वारा ढके रहते हैं ।

1.7.4 प्लाज्मा कला की आणविक संरचना के विभिन्न मॉडल

(Molecular Models of Plasma Membrane)

प्लाज्मा कला में लिपिड तथा प्रोटीन अणुओं के विन्यास से सम्बन्धित अनेक सिद्धांत प्रस्तुत किए गये हैं जो निम्न प्रकार से हैं-

(1.) **लिपिड तथा लिपिड द्विस्तरीय मॉडल (Lipid & Lipid Bilayer Models)** : ओवरटॉन (Overton, 1902) ने यह विचार प्रस्तुत किया कि प्लाज्माकला लिपिड की पतली परत की बनी होती है । उनका यह निष्कर्ष इस गुण पर आधारित था कि लिपिड में घुलनशील सभी पदार्थ वरणात्मक रूप से प्लाज्मा कलाओं से होकर गुजर सकते थे । उन्होंने कोलेस्ट्रॉल तथा लेसिथिन को लिपिड का अवयव माना । इसके पश्चात् गार्टर व ग्रेन्डल(Garter & Grandell, 1926) ने यह सुझाव दिया कि प्लाज्मा कला लिपिड अणुओं की दोहरी परत की बनी होती है जिसमें दोनों लिपिड परतों के ध्रुवीय सिरे कोशिका द्रव्य में बाहर तथा अन्दर उन्मुख (faced) होते हैं । उनके अनुसार लिपिड के दो प्रकार फॉस्फोलिपिड तथा कोलेस्ट्रॉल होते हैं । कोलेस्ट्रॉल अणु, फॉस्फोलिपिड परतों में खाली स्थानों में पाये जाते हैं तथा परतीय संरचना को स्थिरता प्रदान करते हैं ।

ये परिकल्पनाएँ अप्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर दी गयी थी लेकिन इसके बाद कोशिका कला का विलगन सम्भव हो पाया तथा कई अन्य वैज्ञानिकों ने कला का विस्तृत अ अध्ययन कर नये परिष्कृत मॉडल दिये ।

(2.) **लैमेलर सिद्धांत या लिपोप्रोटीन मॉडल** (Lamellar Theory or Lipoprotein Model): प्लाज्मा झिल्ली की आणविक संरचना की स्तरित संकल्पना (Lamellar Theory) डेनियल व डेवसन (Danielli & Davson, 1935) द्वारा प्रस्तुत की गई थी । इस संकल्पना के अनुसार प्लाज्मा झिल्ली प्रोटीन के दो स्तरों के बीच स्थित फॉस्फोलिपिडों के एक द्विआण्विक स्तर (bimolecular layer) के रूप में होती है । फॉस्फोलिपिड के अणु दो समान्तर कतारों में विन्यासित होते हैं । दोनों स्तरों के अध्रुवीय जलविरोधी सिरे (nonpolar hydrophobic end) प्रोटीन अणुओं के स्तरों से सम्बद्ध होते हैं । प्रोटीन वलित बीटा श्रृंखला (folded β- chains) के रूप में पाई जाती है । फॉस्फोलिपिड की दोनों परतों के अध्रुवीय जल विरोधी सिरे (non polar hydrophobic ends) एक दूसरे के सम्मुख होते हैं जबकि इनके जलस्नेही शीर्ष गुच्छ अणुओं से विद्युत नलों द्वारा जुड़े रहते हैं । यह अभिक्रिया ध्रुवीय लिपिड (polar lipids) और प्रोटीन के अमीनों अम्ल की आवेशित पार्श्व श्रृंखला (charged side chain) के नीचे हाइड्रोजन बंध (hydrogen bond) या आयनी श्रृंखलन (ionic linkage) के कारण होती है । कला की बाह्य

तथा आंतीरक सतहों पर सूक्ष्म छिद्र पाये जाते हैं जिनका व्यास 75Å होता है । ये छोटे आयनों तथा जल अणुओं के आवागमन में सहायक होते हैं (चित्र 1.9) ।

(3.) **मिसेल सिद्धांत** (Micellar Theory) : हिलेर तथा हॉफमेन (Hilleir and Hoffman,1953) के अनुसार प्लाज्मा झिल्ली गोलाकार सबयुनिटों या मिसेली की बनी होती है । प्रत्येक (उपइकाईयों) सबयुनिट में लिपिड अणुओं का एक केन्द्रीय कोड होता है जिनके जनस्नेही ध्रुवीय सिरे(hydrophilic polar ends) सबयुनिट की परिधि की ओर उन्मुख रहते हैं । प्रोटीन अवयव लिपिड से मिसेली के प्रत्येक ओर एक स्तर (monolayer) के रूप में होता है । प्रत्येक मिसेली का व्यास लगभग 40- 70Å होता है जिसमें वसा अम्ल अणुओं के ध्रुवीय शीर्ष (head) गोले की परिधीय (periphery) की ओर तथा अध्रुवीय पुच्छ केन्द्र की तरफ जल से दूर होते हैं । मिसेली के नीचे के अवकाश छिद्र कहलाते हैं । जिनका व्यास 4Å होता है तथा इनमें जल भरा रहता है ।

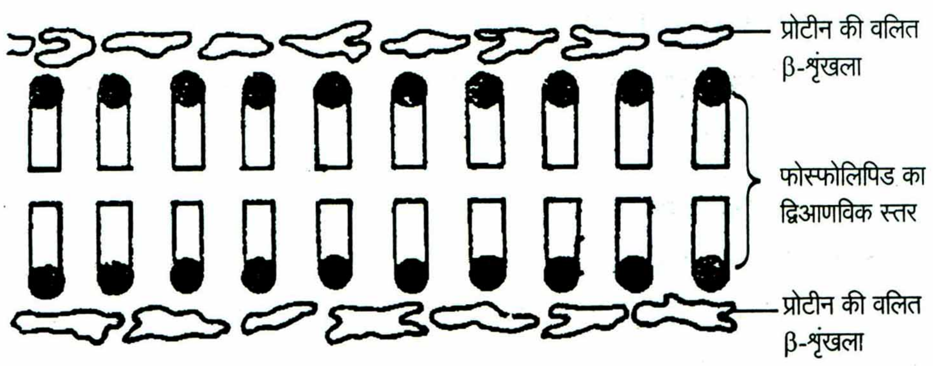

चित्र 1.9 : प्लाज्मा कला का स्तरित सिद्धान्त के अनुसार परिकल्पित मॉडल

ये छिद्र आंशिक रूप से लिपिड के ध्रुवीय शीर्ष (polar head) और आंशिक रूप से प्रोटीन के ध्रुवीय सिरों से घिरा रहता है । इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा विभिन्न कलाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कलाएँ लैमिलर या मिसेली कोई भी प्रकार की हो सकती है । ये आपस में रूपांतरित हो सकती है जिसकी मोटाई लगभग 7.5 - 10 nm तक होती है (चित्र 1.10) ।

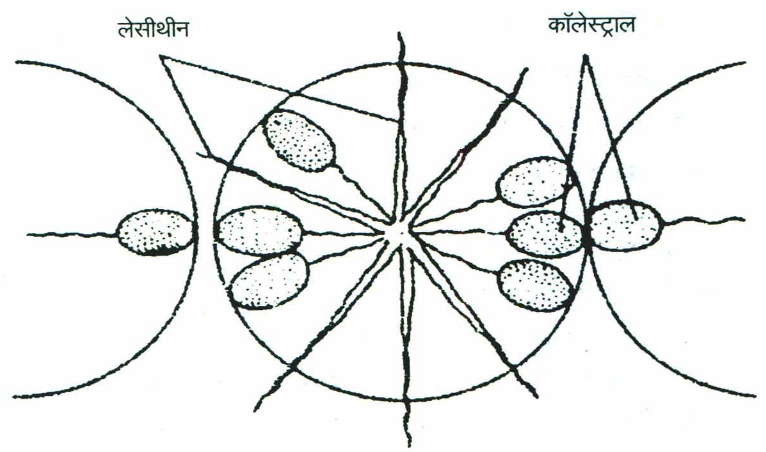

चित्र 1.10 : कोशिका कला माइसिली के गोलज मॉडल

(4.) **इकाई कला मॉडल** (Unit Membrane Model) : विभिन्न प्लाज्मा कलाओं के अध्ययन के पश्चात् राबर्टसन ने यह (Robertson,1959) परिणाम निकाला कि प्लाज्मा कला एक त्रिस्तरीय (trilaminar) संरचना हे जिसमें दो बाहरी परतें 2.0- 2.5 nm होती है तथा ये सघन ऑस्मोफिलिक प्रोटीन से बनी परते होती है । इनके मध्य हल्के रंग की 3.5 - 5.0 nm मोटी लिपिड परत पायी जाती है जो कि ऑस्मोफोबिक होती है । राबर्टसन ने यह भी बताया कि कला में संरचनात्मक ध्रुवीयता पायी जाती है । कला की बाह्य सतह म्यूकोप्रोटीन (mucoprotein) द्वारा घिरी रहती है जबकि अंदर वाली सतह असंयोजक (unconjugated) प्रोटीन की पायी जाती है सभी जीवों की कोशिकाओं में पायी जाने वाली प्लाज्मा कला तथा विभिन्न कोशिकांगों को घेरने वाली कलाओं में प्लाज्मा कला का त्रिस्तरीय रूप दिखाई देता है इसे राबर्टसन ने इकाई कला सिद्धांत कहा (चित्र 1.11) ।

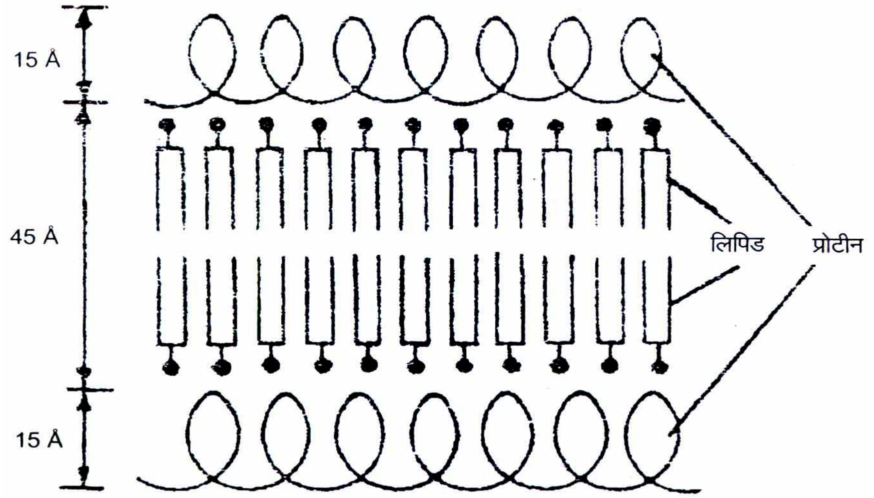

चित्र 1.11 : कोशिका कला - इकाई कला राबर्टसन का मॉडल

(5.) **तरल मोजेक मॉडल** (Fluid Mosaic Model) : सिंगर तथा निकलसन (1972) ने इस मॉडल का प्रतिपादन किया । इस सिद्धांत के अनुसार -

(i) लिपिड अणु एक दोहरा सतत स्तर बनाते हैं जो प्लाज्मा मेम्ब्रेन का ढाँचा बनाते हैं । आन्तर प्रोटीन (intrinsic proteins) इस स्तर में अर्न्तविष्ट रहते हैं और मोजेक के समान प्रतीत होते हैं । सामान्य तापक्रम पर लिपिड स्तर तरल व क्रिस्टलीय होता है ।

(ii) प्लाज्मा झिल्ली का आन्तर प्रोटीन व लिपिड दोनों ही उभय संवेदी (amphipathic) होते हैं । इनके ध्रुवीय भाग प्लाज्मा झिल्ली की सतह की ओर तथा अध्रुवीय भाग भीतर की ओर होते हैं ।

(iii) प्लाज्मा झिल्ली में स्थित उभय संवेदी प्रोटीन अणु द्रव -क्रिस्टलीय पुंज बनाते है जिनमें अध्रुवीय या जल विरागी ग्रुप (hydrophobic group) द्विस्तर में अन्दर की ओर तथा जलरागी ग्रुप (hydrophilic group) जलीय अवस्था की ओर उन्मुख रहते हैं । इस प्रकार लिपिड एक सतत् स्तर बनाते हैं । आन्तर प्रोटीन लिपिड के द्विस्तर के नीचे इस प्रकार रहते हैं कि इनके ध्रुवीय सिरे सतह से बाहर निकले रहते हैं और अध्रुवीय भाग लिपिड के

द्विस्तर में अंतस्थापित रहता है । प्लाज्मा झिल्ली की इसी संरचना के कारण एन्जाइम व एन्टिजनिक ग्लाइकोप्रोटीन्स के सक्रिय स्थल झिल्लियों की बाह्य स्तर की ओर होते हैं । प्लाज्मा झिल्ली की अर्धतरल अवस्था के कारण ही प्रोटीन अणुओं के पुंज झिल्ली में से पारगमन करते हैं । इस मॉडल के अनुसार जैविक कलाएँ अर्धतरल (semifluid intrinsic protein) (ii) बाह्य प्रोटीन्स (extrinsic protein) बाह्य प्रोटीन्स कला की सतह पर पायी जाती है । आंतरिक प्रोटीन्स के ध्रुवीय सिरे बाहर होते हैं ।

1.7.5 प्लाज्मा कला के गुण

I. **पारगम्यता** (Permeability) : चयनात्मक पारगम्यता (selective permeability) प्लाज्मा कला का एक महत्वपूर्ण लक्षण है । यह कोशिका के अन्दर तथा बाहर पदार्थो के प्रवाह को नियंत्रित करती है । इनमें पाये जाने वाले छिद्र ही विभिन्न पदार्थों के आवागमन का नियमन करते हैं । कुछ कम अणुभार वाले पदार्थ तथा ऑक्सीजन, CO_2 जल इसमें से आसानी से गुजर सकते हैं । कुछ अन्य पदार्थ - जैसे सोडियम आयन, प्रोटीन तथा पॉलीसेकेराइड्स अधिक कठिनाई से गुजर पाते हैं । कला की पारगम्यता, आयनों की सांद्रता, उसकी लिपिड में विलेयता, विसरित कणों पर विद्युत आवेश आदि पर निर्भर करते हैं ।

II. **परासरण** (Osmosis) : प्लाज्मा झिल्ली एक अर्धपारगम्य झिल्ली (Semipermeable membrane) है जो कि उच्च सान्द्रता वाले त था निम्न सान्द्रता वाले घोलों को पृथक् करती है । यह परासरण की क्रिया द्वारा कोशिका में पाये जाने वाले पदार्थों को बाहर विसरित (diffuse) नहीं होने देती । परासरण की क्रिया में जल या विलायक के अणु, अर्धपारगम्य झिल्ली द्वारा अपनी उच्च सान्द्रता से निम्न सान्द्रता की ओर गमन करते हैं । कोशिका में कोशिका द्रव्य का सान्द्रण, बाहर के माध्यम की अपेक्षा अधिक होता है जिससे जल कोशिका के अन्दर प्रविष्ट होता है । इसे अन्त : परासरण (endosmosis) कहते हैं तथा जल का कोशिका से बाहर आना बाह्य परासरण (Exosmosis) कहलाता है।

III. **निष्क्रिय अभिगमन या विसरण** (Passive transport or diffusion) : जब विभिन्न पदार्थों के अणु प्लाज्मा कला से बिना ऊर्जा का उपयोग किये विसरित हो जाते हैं तो यह निष्क्रिय अभिगमन (Passive transport) कहलाता है । जैसा कि हमें ज्ञात है कि प्लाज्मा कला में लगभग 7Å - 10Å व्यास वाले असंख्य छिद्र पाये जाते हैं जिन पर धनात्मक या ऋणात्मक आवेश होता है । ये कपाटों की तरह कार्य करते हैं । आयन तथा अणु अपनी गतिज ऊर्जा के कारण लगातार कोशिका के बाहर या अन्दर आपस में या कला पर टक्कर मारते रहते हैं । जब यह टक्कर कला में उपस्थित छिद्र पर होती है तो यह छिद्र द्वारा कला के दूसरी तरफ आ जाते हैं । ताप के साथ बढ़ने वाली यह अनियन्त्रित गति आयनों या अणुओं की अधिक सान्द्रता से कम सान्द्रता की ओर होती है । इसे विसरण कहते हैं ।

IV. **सुगमित परिवहन** (Facilitated transport) : इस प्रकार के अभिगमन में भी ऊर्जा का उपयोग नहीं होता है तथा इसमें भी अणु अधिक सान्द्रता से कम सान्द्रता की ओर गमन

करते हैं । किन्तु यह साधारण विसरण से अलग क्रिया होती है, क्योंकि इसमें कार्बनिक पदार्थों के बड़े अणुओं को कुछ विशिष्ट वाहक या सहायक ले जाते हैं । ये विशिष्ट वाहक प्रोटीन होते हैं जिन्हें परमीएजेज (Permeases) कहते हैं । इस प्रकार का विसरण उच्च वरणात्मक (highly selective) होता है । विशिष्ट वाहन प्रोटीन (Specific carrier protein) पार जाने वाले बड़े अणुओं के साथ शिथिल बंधों द्वारा जुड़कर इनके साथ ही कला के चयनात्मक चैनल मार्ग से दूसरी ओर पहुँच जाते हैं ।

V. **सक्रिय परिवहन** (Active transport) : सक्रिय परिवहन में निष्क्रिय परिवहन के विपरीत अणुओं या आयनों की गति कम सान्द्रता वाले क्षेत्र से अधिक सान्द्रता वाले क्षेत्र में या सान्द्रण प्रवणता (Concentration gradient) के विपरीत दिशा में होती है । प्लाज्माकला के आर - पार आयनों के इस प्रकार के वितरण में ऊर्जा व्यय होती है जो ए.टी.पी. (ATP) के अपघटन (hydrolysis) से प्राप्त होती है । आयनों के परिवहन के लिए विशिष्ट पम्प पाये जाते हैं, जैसे- NA^+ और K^+ विनिमय पम्प - यह Na^+ आयनों को कोशिका से बाहर जाने और K^+ आयनों को कोशिका के अन्दर आने देता है । इस पम्प के लिए ऊर्जा ए.टी.पी. से प्राप्त होती है । Na^+ आयनों का बहि :स्राव और K^+ आयनों का अन्तर्वाह आपस में दृढ़ता के साथ जुड़े रहते हैं । इसलिए यह बाहरी वातावरण से K+ आयनों को निकाल दिया जाए तो Na^+ आयनों का बहि :स्राव भी कम हो जाता है।

सक्रिय परिवहन की क्रियाविधि (Mechanism of active transport Na^+ -K^+ -ATPase) : सक्रिय परिवहन में कला में पाई जानेवाली वाहक प्रोटीन सहायता करती है । Na+आयन वाहक प्रोटीन के बन्धन स्थल (binding site) पर जुड़ जाता है, जिससे ATPase एन्जाइम सक्रिय हो जाता है तथा ATP का अपघटन हो जाता है । इससे प्राप्त फॉस्फेट ग्रुप प्रोटीन पर स्थानान्तरित हो जाता है, जिससे वाहक प्रोटीन के आकार में परिवर्तन आ जाता है । परिणामस्वरूप Na^+ स्थल कला के दूसरी ओर पहुँच जाता है और K^+ स्थल कला के बाहर आ जाता है । इसके बाद प्रोटीन K^+ आयन को ग्रहण कर लेता है । इसी के साथ फॉस्फेट हुए भी प्रोटीन से निकल जाता है और प्रोटीन पुन : अपना प्रारम्भिक आकार ले लेती है । इससे K^+ आयन कोशिका के बाहर से कोशिका के अन्दर पहुँच जाता है तथा वाहक प्रोटीन फिर से Na^+ - K^+ स्थानान्तरण के लिए स्वतंत्र हो जाती है ।

VI. **कोशिकाशन** (Phagocytosis) : किसी कोशिका में प्लाज्मा कला द्वारा ठोस पदार्थों के कणों का भक्षण करना होता है, वे सबसे पहले प्लाज्मा झिल्ली की सतह पर अवशोषित हो जाते हैं । फिर इन कणों के चारों ओर कूटपाद या अन्तर्वेशन द्वारा रिक्तिकाएँ बन जाती हैं । प्रत्येक रिक्तिका फेगोसोम (Phagosome) कहलाती हैं, जो कि कोशिका द्रव्य द्वारा ग्रहण कर ली जाती है । कोशिका में फेगोसोम लाइसोसोम से मिल जाते हैं तथा इनका पाचन हो जाता है । अपचित अवशेष प्लाज्माकला द्वारा बाहर छोड़ दिये जाते हैं जिसे बहि : क्षेपण (Egestion) कहते हैं । उदाहरण - श्वेत रक्त कणिकाओं द्वारा जीवाणुओं का भक्षण ।

VII. **कोशिका पायन** (Pinocytosis) : इस क्रिया में प्लाज्मा कला द्वारा तरल पदार्थों को अन्तर्ग्रहण किया जाता है । इस क्रिया द्वारा अधिक आणविक भार वाले प्रोटीन जैसे राइबोन्यूक्लीऐज(ribonuclease) द्रव रूप में प्लाज्मा कला द्वारा कोशिका में प्रवेश करते हैं । इसमें प्लाज्मा कला सूक्ष्मधानियाँ (microvacuoles) या अन्तर्वेशन (invaginations) बनाती हैं जिसमें तरल पदार्थ होते हैं । इन्हें पिनोसोम्स (Pinosomes) कहते हैं। इनका भी कोशिका के अन्दर लाइसोसोम द्वारा पाचन हो जाता है ।

VIII. **कोशिकांगों का जीवात् जनन** (Biogenesis of cell organelles) : विभिन्न कोशिकांगों जैसे अन्त :प्रद्रव्यी जालिका, केन्द्रक झिल्ली, माइटोकॉण्ड्रिया, गॉल्जी काम्पलेक्स आदि का जीवात् जनन (Biogenesis) प्लाज्मा कला द्वारा ही किया जाता है ।

IX. **ऑक्सीडेटिव फॉस्फोराइलेशन** : माइटोकॉण्ड्रिया की आन्तरिक कला एवं प्रोकैरिओट्स की कोशिकाओं में प्लाज्मा कला पर आक्सीडेटिव फोस्फोराइलेशन हेतु इलेक्ट्रॉन अभिगमन तंत्र (Electron transport system) पाया जाता है, जिसमें विभिन्न प्रकार के एन्जाइम्स भी पाये जाते हैं ।

X. **यांत्रिक आधार व सुरक्षा** (Mechanical support and protection) : प्लाज्मा कला कोशिका को निश्चित आकृति प्रदान करती है तथा कोशिकीय अवयवों की बाह्य क्षति से रक्षा भी करती है । इसके द्वारा कोशिका के विभिन्न अंगक पृथक् -पृथक् रहकर अपना - अपना कार्य करते हैं ।

XI. **पुनरुद्भवन एवं मरम्मत** (Regeneration & repair) : पुनरुद्भवन एवं कोशिका की मरम्मत में सक्रिय योगदान देना, प्लाज्मा कला का मुख्य लक्षण है ।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्लाज्मा कला विभिन्न महत्वपूर्ण कार्यों को सम्पन्न करती है । यह कोशिका में अर्धपारगम्यता (semi-permeability), पुन:शोषण(resorption), उत्सर्जन (Excretion) एवं स्रवण (secretion) क्रियाओं पर नियन्त्रण करती है । पादप कोशिकाओं में कोशिका भित्ति का निर्माण भी इन क्रियाओं पर आधारित है । यह कोशिका के अन्दर आने वाले तथा उससे बाहर जाने वाले पदार्थों के लिए एक वरणात्मक मार्ग (selective path) का कार्य करती हैं । कोशिका के आकार व सक्रियता पर नियन्त्रण रखना, उसे सुरक्षा प्रदान करना व उसके चारों ओर के वातावरण के बीच पारस्परिक सम्बन्ध बनाये रखना आदि इसके प्रमुख कार्य हैं ।

बोध प्रश्न

I. बहुविकल्पात्मक प्रश्न

1. कोशिका सिद्धान्त प्रतिपादित करने वाले वैज्ञानिक थे -

(अ) मेण्डल व मॉर्गन

(ब) वॉटसन व क्रिक

(स) डार्विन व वालेस

(द) श्लीडेन व श्वान ।

2. एक प्रोकैरिओटिक कोशिका में होता है -

(अ) डी.एन.ए. व हिस्टोन्स

(ब) डी.एन.ए.

(स) हिस्टोन्स

(द) डी.एन.ए. व हिस्टोन्स दोनों ही नहीं ।

3. पैक्टिन की बनी, संलग्न कोशिकाओं को जोड़ने वाली परत को कहते हैं -

(अ) द्वितीयक भित्ति

(ब) मध्य पटलिका

(स) प्राथमिक भित्ति

(द) कोशिका झिल्ली

4. तरल -मोजेक मॉडल के अनुसार प्लाज्मा झिल्ली की रचना का सही क्रम है -

(अ) L-P-P-L

(ब) P-L-L-P

(स) P-P-L-L

(द) L-P-L-P

5. इकाई झिल्ली के विचार को प्रतिपादित किया -

(अ) श्लीडेन व श्वान

(अ) वॉन मोल

(अ) रॉबर्टसन

(अ) ओवरटन

II. अति लघुत्तरात्मक प्रश्न :

1. यूकैरियोटिक कोशिकांगों में पाये जाने वाले चार मुख्य कोशिकांगों के नाम लिखो?

....

....

2. जीवाणु कोशिका में पायी जाने वाली कोशिका भित्ति के रासायनिक संगठन का नाम बताइये ।

....

....

3. प्लाज्मा झिल्ली की संरचना हेतु तरल मोजेक मॉडल किसने दिया?

....

....

1.8 सारांश (Conclusion)

कोशिका किसी भी जीवित पदार्थ की सूक्ष्मतम संरचनात्मक व प्रकार्यिक इकाई है । चाहे वह जीव एककोशिकी हो या बहुकोशिकी । कोशिका विज्ञान, जीव विज्ञान की एक महत्वपूर्ण शाखा है जिसके अन्तर्गत मुख्यत' कोशिकीय संगठन व संरचना, कोशिकांग तथा कोशिका से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार्यों का अध्ययन किया जाता है । दो जर्मन वैज्ञानिकों मैथियास श्लीडेन (1838) ने पौधों तथा थीयोडोर श्वान (1839) ने जन्तुओं के अध्ययन के बाद एक सिद्धांत प्रतिपादित किया जिसे कोशिका सिद्धांत (Cell theory) कहते हैं । इस सिद्धांत के अनुसार कोशिकाएँ सजीव है तथा समस्त जीव चाहे वह पौधे हों अथवा जन्तु कोशिकाओं के समूह से निर्मित होते हैं । ये कोशिकायें पूर्ववर्ती कोशिकाओं के विभाजन से बनती हैं तथा कोशिकाएँ ही शरीर की रचनात्मक (structural) व क्रियात्मक (functional) इकाईया हैं ।

विषाणु कोशिका सिद्धांत के अपवाद है । सभी कोशिकीय जीवों को उनमें पाये जाने वाले कोशिकीय संगठन के आधार पर दो समूहों में बाँटा गया है जैसे प्रोकेरियोट्स व यूकेरियोट्स । प्रोकेरियोटिक कोशिका की संरचना आद्य व अपूर्ण होती है जिसमे केन्द्रक कला नहीं पायी जाती । कोशिका के अन्य कोशिकांग (द्वि तथा एकस्तरीय) झिल्ली आबद्ध नहीं होते हैं । उदाहरण जीवाणु, नील - हरित शैवाल, स्पाइरोकीट, माइकोप्लाज्मा / यूकोरियोटिक कोशिका में सुस्पष्ट व विकसित केन्द्रक पाया जाता है । कोशिका के अन्य कोशिकांग जैसे माइटोकॉन्ड्रिया, हरितलवक इत्यादि भी दोहरी सुविकसित झिल्ली से घिरे होते हैं । उदाहरणत प्रोटोजोआ, शैवाल, बहुकोशिकी पादप व जंतु ।

पादप कोशिकाओं में कोशिका भित्ति का पाया जाना एक विशिष्ट लक्षण है । कोशिका भित्ति पादप कोशिकाओं में जीवद्रव्य द्वारा स्रावित निर्जीव पर्त है जो सजीव प्लाज्मा झिल्ली के बाहर स्थित रहती है तथा सम्पूर्ण जीवद्रव्य इकाई के चारों ओर एक रक्षात्मक कवच बनाती है तथा जीवद्रव्य के चारों ओर एक ढ़ाँचा बनाकर उसे रक्षण तथा निश्चित आकृति देती है । कोशिका भित्ति की रासायनिक रचना में प्रोटीन, लिग्निन लिपिड्स, सुबेरिन, क्यूटिन, मोम, रेजिन, गोंद तथा टेनिन पदार्थों का जमाव होता है । प्रत्येक पादप कोशिका भित्ति में तीन मुख्य स्तर होते हैं - मध्य पटलिका, प्राथमिक भित्ति, तथा द्वितीयक भित्ति ।

कोशिका झिल्ली कोशिका द्रव्य का वह बाह्य सीमांत है जो कोशिका को बाह्य पर्यावरण से पृथक करती है और कोशिका में प्रवेश करने वाले व उससे बाहर आने वाले अणुओं व आयनों पर नियंत्रण रख कोशिका द्रव्य व बाह्य पर्यावरण के बीच आयनिक सांद्रता को बनाए रखती है । यह झिल्ली ठोस, अघुलनशील प्रत्यास्थ और वरणात्मक पारगम्य होती है। प्लाज्मा कला की रासायनिक संरचना के मुख्य अवयव प्रोटीन तथा लिपिड होते हैं । इसके अलावा अल्प मात्रा में कार्बोहाइड्रेट तथा जल पाये जाते हैं । प्रोटीन मुख्यत : दो प्रकार के बाह्य प्रोटीन तथा आन्तर प्रोटीन तथा लिपिड मुख्यत ' फॉस्फोलिपिड है जिसके दो मुख्य भाग ध्रुवीय सिरा तथा अध्रुवीय सिरा है । प्लाज्मा कला की आणविक संरचना के लिये विभिन्न मॉडल प्रतिपादित किए गए, जिसमें से सिंगर व निकलसन द्वारा 1972 में दिया गया मॉडल सर्वमान्य है । प्लाज्मा कला, कोशिका के विभिन्न महत्वपूर्ण कार्यों को सम्पन्न करती है जैसे अर्धपारगम्यता, पुन:शोषण, उत्सर्जन एवं स्रवण ।

1.9 शब्दावली (Terminology)

1. कोशिका (The cell) : जीवों का आधारभूत संगठन एवं सभी क्रियाओं की सूक्ष्मतम किन्तु पूर्ण इकाई ।
2. प्रोकेरियोट (prokaryote) : आध व अपूर्ण कोशिका जिसमें केन्द्रक कला नहीं होती ।
3. यूक्रेरियोट (Eukaryote) : सूस्पष्ट व विकसित कोशिका जिसमें पूर्ण विकसित केन्द्रक होता है ।
4. पी.पी.एल.ओ. (PPLO) : जीवाणु सदृश एककोशिय जीव जिनकी कोशिका में कोशिका भित्ति नहीं पायी जाती।
5. जीवाणु (Bacteria) : सरलतम रचना वाले अतिसूक्ष्म जीव जिसमें कोशिका भित्ति में विशिष्ट प्रकार के म्यूरिन शर्करा पाई जाती है ।
6. गर्त (Pits) : कोशिका भित्ति में अस्थूलित भाग ।
7. आंतरिक प्रोटीन (Intrinsic Protein) : प्लाज्मा कला की फॉस्फोलिपिड सतह पर पूर्ण रूप से धँसते प्रोटीन जो कार्बनिक विलायकों में विलेय ।
8. बाहा प्रोटीन (Extrinsic protein) : प्लाज्मा कला की फॉस्फोलिपिड सतह की बाहय स्तर पर पाये जाने वाले प्रोटीन जो जल में घुलनशील है ।
9. ध्रुवीय सिरे (Polar region) : फॉस्फोलिपिड का कोलीन - फॉस्फेट युक्त शीर्ष भाग जो प्लाज्मा झिल्ली में पाया जाता है ।
10. अध्रुवीय सिरे (Nonpolar region) : फॉस्फोलिपिड का वसा अम्ल के दो अणुओं से बना पुंछ भाग ।

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. कोशिका जीव विज्ञान. वीर बाला रस्तोगी (रस्तोगी मेरठ)
2. कोशिका विज्ञान, आनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन : त्रिवेदी, शर्मा, शर्मा (रमेश बुक डिपो जयपुर)

1. 11 बोध प्रश्नों के उत्तर

I. बहु विकल्पात्मक

1. (द) 2. (द) 3 (ब) 4. (ब) 5 (स)

II. लधुत्तरात्मक

1. माइटोकॉन्ड्रिया, हरितलवक, गॉल्जीकॉय, केन्द्रक ।
2. पेप्टाइडोग्लाइकन ।
3. सिंगर व निकलसन (1972)

1.12 अभ्यासार्थ प्रश्न (Questions)

(1.) प्रौकेरिओटिक एवम् यूक्रेरियोटिक कोशिकाओं का तुलनात्मक विवरण दीजिए?

(2.) कोशिका भित्ति की उत्पत्ति व वृद्धि का वर्णन कीजिए?

(3.) प्लाज्मा झिल्ली की रासायनिक संरचना का वर्णन कीजिए?

(4.) प्लाज्मा कला संरचना के तरल मोजेक मॉडल का वर्णन कीजिए?

इकाई 2 : कोशिका अंगक (Cell Organelles)

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 केन्द्रक

2.2.1 केन्द्रक की सूक्ष्म संरचना

2.2.2 केन्द्रक का रासायनिक संगठन

2.2.3 केन्द्रक के कार्य

2.3 माइटोकॉन्ड्रिया

2.3.1 माइटोकॉन्ड्रिया की सूक्ष्म संरचना

2.3.2 माइटोकॉन्ड्रिया का रासायनिक संगठन

2.3.3 माइटोकॉन्ड्रिया के कार्य

2.4 हरितलवक

2.4.1 हरितलवक की सूक्ष्म संरचना

2.4.2 हरितलवक का रासायनिक संगठन

2.4.3 हरितलवक का कार्य

2.5 राइबोसोम

2.5.1 राइबोसोम की सूक्ष्म संरचना

2.5.2 राइबोसोम का रासायनिक संगठन

2.5.3 राइबोसोम के कार्य

2.6 परॉक्सीसोम

2.6.1 परॉक्सीसोम की सूक्ष्म संरचना

2.6.2 परॉक्सीसोम का रासायनिक संगठन

2.6.3 परॉक्सीसोम के कार्य

2.7 गॉल्जीकाय

2.7.1 गॉल्जीकाय की सूक्ष्म संरचना

2.7.2 गॉल्जीकाय का रासायनिक संगठन

2.7.3 गॉल्जीकाय के कार्य

2.8 सारांश

2.9 शब्दावली

2.10 संदर्भ ग्रंथ

2.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थी को एक यूकेरियोटिक कोशिका में उपस्थित विभिन्न अंगकों (एक स्तरीय अथवा द्विस्तरीय) के बारे में जानकारी देना है तथा उसे यह जानना कि कोशिका में उपस्थित विभिन्न अंगक क्या कार्य नियमित करते है । इस इकाई का विस्तार से उद्देश्य निम्न प्रकार है

(i) केन्द्रक की सूक्ष्म संरचना, उसके रासायनिक संगठन तथा कार्य का अध्ययन करना ।

(ii) माइटोकॉन्ड्रिया की सूक्ष्म,संरचना, उसके रासायनिक संगठन तथा कार्य का अध्ययन करना ।

(iii) हरितलवक की सूक्ष्म संरचना, उसके रासायनिक संगठन तथा कार्य का अध्ययन करना ।

(iv) राइबोसोम की सूक्ष्म संरचना, उसके रासायनिक संगठन तथा कार्य का अध्ययन करना ।

(v) परॉक्सीसोम की सूक्ष्म संरचना, उसके रासायनिक संगठन तथा कार्य का अध्ययन करना।

(vi) गॉल्जीकाय की सूक्ष्म संरचना, उसके रासायनिक संगठन तथा कार्य का अध्ययन करना ।

2.1 प्रस्तावना

यूकेरियोटिक कोशिकाओं में सुनिश्चित केन्द्रक तथा विभिन्न एकस्तरीय अथवा द्विस्तरीय कोशिकीय अंगक होते हैं । यूकेरियोटिक कोशिकाओं में विभिन्न उपापचयी सक्रिय कोशिकांग होते हैं, जिनमें से कुछ झिल्लीयुक्त रचनायें, जैसे - केन्द्रक, माइटोकॉन्ड्रिया, लवक, गॉल्जीकाय तथा झिल्लीविहीन संरचनायें, जैसे राइबोसोम पाये जाते हैं । कोशिका में उपस्थित ये विभिन्न आक कोशिका की विभिन्न कार्यों का नियमन करते हैं ।

2.2 केन्द्रक(Nucleus)

कोशिका का सबसे महत्वपूर्ण अंगक है । यह कोशिका द्रव्य में स्थित होता है तथा कोशिका में होने वाली सभी क्रियाओं का निर्देशन तथा नियंत्रण करता है । इसमें आनुवांशिक पदार्थ डी. एन .ए. पाया जाता है । सर्वप्रथम रॉबर्ट ब्राउन (1831) ने इसे पुष्पीय पादपों में खोजा तथा बताया कि इसमें आनुवांशिक पदार्थ होता है ।

प्रोकेरियोटिक कोशिकाओं, परिपक्व चालनी नलिकाओं तथा मनुष्य की लाल रक्त कणिकाओं में केन्द्रक अनुपस्थित होता है । सामान्यत : कोशिका एकल केन्द्रकी होती हैं, लेकिन कुछ कोशिका द्वि अथवा बहुकेन्द्रकी भी होती हैं । बहुकेन्द्रकी जन्तु कोशिका सिन्सिशिया कहलाती हैं जैसे मलेरिया परजीवी की कोशिका, जबकि बहुकेन्द्रकी पादप कोशिका संकोशिका कहलाती है, जैसे वाऊचिरिया कोशिका सामान्यत : कोशिका के अन्दर केन्द्रक की आकृति गोलाकार (spherical) होती है, लेकिन दीर्घवृत्ताकार (ellipsoidal) अथवा चपटा (flattened) होता है, अत : केन्द्रक की आकृति विभिन्न प्रकार की हो सकती है, जैसे - त्रिपालिवत (trilobed), भालाकार (lanceolate), घोड़े की नालरूपी (horse shoe shaped) पालियुक्त (lobed), शाखित (branches) ।

केन्द्रक का आकार अनिश्चित होता है, जो कि डी एन .ए. की मात्रा पर निर्भर करता है । प्रत्येक कोशिका में केन्द्रक के आयतन व कोशिका द्रव्य के आयतन का एक निश्चित अनुपात होता है । इस अनुपात को न्यूक्लिओप्लाज्मिक सूचकांक (nucleoplasmic index) कहते हैं । इसे हर्टविग (Hertwig) ने दिया । इसे निम्नानुसार व्यक्त करते हैं.

$$N_P = \frac{Vn}{Vc - Vn}$$

N_p=केन्द्रकद्रव्यी सूचकांक (Nucleoplasmic index)

V_n= केन्द्रक का आयतन (Volume of nucleus)

V_c =कोशिकाद्रव्य का आयतन (Volume of cytoplasm)

प्रत्येक कोशिका का सूचकांक निश्चित होता है । इसमें परिवर्तन का परिणाम कोशिका विभाजन होता है |

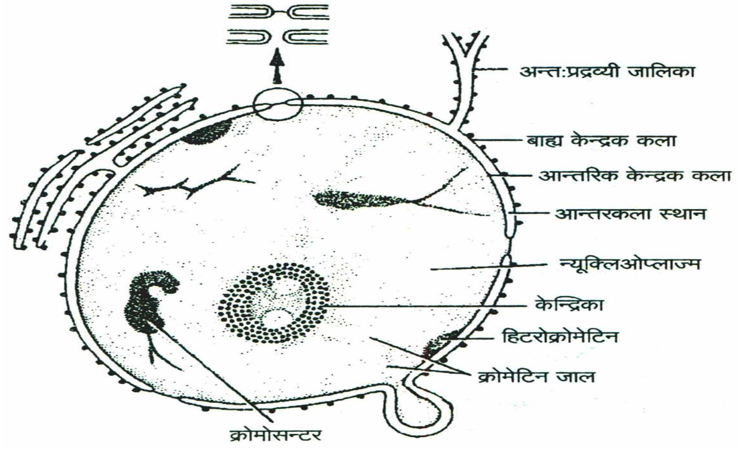

चित्र 2.1 : एक प्ररूपी इण्टरफेज केन्द्रक की संरचना

(Structure of a typical interphase nucleus)

2.2.1 केन्द्रक की सूक्ष्म संरचना (Ultrastructure of nucleus)

इण्टरफेज केन्द्रक को निम्नलिखित भागों में विभक्त किया जा सकता है.

(1) केन्द्रक कला (Nuclear membrane)

(2) केन्द्रक द्रव्य (Nucleoplasm)

(3) क्रोमेटिन (Chromatin)

(4) केन्द्रिका (Nucleolus)

(5) अन्त:काय (Endosomes)

(1) **केन्द्रक कला** (Nuclear membrane or karyotheca) : केन्द्रक द्रव्य को चारों ओर से घेरने वाला आवरण केन्द्रक कला (nuclear membrane) कहलाता है । यह कला केन्द्रक द्रव्य (nucleoplasm) को कोशिका द्रव्य (cytoplasm) से पृथक करती है । यह दो इकाई कलाओं, बाहय कला (outer membrane ओर ectokaryotheca) तथा अन्त : कला (inner membrane or endokaryotheca) से मिलकर बना होता है । प्रत्येक कला 75

- 9० A_0में मोटी होती है तथा लाइपोप्रोटीन (lipoprotein) की बनी होती है । ब्राहा तथा अन्त : कलाओं के मध्य 100 - 150 में चौड़ा परिकेन्द्रीय अवकाश (perinuclear space) पाया जाता है । बाह्यकला अन्त : कला से मोटी तथा खुरदरी होती है। इसकी सतह पर राइबोसोम कण पाये जाते हैं । अन्त : कला की आंतर सतह (inner surface) पर एक समान मोटाई ($300A^0$ में) का समांगी तंतुमय पटल (fibrous lamina) पाया जाता है, जिसे सघन पटल (dense lamina) भी कहते हैं ।

केन्द्रक कला में स्थान - स्थान पर अधिक संख्या में सूक्ष्म छिद्र (pores) पाये जाते हैं, जिन्हें केन्द्रक छिद्र (nuclear pores) कहते हैं । सामान्यत : केन्द्रकीय छिद्र आकृति में अष्टभुजी (octagonal) होते हें । इनका व्यास 400 - $1000A^0$ तक हो सकता है । ये छिद्र एक दूसरे से 1500 A^0की दूरी पर पाये जाते हैं । वृत्ताकार वलयिकाओं (circular annuli) द्वारा आबद्ध रहते हैं । छिद्र तथा वलयिका दोनों मिलकर छिद्र कॉम्पलेक्स (pore complex) बनाते हैं । प्रत्येक वलयिका (annulus) का व्यास 600 A^0में होता है । यह आठ कणिकाओं से मिलकर बनी होती है । ये कोशिकायें छिद्रों की कोशिका द्रव्यी तथा केन्द्रकीय दोनों सतहों पर पायी जाती है । छिद्र के अन्दर की तरफ केन्द्रीय कणिका (central granule) पायी जाती है । केन्द्रीय कण से 30 A^0 व्यास वाले पतले तंतु निकलकर परिधीय रूप से जुड़ जाते हैं त था बैलगाड़ी के पहिये के समान संरचना बनाते हैं । इन छिद्रों पर प्रोटीन युक्त सघन पदार्थ होने के कारण छिद्र पूर्णत : खुली अवस्था में नहीं पाये जाते । ये छिद्र कुछ विशेष परिस्थितियों में ही खुलते व बंद होते रहते हैं तथा केन्द्रक और कोशिका द्रव्य के नीचे पदार्थो का विनिमय केन्द्रकीय छिद्रों के द्वारा होता है । छिद्रों के चारों ओर पायी जाने वाली वलयिका (annuli) वृहद अणुओं (macromolecules) के परिमाण (size) तथा रासायनिक प्रकृति (chemical nature) के अनुसार उनका विनिमय (exchange) तथा नियमन (regulation) करती है ।

केन्द्रक कला की उत्पत्ति कोशिका विभाजन की अन्तयावस्था (telophase) में अन्त : प्रद्रव्यी जालिका (E.R.) की सिस्टर्नी (cisternae) गुणसूत्रों के समूहों के चारों ओर संगलित हो जाती है त था केन्द्रक कला बनाती है ।

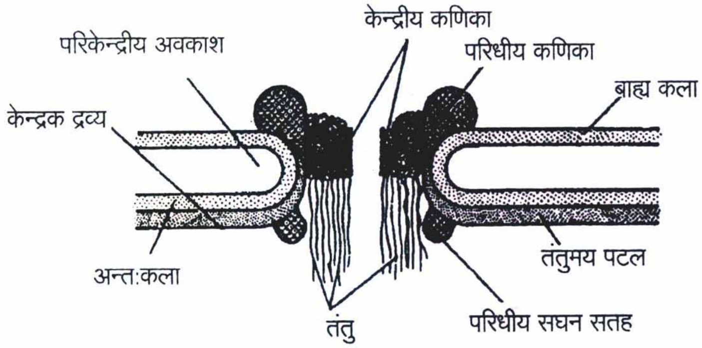

चित्र 2. 2 : न्यूक्लिअर पोर काम्पलेक्स की संरचना

(2) **केन्द्रक द्रव्य** (Nucleoplasm): अन्तरावस्था केन्द्रक में पारदर्शक (transparent), अर्द्धतरल (semisolid), कणिकामय (granular), समांगी (homogenous) भरण पदार्थ, केन्द्रक द्रव्य (nucleoplasm) कहलाता है । यह एक द्रव पदार्थ है, जिसमें विभिन्न केन्द्रकीय घटक, जैसे क्रोमेटिन सूत्र (chromatin fibres), न्यूक्लिओप्रोटीन कण (nucleoprotein) (granules) तथा केन्द्रिका (nucleolus) आदि लटके रहते हैं । केन्द्रक द्रव्य का रासायनिक संगठन जटिल होता है, जिनमें राइबोन्यूक्लिओप्रोटीन पाये जाते हैं, जैसे पैराक्रोमेटिन ग्रेन्यूल, इन्टरक्रोमेटिन ग्रेन्यूल| पैराक्रोमेटिन ग्रेन्यूल 450 A^0 व्यास के घने कण होते हैं । इन्टरक्रोमेटिन ग्रेन्यूल क्रोमेटिन के चारों ओर पाये जाते हैं त था इनका व्यास लगभग 250 A^0 होता है । केन्द्रक द्रव्य में पाये जाने वाले मुख्य एन्जाइम डी. एन. ए. पॉलीमरेज, आर. एन ए. पॉलीमरेज, राइबोन्यूक्लिऐज, क्षारीय फास्फेट्ज व डाइपेप्टेज आदि हैं । केन्द्रक द्रव्य का मुख्य कार्य विभिन्न एन्जाइमों की सक्रियता बनाये रखना तथा पादप कोशिका में स्पिण्डल उपकरण के निर्माण में कोशिका विभाजन के समय भाग लेना है।

(3) **क्रोमेटिन** : हम जानते हैं, हर कोशिका में D.N.A. मुख्य आनुवांशिक पदार्थ बनाता है, जो स्वतंत्र रूप में नहीं पाया जाता, बल्कि प्रोटीन से मिलकर जटिल संरचना बनाता है, जिसे क्रोमेटिन (chromatin) कहते हैं । अत : क्रोमेटिन केन्द्रक द्रव्य में पाया जाने वाला श्यान, जैली समान पदार्थ है, जिसमें डी. एन. ए., आर. एन. ए. क्षारीय प्रोटीन (histones) तथा अम्लीय प्रोटीन (non-histone) पाये जाते हैं । क्रोमेटिन में आर. एन. ए. त था अम्लीय प्रोटीन की मात्रा में परिवर्तन हो सकता है, लेकिन डी. एन. ए. त था हिस्टोन प्रोटीन का अनुपात सदैव निश्चित होता है ।

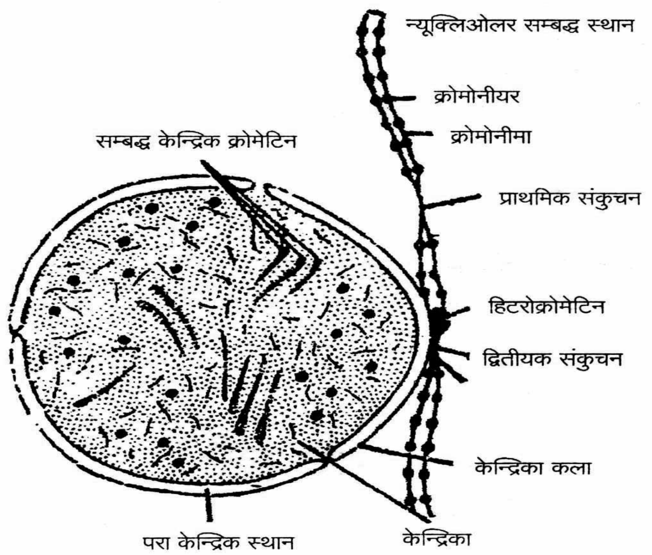

चित्र 2.3: गुणसूत्र के न्यूक्लिओलर संगठक भाग से न्यूक्लिओलस का सम्बन्ध (The relation of nucleolus with nucleolar organizer part of chromosome)

क्षारीय प्रोटीन क्षारीय प्रकृति के होते हैं, क्योंकि ये क्षारीय अमीनों अम्ल, आरजिनिन तथा लाइसिन युक्त पाये जाते हैं । मुख्य हिस्टोन प्रोटीन्स चार होते हैं (H_2 A, H_2 B,H_4) । केन्द्रक द्रव्य में क्रोमेटिन धागेनुमा, कुण्डलित संरचना दिखाई देती है, जिसे क्षारीय अभिरंजकों, जैसे - क्षारीय फुश्चिन (basic fuchsin) या ऑरसीन (orcein) द्वारा अभिरंजित किया जा सकता है ।

(4) **केन्द्रिका** (Nucleolus): केन्द्रक मैट्रिक्स में धँसी हुई अवस्था में पायी जाने वाली घनी, गोलाकार या अण्डाकार, अम्ल स्नेही (acidophilic) संरचना केन्द्रिका कहलाती है । इसकी खोज फोन्टाना (Fontana 1781) ने की । केन्द्रिका के चारों ओर कोई कला नहीं पायी जाती तथा इसे पायरोनिन (pyronine) नामक अभिरंजक से अभिरंजित कर सकते हैं ।

केन्द्रिका को आकार का सीधा सम्बंध कोशिका में होने वाली संश्लेषी क्रियाओं से होता है । जिन कोशिकाओं में संश्लेषी क्रियाएँ नहीं होती हैं, उनमें केन्द्रिका अनुपस्थित हो सकती है । किसी भी केन्द्रक में केन्द्रिकों की संख्या का सीधा सम्बन्ध क्रोमोसोम की संख्या से होता है । अगुणित क्रोमोसोम संख्या वाली पादप व जन्तु कोशिकाओं में केवल एक केन्द्रिका पायी जाती है । मनुष्य में द्विगुणित (diploid) केन्द्रक में दो जोड़ी केन्द्रिकायें (nucleoli) पायी जाती है ।

कुछ विशिष्ट क्रोमोसोम्स, गुणसूत्रों के हिटरोक्रोमेटिक क्षेत्र केन्द्रिका से जुड़कर केन्द्रिक संगठक स्थल (nucleolar organizing regions) बनाते हैं, जो कि मुख्य रूप से केन्द्रिक निर्माण के लिये जिम्मेदार होते हैं । इन स्थलों में ऐसे जीन पाये जाते हैं, जो 18 S, 28 S, तथा विभिन्न आर. एन. ए. के लिये कोड करते हैं । 5 S आर.एन .ए. का संश्लेषण केन्द्रिका के बाहर क्रोमोसोम्स पर होता है । ये सभी घटक केन्द्रिक में गमन कर जाते हैं तथा वहाँ इकट्ठे होकर राइबोसोम्स बनाते हैं (चित्र 2.3) ।

विभिन्न कोशिकाओं में केन्द्रक में पाये जाने वाले कुल आर. एन. ए. का लगभग 3 - 20% भाग केन्द्रिका में पाया जाता है । इसमें अधिक मात्रा में फॉस्फोप्रोटीन पाये जाते हैं, लेकिन हिस्टोन प्रोटीन अनुपस्थित होते हैं । इसमें कुछ विकर, जैसे - एसिड फॉस्फेटेज, न्यूक्लिओसाइड फॉस्फोराइलेज तथा NAD^+ ' संश्लेषण एन्जाइम, जो कि न्यूक्लिओटाइड तथा rRNA के जैव संश्लेषण में हिस्सा लेते हैं उपस्थित होते हैं । केन्द्रिका में डी. एन .ए. अनुपस्थित होता है ।

इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी में केन्द्रिका के निम्न भाग दिखाई देते हैं.

(1) **कणिकामय भाग** (Granular zone) : केन्द्रिक का परिधीय भाग राइबोन्यूक्लिओप्रोटीन से बनी 150 - 200 में व्यास वाली घनी कणिकाओं द्वारा निर्मित होता है । ये कणिकायें राइबोसोम्स की पूर्ववर्ती (precursor) होती है ।

(2) **रेशेदार भाग** (Fibrillar zone) : इस क्षेत्र को न्यूक्लिओलोनिमा कहते हैं । यह 5० - 8० A^0 लम्बे रेशे से बना होता है । ये भी राइबोन्यूक्लिओ प्रोटीन से बने होते हैं ।

(3) **अक्रिस्टलीय भाग** (Amorphous zone) : ये सिर्फ प्रोटीन द्वारा निर्मित भाग है, जिसमें रेशे व कणिकायें निलम्बित रहते हैं ।

(4) **केन्द्रिक - सम्बद्ध क्रोमेटिन** (Nucleolar- associated chromatin) : ये 100 A^0 मोटे सूत्र होते हैं तथा केन्द्रिका के चारों ओर पाये जाते हैं । जो केन्द्रिका के अन्दर प्रवेश करके निश्चिंत अंतराल पर अन्तराकेन्द्रकीय नाल बनाते हैं । इनमें डी. एन. ए. पाया जाता है ।

प्रत्येक केन्द्रिका कोशिका विभाजन की प्रथम प्रावस्था (prophase) में विलुप्त हो जाती है त था अन्तरावस्था में पुन : प्रकट हो जाती है । यह केन्द्रिका चक्र क्रोमोसोम द्वारा नियंत्रित रहता है, जिसे केन्द्रक संगठन क्रोमोसोम कहते हैं । इस क्रोमोसोम का केन्द्रिक निर्माण में भाग लेने वाला विशिष्ट स्थल (specific region), केन्द्रिका क्षेत्र (nucleolar zone) कहलाता है तथा गुणसूत्रों के इस भाग में द्वितीयक संकुचन (secondary constriction) पाया जाता है । केन्द्रिका का मुख्य कार्य राइबोसोमल आर. एन. ए. संश्लेषण करना, 45 S rRNA दो उपइकाइया 18 S rRNA तथा 28 S rRNA में टूटता है, जिनका मिथाइलेशन भी केन्द्रिका में ही होता है ।

(5) **अन्त:काय** (Endosomes): ये केन्द्रक द्रव्य में पायी जाने वाली केन्द्रिका से छोटी क्रोमेटिन संरचनायें हैं, इसकी संरचना बदलती रहती है ।

2.2.2 केन्द्रक का रासायनिक संगठन (Chemical composition of Nucleus)

रासायनिक रूप से केन्द्रक मुख्य रूप से न्यूक्लिक अम्ल तथा प्रोटीन से मिलकर बना होता है । इसके अलावा विभिन्न एन्जाइम तथा अकार्बनिक लवण भी पाये जाते हैं ।

(1) **न्यूक्लिक अम्ल** (Nucleic acids) केन्द्रक द्रव्य का मुख्य घटक डी. एन. ए. है, जो कि केन्द्रक के शुष्क भार का लगभग 15- 30 % होती है । जबकि आर. एन. ए. केन्द्रक का मुख्य घटक है, जो कि केन्द्रक के शुष्क भार का लगभग 8 - 10% होता है । ये दोनों अम्ल प्रोटीन से जुड़कर डी - ऑक्सीराइबोन्यूक्लिओ प्रोटीन तथा राइबोन्यूक्लिओ प्रोटीन बनाते हैं । केन्द्रक में 90 % अम्लीय प्रोटीन भी पाये जाते हैं । केन्द्रक में डी. एन. ए. की मात्रा क्रोमोसोम्स की संख्या पर निर्भर रहती है ।

(2) **प्रोटीन्स** : केन्द्रक में अम्लीय तथा क्षारीय दोनों प्रकार के प्रोटीन पाये जाते हैं । मुख्य क्षारीय प्रोटीन्स हिस्टोन्स (histones) तथा प्रोटामीन्स (protamines) हैं । ये केन्द्रक न्यूक्लिओहिस्टोन्स (nucleohistones) में न्यूक्लिओप्रोटामीन्स (nucleoprotamines) तथा न्यूक्लिओप्रोटामीन्स (nucleoprotamines) के रूप में पाये जाते हैं । क्षारीय प्रोटीन्स की मात्रा अम्लीय प्रोटीन से अधिक होती है । अम्लीय प्रोटीन्स केन्द्रक में अमीनो अम्ल ट्रिप्टोफान तथा टायरोसिन के रूप में पाये जाते हैं ।

(3) **विकर** (Enzymes) : केन्द्रक में विभिन्न प्रकार के एन्जाइम पाये जाते हैं । एन्जाइम, जैसे - डी. एन. ए. तथा आर. एन .ए. पॉलीमरेज, न्यूक्लिओटाइड फास्फोराइलेज, न्यूक्लिओटाइड ट्राइफॉस्फेट्ज, NDA -सिन्थेटेज डाइ अमीनेज, गुआनेज, ऐल्डोलेज,. इनोलेज, पाइरूवेट, काईनेज तथा राइबोन्यूक्लिऐज तथा को -एन्जाइम, जैसे - एसीटाइल को - एन्जाइम -ए- पाया जाता है ।

(4) **अकार्बनिक पदार्थ :** केन्द्रक में पाये जाने वाले मुख्य अकार्बनिक पदार्थ कैल्शियम, पौटेशियम, सोडियम, मैग्नीशियम, फॉस्फोरस, आयरन तथा जिंक के लवण के रूप में पाये

जाते हैं । ये प्रोटीन्स तथा एन्जाइम से जुड़े रहते हैं । इनकी मात्रा अतिसूक्ष्म होती है, किन्तु ये जैविक क्रियाओं के लिये अत्यन्त आवश्यक होते हैं ।

2. 2.3 कार्य

केन्द्रक कोशिकाओं में होने वाली विभिन्न क्रियाओं को नियंत्रित करता है, जो कि जीवों के विभिन्न लक्षणों का निर्धारण करता है । **जे. हेमरलिंग** (J. Hammerling 1934) ने सर्वप्रथम ऐसीटेबुलेरिया नामक एककोशिकीय हरित शैवाल की दो जातियाँ **ए. क्रेनुलेटा** (A. crenulata) तथा ए. मेडिटैरेनिया (A. mediterrania,) पर कुछ प्रयोग किये । इस शैवाल की कोशिका में 1cm व्यास की टोपी (cap) पायी जाती है, जो 3-5cm लम्बे वृंत से जुड़ी रहती है तथा आधारीय भाग पर राइजॉइड्स तथा केन्द्रक भी इसी भाग में पाया जाता है । दोनों जातियों में टोपी की संरचना में भिन्न्ता पाई जाती है । **ए. क्रेनुलेटा** में टोपी अंगुल्याकार (digitate) पायी जाती है तथा **ए. मेडीटेरीनिया** में छत्रक के समान होती है । एसीटेबुलेरिया में पुनर्जनन की क्षमता पायी जाती है, जो कि टोपी को काटने पर टोपी पुन: विकसित हो जाती है । किन्तु टोपियों को काटने पर यदि एक जाति के वृत को दूसरी जाति के मूलाभ पर रोपित कर दिया जाये तो (क्योंकि एसीटाबुलरिया में केन्द्रक मूलाभ पर स्थित होता है) रोपित ऐसीटाबुलारिया में टोपी की आकृति मूलाभ में स्थित केन्द्रक द्वारा निर्धारित होती है । ए. क्रेन्यूलेटा के जाति का केन्द्रक होने पर टोपी अंगुलाकार होती है तथा ए. मेडिटेरेनिया जाति के केन्द्रक होने पर टोपी छत्रक के समान होती है । दोनों ही प्रकार के केन्द्रकों की उपस्थिति पर टोपी मध्यम प्रकार की होती है ।
इससे स्पष्ट होता है कि केन्द्रक जीवों के लक्षणों का नियमन करता है ।

2.3 माइटोकॉन्ड्रिया

माइटोकॉन्ड्रिया(Gr. Mito= thread या तन्तु, chondrion = granule या कण)कोशिका के कणान्तमक या तन्तु सदृश अंगक होते हैं । इनको कोशिका का पावर हाउस या बिजली गृह कहा जाता है, क्योंकि ये खाद्य पदार्थों के रूप में संचित ऊर्जा को गतिज ऊर्जा में परिवर्तित करते हैं । सर्वप्रथम 1882 फ्लेमिंग (Flemming) ने माइटोकॉन्ड्रिया का फाइला (fila) के नाम से विवरण दिया । 1890 में अल्टमान ने इसका बायोप्लास्ट के नाम से वर्णन किया । बेन्डा ने (1897 - 1898) में इसे माइटोकॉन्ड्रिया नाम दिया तथा पोर्टर व पैलेड वे वैज्ञानिक थे, जिन्होंने इसकी अतिसूक्ष्म संरचना का वर्णन किया ।

माइटोकॉन्ड्रिया केवल यूकेरियोटिक कोशिकाओं में पाये जाते हैं तथा प्रोकेरियोटिक कोशिकाओं में अनुपस्थित होते हैं । ये मुख्यत : कोशिका के वे भाग हैं, जहाँ उपापचय क्रियायें सक्रिय हों अथवा जहाँ ऊर्जा उपयोग में आती हो । ये या तो कोशिका में केन्द्रक के चारों ओर या माइटोकॉन्ड्रिया कोशिकाद्रव्य के परिधीय भाग पर विन्यासित होते हैं ।

इनकी संख्या विभिन्न जीव की कोशिकाओं में तथा एक ही जीव की विभिन्न कोशिकाओं में अलग- अलग होती हैं । किन्तु एक ही प्रकार की कोशिकाओं में की संख्या नियत होती है । माइटोकॉन्ड्रिया की संख्या का कोशिका की सक्रियता से सीधा सम्बन्ध होता है ।

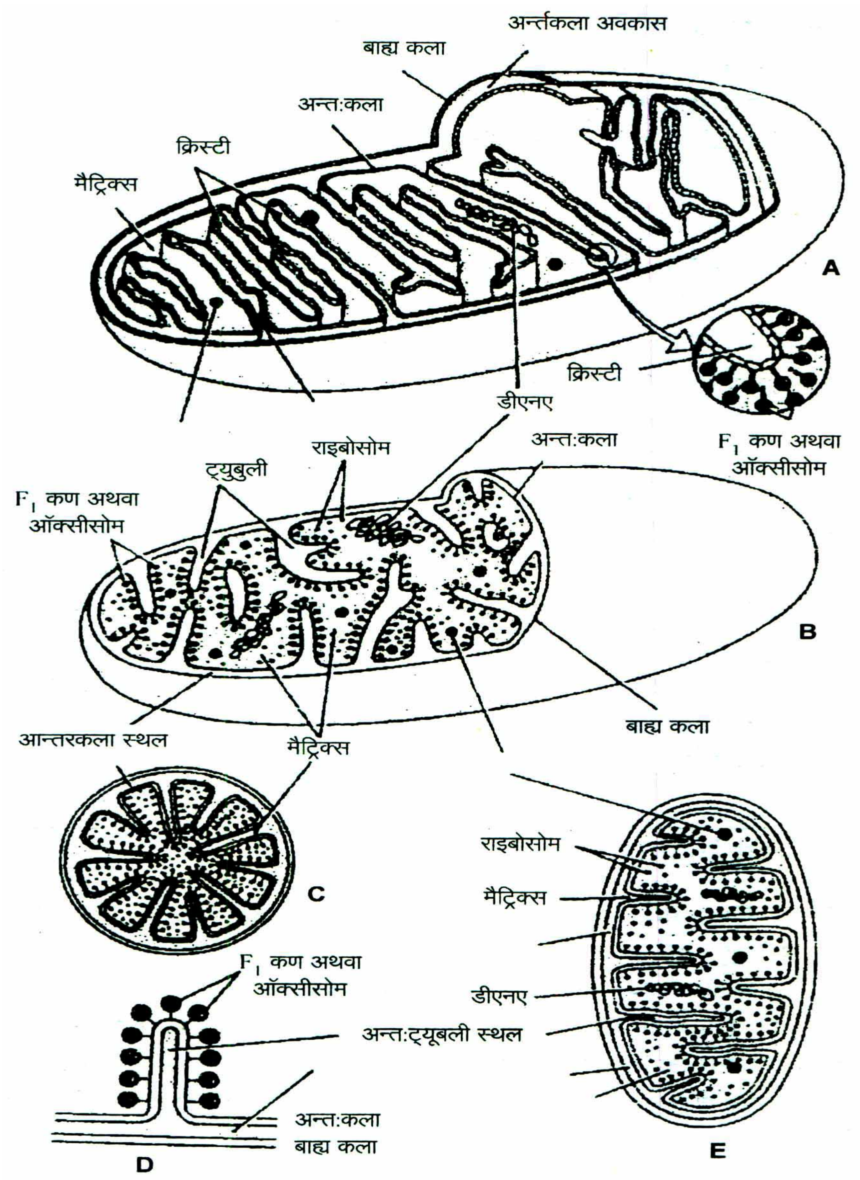

चित्र 2. 4: माइटोकॉन्ड्रिया की परासंरचना

माइटोकॉन्ड्रिया का आकार मुख्यत : कोशिका की क्रियात्मक अवस्था पर निर्भर करता है । मोटाई प्राय स्थिर रहती है, जो 0.5 तक होती है, किन्तु लम्बाई 1.5 - 7 तक होती है । सबसे छोटी माइटोकॉन्ड्रिया यीस्ट कोशिका में होती है (1mu) । सर्वाधिक लम्बे माइटोकॉन्ड्रिया वर्ग एम्फीबिया के प्राणियों की डम्बल कोशिकाओं में होते हैं (20-40) । आकृति में माइटोकॉन्ड्रिया तश्तरीनुमा संरचनायें हैं, किन्तु ये कणिकामय तन्तुरूपी, छड़ सदृश, वृत्ताकार या धागे के समान होती है ।

2.3.1 माइटोकॉन्ड्रिया की अतिसूक्ष्म संरचना:

इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी में प्रत्येक माइटोकॉन्ड्रिया बर्फ के बक्से या थर्मस के फ्लास्क के समान बाह्य व आन्तरिक झिल्लियों से निर्मित दोहरी भित्ति वाली रचना प्रतीत होती है, जिसमें दोनों झिल्लियों से घिरे हुए दो कक्ष होते हैं । माइटोकॉन्ड्रिया की दोनों झिल्लियों 75 A^0 मोटी यूनिट मेम्ब्रेन है, जो सामान्यत : तीन स्तरों (trilaminar) की बनी होती है ।

(i) **बाह्य झिल्ली** (outer membrane): यह चिकनी होती है और माइटोकॉन्ड्रिया के रस के सम्पर्क में रहती है । अत : यह माइटोकॉँन्ड्रिया तथा शेष कोशिका द्रव्य के बीच एक पट(partition) का कार्य करती है और दोनों के बीच संचार का साधन है तथा विभिन्न विलयशील पदार्थों के लिये बाह्य झिल्ली पारगम्य होती है ।

(ii) **आन्तरिक झिल्ली** (Inner membrane) : आन्तरिक झिल्ली की भीतरी सतह अंगुलाकार प्रवर्धों के रूप में केन्द्रीय द्विक्स्थान में उभरी रहती है । इनको क्रिस्टी (cristae) कहते हैं । ये क्रिस्टी घुलनशील पदार्थों, जैसे - सूक्रोस आयन आदि के लिये अपारगम्य (impermeable) होती है ।

(2) माइटोकॉन्ड्रियल कक्ष (Mitochondrial Chambers).

(a) **बाह्य कक्ष** (outer chamber) : माइटोकॉन्ड्रियल आवरण को बनाने वाली बाह्य तथा आंतरिक कला के मध्य पाया जाने वाला 60 - 80 A^0 चौड़ा स्थान बाह्य कक्ष (outer chamber) अथवा पेरीमाइट्रॉकान्ड्रिया) स्थान कहलाता है । इसमें कम घनत्व व कम श्यानता का द्रव भरा रहता है । यह स्थान क्रिस्टी के शिखरों तक फैला रहता है ।

(b) **आंतरिक कक्ष** (inner Chamber) आतरिक कला द्वारा आबद्ध समस्त अवकाश आंतरकक्ष (inner chamber) कहलाता है । बाह्य कक्ष में उपस्थित द्रव पदार्थ की तुलना में आंतर कक्ष में पाया जाने वाला द्रव पदार्थ अधिक घनत्व वाला, समांगी (homogenous) व प्रोटीन युक्त होता है, जिसे माइटोकॉन्ड्रियल मैट्रिक्स कहते हैं । यह कणिका युक्त होता है, क्योंकि आंतरकला द्वारा बनने वाली क्रिस्टी अपूर्णपट एवम् उभारों के रूप में होती है, अत : यह कक्ष कई अपूर्ण किन्तु सतत खानों में बँट जाता है । इनमें माइटोकॉन्ड्रिया मैट्रिक्स समान रूप से भरा रहता है ।

(3) **माइटोकॉन्ड्रियल मैट्रिक्स** (Mitochondrial matrix): अन्तर कक्ष में उपस्थित जैली जैसा प्रोटीन युक्त द्रव पदार्थ माइटोकॉन्ड्रियल मैट्रिक्स कहलाता है । यह सामान्यत: समांगी होता है, किन्तु कुछ अवस्थाओं में यह अति सूक्ष्म तंतु अथवा घनी कणिकाओं से युक्त होता है । इन कणिकाओं का व्यास लगभग 40 - 50 A^0 होता है । इनका मुख्य कार्य मैग्नीशियम तथा कैल्शियम के आयनों के लिये बंधक स्थल (binding sites) की तरह कार्य करता है । इसके अतिरिक्त मैट्रिक्स में लघु राइबोसोम्स (70 S),RNA तथा एक या एक से अधिक डी. एन. ए. अणु पाये जाते हैं । डी. एन .ए. अणु वृत्ताकार होता है, जिसकी लम्बाई 4. 7 - 6. 1 होती है । मैट्रिक्स में डी. एन. ए. तथा प्रोटीन संश्लेषण में काम आने वाले एन्जाइम तथा क्रेब्स चक्र में आने वाले घुलनशील एन्जाइम पाये जाते हैं ।

(4) **माइटोकॉन्ड्रिया क्रिस्टी** (Mitochondrial Cristae) : यह आंतरिक भाग है, जो की अंतर कक्ष में फैले रहते हैं । माइटोकॉन्ड्रिया का वह समस्त भाग, जो आंतीरक कला द्वारा आबद्ध रहता है, माइटोप्लास्ट (mitoplast) कहलाता है । इसकी दो सतहें होती हैं, बाह्य कक्ष की ओर वाली सतह साइटोसोल (c-face) तथा मैट्रिक्स की ओर वाली सतह M-face कहलाती है

माइटोकॉन्ड्रियल क्रिस्टी की संख्या पूरी तरह से माइटोकॉन्ड्रिया में होने वाली ऑक्सीकरण अभिक्रियाओं पर निर्भर करती है । माइटोकॉन्ड्रिया में यह क्रिस्टी उसके अनुदैर्ध्य अक्ष के समान्तर, लम्बवत् अथवा संकेन्द्री होता है । क्रिस्टी दो प्रकार के होते हैं, (i) ट्यूबुलर (tubular or microvilli) तथा (ii) प्लेटनुमा (plate like) | ट्यूबुलर क्रिस्टी अधिकतम पादपों तथा प्लेटनुमा जन्तु माइटोकॉन्ड्रिया में क्रिस्टी विभिन्न आकृति की, फूले हुए थैलेनुमा (swollen sace) नियमित प्लेट्स, संकरी वेसिकल्स अथवा ट्यूबूल्स के रूप में भी हो सकती है ।

(5) **माइटोकॉन्ड्रियल अथवा प्रारम्भिक कण** (Mitochondrial or elementary particles or F- particles) : माइटोकॉन्ड्रिया आंतरिक झिल्ली को M-face - पर 80 - 100 A^0 लम्बे कण अपने वृन्तों द्वारा जुड़े रहते हैं । इन्हें Morgan (1963) ने प्रारम्भिक कण अथवा F. कण कहा गया । बाह्य कला की बाहरी सतह पर भी कण पाये जाते हैं, जो अवृन्त होते हैं । ऐसा माना गया कि इन कणों में ऑक्सीजन की अभिक्रियाएँ होती हैं, जिनसे इलेक्ट्रॉन निकलते हैं तथा ATP संश्लेषण में मदद करते हैं । आंतरिक सतह पर पाया जाने वाला प्रत्येक सवृन्त कण तीन भागों द्वारा निर्मित होता है । $40x100A^0$ आकार का घनाकार का आधारीय भाग 30- 40 व्यास का व 40 - 50 लम्बा वृन्त तथा 75 - $100A^0$ व्यास का गोलाकार शीर्ष । चान्स व पारसन्स (Chance & parson) ने इन्हें ऑक्सीसोम्स (oxysomes) कहा । एक माइटोकॉन्ड्रिया में इनकी संख्या 10,000 - 1,00,000 तक हो सकती है । क्रिस्टी की सतह पर ये कण नियमित रूप से 100 A^0 की दूरी पर जुड़े रहते हैं । इस पर विशेष प्रकार के ATpase एन्जाइम पाये जाते हैं, जो ऑक्सीकारी फॉस्फोरिलीकरण में भाग लेते हैं । आंतरिक कला तथा F^1 -कणों में अभी तक चार प्रकार की क्रियात्मक इकाईयाँ खोजी जा चुकी हैं, जिन्हें काम्पलेक्स कहते हैं । काम्पलेक्स वे विशिष्ट स्थल हैं, जहाँ क्रेब्स चक्र के समय विभिन्न H - ग्राही (H acceptors) ऑक्सीकृत होकर H^+ आयन तथा ऊर्जा मुक्त करते हैं ।

काम्पलेक्सI : F, कणों के आधार भाग में स्थित ओर NADH co-enz-Q रिडक्टेज - NADH से Co -enz-Q प तक इलेक्ट्रॉन ट्रांसफर को उत्प्रेरित करता है ।

काम्पलेक्स ii : यह भी F_1 कणों के आधारीय भाग में उपस्थित । Succinate -रिडक्टेज, -succinate-co- enz -Q ET पे तक का उत्प्रेरित करता है ।

कॉम्पलेक्स iii : F_1 -कण के वृन्त में स्थित Co- enz Q - cytochrome, c- रिडक्टेज,co-enz Q से तथाET उत्प्रेरित करता है ।

कॉम्पलेक्स vi F_1 कण के शीर्ष में स्थित । Cytochrome C-oxidase उपस्थित ।

2.3.2 रासायनिक संगठन (Chemical Composition)

रेक्स के अनुसार माइटोकॉन्ड्रिया में प्रोटीन 70% तथा लिपिड्स 25 - 30% होते हैं । लिपिड्स के कुल भार का 90% फास्फोलिपिड्स तथा शेष 10% कोलेस्ट्रॉल, कैरोटिनाइड, विटामिन इ तथा अन्य कार्बनिक यौगिक होते हैं । इसके अतिरिक्त श्वसन एन्जाइम भी माइटोकॉन्ड्रिया में मैट्रिक्स में पाये जाते हैं । इनके अतिरिक्त डी. एन. ए. व आर. एन. ए. की भी कुछ मात्रा होती है, जिसे माइटोकॉन्ड्रिया डी. एन. ए. व माइटोकॉन्ड्रियल आर एन ए. कहते हैं ।

माइटोकॉन्ड्रियल डी. एन. ए. प्रत्येक माइटोकॉन्ड्रिया में एक या अधिक डी. एन. ए. के अणु पाये जा सकते हैं, जिनकी लम्बाई सामान्यत : 60 होती है । डी एन .ए. से समानता रखता है । यह m-DNA गुआनीन(G) तथा साइटोसीन (C) की मात्रा अधिक होती है, अत: घनत्व अधिक होता है । यह m-DNA अपेक्षाकृत उच्च ताप पर विकृत होता है । यह m-DNA - माइटोकॉन्ड्रिया में स्वयं प्रतिकूल तथा प्रोटीन संश्लेषण में सक्षम होते हैं तथा इसके अलावा यह कुछ संरचनात्मक प्रोटीन के संश्लेषण को भी कोडित करता है ।

माइटोकॉन्ड्रियल आर. एन. ए. मैट्रिक्स में पाया जाता है तथा कोशिका द्रव्य में पाये जाने वाले आर एन .ए. से भिन्न होता है ।

माइटोकॉन्ड्रियल एन्जाइम प्रणाली (Mitochondrial Enzyme system): माइटोकॉन्ड्रिया में भोजन के तीनों मुख्य घटक (कार्बोहाइड्रेट्स, प्रोटीन व वसा) क्रैब चक्र में प्रवेश करते हैं, जिसमें उत्पन्न हुए इलेक्ट्रॉन, इलेक्ट्रॉन अभिगमन प्रणाली को पारगत कर दिये जाते हैं । लेहनिनजर (Lehninger,1969) ने माइटोकॉन्ड्रिया में निम्नलिखित महत्वपूर्ण एन्जाइम का उल्लेख किया है।

(i) बाहृय झिल्ली के एन्जाइम : मोनोएमिनेज ऑक्सीडेज, NADH - cytochrome रिडक्टेज, फेटी एसिड - Co -A - लाइगेज ।

(ii) बाहृय कक्ष के एन्जाइम : एडिनाइलेट काइनेज, न्यूक्लिओसाइड डाइफास्फोकाइनेज ।

(iii) आंतरिक झिल्ली के एन्जाइम : श्वसन एन्जाइम - साइटोक्रोम C - रिडक्टेज, फ्लेवोप्रोटीन्स, कोएन्जाइम । ATP सिन्थटेज ऑक्सीडेज ।

(iv) भीतरी कक्ष या मैट्रिक्स के एन्जाइम : क्रेब्स चक्र से जुड़े एन्जाइम तथा B -ऑक्सीकरण से जुड़े एन्जाइम ।

2. 3.3 माइटोकान्ड्रिया के कार्य :

(i) माइटोकॉन्ड्रिया में विभिन्न प्रकार की महत्वपूर्ण क्रियायें, जैसे ऑक्सीकरण, डिहाइड्रोजिनेशन, ऑक्सीडेटिव फास्फोराइलेशन आदि सम्पन्न होती है । जिसके आवश्यक एन्जाइम माइटोकॉन्ड्रिया में पाये जाते हैं तथा यह कोशिका के श्वसन अंगों की तरह कार्य करता है, जो कि शर्करा, अमीनो अम्ल व वसा अम्लों का ऑक्सीकरण करता है तथा ATP संश्लेषण तथा उसका संचयन करता है ।

(ii) बीज अंकुरण में माइट्रोकॉन्ड्रिया अत्यधिक सक्रिय होकर श्वसन क्रिया की गति बढ़ा देते हैं ।

(iii) माइटोकॉन्ड्रियल झिल्लियाँ $Ca^{+}2$ तथा PO_4 तथा- आयनों के सक्रिय स्थानान्तरण में सक्षम होती हैं ।

माइटोकॉन्ड्रिया का जीवात जनन (Biogenesis of Mitochondria) माइटोकॉन्ड्रिया की उत्पत्ति हेतु विभिन्न मत दिये गये हैं

(1) अन्य कोशिकांगों से उत्पत्ति (Origin from other cell organelles) -:

(a) प्लाज्मा कला से (Plasma Membrane) -: रॉबर्टसन के अनुसार माइटोकॉन्ड्रिया प्लाज्मा झिल्ली के कोशिका द्रव्य में अन्तर्वलित होने से बनते हैं । प्रारम्भ में यह अन्तर्वलित झिल्ली बेलनाकार संरचना बनाती है, जो बाद में वक्र रूप धारण कर या वलित हो माइटोकॉन्ड्रिया का निर्माण करता है ।

(b) इसके अलावा माइटोकॉन्ड्रिया की उत्पत्ति अन्त ' प्रद्रव्यी जालिका, केन्द्रक आवरण तथा गॉल्जीकाय आदि को बनाने वाली कलाओं से भी होती है ।

(2) पूर्ववर्ती माइटोकॉन्ड्रिया से लक (Luck 1963) तथा क्लॉड (Claude 1965) के अनुसार पूर्ववर्ती माइटोकॉन्ड्रिया से मुकुलन द्वारा दोहरी झिल्ली युक्त कलिकाएँ बनती हैं, वे अंतत : विकसित होकर नये माइटोकान्ड्रिया का निर्माण करती हैं ।

कई बार की लम्बाई अत्यधिक बढ़ जाती है, जिसमें आंतरकला में 2 -3 पटों निर्माण होने से माइटोकॉन्ड्रिया कई खण्डों में टूट जाता है तथा प्रत्येक खण्ड नये माइटोकॉन्ड्रिया में बदल जाता है।

(3) प्रोकेरियोटिक उत्पत्ति : आल्टमेन ने माइटोकान्ड्रिया को स्वत: जनित इकाई माना । किन्तु sager (1967) ने बताया, माइटोकॉन्ड्रिया की उत्पत्ति जीवाणु से हुई है जिसमें जीवाणु द्वारा उच्चजीवों के साथ सहजीवी सम्बन्ध के फलस्वरूप माइटोकान्ड्रिया का विकास हु आ है।

2. 4 हरितलवक (Chloroplast)

पादप जगत में जीवाणु, नील हरित शैवाल एवम् कवकों को छोड़कर सभी पादपों की कोशिकाओं में पाया जाने वाले सबसे बड़े किन्तु केन्द्रक से छोटे कोशिकांग लवक (plastids) कहलाते हैं । हिकेल (Haeckel 1865) ने इन कोशिकांगों को लवक कहा । इनका मुख्य कार्य खाद्य पदार्थ का संश्लेषण संचयन करना है । ये जीवित संरचनायें होती हैं, जो विभाजित होकर संख्या में वृद्धि करती हैं । इनकी उत्पत्ति पूर्ववर्ती कोशिकाओं से होती हैं, जिन्हें प्रोप्लास्टिड (proplastid) कहते हैं ।

प्लास्टिड को उनके संचित भोजन व विभिन्न वर्णकों की उपस्थिति त था अनुपस्थिति के आधार पर निम्नलिखित समूहों में वर्गीकृत किया गया है.

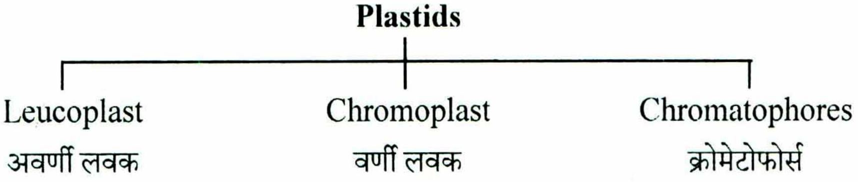

(1) ये अप्रकाश संश्लेषी लवक है जिसमें वर्णक नहीं पाया जाता	(1.) रंगीन वर्ण क्रोमोप्लास्ट कहते हैं ।	(1) जब कुछ जीवाणु, शैवालों लवक तथा कवक कोशिकाओं में वर्णक संकेन्द्री वलयों अथवा प्लेट्स के

हैं, जिसमें पाया जाता ।		रूप में व्यवस्थित व्यवस्थित पटलिकाओं उन्हें क्रोमेटोफोर्स कहते हैं|
(2) इनका मुख्य कार्य खाद्य संचयन है संचयन हैं,जैसे कार्बोहाइड्रेट्स,लिपिड्स, प्रोटीन|	(2) प्रकाश संश्लेषी क्रिया द्वारा भोजन निर्माण तथा संग्रहण कहते हैं|	
(3) संचित पदार्थों के आधार पर ये निम्न प्रकार के होते हैं:	(3) पादपों में तना,पत्ती,पुष्प व फल कोशिकाओं में पाये जाते हैं |	
(a) **एमाइलोप्लास्ट :** स्टार्च संचित करने वाला वर्णक है, जो मुख्य रूप से कंदों (tubers),बीजपत्रों तथा भ्रूणकोष कोशिकाओं में पाया जाता है ।	(a) **कालोरोप्लास्ट :** उच्च श्रेणी के पादपों तथा हरे शैवाल में पाये जाने वाला वर्णक है, जो मुख्य रूप से chl a- तथा chl बी बना होता है ।	उदाहरण: बैक्टिरियोक्लोरोफिल तथा बैक्टीरियोविरिडन|
(b) **एलियोप्लास्ट** : मुख्य कार्य तेल संचित करना है तथा एक बीजपत्री तथा द्विबीजपत्री बीजों में पाया जाताहै ।	(b) **फीयोप्लास्ट :** भूरे पीले रंगयुक्त वर्णक हैं, जो कि भूरे शैवालों तथा डायटम्स में पाया जाता हैं |	
(c) प्रोटीनोप्लास्ट : प्रोटीन संचयन करने वाले वर्णक हैं रिसिनस (अरण्ड) तथा ब्राजील नट के बीजों में पाये जाते हैं ।	(c) रोडोप्लास्ट्स : लाल रंग का वर्णक है, जो कि लाल शैवालों में पाया जाता है इनमें लाल वर्णक फाइकोइरिथ्रिन है।	

उपरोक्त सभी प्लास्टिड में से पौधों के जीवन में क्लोरोप्लास्ट का अत्यधिक महत्व है, क्योंकि ये वे अंगक हैं, जिनमें प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्‌वारा प्रकाशीय ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित करने की क्षमता होती है । यही ऊर्जा सभी सजीवों द्‌वारा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उपयोग में ली जाती हैं |

हरितलवक (Chloroplast)

क्लोरोप्लास्ट प्राय : केन्द्रक के चारों ओर या कोशिका भित्ति के निकट स्थित होते हैं । ये विभिन्न आकृतियों के, जैसे तंतुवत (filamentous), प्यालीनुमा(cupshaped), विम्बाभ (discoid), गोलाकार (spheroid), अण्डाकार (ovoid) आदि हो सकते हैं । अधिकतर शैवालों की कोशिकाओं में ये जालिकारूपी, सर्पिल अथवा ताराकार होते हैं ।

इनका आकार कोशिका की गुणसूत्र संख्या तथा पादप के आवास पर निर्भर करता है । छाया में उगने वाले बहुगुणितपादप की कोशिका में पाये जाने वाला क्लोरोप्लास्ट का आकार, प्रकाश में उगने वाले द्‌विगुणित पादप की कोशिका के क्लोरोप्लास्ट से अधिक होता है । उच्च श्रेणी के पादपों में इनका आकार 2-3 x 5 - 10 होता है ।

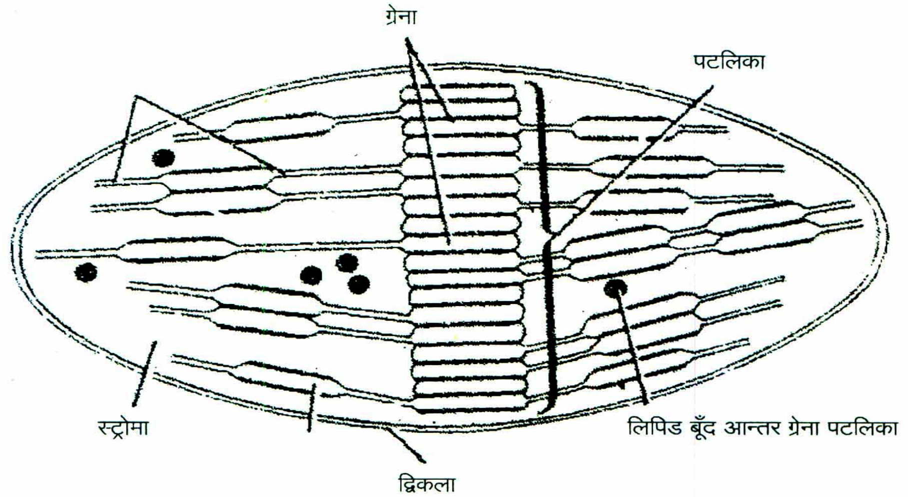

चित्र 2.5 : पादप क्लोरोप्लास्ट एवं स्ट्रोमा लैमेली का त्रिविम दृश्य

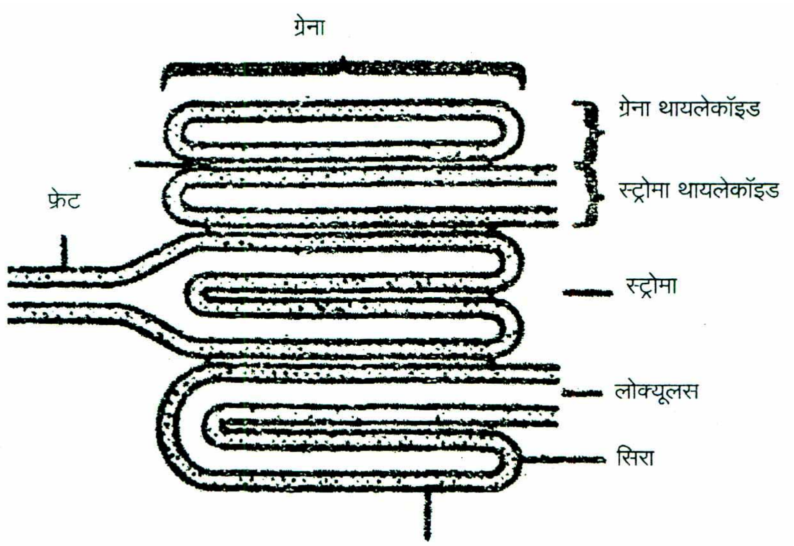

चित्र 2.6 : ग्रेनम में थाइलेकॉयड के विन्यास का चित्रिय निरूपण

कोशिका में इनकी संख्या लगभग स्थिर रहती है, ज्यादातर शैवालों में 1 किन्तु उच्च श्रेणी के पादपों की कोशिकाओं में 20 - 40 क्लोरोप्लास्ट पाये जा सकते हैं ।

2.4.1 हरितलवक की सूक्ष्म संरचना (Ultrastructure of Chloroplast):

प्रत्येक हरितलवक एक द्विस्तरीय झिल्ली से आबद्ध संरचना है, जिसमें दो संकेन्द्री (concentric), बाहरी (outer) व आंतीरक (inner) कलायें हैं । प्रत्येक कला लाइपोप्रोटीन द्वारा निर्मित त्रिस्तरीय संरचना होती है, जिसकी मोटाई लगभग 80 A^0 में होती है । दोनों कलाओं के बीच लगभग 10nm चौड़ा अत: कला स्थान होता है । ब्राहा झिल्ली सभी पदार्थों के लिए पारगम्य होती है, वहीं भीतरी झिल्ली वरणात्मक पारगम्य होती है । यह सूक्रोस, शर्करा तथा न्यूक्लिओटाइड आदि जटिल यौगिकों के लिये अपारगम्य है । भीतरी झिल्ली क्लोरोप्लास्ट के कला तंत्र की झिल्ली से जुड़ी होती है । दोनों कलाओं के मध्य अन्तरकला स्थान (inter membrane space) में $Mg+^2$ आयन आधारित AT pase पाया जाता है ।

कणिकामय मैट्रिक्स या स्ट्रोमा (Granular matrix or stroma): हरितलवक में एक जलीय प्रोटीनयुक्त पदार्थ भरा रहता है, जिसे मैट्रिक्स या स्ट्रोमा कहते हैं । इसमें 50% मात्रा में घुलनशील प्रोटीन्स, राइबोसोम्स तथा डी. एन. ए. पाये जाते हैं । इसमें स्टार्च कण तथा ऑस्मोफिलिक बूँदे (osmophilic droplets) भी पायी जाती है, जिनकी संख्या हरितलवक की निष्क्रिय अवस्था में बढ़ जाती है । इसके अतिरिक्त मैट्रिक्स में प्रकाश संश्लेषण की अप्रकाशीय क्रिया (dark reaction) में काम आने वाले सभी एन्जाइम तथा विभिन्न वर्णक व खाद्य पदार्थों के संश्लेषण में प्रयुक्त होने वाले एन्जाइम पाये जाते हैं ।

आन्तरिक कला तंत्र अथवा ग्रेना तंत्र अथवा पटलिका तंत्र (Inner membrane system ओर grana system or Lamellar system) इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा ज्ञात होता है कि क्लोरोप्लास्ट में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया हेतु आवश्यक वर्णक पटलिका तंत्र (lamellar

system)) के बनाने वाली चपटी प्लेटनुमा दोहरी झिल्ली से बनी हुई पटलिकाओं (lamellae) में पाये जाते हैं, जिन्हें थायलेकॉइडस कहते हैं । सम्पूर्ण पटलिका तंत्र मैट्रिक्स में धँसा रहता है । उच्च पादपों में कुछ क्षेत्रों में थायलेकॉइडस परतों के रूप में एक के ऊपर एक रखे हुए सिक्के के ढेर के समान व्यवस्थित होकर एक विशिष्ट रचना बनाती है जिसे ग्रेनम कहते हैं । ग्रेनम को बनाने वाली प्रत्येक प्लेट अथवा डिस्क दूसरे प्रेम की प्लेट से एक नली द्वारा जुड़ी रहती है, जिसे इंटरग्रेनम कहते हैं । ग्रेना का आकार 0.3 - 1.7 तक हो सकता है ।

प्रत्येक ग्रेनम में 50 या इनसे भी अधिक अथवा कम थाइलेकॉइडस पायी जा सकती है । प्रत्येक थाइलेकॉइड अपनी बाहरी सतह द्वारा मेट्रिक्स के सम्पर्क में रहती है तथा इसकी आंतरिक सतह अन्त : थायलेकॉइड स्थान (intra thylakolid space) आबद्ध किये रहते हैं । थाइलेकॉइड कला प्रकाशसंश्लेषी वर्णकों व एन्जाइम के लिये विस्तृत कला क्षेत्र (large membrane area) प्रदान करती है । प्रकाश संश्लेषण की प्रकाशीय अभिक्रिया थाइलेकॉइड में ही सम्पन्न होती है । इस क्रिया के फलस्वरूप बनने वाले उत्पाद ATP तथा अपचयित को -एन्जाइम या थाइलेकॉइड्स से मैट्रिक्स में विसरित हो जाते हैं तथा डार्क अभिक्रिया के दौरान हे CO_2 के स्थायीकरण में उपयोग में आ जाते हैं ।

पार्क तथा पॉन (park& paun1963) ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह बताया कि थायलेकॉइड की आन्तर सतह पर सूक्ष्म, गोलाकार कणिकायें पायी जाती हैं, जिन्हें क्वांटासोम (quantasome) कहते हैं । प्रत्येक क्वांटासोम 185-A^0 155 A^0 तथा 100 A^0 मोटा होता है । इसका आणविक भार 2x10 d होता है । ये थाइलेकॉइड कला पर अनियमित रूप से बिखरी रहती है । प्रत्येक क्वांटासोम में लगभग 230 क्लोरोफिल अणु तथा अन्य प्रकाशशोषी वर्णक व आवश्यक एन्जाइम पाये जाते हैं । इनके अनुसार क्वांटोसोम प्रकाश संश्लेषण की क्रिया के लिये संरचनात्मक एवम् कार्यात्मक इकाइयाँ हैं । प्रकाश संश्लेषण की प्रकाशीय रासायनिक अभिक्रिया का केन्द्र बिन्दु क्वांटासोम्स ही होते हैं (चित्र 2.5 एवं 2.6) ।

2.4.2 हरितलवक का रासायनिक संगठन

(Chemical Composition of Chloroplast)

रासायनिक विश्लेषण से पता चलता है कि हरितलवक मुख्य रूप से प्रोटीन्स, लिपिड, क्लोरोफिल, कैरोटिनाइड्स, आर. एन. ए. तथा डी. एन. ए. का बना होता है । प्रोटीन्स, लैमीली तथा झिल्लियों की संरचना में भाग लेते हैं । ये शुष्क हरितलवक का 30 - 35% तक भाग बनाते हैं तथा बचे हुए एन्जाइम के रूप में पाये जाते हैं । लिपिड्स शुष्क हरितलवक का 20 - 30% भाग बनाते हैं तथा मुख्य रूप से फास्फोलिपिड्स, वसाओं, स्टेरॉल्स तथा मोम के रूप में होते हैं । फास्फोलिपिड मुख्य रूप से पटलिकाएँ तथा प्लास्टिड भित्ति बनाते हैं ।

क्लोरोफिल क्लोराप्लास्ट का मुख्य घटक है, जो शुष्क भार का लगभग 9% है, जिनमें Chl-a - लगभग 75% तथा Chl-b- b- 25% होती है । प्रत्येक क्लोरोफिल एक असममित अणु है, जिसका जलरागी शीर्ष (hydrophilic head) चार पाइरोलिक केन्द्रकों (pyrrolic nuclei) का

बना होता है, जिसके केन्द्र में मैग्नीशियम का एक अणु होता है त था एक लम्बी जल विरोधी पुच्छ ((tail) होती है । क्लोरोफिल का रासायनिक सूत्र :

$$Chl\ -a= C_{55}\ H_{72}\ O_5\ N_4\ Mg$$

$$Chl\ -a= C_{55}\ H_{70}\ O_6\ N_4\ Mg$$

Chl में मिथाइल समूह (= $CH_{3)}$ होता है, जबकि Chl-b में= CH_3 के स्थान पर एल्डीहाइड (= CHO) पाया जाता है ।

कैरोटिनॉइड्स (4.5%) ये हाइड्रोकार्बन होते हैं तथा दो प्रकार के हाते हैं । कैरोटीन्स (C_{40} H_{56}) तथा जैन्थोफिल (C_{40} H_{56} O_2) ।

आर. एन. ए. प्लास्टिड के शुष्क भार का 3 - 7% पाया जाता है । आर. एन. ए. दो प्रकार के होते हैं, 24 S rRNA तथा 16 rRNA डी. एन. ए. ए. 5% होता है, क्लोरोप्लास्ट में पाये जाने वाला डी. एन. ए. जीवाणु डी एन. ए. के समान वृत्ताकार नहीं होता । यह डी. एन. ए. कोशिकाद्रव्यी वंशागति में भाग लेता है । इसके अलावा क्लोरोप्लास्ट में Cytochrome -0.1%, Vit K- 0. 004%, Vit E-0.008 %तथा अन्य खनिज जैसे -Mg, Fe, Mn, Zn, तथा p सूक्ष्म मात्रा में पाये जाते हैं । इसके अलावा इसमें 70S राइबोसोम पाये जाते हैं ।

2.4.3 हरितलवक के कार्य

(1) प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis): क्लोरोप्लास्ट वे कोशिकांग हैं, जो कि क्लोरोफिल की सहायता से सूर्य ऊर्जा को फोटोन्स के रूप में अवशोषित करते हैं तथा रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित कर देते हैं । ये रासायनिक बंधों में संचित ऊर्जा बाद में विभिन्न प्रकार के अणुओं, जैसे पॉलीसेकेराइड, लिपिड्स, प्रोटीन्स तथा न्यूक्लिक अम्लों को बनाने के काम में आती है । इस प्रक्रिया में जीवनदायनी ऑक्सीजन निकलती है, जो सभी जीवों को जीवित रखती है । इसके अतिरिक्त CO^2 के प्रयुक्त होने के कारण वातावरण में CO_2 की मात्रा को स्थिर रखने में सहायता मिलती है ।

(2) भोज्य पदार्थों का संचय : विभिन्न प्रकार के अवर्णी लवकों का मुख्य कार्य भोज्य पदार्थों का संचय करना है । ये संचित पदार्थ बीज अंकुरण व परिवर्धन के समय काम आते हैं ।

(3) प्रोटीन संश्लेषण : क्योंकि क्लोरोप्लास्ट में राइबोसोम तथा स्वयं के DNA पाये जाते हैं । यह DNA. mRNA, rRNA तथा tRNA को कोडित करता है तथा राइबोसोम्स में संरचनात्मक प्रोटीन्स व राइबोसोमल प्रोटीन का संश्लेषण करता है ।

(4) माइटोकान्ड्रिया के समान क्लोरोप्लास्ट में भी जीन्स पाये जाते हैं, जो कि कोशिकांग वंशागत सूचनाओं को एक कोशिका से दूसरी कोशिका में पहुँचाते हैं । कोशिका विभाजन के दौरान प्लास्टिड सीधे ही पुत्री कोशिका में स्थानान्तरित हो जाते हैं । उदाहरण, **मिराबिलिस** के प्लास्टिड की वंशागति ।

लवक का जीवात् जनन (Biogenesis of Plastids)

प्लास्टिड हमेशा अपने पूर्ववर्तीकायों (pre existing bodies), जिन्हें प्रोप्लास्टिड कहते हैं, उससे बनते हैं । प्रोप्लास्टिड छोटी, गोलाकार तथा द्विस्तरीय झिल्ली से आबद्ध रचना है, जिनका व्यास

लगभग 0.5u होता है । इसमें घना मैट्रिक्स भरा रहता है । जब इस पर प्रकाश पड़ता है, तो ये आकार में वृद्धि करते हैं तथा आंतीरक कला कई स्थानों पर अंतर्वलित होकर मैट्रिक्स में छोटी - छोटी पुटिकाएँ बनाती हैं । ये पुटिकाएँ संगलित होकर व्यस्क प्लास्टिड की पटलिकाओं का निर्माण करती हैं, जिन्हें थायलेकॉइड कहते हैं, जो कुछ क्षेत्रों में ढेर के रूप में व्यवस्थित होकर ग्रेना बनाती है ।

2.5 राइबोसोम (Ribosomes)

राइबोसोम उपसूक्ष्मदर्शी कणिकायें हैं । कोशिका में इनके द्वारा प्रोटीन संश्लेषण होता है । अत : इनको ' 'कोशिका की फैक्ट्री " भी कहा जाता है । सर्वप्रथम पैलेड (Palade 1953) ने इन कणों को इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा जन्तु कोशिका में रोबिन्सन तथा ब्राउन ने (Robinson & Brown 1953) पादप कोशिकाओं में देखा । टीसीयर्स तथा जे डी. वाटसन (Tisiers & Watson 1958) ने इन कोशिकांगों को जीवाणु (*E.coli*) कोशिका से विलगित किया तथा यह बताया कि राइबोसोम्स में RNA तथा प्रोटीन समान मात्रा में पाये जाते हैं । इन कोशिकांगों में प्रोटीन का संश्लेषण होता है ।

राइबोसोम्स, प्रोकेरियोटिक तथा यूकेरिओटिक, दोनों प्रकार के कोशिकीय संगठनों में उपस्थित होते हैं । प्रोकेरियोटिक कोशिकाओं में राइबोसोम्स कोशिकाद्रव्य में बिखरे एव एन्डोप्लाज्मिक रेटीकुलम की झिल्लियों से लगे हुए अर्थात् दोनों दशाओं में मिलते हैं । माइटोकॉन्ड्रिया तथा हरितलवकों में पाये जाने वाले राइबोसोम्स इनके मैट्रिक्स में बिखरे रहते हैं ।

किसी भी कोशिका में राइबोसोम्स की संख्या व सांद्रण का सीधा सम्बन्ध उसमें उपस्थित RNA की मात्रा, कोशिका की क्षारग्राही प्रकृति तथा उपलब्ध होने वाले पोषण पर निर्भर रहता है ।

राइबोसोम्स मुख्य रूप से दो परिमापों में पाये जाते हैं, (1) प्रोकेरियोटिक कोशिकाओं, जैसे जीवाणु, नील हरित शैवाल में पाये जाने वाले राइबोसोम्स छोटे होते हैं तथा इनका अवसादन गुणांक (S=Sedimentation coefficient) 70S होता है तथा इनका आणविक भार 2.7×10^6 डाल्टन होता है ये 70S प्रकार के कहलाते हैं । यूकैरियोटिक कोशिकाओं में पाये जाने वाले राइबोसोम्स बड़े होते हैं । इनका अवसादन गुणांक 80 होता है, अत : ये 80S प्रकार के होते हैं । इनका आणविक भार लगभग $4 \times 10x^6$ डाल्टन होता है । इसके अलावा दो अन्य प्रकार के राइबोसोम्स 77S तथा 60S प्रकार के होते हैं । 77 S प्रकार के राइबोसोम्स कवक कोशिकाओं के माइटोकॉन्ड्रिया में तथा 60S प्रकार के राइबोसोम्स जन्तु कोशिकाओं में माइटोकॉन्ड्रिया में पाये जाते हैं । सभी प्रकार के राइबोसोम्स गोलाकार होते हैं । बैक्टीरिया में ये 18nm तथा जन्तु व पादप कोशिकाओं में 20-22 nm आकार के होते हैं ।

संरचना में राइबोसोम छोटे, गोलाकार कण होते हैं, जो दो उपइकाइयों के एकीकृत होने के उपरान्त बनने वाली संरचनायें हैं । एक उपइकाई (subunit) बड़ी गुम्बदाकार (domeshaped) तथा एक छोटी उपइकाई टोपी की तरह होती हैं । दोनों प्रकार (70S तथा 80S) के राइबोसोम्स में दो उपइकाइयाँ पाई जाती हैं । 70S प्रकार के राइबोसोम क्रमश : 50S तथा 30S उपइकाईयो द्वारा निर्मित होते हैं । इनकी 50S बड़ी उपइकाइं का परिमाप 140 - $160A^0$ में तक हो सकता

है तथा अणु भार 1.8 x 10^6 " डाल्टन होता है । छोटी 70S उपइकाई का अणुभार 0.9 x1-10^6 डाल्टन होता है । इसी प्रकार 80S प्रकार के राइबोसोम्स भी दो उपइकाईयो 6OS तथा 40S से बने होते हैं । 60S बड़ी उपइकाई का परिमाप 160 - 180 A^0 तक हो सकता है तथा अणु भार 6x10^6 डाल्टन होता है । छोटी उपइकाई 40S का अणुभार 1. 5 x 1.8 10^6 डाल्टन होता है । (चित्र 2.7) ।

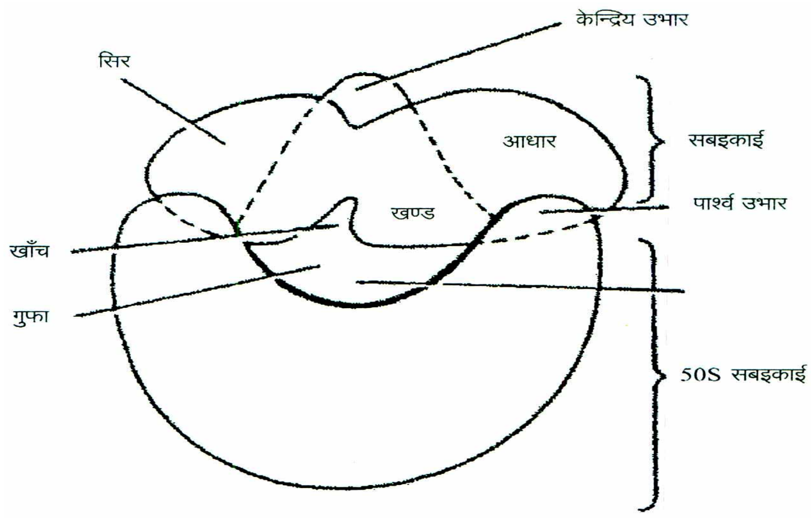

चित्र 2.7 : प्रोकेरियोटिक राइबोसोम (70S) की परारचना

2.5.1 राड़बोसोम की सूक्ष्म संरचना (Ultrastructure of Ribosomes)

नेनिंगा (Nanninga 1967) ने इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा 70S प्रकार के राइबोसोम्स का अध्ययन किया तथा पाया कि 50S उपइकाई आकृति में पंचतयी होती है । इसका परिमाप 160 - 180 A^0 में होता है । इसके केन्द्र में 40 - 60 में परिमाप का अवतल क्षेत्र पाया जाता है, जिस पर छोटी इकाई आकर संयोजित होती है । इसके अतिरिक्त फ्लोरेन्डो (Florendo, 1968) ने 50S उपइकाई में एक छिद्र जैसा पारदर्शी क्षेत्र बताया । यह क्षेत्र राइबोन्यूक्लिऐज एन्जाइम को अन्दर आने से रोकता है । राइबोसोम की छोटी उपइकाइयों (30S तथा 40S) का कोई नियमित आकार नहीं होता है । ये भागों में विभक्त रहती है । दोनों भाग 30 - 60 A^0 मोटे धागे से जुड़े रहते हैं । संदेशवाहक RNA (mRNA)राइबोसोम्स की दोनों उपइकाइयों के मध्य खाली स्थान में स्थित रहता है, जिससे लगभग 25 न्यूक्लिओटाइड लम्बा mRNA खण्ड राइबोन्यूक्लिऐज एन्जाइम की अभिक्रिया से सुरक्षित रहता है, विखण्डित नहीं हो पाता । राइबोसोम की बड़ी उपइकाई में एफ खाँच अथवा सुरंग होती है, जिसमें नवनिर्मित प्रोटीन श्रृंखला वृद्धि करती है (चित्र 2.8) ।

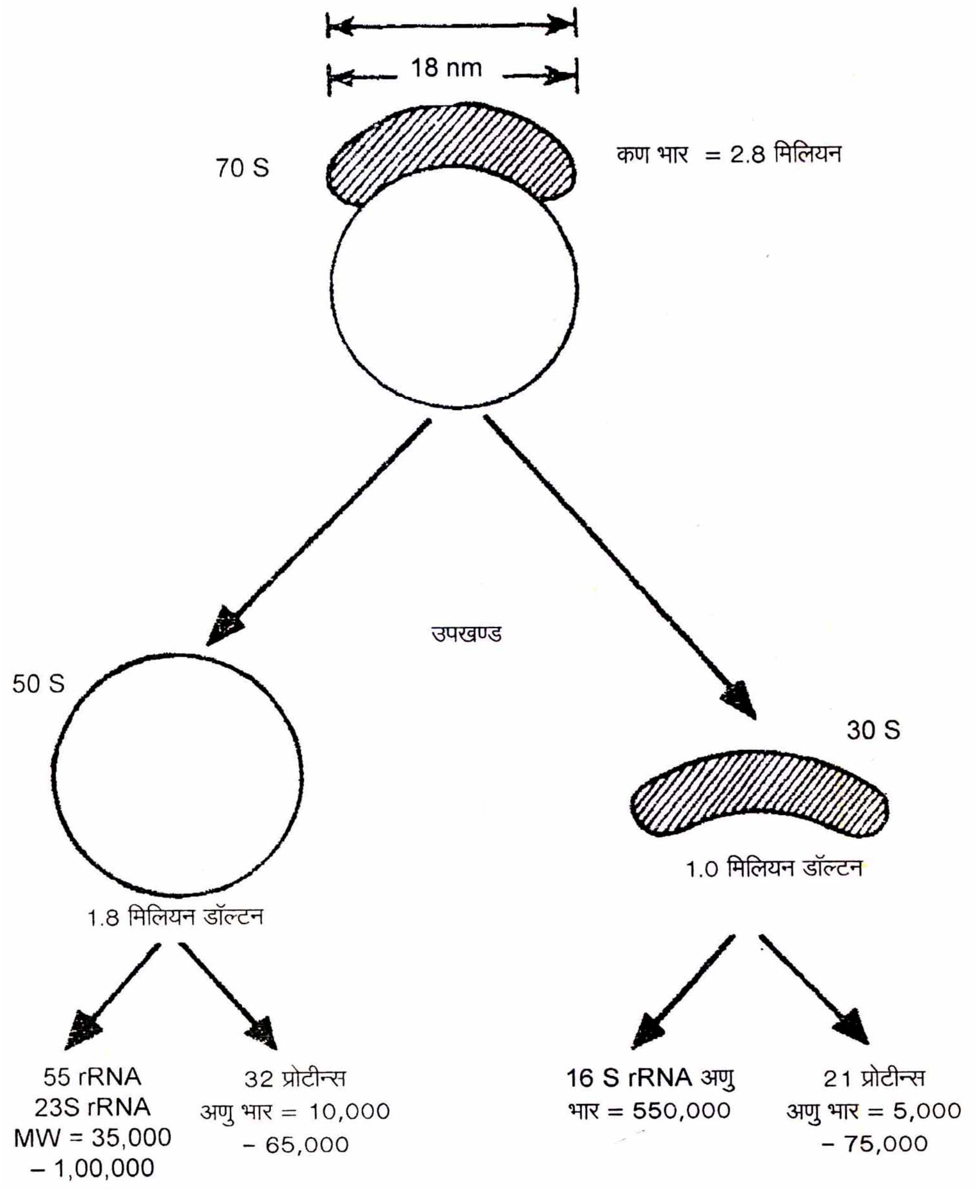

चित्र 2.8 : प्रोकेरियोटिक राइबोसोम की संरचना

राइबोसोम की दोनों उपइकाईयों के संरचनात्मक संयोजन हेतु मैग्नीशियम आयन के बहुत कम सांद्रण आवश्यकता होती है । मैग्नीशियम आयन की अनुपस्थिति में राइबोसोम्स की उपइकाइयों स्वतंत्र (विनियोजित) पड़ी रहती है, किन्तु यदि मैग्नीशियम आयन का सांद्रण घट जाता है, तो दोनों उपइकाईयाँ मुक्त हो जाती हैं । लेकिन यदि मैग्नीशियम आयन का सांद्रण दस गुणा बढ़ा दिया जाता है तो राइबोसोम संयुक्त होकर डाइमर बनाता है । प्रोटीन संश्लेषण के दौरान एक mRNA अणु से कई राइबोसोम्स आकर जुड़ जाते हैं तथा पॉलीराइबोसोम्स कहलाते हैं ।

बड़े सबयुनिट (60 S तथा 50 S) एन्डोप्लाज्मिक रेटीकुलम की झिल्लियों से लगे रहते हैं, जबकि छोटे सबयुनिट बड़े सबयुनिट पर लगे रहते हैं । संदेशवाहक से RNA (mRNA) छोटे

सबयुनिट से तथा tRNA अणु बंधित रहते हैं, इसमें से प्रथम एक खाँच पर तथा दूसरा संलग्न खाँच पर ।

2.5.2 राइबोसोम्स के रासायनिक संगठन (Chemical composition)

पादप व प्राणीजगत के समस्त जीवों में राइबोसोम का रासायनिक संगठन समान होता है । इनमें RNA तथा प्रोटीन समान मात्रा में होते हैं । लिपिड अनुपस्थित होते हैं अथवा थोड़ी मात्रा में होते हैं । 70S राइबोसोम में आर. एन ए. 65% तथा 80S राइबोसोम में लगभग 45 % होता है ।

(1) **राइबोसोमी आर. एन.ए.** (Ribosomal RNA) राइबोसोमी आर.एन.ए। तीन भिन्न रूपों में मिलता हैं |यूकेरियोटिक कोशिकाओं में यह 28 S. 18 S तथा 5S के रूप में तथा प्रोकेरियोटिक कोशिकाओं में 23 S तथा 16 S के रूप में होता है । राइबोसोमल RNA अत्यधिक वलित अवस्था में होता है, जो अकुण्डलित दशा में लगभग 700 p लम्बा होता है । सम्भवत: प्रोटीन अणु इसी rRNA तन्तु से जुड़े रहते हैं । राइबोसोमल आर. एन. ए. में मिथाइल मूलकों की एक विशिष्ट संख्या होती है ।

(2) **राइबोसोमल प्रोटीन्स**(Ribosomal proteins) : राइबोसोम के प्रोटीन अथवा जटिल प्रकार के होते हैं । इनमें अब तक 50 भिन्न प्रकार के प्रोटीनों को पृथक किया जा चुका है । ये प्रोटीन बहुत जटिल होते हैं तथा कोर प्रोटीन्स (Core -proteins) कहलाते हैं । प्रोकेरियोटिक राइबोसोम्स से लगभग 5 S प्रोटीन्स विगलित किये जा चुके हैं, जिनमें से करीब 21 प्रोटीन्स बड़ी 50S उपइकाई में मिलते हैं । प्रोकेरियोट राइबोसोम की तुलना में यूकैरियोटिक राइबोसोम्स में प्रोटीन अधिक मात्रा में उपस्थित होता है ।

राइबोसोमी एन्जाइम प्रोटीन्स का आणविक भार 7000 - 32, 000 डाल्टन होता है तथा क्षारीय अमीनो अम्लों अधिक मात्रा में होते हैं । इन्हें राइबोसोम से विभक्त किया जा सकता है, इसलिये विभक्त प्रोटीन्स (Split proteins-SP) कहलाते हैं । दो प्रकार के विभक्त प्रोटीन्स पाये जाते हैं, SP- 50 तथा SP - 30 । यदि इन्हें ओर अधिक विभाजित किया जाये तो ये अम्लीय व क्षारीय प्रोटीन्स में विभक्त हो जाते हैं ।

(3) **राइबोसोमी एन्जाइम प्रोटीन** (Ribosomes Enzymatic proteins) राइबोसोम मैं पाये जाने वाले बहुत से प्रोटीन्स एन्जाइम के रूप में प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया को उत्प्रेरित करते हैं । उदाहरण, प्रारम्भिक प्रोटीन्स F_1 $F_{1,}$ F_3 तथा प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया को आरम्भ करते हैं । इसी प्रकार ट्राँसफर प्रोटीन्स जैसे - G- factor व - TS- factor । इसका मुख्य कार्य राइबोसोम के एक स्थल से दूसरे स्थल पर स्थान्तरित करता है । दूसरे एन्जाइम पेपिडाइल ट्रांसफरेज, पेप्टाइड श्रृंखलाओं को अमीनो एसाइल t-RNA तक स्थानान्तरित करने का कार्य करते हैं । इनके अलावा कुछ और एन्जाइम टर्मिनेशन कारक R_1 तथा R_2 प्रोटीन संश्लेषण को समाप्त करने व पूर्ण पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला को मुक्त करने का कार्य करते हैं । इन कारकों के अलावा राइबोसोम्स में पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला को लम्बा करने हेतु इलोन्गेशन कारक EFG तथा EFT हल पाये जाते हैं ।

राइबोसोम का जीवात्जनन (Biogenesis of Ribosomes)

जीवाणु अथवा प्रोकेरियोटिक कोशिकाओं में केन्द्रिक नहीं होता, अत : राइबोसोम का जीवात् जनन कोशिकाद्रव्य में होता है ।

यूकेरियोटिक कोशिकाओं में राइबोसोम के जीवात जनन की क्रिया जटिल प्रकार की होती है और यह प्रक्रिया केन्द्रिक में पूर्ण होती है । केन्द्रिक से इनका स्थानान्तरण कोशिकाद्रव्य में हो जाता है । अधिकतर राइबोसोमी प्रोटीन्स का संश्लेषण कोशिका द्रव्य में ही होता है ।

2.5.3 राइबोसोम्स के कार्य

राइबोसोम कोशिका के वे स्थल हैं, जहाँ प्रोटीन संश्लेषण जैसी महत्वपूर्ण क्रिया सम्पन्न होती है, अत : इन्हें कोशिका का 'प्रोटीन कारखाना ' कहा जाता है, जिनका मुख्य कार्य विभिन्न अमीनो अम्लों को एक निश्चित क्रम में विन्यासित करके विशिष्ट पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला का निर्माण करना।

2.6 परॉक्सीसोम्स (Peroxisomes)

विभिन्न जीवों, जैसे प्रोटोजोआ, कवक पौधों तथा कशेरुकी प्राणियों की यकृत एवं वृक्क कोशिकाओं में गोलाकार, झिल्ली आबद्ध संरचनायें पायी जाती हैं । इनका व्यास सामान्यत : 0.2-1.5 होता है । ये संरचनायें अन्त : प्रद्रव्यी जालिका, माइटोकॉन्ड्रिया तथा क्लोरोप्लास्ट के निकट पायी जाती हैं, सूक्ष्म पिण्ड (microbodis) कहलाती है । इनका केन्द्रीय भाग कणिकामय अथवा क्रिस्टलीय होता है तथा इसमें कुछ एन्जाइम भी पाये जाते हैं । परऑक्सीसोम्स को सर्वप्रथम टॉलवर्ट व उसके सहयोगियों (Tolbert & Coworkers, 1968) ने क्लोरोप्लास्ट से विलगित किया ।

परऑक्सीसोम्स जन्तु कोशिकाओं तथा सभी प्रकाश संश्लेषण करने वाली कोशिकाओं तथा कोलिओप्टाइल, हाइपोकोटाइल्स, पके हुए फलों की कोशिकाओं, भूरे शैवालों, ब्रायोफाइटा तथा फर्न आदि में पाये जाते हैं । इसमें विभिन्न एन्जाइम जैसे परॉक्सीडेज, केटेलेज, डी - अमीनो अम्ल ऑक्सीडेज तथा यूरेट ऑक्सीडेज आदि में प्रचुरता से पाये जाते हैं । परॉक्सीसोम विभिन्न पदार्थों के ऑक्सीकरण में भाग लेते हैं । प्रथम चरण में परॉक्सीसोम में उपस्थित ऑक्सीडेज एन्जाइम, अमीनो अम्ल, यूरिक अस्त, लेक्टिक अम्ल तथा दूसरे अन्य पदार्थों का आणविक ऑक्सीजन का उपयोग करके ऑक्सीकरण कर देते हैं, जिसके फलस्वरूप परॉक्साइड (H_2O_2) प्राप्त होती है । द्वितीय चरण में हाइड्रोजन परॉक्साइड (H_2O_2) केटेलेज एन्जाइम के उत्प्रेरण से अन्य पदार्थों के समूह को ऑक्सीकृत करती है तथा जल व ऑक्सीजन में टूट जाती है । पादप कोशिकाओं में परॉक्सीसोम प्रकाशीय श्वसन में भाग लेते हैं ।

2.6.1 परॉक्सीसोम की संरचना (Structure of Peroxisomes)

ये अण्डाकार कणिकायें होती है । इनके चारों ओर एक इकहरी लाइपोप्रोटीन से बनी झिल्ली होती है । इनके केन्द्र में कणिकामय पदार्थ होता है, जो एक सघन संरचना बनाता है । चूहे की यकृत कोशिकाओं में 70- 100 की संख्या में परऑक्सीसोम्स पाये जाते हैं । इनका औसत व्यास लगभग 0.6 0.7 होता है ।

परॉक्सीसोम में मुख्य रूप से दो मुख्य जैव रासायनिक क्रियायें हैं :

(a) **हाइड्रोजन परॉक्साइड उपापचय** (H_2 O_2 metabolism). परॉक्सीसोम्स में केटेलेज तथा कुछ अन्य एन्जाइम पाये जाते हैं, जो हाइड्रोजन परॉक्सीसोम्स प्रतिपादित करते हैं । इs अभिक्रिया में इन एन्जाइम के लिये ग्लाइकोलेट, L-लेक्टेट, तथा L-हाइड्रॉक्सी अम्ल, प्राथमिक इलेक्ट्रॉन दाता होते हैं । इस प्रक्रिया में ऑक्सीजन का एक अणु प्राप्त करके, हाइड्रोजन परॉक्साइड का एक अणु बनता है । तत्पश्चात् के केलेटेज एन्जाइम की क्रियाशीलता से परॉक्सीडेशन हो जाता है, जैसे इथेनॉल का एसीटेल्डिहाइड में, फर्मिक अम्ल क कार्बनडाइऑक्साइड तथा जल में या फिर परॉक्साइड और अणु का ऑक्सीजन तथा जल में । प्रत्येक पद पर ऑक्सीजन ग्रहण की जाती है।

(b) **ग्लाइकोलेट चक्र** (Glycolate cycle). पादप पत्तियों की कोशिकाओं में पाये जाने वाले परॉक्सीसोम्स में केटेलेज एन्जाइम के अतिरिक्त ग्लाइकोलेट चक्र के एन्जाइम, जैसे ग्लाइकोलेट ऑक्सीडेज, ग्लूटामेट ग्लाइऑक्सेलेट सीरीन ग्लाइआक्सीलेट, एस्परेट α-कीटोग्लूटरेट अमीनोट्रांसफरेजेज आदि भी पाये जरते हैं । इसके अलावा कुछ को एन्जाइम, जैसे FAD, NAD तथा NADP भी पाये जाते हैं । ग्लाइऑक्सलेट चक्र के परिणामस्वरूप ग्लाइसीन तथा सीरीन अमीनो अम्ल का निर्माण होता है । ग्लाइकोलेट चक्र में ऑक्सीजन ग्रहण करके कार्बन -डाई - ऑक्साइड निकाली जाती है । यह चक्र प्रकाशीय श्वसन(photorespiration) भी कहलाता है, क्योंकि इस क्रिया के लिये उद्दीपन प्रकाश से ही प्राप्त होता है ।

परॉक्सीसोम की उत्पत्ति (Origin of peroxisomes) : इसकी उत्पत्ति अन्त : प्रद्रव्यी जालिका की झिल्ली के जगह - जगह पर फूल जाने से फूले हुए भागों में कणिकामय पदा र्थ त था एन्जाइम के इकट्ठा होने से होती है । ये कोशिकांग उत्पन्न होने के 4 - 5 दिन बाद स्वत : योजिता (autolysis) द्वारा नष्ट हो जाते हैं । इसके कुछ एन्जाइमों का संश्लेषण राइबोसोम्स में होता है ।

2.6.3 परॉक्सीसोम के कार्य:

परॉक्सीसोम अन्य कोशिकाओं अथवा सम्पूर्ण कोशिका को हाइड्रोजन परॉक्साइड के जहरीले प्रभाव से बचाये रखते हैं । इसके अलावा ग्लाइसीन व सीरीन के संश्लेषण में भाग लेते हैं ।

2.7 गॉल्जी सम्मिश्र (Golgi complex)

जीवों की कोशिका में अन्त : प्रद्रव्यी जालिका (Endoplasmic Reticulum) से सम्बद्ध थैलीनुमा संरचनायें, जो समूहों में पायी जाती हैं तथा झिल्लियों द्वारा निर्मित होती हैं, जिनमें द्रव भरा रहता है, गॉल्जीकाय अथवा गॉल्जीमिश्र कहलाता है ।

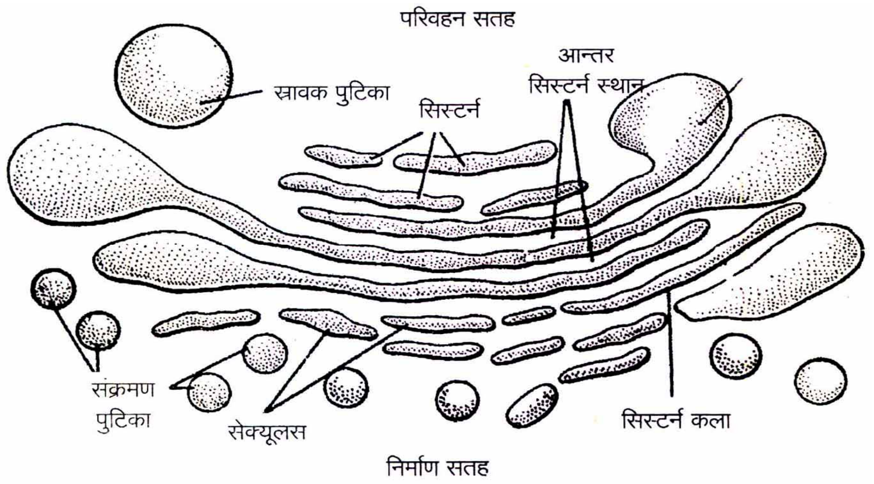

इन कोशिकांगों को सर्वप्रथम एल. सेन्ट जॉर्ज (L. St. George) ने खोजा, किन्तु कैमिलो गॉल्जी (Golgi, 1885) ने इन्हें तंत्रिका कोशिकाओं में देखा तथा उनके नाम पर ही इन्हें गॉल्जी सम्मिश्र नाम दिया ।

सभी यूकेरियोटिक कोशिकाओं में गॉल्जी सम्मिश्र पाया जाता है । कुछ पादप समूहों की कोशिकाओं में, जैसे कवकों, ब्रायोफाइट्स, तथा संवहनी पादपों की चालनी नलिकाओं में पादपों में इन संरचनाओं को डिक्टिओसोम (dictyosome) कहते हैं । ये चपटी थैलीनुमा संरचनाओं से बने जाल की तरह दिखाई देती हैं । कोशिका में इसकी उपस्थिति का सीधा सम्बन्ध केन्द्रक उपस्थिति से होता है । सामान्यत : सक्रिय कोशिका में ये कोशिकांग अत्यधिक विकसित होते हैं, किन्तु परिपक्व कोशिकाओं अथवा जिन कोशिकाओं में पोषण की कमी होती है, उनमें ये अपहासित हो जाती है । इनके पुनर्निर्माण के लिये प्रोटीन अन्त : प्रद्रव्यी जालिका (ER) द्वारा प्राप्त होता है । अधिक सक्रिय कोशिकाओं में, जैसे स्रावित कोशिकाओं एवं तंत्रिका कोशिकाओं में गॉल्जी सम्मिश्र पूर्णरूप से विकसित तथा जाल समान दिखाई देता है, जबकि पोषण रहित असक्रिय कोशिकाओं में ये कम विकसित होती है । पादप कोशिकाओं में इनका परिमाप 1- 3mu लम्बा तथा 0.5 ऊँचा होता है (चित्र 2.9)

2.7.1 अतिसूक्ष्म संरचना (Ultrastructure)

इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी में एक पूर्ण विकसित गॉल्जी सम्मिश्र तश्तरीनुमा संरचना होती है, जिसमें निम्न
भाग होते हैं :

(1) केन्द्रीय चपटे कोष सिस्टर्नी (Flattened sacs or cisternae)

(2) परिधीय नलिकाओं त था पुटिकाओं के गुच्छे (Cluster of tubules & vesicles)

(3) अन्तस्थ स्रावक पुटिकायें (Secretary vesicles)

(4) बड़ी पुटिकाएँ अथवा गॉल्जीयन रिक्तिकाएँ (large vesicles or vacuoles)

(1) **चपटे कोष अथवा सिस्टर्नी**(Flattened sacs or cisternae) : ये थैलीनुमा, चपटी, लम्बी नलिकाकार द्रव से भरी हुई संरचनाएँ होती हैं । प्रत्येक गॉल्जीकाय में इनकी संख्या 4 -7

होती है, किन्तु उच्च श्रेणी के जीवों में इनकी संख्या 30 तक हो सकती है । प्रत्येक सिस्टर्नी दोहरी झिल्ली आबद्ध 520 A^0चौड़े अवकाश युक्त संरचना होती है । प्रत्येक दो सिस्टर्नी के मध्य 200 - 300 A^0 चौड़े अवकाश युक्त संरचना होती है । सिस्टर्नी एक -दूसरे के ऊपर व्यवस्थित होकर सिस्टर्नी स्तम्भ बनाते हैं । सिस्टर्नी केन्द्रक आवरण या अन्त: प्रद्रव्यी जालिका के पास समानान्तर (parallel) या संकेन्द्रित (concentric) रूप में व्यवस्थित रहती है । प्रत्येक सिस्टर्नी स्तम्भ की अग्र अथवा उत्तल (convex) सतह की ओर छोटी, छिद्रित (fenestratad) सिस्टर्नी गॉल्जीकाय का निर्माण मुख ((forming face) बनाती है । अन्त : प्रद्रव्यी जालिका (ER) से अलग हुई ट्रांसिजन पुटिकाएँ एव कोश यहाँ एकत्रित होकर नई सिस्टर्नी बनाती है । सिस्टर्नी सतम्भ की पश्च अवतल सतह गॉल्जीकाय का परिपक्व मुख बनाती है । जिस पर स्रावक (secretory vesicles) या बड़ी रिक्तिकाएँ पायी जाती है । गाल्जी का स्राव सिस्टर्नी में एकत्रित हो जाता है । यह द्रव हायलोप्लाज्म कहलाता है । इस द्रव का सांद्रण बढ़ जाता है तथा स्रावक पुटिकाओं का निर्माण होता रहता है । अंत में ये पुटिकाएँ लाइसोसोम्स में रूपान्तरित हो जाती है । इस प्रकार गॉल्जीकाय एक ध्रुवीय संरचना है, जिसका एक निर्माण मुख तथा परिपक्व मुख होता है ।

(2) **नलिकाओं व पुटिकाओं के गुच्छे** (Clusters of tubules & vesicles). ये छोटी, बूँदों के समान संरचनाएँ होती हैं, जिनका व्यास 600 A^0 तक होता है । ये गॉल्जीकाय की उत्तर निर्माण सतह से सम्बद्ध होती है तथा चिकनी अन्त : प्रद्रव्यी जालिका (SER) तथा गॉल्जी सिस्टर्नी के बीच पायी जाती है । इनका निर्माण सिस्टर्नी नलिकाओं में मुकुलन अथवा उनके सिरों पर संकुचन उत्पन्न होने से भी होता है ।

(3) **चिकनी स्रावक पुटिकाएँ** (Smooth Secretory Vesicles)

(1) **चिकनी पुटिकाएँ** (Smooth Vesicles) : इनकी सतह चिकनी होती है । ये चपटी 20 - 80 व्यास वाली पुटिकाएँ हैं । इन्हें स्रावी पुटिकाएँ कहते हैं । जिनमें स्रावी पदार्थ पाये जाते हैं ।

(2) **खुरदरी पुटिकाएँ** (Rough Vesicles) : ये गोलाकार अतिवृद्धियाँ होती हैं, जिनका व्यास 50 होता है । इनकी सतह खुरदरी होती है । ये सिस्टर्नी के सिरों पर पायी जाती है ।

(3) **गॉल्जीयन रिक्तिकाएँ** (Golgian Vacuoles) : बड़े थैले जैसी अनियमित ग्रंथिल संरचनाएँ होती हैं, जो गॉल्जीकाय के परिपक्व मुख की तरफ पायी जाती हैं । इनका निर्माण सिस्टर्नी के विस्तार या स्रावी पुटिकाओं के संयुग्मन से होता है । गॉल्जी सम्मिश्र के प्रत्येक सिस्टर्नी सतम्भ में ध्रुवीयता पाई जाती है । इसका निर्माण मुख केन्द्रक कला या अन्त :प्रद्रव्यी जालिका के पास तथा पश्च परिपक्व मुख प्लाज्मा कला के पास होती है । कोशिका में प्लाज्मा कला तथा गॉल्जी के बीच पाये जाने वाले स्थल 'ग्रेल ' में स्रावक पुटिकाएँ मिलती हैं, जिनमें अन्त :प्रद्रव्यी जालिका के सांद्रित स्राव रहते हैं, जो कि जाइमोजन कणिकाओं में परिवर्तित होती रहती हैं ।

2.7.2 रासायनिक संघटन (Chemical composition)

गॉल्जी सम्मिश्र में निम्न रासायनिक पदार्थ पाये जाते हैं

(1) **फॉस्फोलिपिड** (Phospholipid). गॉल्जी कलाएँ मुख्य रूप से लाइपोप्रोटीन की बनी होती हैं । गॉल्जी कलाओं में मुख्य फॉस्फोलिपिड घटक सिफेलिन तथा लेसिथिन (cephalin & lecithin) होते हैं |

(2) **एन्जाइम** (Eznyme) तथा प्रोटीन (protein) गॉल्जीकाय में लिपिड तथा प्रोटीन संचित पदार्थ के रूप में पाये जाते हैं । इसके अतिरिक्त विभिन्न एन्जाइम, जैसे एटीपेज (AT Pase), एडीपेज (AD Pase), सीटीपेज (CT pase), थायमीन पायरोफोस्फेट (thiamine-pyrophosphate), एन. एच. डी. एच. तथा एन. ए. डी पी. एच साइटोक्रम C -रिडक्टेज (NADPH -cytochrome) यू .डी. पी. एन. एसीटाइल ग्लोकोसामीन ट्रान्सफरेज (UDP - N acetyl- glucosamine transferase), - गैलेक्टोसाइल ट्राँसफरेज (galactosyl transferase) ग्लुकोज - 6 - फॉस्फ्टेज (glucose -6 phosphatase) आदि पाये जाते हैं । इसमें मुख्य रूप से पाया जाने वाला प्रोटीन ग्लाइकोसिल ट्रान्सफरेज (glysosyl transferase) होता है, जो ओलिगोसैक्हेराइड्स (oligosaccharides) को प्रोटीन में बदलता है, जिससे ग्लाइकोप्रोटीन का निर्माण होता है ।

2.7.3 गॉल्जी सम्मिश्रण के कार्य (Function of Golgi complex)

गॉल्जी सम्मिश्र का प्रमुख कार्य विभिन्न पदार्थो का स्रवण (secretion) तथा उनके परिवहन (transportation) में हिस्सा लेना है । इसके अतिरिक्त यह कोशिकांग विभिन्न महत्वपूर्ण क्रियाएँ सम्पन्न करता है । यह लाइसोसोम्स तथा अन्य कोशिकीय अन्तर्ववस्तुएँ जिनमें एन्जाइम पाये जाते हैं उनके निर्माण में भी भाग लेता है । इसके अलावा पैंक्रियाज, पिट्यूटरी तथा मेमेरी ग्रंथियों की कोशिकाओं में स्रावी कण बनाने में भाग लेता है ।

(1) **स्रावी पुटिकाओं का निर्माण करना** (Formation of secretory vesicles) : गॉल्जी सम्मिश्र का मुख्य कार्य स्रवण है । विभिन्न प्रकार की कोशिकाओं में कणिकामय अन्त : प्रद्रव्यी जालिका में संश्लेषित पदार्थो का स्थानान्तरण गॉल्जीकाय में हो जाता है । वहाँ से ये प्लाज्मा झिल्ली द्वारा पिनोसाइटोसिस (pinocytosis) की क्रिया द्वारा कोशिका से बाहर स्रावित कर दिये जाते हैं ।

(2) **एन्जाइम बनाने में मदद करना** (Help in enzyme formation) बॉबेन (Bowen) गॉल्जी सम्मिश्र एन्जाइम संश्लेषण के केन्द्र होते हैं । पैलेड तथा उसके साथियों (Palade & his coworkers 1967) ने पैनिक्रयाज की कोशिकाओं (pancreatic cells) में गॉल्जी सम्मिश्र से स्रावी पुटिकाओं के निर्माण का अध्ययन किया । उन्होंने बताया कि (amylase) एमाइलेज पाचन एन्जाइम का संश्लेषण कणिकामय अन्त : प्रद्रव्यी जालिका की बाहरी सतह पर उपस्थित राइबोसोम्स में होता है । यह एन्जाइम

ER की झिल्ली से गुजर कर उसकी गुहा में चला जाता है तथा वहां मुख पर पहुँच जाती हैं । गॉल्जी सिस्टर्नी में प्रोटीन का सान्द्रण होता है त था यह प्रोटीन झिल्ली द्‌वारा घिर जाता है । ये संरचना जाइमोजन कण (zymogen granules) कहलाती है । ये स्रावी पुटिकाएँ होती हैं, जो कोशिका शीर्ष पर पहुँच जाती हैं । वहाँ प्लाज्मा कला द्‌वारा अपना स्राव पैंक्रियाज नलिकाओं (pancreatic duels) में छोड़ देती है । वहाँ से यह पाचन एन्जाइम आँतों में चला जाता है ।

(3) **हॉरमोन बनाना** (Formation of hormones)अन्त : स्रावी ग्रंथियों (endocrine glands) की कोशिकाओं में गॉल्जीकाय हॉरमोन स्रवण में मदद करती है । क्राऊड्राई (Crowdry) ने बताया थायरॉइड ग्रंथि की कोशिकाओं में गॉल्जीकाय में किसी भी प्रकार की क्षति के परिणाम स्वरूप थायरॉइड हॉरमोन के स्रवण में कमी आती है ।

(4) **प्रोटीन का संचय** (Storage of protein) गॉल्जी सम्मिश्र के मुख्य घटकों, पुटिकाओं (vesicles) तथा रिक्तिकाओं (vacuoles) में लाइपोप्रोटीन पदार्थ संचित रहते हैं, वे स्रवण के कार्य में मदद करते हैं ।

(5) **शुक्राणु में ऐक्रोसोम का निर्माण करना** (Formation of Acrosome in sperms) गॉल्जीकाय शुक्राणु परिपक्वन के समय ऐक्रोसोम निर्माण में मदद करती है । इसके लिए गॉल्जीकाय की सिस्टर्नी पटलिकाएँ (Lamellae) समानान्तर रूप से व्यवस्थित होकर कप की आकृति (cup shaped) बनाती है । इन पटलिकाओं की परिधि से छोटी - छोटी पुटिकाएँ अथवा रिक्तिकाएँ कटती रहती हैं । धीरे - धीरे सिस्टर्नी पटलिकाओं के स्थान पर अधिक संख्या में पुटिकाएँ एवं नलिकाएँ बन जाती हैं, जिनमें कुछ छोटे - छोट कण दिखायी देते हैं । ये कण गॉल्जी सम्मिश्र के ही स्रवण पदार्थ होते हैं । वे पुटिकाएँ, जिनमें ये कण पाये जाते हैं, आपस में मिलकर एक एक्रोसोम बनाती हैं, जो कि एक बड़ी पुटिका में उपस्थित रहता है । बाद में यह शुक्राणु केन्द्रक की सतह पर जुड़ जाता है । एक्रोसोम पुटिकाएँ केन्द्रक झिल्ली से जुड़ जाती हैं तथा टोपी पदार्थ ऐक्रोसोम बनाती है ।

(6) **कोशिका भित्ति निर्माण** (Formation ऑफ plant cell wall) : पादप कोशिकाओं में गॉल्जीकाय विभिन्न प्रकार के पॉलीसैकेराइड्स (polysaccharides), जैसे पैक्टिन, हेमीसेल्यूलॉज तथा -सेल्यूलोज के माइक्रोफाइब्रिलस संश्लेषित करती है । ये स्रवण हेतु पुटिकाओं में संचित हो जाते हैं । समसूत्री विभाजन के दौरान गॉल्जीकाय स्पिन्डल के केन्द्र में कोशिका पट्टिका (cell plate) का निर्माण करती है । इस कोशिका पट्टिका पर गॉल्जीकाय द्‌वारा स्रावित विभिन्न पदार्थ, जैसे पैक्टिन, हेमी सेल्यूलोज तथा -सेल्यूलोज के माइक्रोफाइब्रिल आकर जमते हैं तथा कोशिका भित्ति का निर्माण करते हैं ।

(7) **विभिन्न यौगिकों का अवशोषण** (Absorption of different compounds) हर्च एव उसके साथियों (Hirsch and coworkers) ने बताया कि जब जंतुओं को लौह, शर्करा युक्त पोषण दिया जाता है, तो लौह तत्व गॉल्जीकाय द्‌वारा अवशोषित कर लिया जाता है । इसी प्रकार गॉल्जीकाय अन्य तत्वों, जैसे कॉपर तथा गोल्ड के यौगिकों को

अवशोषित कर लेती है, वालटील (Val Teel) केड्रोस्की (Kedrowsky) ने बताया कि ओपेलाइना (oplina) की गॉल्जीकाय ऐल्यूमिनियम, बिस्मिथ तथा सिल्वर के यौगिकों को अवशोषित करती है । इसमें लिपिड्स भी अवशोषित हो जाते हैं । अवशोषित पदार्थों के सान्द्रण के लिए गॉल्जीकाय संघनन (condensation) का कार्य करती है, जिससे जल बाहर आ जाता है । फिर ये पदार्थ बूँदों या कणों के रूप में कोशिका सतह से निष्कासित कर दिये जाते हैं ।

बोधप्रश्न

1. बहु विकल्पी प्रश्न

1. क्लोरोप्लास्ट है:

(अ) पूर्णरूप से केन्द्रक पर निर्भर

(ब) पूर्णरूप से केन्द्रक से स्वतंत्र

(स) अर्द्ध स्वायत्त रचना

(द) स्वायत्त रचना

2. माइटोकॉन्ड्रिया में क्रेब्स चक्र के एन्जाइम पाये जाते हैं:

(अ) क्रिस्टी में

(ब) झिल्लियों में

(स) मैट्रिक्स में

(द) सभी में

3. राइबोसोम का कार्य.

(अ) प्रोटीन संश्लेषण

(ब) वसा संश्लेषण

(स) शर्करा संश्लेषण

(द) प्रोटीन संग्रह

II लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. माइटोकॉन्ड्रिया शब्द किसने दिया ?

....

....

....

2. हाइड्रोजन परॉक्साइड उपापचय किस कोशिकांग में होता है?

....

....

....

3. F^1 कणों का दूसरा नाम बताइये ।

……………………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………………

2.8 सारांश

यूकेरियोटिक कोशिकाओं में सुनिश्चित केन्द्रक तथा विभिन्न एक तथा द्विस्तरीय कोशिका अंगक होते हैं । इनमें से कुछ झिल्ली युक्त संरचनायें, जैसे केन्द्रक, माइटोकॉन्ड्रिया, हरितलवक, गॉल्जीकाय तथा झिल्ली विहिन संरचनायें, जैसे - राइबोसोम पाये जाते हैं ।

केन्द्रक कोशिका का सबसे महत्वपूर्ण अंगक है । इसमें आनुवांशिक पदार्थ डी. एन. ए. पाया जाता है । रासायनिक रूप से केन्द्रक मुख्य रूप से न्यूक्लिक अस्त तथा प्रोटीन से मिलकर बना होता है । इसके अलावा विभिन्न एन्जाइम तथा अकार्बनिक लवण भी पाये जाते हैं । यह जीवों के विभिन्न लक्षणों का निर्धारण करता है ।

माइटोकॉन्ड्रिया कोशिका के कणात्मक या तन्तु सद्दश्य अंगक है, जो कि कोशिका में खाद्य पदार्थों के रूप में संचित ऊर्जा को गतिज ऊर्जा में परिवर्तित कर देते हैं । यह केवल यूकेरियोटिक कोशिका में ही पाये जाते हैं तथा प्रोकेरियोटिक कोशिकाओं में अनुपस्थित रहते हैं ।

रासायनिक रूप से माइटोकॉन्ड्रिया में प्रोटीन 7% तथा लिपिड्स 25 - 30 % होते हैं । इसके अतिरिक्त श्वसन एन्जाइम भी माइटोकॉन्ड्रिया में पाये जाते हैं । माइटोकॉन्ड्रिया में विभिन्न प्रकार की महत्वपूर्ण क्रियाएँ, जैसे ऑक्सीकरण, डिहाइड्रोजिनेशन, ऑक्सीडेटीव फास्फोराइलेशन आदि सम्पन्न होती हैं ।

यूकेरियोटिक पादप कोशिका में मुख्य रूप से केन्द्रक के पश्चात् पाये जाने वाला अंगक क्लोरोप्लास्ट है, जिसका मुख्य कार्य खाद्य पदार्थ का संश्लेषण तथा संचयन करना है । इनके मुख्य कार्य प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा प्रकाशीय ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित करने की क्षमता होती है । यही ऊर्जा सभी सजीवों द्वारा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उपयोग में ली जाती है । रासायनिक रूप से हरितलवक मुख्य रूप से प्रोटीन्स, लिपिड, क्लोरोफिल, कैराटिनाइड्स, आर. एन. ए. तथा डी. एन. ए. का बना होता है ।

राइबोसोम उपसूक्ष्मदर्शी कणिकायें हैं । इनको कोशिका की फैक्ट्री कहा जाता है, जिसका मुख्य कार्य प्रोटीन संश्लेषण है । राइबोसोम मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं, एक 70S, जो जीवाणु तथा प्रकैरियोट में पाये जाते हैं तथा दूसरे 80S जो कि समस्त यूकैरियोटिक कोशिकाओं में पाये जाते हैं । रासायनिक रूप से राइबोसोम आर. एन. ए. तथा प्रोटीन का बना होता है । लिपिड अनुपस्थित होते हैं ।

परॉक्सीसोम गोलाकार, झिल्ली आबद्ध संरचनाएँ पायी जाती हैं । इसमें मुख्य रूप से परॉक्सीडेज, कैटलेज, ऑक्सीडेज आदि एन्जाइम मुख्य रूप से पाये जाते हैं । ये विभिन्न पदार्थों के ऑक्सीकरण में भाग लेते हैं । पादप कोशिकाओं में परॉक्सीसोम प्रकाशीय श्वसन में भाग लेते हैं । इसके अलावा ग्लाइसीन व सीरीन के संश्लेषण में भाग लेते हैं । गॉल्जी सम्मिश्र पूर्ण रूप से विकसित तश्तरीनुमा संरचना होती है, जिसका मुख्य कार्य विभिन्न पदार्थों का स्रवण तथा उनके परिवहन में हिस्सा लेना है ।

2.9 शब्दावली

(1) **न्यूक्लिओप्लाज्मिक इण्डेक्स :** कोशिका में केन्द्रक आयतन व कोशिका आयतन का निश्चित अनुपात होता है ।

(2) **माइटोकॉन्ड्रिया** : कोशिका का पावरहाउस, जो संचित खाद्य ऊर्जा को गतिज ऊर्जा में परिवर्तित करता है ।

(3) **प्रकाश संश्लेषण** : क्लोरोफिल की सहायता से सूर्य ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा, जैसे कार्बोहाइड्रेट में परिवर्तित करना ।

(4) **राइबोसोम :** कोशिका में प्रोटीन संश्लेषण की इकाई अथवा प्रोटीन कारखाना ।

(5) **परॉक्सीसोम** : कोशिका का वह कोशिकांग, जो विभिन्न अमीनो अम्ल ग्लाइसीन तथा सीरीन का ग्लाइकोलेट चक्र के द्वारा निर्माण करता है ।

2.10 संदर्भ ग्रंथ

1. वीर बाला रस्तोगी : कोशिका जीव विज्ञान
2. त्रिवेदी, शर्मा, शर्मा: कोशिका विज्ञान, आनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन

2.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

I. बहु विकल्पी प्रश्न :

1. (स) 2. (स) 3. (अ)

II. लघुत्तरात्मक प्रश्न :

(1) बेन्डा ने (2) परॉक्सीसोम में

(3) एलिमेण्ट्री पार्टिकल्स

2.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. केन्द्रक की सूक्ष्म संरचना का सचित्र वर्णन करो ।
2. क्लोरोप्लास्ट की परासरंचना का वर्णन कीजिए ।
3. माइटोकॉन्ड्रिया की सूक्ष्म संरचना तथा कार्यों का वर्णन कीजिए ।
4. राइबोसोम्स के रासायनिक संगठन का वर्णन कीजिये ।

इकाई 3 : गुणसूत्र संगठन (Chromosome Organization)

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 गुणसूत्र

3.3 प्रोकेरियोट अथवा बैक्टीरियल गुणसूत्र

3.4 यूकेरियोट गुणसूत्र

3.4.1 गुणसूत्रों की आकारिकी (Morphology of Chromosome)

3.4.2 गुणसूत्रों की संरचना (Structure of Chromosome)

3.4.2.a पैलिकल व मैट्रिक्स

3.4.2.b प्राथमिक संकीर्णन या सेन्ट्रोमीयर

3.4.2.c द्वितीयक संकीर्णन तथा न्यूक्लिओलर आयोजक

3.4.2.d तृतीयक संकीर्णन

3.4.2.e सेटेलाइट

3.4.2.f टीलोमीयर

3.4.2.g क्रोमेटिड्स

3.4.2.h क्रोमोमीयर्स

3.5 क्रोमोसोम की आणविक संरचना (Molecular structure of Chromosome)

3.6 गुणसूत्रों के विशेष प्रकार

3.6.1 लिंग गुणसूत्र

3.6.2 लैम्पब्रश गुणसूत्र

3.6.3 पॉलीटीन गुणसूत्र

3.7 गुणसूत्र के कार्य

3.8 सारांश

3.9 शब्दावली

3.10 संदर्भ ग्रंथ

3.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य गुणसूत्र या क्रोमोसोम, जो किसी भी जीव में पाये जाने वाले लक्षणों का निर्धारण करते हैं, का अध्ययन करना है । इस इकाई को पढ़ने के बाद छात्र गुणसूत्र के बारे में निम्न बातें जान जायेंगे :

(i) प्रोकेरियोटिक गुणसूत्रों की संरचना का अध्ययन करना ।

(ii) यूकेरियोटिक गुणसूत्रों की संरचना का अध्ययन करना ।

(iii) यूकेरियोटिक गुणसूत्रों के विभिन्न भाग, जैसे सेन्ट्रोमीयर, टिलोमीयर, आदि की संरचना तथा कार्य का अध्ययन करना ।

(iv) विभिन्न कोशिकाओं में पाये जाने वाले विशिष्ट गुणसूत्र, जैसे लिंग गुणसूत्र, लैम्पब्रश गुणसूत्र तथा पॉलीटीन गुणसूत्रों का अध्ययन करना |

3.1 प्रस्तावना

प्रत्येक यूकेरियोटिक तथा प्रोकेरियोटिक कोशिका में डी. एन. ए. मुख्य आनुवांशिक पदार्थ होता है । यह स्वतंत्ररूप से नहीं पाये जाते, अपितु प्रोटीन से मिलकर जटिल संरचना बनाते हैं, जिसे क्रोमेटिन कहते हैं । प्रोकेरियोटिक कोशिका में पाये जाने वाला प्रोटीन मुख्यत : अम्लीय प्रकार का तथा यूकेरियोटिक कोशिका में पाये जाने वाला प्रोटीन क्षारीय प्रकार का होता है । प्रोकेरियोटिक कोशिका में ये गुणसूत्र वलित अवस्था में नम अवस्था में कोशिका द्रव्य में पड़े रहते हैं । इसके विपरीत यूकेरियोटिक कोशिका में यही गुणसूत्र एक द्विस्तरीय झिल्ली से आबद्ध केन्द्रक में पाये जाते हैं । प्रत्येक जीव में गुणसूत्रों की एक निश्चित संरचना, संख्या एवं संगठन होता है । ये भौतिक रचनाएँ हैं, जिनमें विभिन्न लक्षणों को निर्धारित करने वाले जीन रेखीय (linear) क्रम में लगे रहते हैं ।

इसके अलावा वनस्पति तथा प्राणी जगत के विभिन्न वर्गों में कुछ विशिष्ट प्रकार के गुणसूत्र भी पाये जाते हैं, जैसे कि लैम्पब्रश गुणसूत्र, जो मुख्यत : पीतक युक्त अण्ड वाले पृष्ठवंशियों (मछली, मेंढक, रेप्टाइल), पॉलीटीन गुणसूत्र (मुख्यत : डाइप्टेरा गण के कीटों के लारवा लारवे की लार ग्रंथियों, माल्पीजियन नलिका तथा आहार नाल की एपीथियल स्तर) तथा लिंग गुणसूत्रों, जो कि मुख्यत : नर (विभिन्न कीटों, मानव के शुक्राणु) में पाये जाते हैं तथा मुख्य कार्य लिंग निर्धारण (नर या मादा) से जुड़ा होता है ।

3.2 गुणसूत्र या क्रोमोसोम(Chromosomes)

इण्टरफेज केन्द्रक का क्रोमेटिन जाल कोशिका विभाजन के समय संघनित होकर धागों या छड़ों के समान रचनाओं में पृथक् हो जाता है । डब्ल्यु. वाल्डवेयर (W.Waldeyer 1888) ने इनको गुणसूत्र या क्रोमोसोम (Gr.Chrom-colour= रंग (soma : body- काय) का नाम दिया था, क्योंकि अभिरंजन पदार्थों से इनकी अत्यधिक बन्धुता होती है । इसके पश्चात् Heitz (1935), Kawada (1839) Geitler (1940) तथा (1948) के गुणसूत्र की आकारिकी का वर्णन किया । किन्तु आनुवंशिकी में इनके महत्व का ज्ञान होने के पश्चात् से इनके अध्ययन को अत्यधिक महत्ता प्रदान की गई है । सामान्य रूप से गुणसूत्रों की निम्मलिखित परिभाषा हो सकती है

गुणसूत्र निश्चित संख्या में उपस्थित, वे इकाइयाँ हैं जो नियमित रूप से उत्तरोत्तर कोशिका - विभाजनों द्वारा गुणन करते हैं तथा अपने व्यक्तित्व, आकारिकी एवम् कार्यिकी को बनाये रखते हैं । सामान्यत : जीवों की कायिक या वर्धी कोशिकाओं (somatic cells) में गुणसूत्रों की संख्या द्विगुणित (diploid $=2_n$) तथा जनन कोशिकाओं में अगुणित (haploid-n) होती है । किसी भी

जीव में गुणसूत्रों की आधारीय गुणित संख्या, जिसमें जीन का एक पूर्ण समुच्चय होता है, जीनोम (genome)कहलाती है ।

गुणसूत्र जीन्स के वाहक हैं तथा आनुवंशिकी में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं । जीवों के प्रत्येक लक्षण के वर्धन पर इनका व्यापक प्रभाव होता है । अत : इनको आनुवंशिकी वाहक (hereditary vehicles)भी कहा जाता है । कोशिका विभाजन के समय गुणसूत्र अत्यधिक संगठित होते हैं और वे मोटे धागों या छड़ों के समान दिखाई देते हैं । कोशिका के शेष जीवन काल में ये केन्द्रक रस या न्यूक्लिओप्लाज्म में केन्द्रक जाल (nuclear reticulum) के रूप में परस्पर गुथे हुए रहते हैं

3.3 बैक्टीरियल गुणसूत्र (Bacterial Chromosomes)

जीवाणुओं के गुणसूत्रों को बैक्टीरियल गुणसूत्र या प्रोकेरियोटिक गुणसूत्र (prokaryotic chromosomes) कहते हैं । जीवाणु का प्रत्येक गुणसूत्र न्यूक्लियोइड (nucleoid) कहलाता है । यह एक बड़े व वृत्ताकार तथा दो वलयकों वाले DNA अणु का बना होता है । यह केन्द्रक वाले प्रदेश में स्वतंत्र रूप से कोशिकाद्रव्य में पड़ा रहता है । इसके चारों ओर प्रोटीन आच्छद नहीं होता । किन्तु कुछ मात्रा में RNA इससे सम्बद्ध होता है । E.coli 1 के वृत्ताकार गुणसूत्र की लम्बाई लगभग 1, 3601 (1.36) तथा चौड़ाई 20 A^0 होती है । इसमें 50 या इससे भी अधिक ऊपरिकुण्डली लूप (supercoiled) होती हैं । जीवाणु अथवा प्रोकेरियोट में क्रोमेटिन वलयाकार (circular)द्विरज्जुकी (double stranded) डी. एन. ए. का बना होता है एवं एक गुणसूत्र (chromosome) को निरूपित करता है । डी. एन .ए. की लम्बाई लगभग 1000 व मोटाई 3nm होती है । इनका अणुभार 20 खरब होता है । केन्द्रकाभ में लगभग 4000 जीनोम होते हैं तथा द्विगुणन या प्रतिकृतिकरण (replication) अर्धसंरक्षी (semi-conservative) विधि द्वारा होता है ।

एक बड़े व वृत्ताकार गुणसूत्र के अतिरिक्त प्रत्येक जीवाणु कोशिका में 1 - 20 छोटे व वृत्ताकार द्विक DNAअणु होते हैं, जिन्हें प्लाज्मिड (plasmids) कहते हैं । ये प्लाज्मिड अतिरिक्त गुणसूत्री खण्ड होते हैं (extrachromosomal DNA fragments), जिनका प्रतिकृतिकरण (replication) स्वतंत्र रूप से होता है । प्लाज्मिड पर उपस्थित जीन, जीवाणु की वंशागति के लिये आवश्यक नहीं होते । प्लाज्मिड डी. एन .ए. की लम्बाई लगभग 25 होती है तथा इसमें लगभग 50-100 जीन होते हैं । ये आकार में वाइरस DNA की भाँति होते हैं । इनके कार्य के बारे में निश्चित ज्ञान नहीं है । इनमें से कुछ पोषक कोशिका के गुणसूत्र से सम्बद्ध हो जाते हैं और एपिसोम्स (episomes) कहलाते हैं । कभी -कभी ये संयुग्मन के समय एक जीवाणु कोशिका से दूसरी जीवाणु कोशिका में स्थानान्तरित होकर नये लक्षण विकसित करते हैं ।

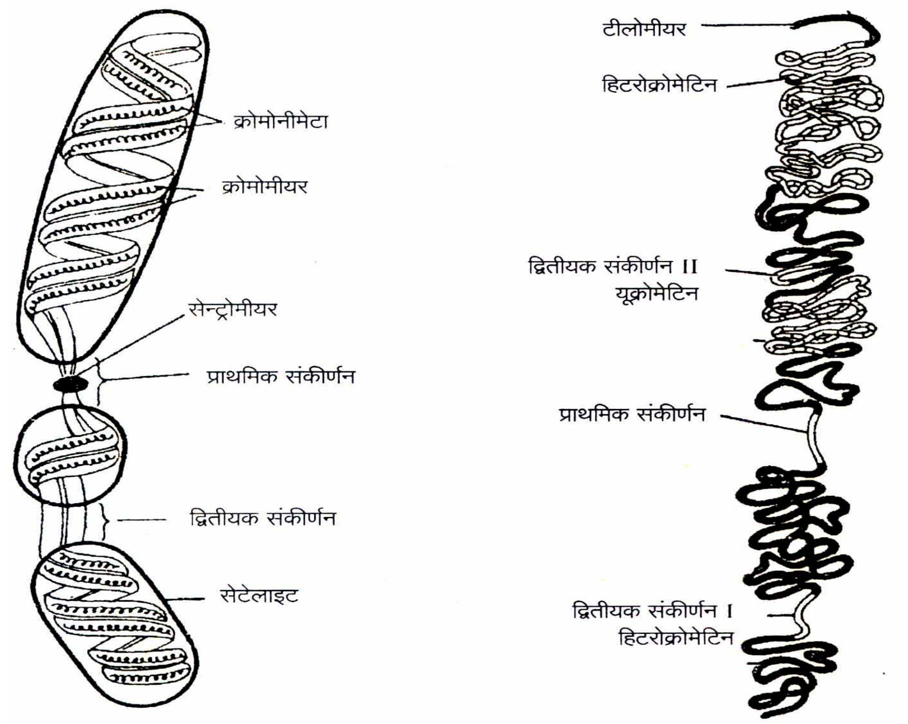

चित्र 3.1 : एनाफेज गुणसूत्र की संरचना

3.4 यूकेरियोट्स में गुणसूत्र (Chromosomes in Eucaryotes)

विश्रांतावस्था अर्थात् इन्टरफेज अवस्था में यूकेरियोट कोशिकाओं में जीनोम (genome) क्रोमेटिन (chromatin) के रूप में होता है । यह केन्द्रकीय मैट्रिक्स में महीन क्रोमेटिन धागों के जाल के रूप में फैला रहता है । कोशिका विभाजन के समय क्रोमोटिन विशिष्ट गुणसूत्रों (chromosomes) के रूप में संघनित हो जाता है ।

एक ही जाति के समस्त जीवों में गुणसूत्रों की संख्या निश्चित होती है, किन्तु विभिन्न जातियों के पेड -पौधो व जन्तुओं में इनकी संख्या अलग- अलग होती है । अत : गुणसूत्र संख्या वर्गीकरण विज्ञान में विभिन्न जातियों की स्थिति निर्धारण करने एव इनकी विकासीय वंशावली को निर्धारित करने में अति महत्त्वपूर्ण होती है । यूकेरियोटिक कोशिकाओं में गुणसूत्रों की सबसे कम संख्या Ascaris megalocephalus univalens में होती है । इनकी दैहिक कोशिकाओं में दो तथा युग्मकों में केवल एक गुणसूत्र होता है ।

प्रत्येक जीव के युग्मकों में गुणसूत्रों की संख्या इसकी दैहिक कोशिकाओं में गुणसूत्रों की संख्या से आधी होती है । इसीलिए दैहिक कोशिकाओं में गुणसूत्रों की संख्या को द्विगुणित (diploid अर्थात 2n तथा युग्मकों में इनकी संख्या को अगुणित (haploid अर्थात n) कहते हैं ।

कोशिका चक्र के अन्तर्गत गुणसूत्र के आकार एवम् आकृति में चक्रिय परिवर्तन (cyclic changes) होते हैं । जब केन्द्रक विश्रामावस्था में होता है, तो इसके गुणसूत्र लम्बे पतले तन्तुओं के रूप में होते हैं और ये क्रोमेटिन जाल (chromatin net) बनाते हैं । इस अवस्था में ये सामान्य सूक्ष्मदर्शी द्वारा दृष्टिगत नहीं होते । कोशिका विभाजन के समय क्रोमेटिन तन्तु

स्प्रिंग के समान कुण्डलित होने लगते हैं और सिकुड़कर छोटे व मोटे हो जाते हैं । इन रचनाओं को गुणसूत्र (chromosome)कहते हैं । प्रोफेज में गुणसूत्र स्पष्ट तन्तुओं के समान दिखाई देते हैं, किन्तु मेटाफेज तथा एनाफेज में ये छड़ के समान अथवा V.L या J के आकार के दिखाई देते हैं । टेलोफेज प्रावस्था में ये पुन : तन्तुमय होकर क्रोमेटिन जाल बना लेते हैं ।

3.4.1 गुणसूत्रों की आकारिकी (Morphology of Chromosome)

कोशिका विभाजन की विभिन्न अवस्थाओं में गुणसूत्रों के रूप एवं आकृति में अत्याधिक भिन्नता होती है । सामान्यत ' गुणसूत्र छड़नुमा (rod shaped) पतले (thin), सूत्राकार (thread shaped), प्रत्यास्थ (elastic) तथा संकुचित (condense) होते हैं । कोशिका की अन्तरावस्था में क्रोमोसोम जालनुमा क्रोमेटिन की तरह बिखरे रहते हैं । सामान्यत ' जन्तु की अपेक्षा पौधों में गुणसूत्र बड़े परिमाप (size) के होते हैं ।

3.4.2. a गुणसूत्र की संरचना (structure of Chromosome)

(a) **पैलिकल तथा मैट्रिक्स** (Pellicle & Matrix) प्रत्येक गुणसूत्र एक पतली, रंगहीन सीमांत कला (Limiting membrane) द्वारा घिरा रहता है, जिसे पैलिकल कहते हैं । इस पैलिकल के अन्दर एक जैलीनुमा अक्रिस्टलीय (amorphous) पदार्थ मैट्रिक्स पाया जाता है । इस मैट्रिक्स में क्रोमोनिमेटा (chromonemata)पाये जाते हैं ।

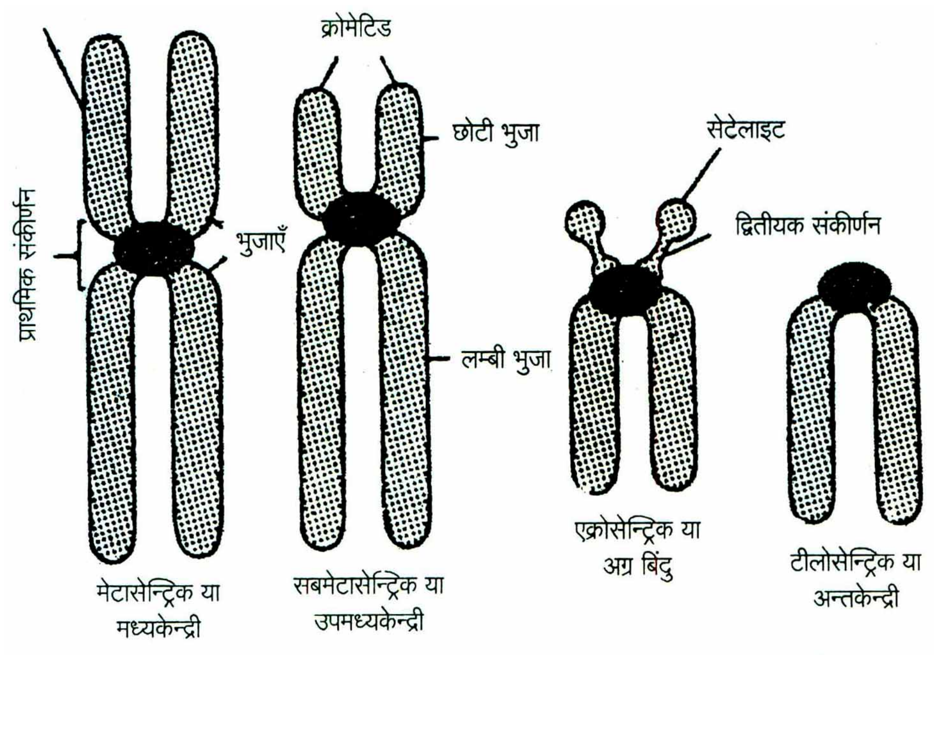

चित्र 3.2 : संटरोमीयर की स्थिति के आधार पर विभिन्न प्रकार के गुणसूत्र

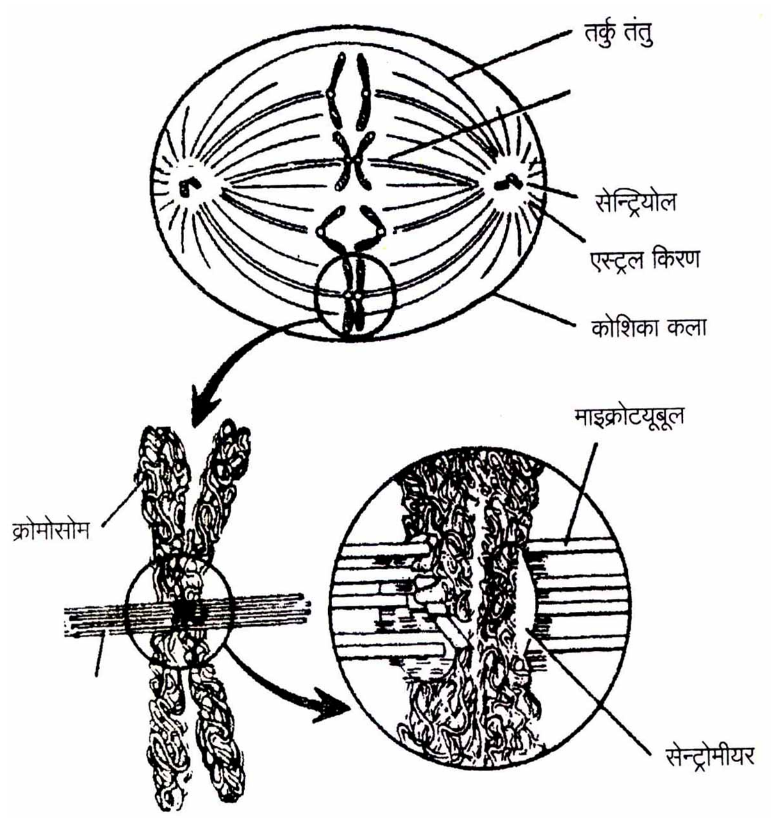

चित्र 3.3 : एक मेटोफेज गुणसूत्र व सेन्ट्रोमीयर का आवर्धित चित्र

3.4.2.b प्राथमिक संकीर्णन या सेन्ट्रोमीयर

(Primary constriction or Centromere)

गुणसूत्रों का हल्का अभिरंजित होने वाला हिस्सा, जो संकुचित दिखाई देता है, प्राथमिक संकुचन (Primary constriction) कहलाता है । इस पर सेन्ट्रोमीयर या काइनेटोफोर पाया जाता है । इसकी स्थिति नियत होती है तथा गुणसूत्र की विशिष्टता है । प्राथमिक संकुचन पर गुणसूत्र की दोनों भुजायें इसी पर आकर मिलती हैं । इसमें पुनरावृत्त डी. एन .ए. पाया जाता है । इसे सेन्ट्रोमीरिक हेटरोक्रोमेटिन (centromeric heterochromatin) कहते हैं । कोशिका विभाजन के दौरान मेटाफेज में गुणसूत्र तर्कु तंतुओं से इसी स्थान से जुड़े रहते हैं । तंतुओं पर गुणसूत्रों की गति के लिये सेन्ट्रोमीयर आवश्यक होता है ।

इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी में सेन्ट्रोमीयर प्राथमिक संकुचन पर चिपकी हुई प्रोटीन से बनी तश्तरीनुमा संरचना है । इसका व्यास लगभग 0.20 से 0.25 होता है । यह क्रोमोटिन रहित पदार्थ की बनी होती है । अनुप्रस्थ काट में यह तीन भागों की बनी होती है, (a) 3- 4 nm मोटी सघन, उत्तल ब्राहा परत जिस पर तुर्कु तन्तुओं की सूक्ष्म नलिकायें संलग्न रहती है । इसे भेदकर क्रोमेटिन सूत्रों से जुड़ी रहती है । (b) आंतरिक कम सघन परत जो 15 - 30nm मोटी होती है तथा क्रोमेटिन सूत्रों व ब्राहा सघन परत के मध्य में स्थित होता है । (c) सेन्ट्रोमीयर के उत्तल भाग के ऊपर

पाया जाने वाला तंतुमय पदार्थ (fibrillar materical) सघन कोरोना (corona) का निर्माण करता है ।

एक ही प्रकार के समस्त गुणसूत्रों में प्राथमिक संकीर्णन की स्थिति सदैव स्थिर रहती है । उसी के द्वारा गुणसूत्रों को पहचानने में सहायता मिलती है । सेन्ट्रोमीयर की स्थिति के आधार पर गुणसूत्र निम्न प्रकार के होते हैं

(i) **मध्यकेन्द्री या मेटासेन्ट्रिक** (Metacentric) इस प्रकार के गुणसूत्रों में सेन्ट्रोमीयर मध्य बिन्दु या उसके आसपास स्थित होता है ।

(ii) **उपमध्यकेन्द्री या सबमेटासेन्ट्रिक** (Submetacentric): इस प्रकार के गुणसूत्र में सेन्ट्रोमीयर मध्य बिन्दु से कुछ दूर स्थित होता है, जिससे इसकी दोनों भुजायें असमान लम्बाई की हो जाती है ।

(iii) **अग्र बिन्दु या एक्रोसेन्ट्रिक गुणसूत्र** (Acrocentric) ये भी छड़नुमा गुणसूत्र हैं, जिनमें सेन्ट्रोमीयर की स्थिति उपअग्रीय होती है । इस प्रकार के गुणसूत्रों की एक भुजा अत्यधिक लम्बी तथा दूसरी अति छोटी होती है ।

(iv) **अन्तकेन्द्री या टीलोसेन्ट्रिक** (Telocentric) : ये छड़नुमा गुणसूत्र हैं, जिनमें सेन्ट्रोमीयर सबसे आगे स्थित (अग्रस्थ) होता है, जिसके कारण गुणसूत्र में केवल एक भुजा होती है।

सेन्ट्रोमीयर या काइनेटोकोर गुणसूत्र का सर्वाधिक स्थायी भाग है । कोशिका विभाजन के समय गुणसूत्रों का तुर्कु पर विन्यास एवं चलन सेन्ट्रोमीयर पर ही आधारित होता है । कोशिका विभाजन के समय गुणसूत्र अपने सेन्ट्रोमीयर द्वारा ही तुर्कु -तन्तुओं से जुड़े रहते हैं ।

सेन्ट्रोमीयर की संख्या (Number of Centromeres) प्राय : केवल क्रोमेटिड में दो सेन्ट्रोमीयर होते है, किन्तु इनकी संख्या में विविधता भी होती है । सेन्ट्रोमीयर की संख्या के आधार पर गुणसूत्र निम्न प्रकार के होते हैं

1. **मोनोसेण्ट्रिक** (Monoentric) : इस प्रकार के गुणसूत्रों में केवल एक सेन्ट्रोमीयर होता है ।
2. **डाइसेण्ट्रिक** (Dicentric) इस प्रकार के गुणसूत्रों में दो सेन्ट्रोमीयर होते हैं ।
3. **पॉलीसेण्ट्रिक** (Polycentric) ये दो से अधिक सेन्ट्रोमीयर वाले गुणसूत्र हैं । ये एस्केरिस मेगेलोसेफेला (Ascaris megalocephala) में पाये जाते हैं ।
4. **असेण्ट्रिक** (Acentric). असेण्ट्रिक गुणसूत्रों में सेण्ट्रोमीयर्स अनुपस्थित होता है । गुणसूत्रों के खण्डित भाग इस अवस्था को प्रदर्शित करते हैं । अकेन्द्रिक गुणसूत्र अस्थायी होते हैं, जो प्राय : अन्य गुणसूत्रों के खण्डित सिरों से जुड़ जाते हैं ।
5. **विसरित या अस्थायीकृत** (Diffiused or Nonlocated) कुछ होमोप्टिरेन तथा हेमीप्टिरन (homopterens and hemipterans) कीटों में स्पष्ट व स्थायीकृत सेण्ट्रोमीयर नहीं होता, पर वह गुणसूत्र की पूर्ण लम्बाई में विसरित रहता है ।

सेण्ट्रोमीयर की परारचना (Ultrastructure of Centromere) प्रकाश सूक्ष्मदर्शी द्वारा सेन्ट्रोमीयर एक अवर्णक रचना (achromatic figure) के रूप में दिखाई देता है, किन्तु इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा यह 0.20 - 0.25 nm व्यास की प्लेट या प्यालेनुमा रचना के रूप में

दिखाई देता हे और प्राथमिक संकीर्णन से लगा रहता है । अनुप्रस्थ काट में यह निम्नलिखित भागों का बना प्रतीत होता है

(i) एक 30 - 40nm मोटा इलेक्ट्रॉन सघन स्तर, जिसकी बाह्य सतह उत्तल होती है । तर्कु तन्तु की सूक्ष्म नलिकायें इससे जुड़ी रहती हैं तथा इसमें से होकर क्रोमेटिन तन्तुओं तक जाती हैं ।

(ii) 15 - 30nm मोटा भीतरी कम सघन स्तर जो इलेक्ट्रॉन सघन स्तर तथा नीचे स्थित क्रोमेटिन तन्तुओं के बीच स्थित होता है ।

(iii) सेन्ट्रोमीयर की उत्तल सतह पर एक बाह्य तन्तुकी पदार्थ, जो एक प्रकार का कोरोना (electron dense corona) बनाता है ।

कार्य : सेन्ट्रोमीयर के निम्न कार्य हैं

1. गुणसूत्री तर्कु तन्तुओं की सूक्ष्म नलिकाओं को जोड़ने का कार्य करता है तथा कोशिका विभाजन के समय गुणसूत्रों के चलन में सहायता करता है ।
2. सेन्ट्रोमीयर सूक्ष्म नलिकाओं के निर्माण में प्रयुक्त प्रोटीन ट्युबुलिन (tubulin)के बहुलीकरण (polymerization)में सहायक होता है ।

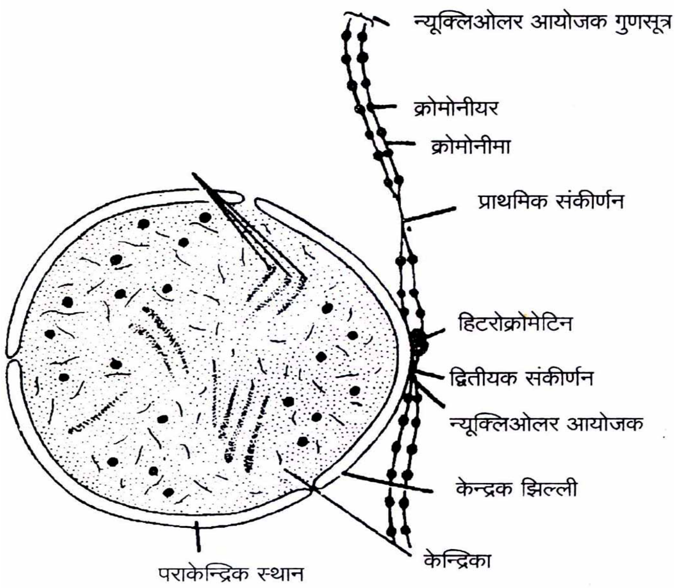

चित्र 3.4 : द्वितीयक संकीर्णन के न्यूक्लिओलर आयोजक का केन्द्रीका से सम्बन्ध

3.4.2.c द्वितीयक संकीर्णन के न्यूक्लिओलर आयोजक

(Secondary Constriction and Nucleolar Organizer)

कुछ गुणसूत्रों में प्राथमिक संकीर्णन के अतिरिक्त इनकी एक या दोनों भुजाओं में कुछ अन्य संकीर्णन होते हैं । इनको द्वितीयक संकीर्णन (secondary constrictions) कहते हैं । गुणसूत्रों में इनकी स्थिति निश्चित होती है । इसी कारण ये गुणसूत्रों की पहचान बनाते हैं । कुछ गुणसूत्रों में द्वितीयक संकीर्णन का न्यूक्लिओलस से सम्बन्ध होता है और यह न्यूक्लिओलस के निर्माण

में भाग लेता है । इसलिये इसे न्यूक्लिओलस का आयोजक (nucleolar organizer) कहते हैं । यह हल्का, अभिरंजित होने वाला क्षेत्र है, जिसके सिरे का भाग सेटेलाइट बॉडी कहलाता है । जिन गुणसूत्रों में सेटेलाइट बॉडी उपस्थित होती है, सेट गुणसूत्र (SAT- गुणसूत्र)कहलाते हैं । न्यूक्लिओलर आयोजक क्षेत्र (Nucleolar organizer region) में 18 S तथा 28 S RNA के लिए जीन होते हैं । मनुष्य में यह 13^{th} 14^{th} 15^{th} 20^{th} तथा 22^{th} गुणसूत्रों में होता

मैट्रिक्स में धँसी हुई अवस्था में पाये जाने वाला दो, एक समान पतले अत्यधिक कुण्डलित सूत्र क्रोमोनिमेटा कहलाते हैं । ये आपस में अत्यधिक कुण्डलित होकर एकल सूत्र दिखाई देते हैं, जिसकी मोटाई लगभग 800 A^0 होती है ।

मध्यावस्था या मेटाफेज में प्रत्येक गुणसूत्र दो सममित संरचनायें क्रोमोनिमेटा या क्रोमेटिड का बना होता है । प्रत्येक क्रोमेटिड एक डी. एन .ए. अणु का बना होता है तथा प्रत्येक क्रोमेडिट एक -दूसरे से केवल सेन्ट्रोमीयर द्वारा जुड़े रहते हैं । आनुवांशिकी के वाहक कण जीन्स (genes) क्रोमोनिमा पर पाये जाते हैं । इसके अतिरिक्त क्रोमोनिमा पर जीन रहित भाग भी पाया जाता है । क्रोमोनीमा में दो से अधिक सूत्र पाये जा सकते हैं, किन्तु वे आपस में अत्याधिक कुण्डलित रहते हैं । कुण्डलन दो प्रकार से हो सकता है

(i) **पैरानिमिक कुण्डलन :** इसमें क्रोमोनिमा सूत्र सरलता से अलग हो सकते हैं ।

(ii) **प्लेक्टोनिमिक कुण्डलन :** इसमें क्रोमोनिमा के सूत्र आपस में अत्यधिक गुँथे रहते हैं तथा इन्हें सरलता से अलग नहीं किया जा सकता ।

3.4.2.d तृतीयक संकीर्णन (Tertiary Constriction)

तृतीयक संकीर्णन लगभग सभी गुणसूत्रों में होते हैं । इनके महत्व का ज्ञान नहीं है । इनकी स्थिति के आधार पर गुणसूत्रों को पहचानना सम्भव है ।

3.4.2.e सैटेलाइट (Satellite)

गुणसूत्र का द्वितीयक संकीर्णन से आगे का भाग सैटेलाइट (Satellite)कहलाता है । यह गोल, लम्बा या छड़ीनुमा होता है । यह क्रोमेटिन के एक महीन तन्तु द्वारा गुणसूत्र से जुड़ा रहता है । सैटेलाइट वाले गुणसूत्र SAT गुणसूत्र कहलाते हैं ।

3.4.2.f टीलोमीयर (Telomeres)

टीलोमीयर्स गुणसूत्र के विशिष्ट तथा अंतिम सिरे हैं, जो संरचना में एक सामान्य गुणसूत्र के प्ररूपी सिरों से भिन्न नहीं होते, किन्तु ये विशिष्ट क्रियात्मक भिन्नतायें एव ध्रुवता प्रदर्शित करते हैं । गुणसूत्रों के खण्डित सिरे टीलोमीयर्स में विकसित होकर गुणसूत्रों के अन्य खण्डों को संयोजन करने से रोकते हैं । ऐसे गुणसूत्र जिनके सिरे पर टीलोमीयर्स होते हैं, गुणसूत्रों के अन्य भागों से स्थायी संयोजन नहीं करते । सम्भवतया यह गुणसूत्र के शरीर पर DNA अणु के शीर्ष के वलित (coiled)होने के फलस्वरूप होता है ।

3.4.2.g क्रोमेटिड्स (Chromatids)

मेटाफेज प्रावस्था में प्रत्येक गुणसूत्र दो क्रोमेटिड तन्तु का बना होता है । यह तन्तु DNA तथा उससे सम्बन्धित क्षारीय प्रोटीन (basic proteins) हिस्टोन से बना होता है । इसको एक रजजुकी संकल्पना कहते हैं ।

क्रोमेटिन में 60% प्रोटीन, 35% तथा 5% RNA होता है । प्रत्येक DNA अणु $20A^0$ (2nm) चौड़ा होता है । इसकी लम्बाई विभिन्न गुणसूत्रों में अलग - अलग होती है । ड्रोसोफिला के सबसे बड़े गुणसूत्र की लम्बाई लगभग 4cm. है तथा इसका आण्विक भार 80x10) डाल्टन है ।

3.4.2.h क्रोमोमीयर्स

मीओसीस (Meiosis)की प्रोफेज अवस्था में गुणसूत्रों पर सूक्ष्म दाने के समान उभार दिखाई देते हैं, जिनका आकार व स्थिति निश्चित होती है, इन्हें क्रोमोमीयर्स कहते हैं । क्रोमोमीयर्स क्रोमोनिमा पर पाये जाने वाला मणिकाकार संरचनाएँ हैं, जिनके बीच का स्थान अन्तर - क्रोमोमीयर (Inter chromomere) कहलाता है । ऐसा माना जाता है, क्रोमोमीयर्स में अधिक मात्रा में न्यूक्लिक अस्त व प्रोटीन संश्लेषण व उन्हें इकट्ठा करने की क्षमता होती है ।

गुणसूत्रों का आणविक संगठन (Molecular organization of Chromosome)

यूकेरिंयोटिक केन्द्रक में गुणसूत्र की आणविक संरचना मुख्यतया DNA तथा क्षारीय (histone) व अम्लीय (non-histone) प्रोटीन के अणुओं द्वारा बने स्थिर पदार्थ न्यूक्लिओप्रोटीन से हुई है जिसे क्रोमेटिन (chromatin) कहते हैं । **डुप्रॉव** (Dupraw 1965)ने क्रोमोसोम गुणसूत्र की संरचना हेतु वलित तंतु मॉडल (folded fibre model)दिया, जिसके अनुसार यूकेरियोटिक गुणसूत्र की इकाई (chromatid) एक अत्यधिक लम्बे, अत्यन्त वलित डी. एन. ए. के एकल सूत्र तथा कुछ आर .एन .ए. का बना होता है, जिसके चारों ओर प्रोटीन आवरण के रूप में पाया. जाता है ।

न्यूक्लिओप्रोटीन से बने इस सूत्र की मोटाई लगभग 100 मे होती है । इसे यूनिनीम या एक सूत्रीय (unistranded) धारणा कहते हैं । इसके अनुसार क्रोमेटिड का शरीर न्यूक्लिओप्रोटीन सूत्र के स्वयं बारम्बार लम्बवत् एवम् अनुप्रस्थ दोनों तरह वलित (folded) होने से बनता है । यह इकाई (क्रोमेटिड) ही क्रोमेटिन सूत्र (chromatin fibre) कहलाती है, जिसकी लम्बाई भिन्न - भिन्न हो सकती है ।

यह वाटसन क्रिक (Watson-Crick) के डी. एन. ए. अणु के समान है । इकाई क्रोमेटिड का एकल डी. एन .ए. सूत्र हिस्टोन प्रोटीन की पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला से घिरा रहता है, जिसमें लाइसिन (lysine) अधिक मात्रा में होता है ।

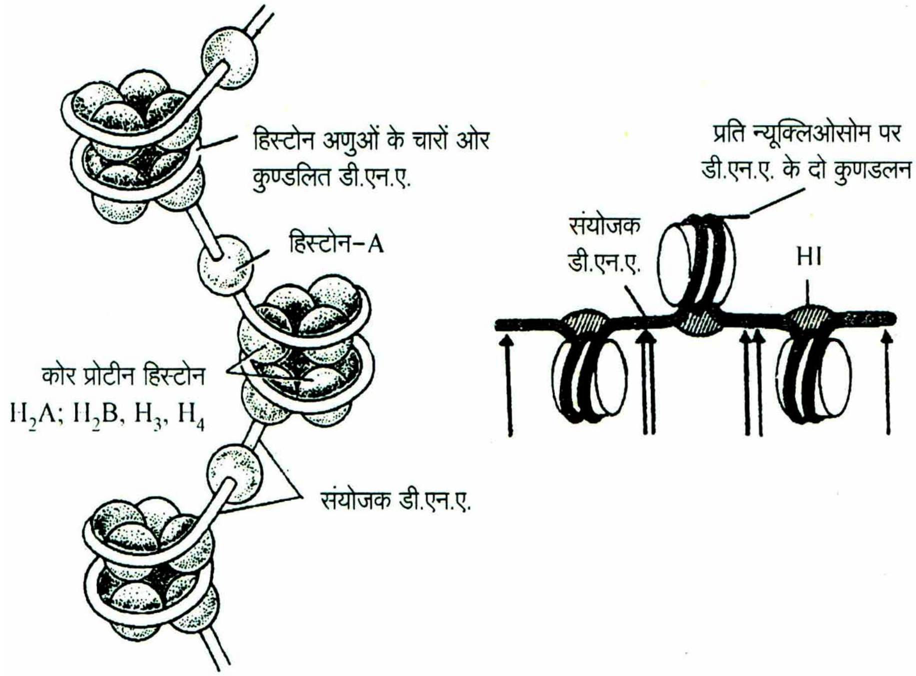

चित्र 3.5 : माला के दानों के समान न्यूक्लिओसोम्स के रेखित विन्यास को दिखाते हुए न्यूक्लिओप्रोटीन तंतु

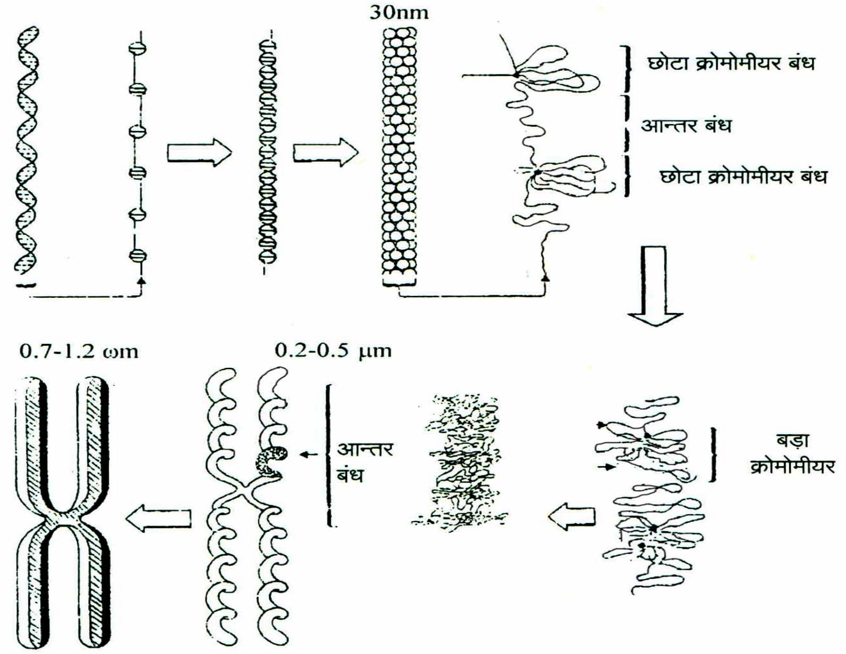

चित्र 3.6 : विभिन्न संरचनात्मक स्तरों पर गुणसूत्र की संरचना का चित्रिय प्रदर्शन :
A. DNA अणु ; EF. क्रोमोमियर तथा इन्टर क्रोमोमियर; B. न्यूक्लिओसोम की श्रृंखला; C. 10nm क्रोमेटिन तन्तु क्षेत्र; G. गुणसूत्र का एक बैंड ; D. 80nm क्रोमेटिन तन्तु;
Hg - एक गुणसूत्र

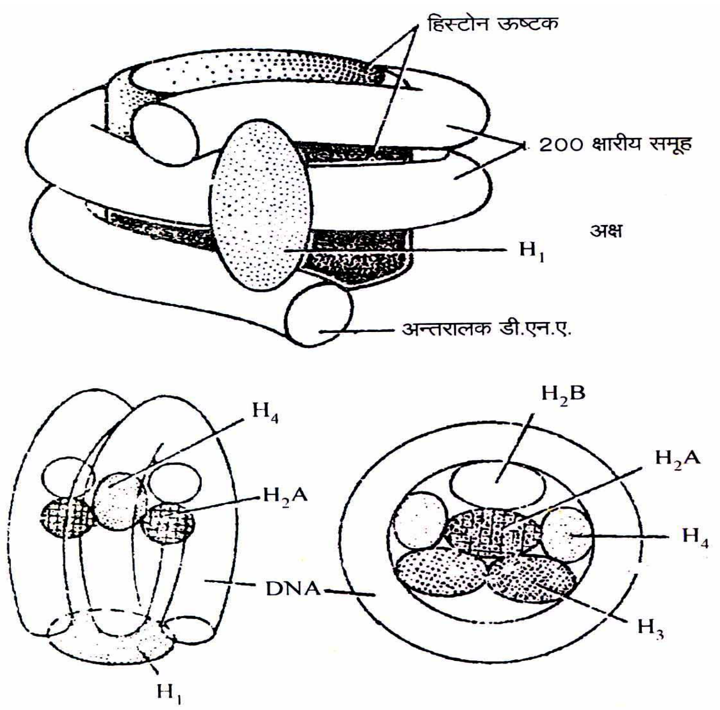

चित्र 3.7 : (A) एक न्यूक्लियोसोम; (B) न्यूक्लियोसोम की ईकाइयाँ

हिस्टोन प्रोटीन (Histones) : हिस्टोन क्षारीय प्रोटीन है । इनमें क्षारीय अमीनों अम्ल की मात्रा अधिक होती है । गुणसूत्रों में पाये जाने वाले हिस्टोन की निम्नलिखित विशेषतायें हैं :

1. गुणसूत्रों में 5 प्रकार के हिस्टोन प्रोटीन होते हैं । इनको H_2A, H_2B, H_3, H_4 तथा H-1 द्वारा प्रदर्शित करते हैं । विभिन्न जातियों के गुणसूत्रों में H_2A, H_2B, H_3 तथा H_4 प्रोटीन लगभग समान होते हैं और समआणविक (equimolar) होते हैं ।
2. DNA के 200 नाइट्रोजिनस क्षारीय युगलों के साथ उपर्युक्त प्रत्येक क्षारीय प्रोटीन के दो अणु होते हैं ।
3. H-1 प्रोटीन ऊतक विशिष्ट होता है । प्रत्येक 200 नाइट्रोजिनस क्षारीय युगलों के साथ केवल एक H-1 अणु होता है । DNA से इसका सम्बन्ध शिथिल होता हैं ।
4. द्विरज्जुकी कुण्डलित DNA अणु सम्बन्धित हिस्टोन पर बार - बार कुण्डलित होकर न्यूक्लिओप्रोटीन फाइवर या क्रोमेटिन तन्तु बनाते हैं ।
5. यूकेरियोट गुणसूत्रों में DNA से सम्बन्धित प्रोटीन या तो संरचनात्मक अवयव के समान कार्य करते हैं अथवा DNA को ढकते हैं अथवा फिर उसके विशेष भागों की कार्यक्षमता का दमन करते हैं ।

न्यूक्लिओप्रोटीन तन्तु माला के समान प्रतीत होता है । माला के दाने के सद्दश्य न्यूइक्लओसोम 10nm व्यास की रचनाएँ हैं, DNA रज्जु से जुड़े रहते हैं । 10nm की रचनाएँ कोशिकाओं में क्रोमेटिन के संगठन के प्रथम स्तर को प्रदर्शित करता है ।

न्यूक्लियोसोम (nucleosome) : प्रत्येक क्रोमेटिन न्यूइक्लओसोम्स की अनेक इकाइयों का बना होता है । DNA के प्रत्येक वलन में 200 क्षार युगल होते हैं, जो 8 हिस्टोन अणुओं में बने सेट के चारों ओर लिपटे रहते हैं ।

प्रत्येक न्यूक्लिओसोम में एक क्रोढ़ करण तथा एक स्पेसर DNA या लिंकर DNA होता है ।

न्यूक्लिओसोम (Nucleosome) : प्रत्येक न्यूक्लिओसोम के दो भाग होते हैं :

1. **क्रोड कण** (Core Particle) : क्रोड कण में आठ हिस्टोन अणु होते हैं । इनमें H2A, H_2B, H_3 तथा H_4 हिस्टोन के दो -दो अणु होते हैं । ये अणु परस्पर मिलकर न्यूक्लिओसोम के केन्द्र में एक बेलनाकार सिलिंडर सा बना लेते हैं । यह लगभग 11nm व्यास (चौड़ाई में) तथा 6nm ऊँचाई या लम्बाई का होता है ।द्विरज्जुकी DNA की लगभग 146 क्षारीय युग्म (nitrogenous base pairs) इस क्रोड हिस्टोन कण के चारों ओर लगभग दो चक्कर बनाते हैं ।
2. **अन्त:शलक DNA** (Spacer DNA) अथवा लिंकर DNA (Linker DNA) : यह DNA का छोटा सा भाग है, जो 4 जोड़ी नाइट्रोजिनस क्षारों का होता है । इस भाग में केवल H-1 हिस्टोन प्रोटीन होता है । स्पेसर DNA दो न्यूक्लिओसोम के बीच स्थित होता है ।

   न्यूक्लिओसोम संकुचन (Nucleosome Condensing) : न्यूक्लिओसोम व लिंकर DNA के रैखिक क्रम में जुड़ने से क्रोमेटिन तन्तु बनता है । यह केवल 10nm मोटा होता है । इसके सर्पिल कुण्डलन (spiral coiling) से 20 nm या 30nm मोटा क्रोमेटिन तन्तु बनता है । इसके एक चक्कर में 6-7 न्यूक्लिओसोम आते हैं ।

   कोशिका विभाजन के समय 30nm क्रोमेटिन तनु के पुन: वलित (coiled) होने पर 400nm व्यास का क्रोमेटिड बनाता है । इनके पुन: वलित होने से गुणसूत्र बनता है ।

   न्यूक्लिओसोम पैकिंग (Nucleosome Packing) : इन्टरफेज केन्द्रक का महीन क्रोमेटिन माला की लड़ी में दोनों के समान न्यूक्लिओसोम का बना होता है । इन तन्तुओं के एक-दूसरे के चारों ओर लिपटने से क्रोमेटिन के 20- 30nm मोटे तन्तु बनते हैं । इनकी यह परारचना सोलिनॉइड प्रकार की होती है, जिसके प्रत्येक चक्कर में 6-7 न्यूक्लिओसोम होते हैं ।

समसूत्री कोशिका विभाजन के समय सोलिनॉइड एक अन्य हैलिक्स बनाता है, जिसे सुपरसोलिनाँएड (supersolenoid) कहते हैं । इसका व्यास 400nm होता है । सुपरसोलिनॉएड और अधिक संघनित होकर मेटाफेज या एनाफेज और गुणसूत्र को एक विशिष्ट आकृति प्रदान करता है ।

3.6 गुणसूत्रों के विशेष प्रकार (Special Types of Chromosomes)

अभी तक हमने समसूत्री तथा अर्धसूत्री कोशिका विभाजनों की मेटाफेज तथा ऐनाफेज प्रावस्थाओं में दृष्टिगत होने वाले प्रारूपी गुणसूत्र का ही वर्णन किया है । वनस्पति एवम् प्राणी जगत् के विभिन्न वर्गों में विशिष्ट एवम् वर्चित गुणसूत्र भी देखे गये हैं । इनमें से कुछ का वर्णन करना अति आवश्यक है ।

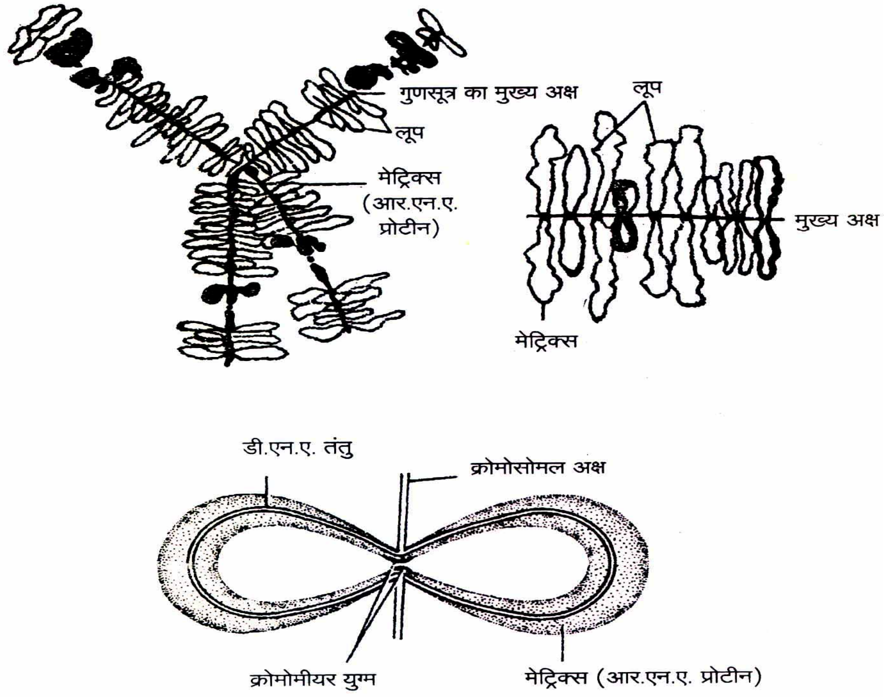

चित्र 3.8 : लैम्पब्रुश गुणसूत्र : A.सामान्य रचना,B. विस्तृत संरचना,C. एक लूप

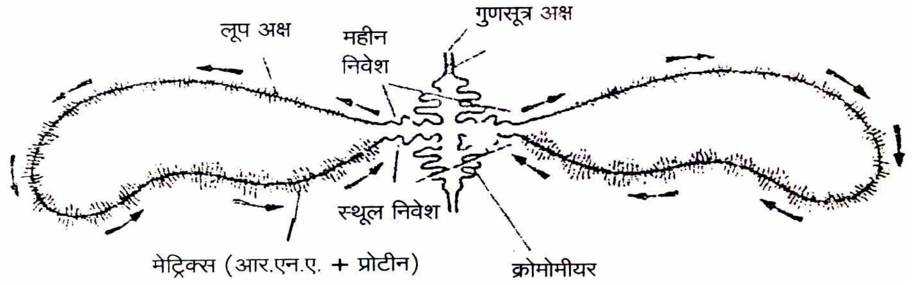

चित्र 3.9 : RNA संश्लेषण के प्रदर्शन हेतु लैम्पब्रुश के पार्श्व लूप

3.6.1 लिंग गुणसूत्र (Sex Chromosomes)

प्रत्येक जीव में चाहे वह जन्तु या पौधा हो उसकी प्रत्येक कोशिका में समान गुणसूत्रों का युग्म (Pair) पाया जाता है, किन्तु एक गुणसूत्र युग्म नर व मादा में अलग पाया जाता है । इसी युग्म के आधार पर नर व मादा लिंग निर्धारित होते हैं । ये गुणसूत्र का युग्म लिंग गुणसूत्र (Sex Chromosomes) बाकी गुणसूत्र युग्म कायिक गुणसूत्र (autosome) कहलाते हैं ।

(a) मनुष्य में कुल द्विगुणित गुणसूत्रों की संख्या 46 होती है । इसमें से पुरुष में 22 जोड़े अलिंगसूत्रों (autosome) के तथा एक जोड़े में एक X तथा एक X गुणसूत्र पाया जाता है इसी प्रकार स्त्री में 22 जोड़े अलिंगसूत्र (autosome) तथा एक जोड़ा XX गुणसूत्र पाया जाता है ।

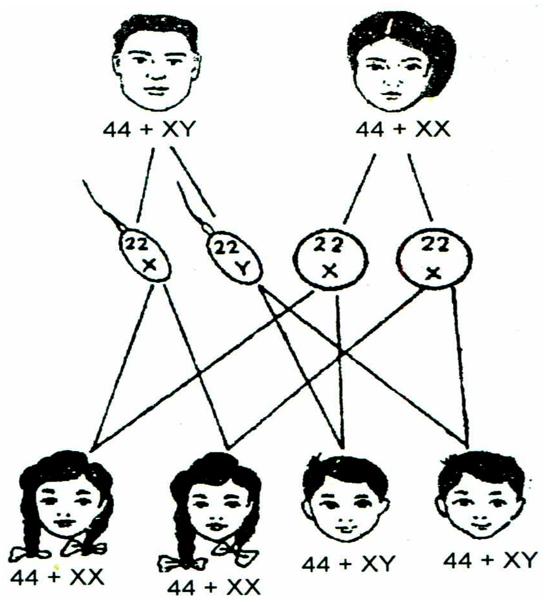

चित्र 3.10 : मनुष्य में XX : YY लिंग निर्धारण

(b) बोटेनर कीट में मादा में XX लिंग गुणसूत्र पाया जाता है किन्तु नर में केवल X गुणसूत्र पाया जाता है । इसमें X गुणसूत्र का अभाव होता है । नर कीट में X गुणसूत्र XO संयोजन तथा मादा कीट XX संयोजन प्रदर्शित करते हैं । अत : लिंग निर्धारण XO क्रियाविधि द्वारा होता है ।

नर कीट - 6 x 2 autosome + XSO = 13 गुणसूत्र ।

मादा कीट - 6 x 2 autosome + XX = 14 गुणसूत्र।

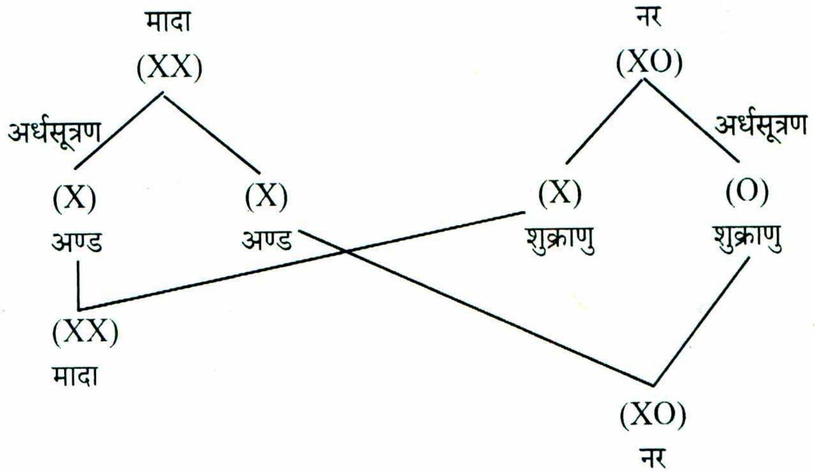

चित्र 3.11 : XX : XO लिंग निर्धारण

सर्वप्रथम हैंकिग (Henking, 1891) ने पाइरोकोरिस एपटेरस (Pyrrhocoris apterus) कीट के शुक्राणुओं में गहरी अभिरंजित होने वाली क्रोमेटिन संरचनाओं को देखा तथा उन्हें X - पिंड नाम दिया । इसके बाद स्टीवेन्स (Stevens, 1908) ने भी कई अन्य कीटों में इस प्रकार के प्रेक्षण प्राप्त किये । बाद में ये पिंड X - गुणसूत्र या लिंग गुणसूत्र कहलाये ।

विशिष्ट रूप से लैंगिक जनन करने वाली जातियों में कुल गुणसूत्र युगलों में से एक ऐसा गुणसूत्र युगल पाया जाता है, जो अन्य युगलों से भिन्न होता है । मादा में इस युगल के दोनों सदस्य समान होते हैं (XX) तथा नर में इनकी आकृति भिन्नता पायी जाती है (XY) । नर में पाये जाने वाले ये असमान गुणसूत्रों के युगल का एक गुणसूत्र मादा में पाये जाने वाले (X) गुणसूत्रों से समानता रखता है तथा दूसरा गुणसूत्र लिंग निर्धारण (Y) से सम्बन्धित होते हैं । इसके अलावा पाये जाने वाले गुणसूत्रों के युग्म अलिंगसूत्र (autosome) कहलाता है, जाता है, जो कि जीव के अन्य गुणों का निर्धारण करते हैं । यह लिंग जीनी प्ररूप (sex genotype) सभी जंतुओं तथा मानव में होता है, किन्तु कुछ पक्षी, माँथ, तितली आदि में यही जीनीलक्षण उल्टा हो जाता है । यहाँ नर (XX) तथा मादा लिंग का निर्धारण (XY) से होता है । टिड्डों में Y गुणसूत्र (Y chromosome) पूर्ण रूप से अनुपस्थित होता है तथा नर के जीनी प्ररूप (genotype) X0 होता है ।

जीवों में युग्मक बनने के दौरान लिंग गुणसूत्र (Sex chromosome) का पृथक्करण मेंडल के नियमों के अनुसार होता है । उदाहरणतः: स्तनधारियों में प्रत्येक अण्ड में गुणसूत्र एक ही प्रकार के अर्थात् X प्रकार के होते हैं । वहीं नर में आधे शुक्राणु X गुणसूत्र तथा आधे Y गुणसूत्र वाले होते हैं । बच्चों का लिंग निर्धारण निषेचन के पश्चात् उसमें उपस्थित शुक्राणु के जीनीलक्षण (genotype) पर आधारित होता है । जैसे ऐसा लिंग जिसमें XX जीनी लक्षण (XX genotype) होता है । समयुग्मक (Homogametic) कहलाता है तथा वह सिर्फ वहीं युग्मक बनाता है, जिसमें X गुणसूत्र उपस्थित होते हैं । इसी प्रकार एक जीव, जिसको XY जीन लक्षण (genotype) है, उसे विषमयुग्मकी (Heterogematic) कहलाता है, क्योंकि उसमें उत्पन्न आधे युग्मक X गुणसूत्र तथा आधे Y गुणसूत्र सहित होते हैं ।

मनुष्य में एक अविभाजित कोशिका में अगर दो दX गुणसूत्र (chromosome) उपस्थित हैं तो एक X गुणसूत्र अत्यधिक सक्रिय अवस्था में तथा दूसरा यदि उपस्थित है तो विश्राम अवस्था (resting stage) में अत्यधिक कुण्डलित तथा गहरे रंजित अवस्था में रहता है । इसे बार काय (bar body) कहते हैं । इस बार बॉडी की संख्या X गुणसूत्र की संख्या से हमेशा एक कम होती है । जैसे कि नर में (XY) = O (शून्य) तथा मादा में (XY) = 1 होती है । मनुष्य में Y गुणसूत्र, नर जननांगों के विकास तथा नर गुणों को निर्देशित करता है ।

3.6.2 लैम्पब्रुश गुणसूत्र (Lampbrush Chromosomes)

पीतक युक्त अण्डे देने वाले कुछ पृष्ठवंशियों (मछली, मेंढक, रेप्टाइल एवं पक्षियों) की डिम्ब कोशिकाओं के केन्द्रकों में सर्वाधिक दीर्घ आकृति वाले गुणसूत्र पाये जाते हैं । इनका आकार इतना अधिक बड़ा होता है कि इनको सामान्य दृष्टि द्वारा भी आसानी से देखा जा सकता है । अर्धसूत्री विभाजन के समय प्रोफेज की डिप्लोटीन प्रावस्था में इनकी लम्बाई अत्यधिक बढ़ जाती है तथा सेण्ट्रोमीयर क्षेत्रों के अतिरिक्त इनके मुख्य अक्ष से अरीय रोम या पार्श्व लूप निकले होते हैं । ये गुणसूत्रों से विकसित होते हैं तथा प्रथम मेटाफेज में विलुप्त हो जाते हैं । लूपों की उपस्थिति के

कारण गुणसूत्र ब्रुश के समान प्रतीत होते हैं । इसी कारण इन्हें लैम्पब्रश गुणसूत्र (lampbrush chromosomes) कहते हैं ।

लैम्पब्रुश गुणसूत्र में DNA तथा प्रोटीन का बना हुआ एक मुख्य अक्ष (main axis) होता है । यह लूप के अक्ष में निरंतरित होता है, लूप अक्ष के चारों ओर RNA तथा प्रोटीन से निर्मित होता है, जिसके कारण यह रोंयेदार प्रतीत होता है । लूप के आधार पर अभिरंजित क्रोमोमीयर्स के संचित होने के कारण गुणसूत्र का अक्ष एक कुण्डलित प्रतीति के समान दृष्टिगत होता है । इन बिन्दुओं पर एक और मैट्रिक्स स्थूलित होकर स्थूल निवेश (thick insertion) बनाता है तथा इसका दूसरी ओर का पतला सिरा महीन निवेश (thin insertion) कहलाता है । लूप अक्ष अत्यधिक लचीला तथा 30 - 50AA^0 में मोटा होता है ।

लैम्पब्रश गुणसूत्रों के लूप RNA व प्रोटीन के संश्लेषण तथा पीतक के निर्माण से सम्बन्धित होते हैं । अत : लूप आनुवंशिक संस्थितियों के तदनुरूपी होते हैं, जो केवल लूप अवस्था में होता है । इनमें से कुछ पफ आकार में दीर्घ तथा अन्य छोटे होते हैं । वे क्षेत्र जिनमें पफ विकसित होते हैं, बाल्बियेनाई वलय (balbiani rings) कहलाते हैं । ये क्रोमोनेमेटा की पट्टिकाओं से निकले संलगित लूपों की श्रृंखला के रूप में पार्श्व विस्तारणों से बनते हैं । इनकी उपस्थिति से गुणसूत्र की मोटाई में वृद्धि हो जाती है, जो अब एक रोंयेदार रचना के समान प्रतीत होती है । DNA संश्लेषण तथा DNA की सक्रियता का पफों के निर्माण से सम्बन्ध है । पफ मुख्य रूप से गुणसूत्रों की उपापचय क्रियाओं तथा लार ग्रन्थियों की स्राव क्रिया से सम्बद्ध होते हैं ।

इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी संरचना (Electronic Microscopic Structure) : मिलर (Miller), व बीटे (Beaty) ने सैलामैन्डर के अण्डाणु के लैम्पब्रुश गुणसूत्रों के इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी अध्ययनों द्वारा DNA के लूप के अक्ष पर संघनित कणिकाओं को देखा । ये कणिकायें एन्जाइम आर एन .ए. पॉलीमरेज के बड़े अणुओं को निरूपित करती है । डी एन .ए. से संलग्न होने पर ये आर. एन. ए. संश्लेषण को प्रेरित करती हैं । आर. एन .ए. पॉलीमरेज अणुओं से आर. एन. ए. के महीन तन्तुक विकसित होते हुए दिखाई देते हैं ।

ड्रोसोफिला की लार ग्रंथियों के दीर्घ गुणसूत्रों के अतिरिक्त इन्हें डिप्टेरन ऊतकों के विभिन्न गुणसूत्रों में भी देखा गया है ।

अधिसंख्यक गुणसूत्र (Accessory or Super numerary chromosome) सामान्य रूप से इनके स्वभाव एवं उद्‌गम के बारे में कोई निश्चित मत नहीं है, किन्तु कभी - कभी इनकी पूर्वज परम्परा तथा उत्पत्ति का सुगमता से अनुरेखन किया जा सकता है ।

सामान्यत: अधिसंख्यक गुणसूत्र आकार में अपेक्षाकृत छोटे तथा आनुवंशिक रूप से निष्क्रिय होते हैं, जो मुख्यत : हेटरोक्रोमेटिन के बने होते हैं । अत : कोशिका में इनकी संख्या कितनी भी हो, किन्तु इनकी उपस्थिति का दृश्यरूपी प्रभाव लेशमात्र ही होता है । अत्यधिक संख्या में होने पर ये केन्द्रक की विभाजन क्षमता तथा ओज को हासित करते हैं । ये आपेक्षिक रूप से अस्थायी होते हैं तथा सामान्य गुणसूत्रों द्वारा पालन किये जाने वाले पृथक्करण नियमों का पालन नहीं करते । इसीलिये कोशिका विभाजन के समय ये पृथक् नहीं हो पाते तथा लुप्त हो जाते हैं । ऐसा अनुमान

है कि इनके स्वभाव में भिन्नता के कारण ही इनके सेन्ट्रोमीयर्स की क्रमिक विभाजन क्षमता में अवकलता होती है ।

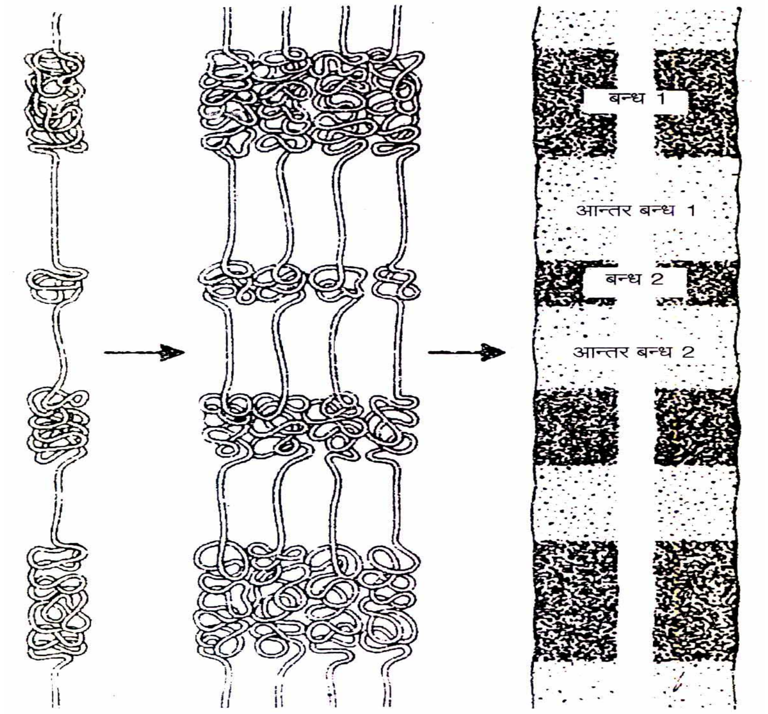

चित्र 3.12 : पट्टिकाओं व आन्तर पट्टिकाओं को प्रदर्शित करते हुए पोलिटीन गुणसूत्र का मॉडल : A. एक गुणसूत्र ; B. पार्श्व से सटे हुए क्रोमेटिड ; C. बैण्ड एवं इंटर बैण्ड

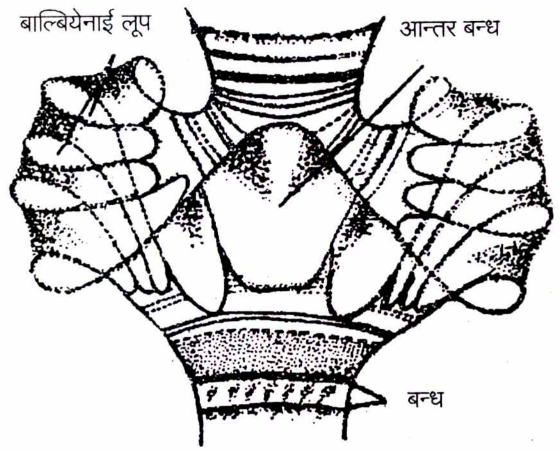

चित्र 3.13 : दीर्घ गुणसूत्र में पफ बाल्बियेनाई वलय का चित्रीय निरूपण

3.6.3. पॉलिटीन गुणसूत्र (Polytene Chromosomes)

पॉलिटीन गुणसूत्र भी दीर्घ आकृति वाले गुणसूत्र हैं, जो डिप्टेरा गण के कुछ कीटों के लारवाओं की लार-ग्रंथियों, माल्पीजियन नलिकाओं, आहारनाल के एपिथीलियल स्तर की कोशिकाओं तथा वसा

पिण्डकों में पाये जाते हैं । सर्वप्रथम Balbiani (1881) ने इसकी खोज की किन्तु Kostoff (1930) द्वारा पुन: इनके प्रकाश में आने से पूर्व इनके कोशिकानुवंशिकी महत्व को नहीं पहचाना जा सका । लार ग्रंथियों में पाये जाने वाले पोलिटीन गुणसूत्र अपने दीर्घ आकार के कारण सुगमता से अध्ययन किये जा सकते हैं ।

ड्रोसेफिला मेलेनोगेस्टर (Drosophila melanogaster) में पाये जाने वाले पॉलिटीन गुणसूत्र सामान्य दैहिक गुणसूत्रों की अपेक्षा एक हजार गुना अधिक बड़े होते हैं । इनमें चार क्रोमेटिड वाले पॉलिटीन गुणसूत्र की लम्बाई 200w होती है जबकि सामान्य दैहिक गुणसूत्र की लम्बाई केवल 7.5w, होती है । पॉलिटीन गुणसूत्र बहुवयलक संरचना है जो बहुत से तंतुओं के बने होते हैं । गुणसूत्र के नौ या दस बार क्रमिक रूप से द्विगुणित होने से पॉलिटीन गुणसूत्रों का निर्माण होता है । द्विगुणनों के फलस्वरूप बने समस्त क्रोमेटिडस पॉलिटीन गुणसूत्र में बँटी हुई रस्सी के धागों के समान पड़े रहते हैं । तंतु अत्याधिक महीन होते हैं तथा प्रत्येक तंतु को गुणसूत्र माना जा सकता है । वलयकों के पुन : द्विगुणन की प्रक्रिया को एण्डोमाइटोसिस कहते हैं । एक दीर्घ आकार वाले पोलीटीन गुणसूत्र में 512 से लेकर कई हजार तक क्रोमोनेटिक वलयक होते हैं । पोलीटीन गुणसूत्र की इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी संरचना में निम्न भाग होते हैं -

1. **पट्टिकायें तथा अन्तर पट्टिकायें** (Bands and Interbands) : पोलिटीन गुणसूत्र में अनुप्रस्थ रूप से गहरे रंग की पीट्टकायें तथा हल्के रंग की पीट्टकायें तथा हल्के रंग की आन्तर पीट्टकायें क्रमबद्ध लगी रहती हैं । पीट्टकायें फ्यूल्जन -पोजिटिव (feulgen positive) तथा आन्तर -पीट्टकायें फ्यूल्जन नैगेटिव होती हैं । पीट्टकायें क्रोमेनिमेटा पर विन्यासित क्रोमोमीयर्स से निर्मित होती हैं, जो गुणसूत्र के अक्ष के लम्बवत् होते हैं । पीट्टकायें मोटाई तथा कुछ अन्य विशिष्ट लक्षणों में एक -दूसरे से भिन्न होती हैं । क्योंकि ये गुणसूत्र पर निश्चित रूप से विन्यसित होती हैं, अत : इनकी सहायता से गुणसूत्र का सही-सही चित्रण किया जा सकता है । कोशिका -विभाजन के समय समजात गुणसूत्र की समान पट्टिकाओं के संलग्न द्वारा गुणसूत्रों का युग्मन होता है । पीट्टकायें आनुवंशिकी रूप से सक्रिय होती हैं तथा इनमें DNA प्रचुर मात्रा में होता है । इसके अतिरिक्त RNA तथा क्षारीय प्रोटीन के भी अंश पाये जाते हैं । आन्तर -पट्टिकाओं का इतने गूढ़ रूप से अध्ययन नहीं हुआ है । किन्तु ऐसा समझा जाता है कि ये भी इनते गूढ़ रूप से सक्रिय होती हैं । आन्तर पट्टिकाओं में DNA की मात्रा कम किन्तु अम्लीय प्रोटीन अधिक मात्रा में होता है, अत : ये कम सक्रिय होती हैं ।

2. **पफ्स तथा बाल्बियेनाई वलय** (Puffs and Bulbiani rings) : अनेक पॉलिटीन गुणसूत्रों के पट्टिका एवम् अन्तर पट्टिका क्षेत्र में विशेषकर लारवा के वर्धन के समय, उत्फुलन या पफ दृष्टिकोण होते हैं । इसका निर्माण विशिष्ट जीन्स के नियंत्रण में एक विशेष समय पर ही संश्लेषणात्मक रूप से सक्रिय होते हैं एवं हजार गुना अधिक बड़े होते हैं । इनमें चार क्रोमेटिड वाले पोलिटीन गुणसूत्र की लम्बाई 200µ होती है, जबकि सामान्य दैहिक गुणसूत्र की लम्बाई केवल 7.5µ होती है ।

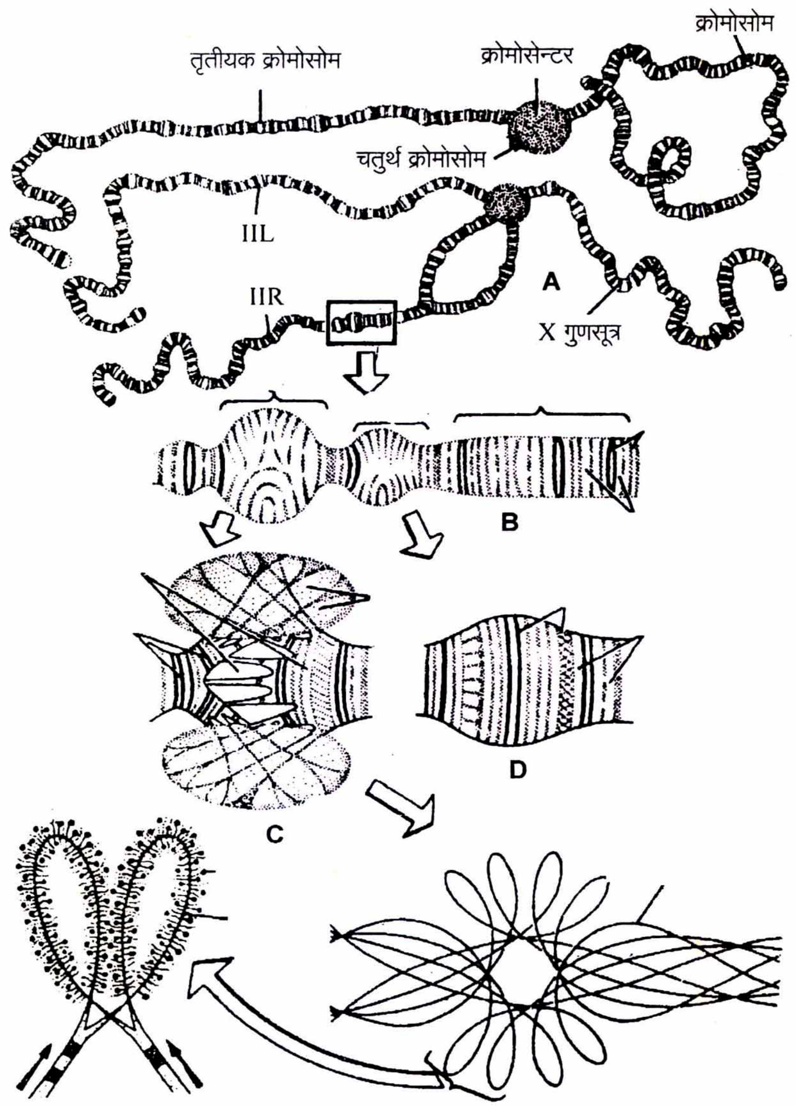

चित्र 3.14 : ड्रोसोफिला मेलेनोगेस्टर की लार ग्रन्थि में पाये जाने वाले पोलिटीन गुणसूत्र (Polytene type of salivary gland chromosome of Drosophila melanogaster) B. Puff o Knob को दिखाते हुए एक भाग का आवर्धित चित्र; C. Puff का आवर्धित चित्र ; D. Knob का आवर्धित चित्र|

3.7 गुणसूत्रों के कार्य (Functions of Chromosomes)

1. गुणसूत्र जीवों की विभिन्न शारीरिक एवं उपापचयी क्रियाओं का संचालन करते हैं ।
2. गुणसूत्र जीवों के विभिन्न लक्षणों की भिन्नता एवं वर्धन का नियमन करते हैं ।
3. गुणसूत्रों के हेटिरोक्रोमेटिक क्षेत्र न्यूक्लिओलस के निर्माण में भाग लेते हैं ।
4. गुणसूत्रों की संरचना एव संख्या में परिवर्तन से जीवों में अनेक विभिन्न लक्षण दृष्टिगत होते ।

बोधप्रश्न

1. गुणसूत्र शब्द दिया:
   (अ) वाल्डेयर ने
   (ब) रॉबर्ट हुक
   (स) हाफमिस्टर
   (द) स्ट्रासबर्गर
2. गुणसूत्रों का अंतिम सिरा कहलाता है:
   (अ) सैटेलाइट
   (ब) सेन्ट्रोमीयर
   (स) मेटासेन्ट्रिक
   (द) टीलोमीयर
3. यूकेरियोटिक कोशिका के गुणसूत्रों में पाये जाने वाले प्रोटीन हैं:
   (अ) हिस्टोन
   (ब) अम्लीय
   (स) उदासीन
   (द) कोई भी नहीं
4. लिंग निर्धारण करने वाले गुण सूत्रों को कहते हैं :
   (अ) ऑक्सीसोम
   (ब) हिप्टोसोम
   (स) ऑटोसोम
   (द) लाइसोसोम
5. न्यूक्लिओलर ऑरगेनाइजर रीजन गुणसूत्र के किस भाग पर स्थित होता है?
   ....
   ....
   ....
6. क्रोमोमीयर्स क्या है?
   ....
   ....

3.8 सारांश (Summary)

प्रत्येक प्लेरियोटिक तथा प्रोकेरियोटिक कोशिका में डी.एन.ए. मुख्य आनुवांशिक पदार्थ होता है । यह स्वतंत्र रूप से नहीं पाये जाते, अपितु प्रोटीन से मिलकर जटिल संरचना बनाते हैं, जिसे क्रोमेटिन कहते हैं । प्रोकेरियोटिक कोशिका में यह वलित अवस्था में कोशिका द्रव्य में पाये जाते हैं । वहीं यूकेरियोटिक कोशिका में ये केन्द्रक में पाये जाते हैं । इन गुणसूत्रों को आनुवांशिकी वाहक भी कहा जाता है । गुणसूत्रों की संरचना का अध्ययन मुख्यत: मेटाफेज अवस्था में किया जाता है । मेटाफेज अवस्था में गुणसूत्र छोटे छड़नुमा होते हैं । प्रत्येक जीव के युग्मकों में

गुणसूत्रों की संख्या उसकी दैहिक कोशिकाओं में उपस्थित गुणसूत्रों की संख्या से आधी होती है । एक मेटाफेज अवस्था का गुणसूत्र मुख्यत: पैलिकल, से मैट्रिक्स, प्राथमिक संकीर्णन या सेडोमीयर, द्वितीय संकीर्णन, तृतीय संकीर्णन, टीलोमीयर, सैटेलाइट तथा क्रोमेटिड का बना होता है । इसके अलावा मियोसिस के प्रोफेज प्रथम में क्रोमोनिमेटा पर छोटी -छोटी मणिकाकार संरचनाएँ पायी जाती हैं, जिसे क्रोमोमीयर्स कहते हैं । गुणसूत्रों के आणविक संगठन में ये मुख्य रूप से डी.एन.ए. तथा क्षारीय प्रोटीन हिस्टोन के बने होते हैं, जिसे न्यूक्लिओप्रोटीन कहते हैं । गुणसूत्रों में पाये जाने वाले हिस्टोन प्रोटीन मुख्यत: पाँच प्रकार के होते हैं, H2A, H2B, H3, H4 तथा H-1 । इनमें से H-1 प्रोटीन ऊतक विशिष्ट होता है तथा इसका सम्बन्ध परम से शिथिल होता है । प्रत्येक क्रोमेटिन न्यूक्लिओसोम की अनेक इकाइयों का बना होता है ।

कुछ जीवों में सामान्य गुणसूत्रों के अलावा कुछ विशेष प्रकार के क्रोमोसोम पाये जाते हैं, जैसे लैम्पब्रश क्रोमोसोम, जो मुख्यत: कुछ पृष्ठवंशियों (मछली, मेंढक, रेप्टाइल) में पाया जाता है । इनकी उत्पत्ति अर्धसूत्री विभाजन के समय प्रोफेज की डिप्लोटीन अवस्था में डी.एन.ए. की लम्बाई अत्यधिक बढ़ जाने से होती है तथा सेण्ट्रोमीयर क्षेत्रों के अतिरिक्त इनके मुख्य अक्ष से असंख्य अरीय तथा पार्श्व लूप निकलते हैं, जो एक गुणसूत्र को ब्रशनुमा आकृति प्रदान करते हैं । इस कारण इन्हें लैम्पब्रश गुणसूत्र कहते हैं । ये लूप आर.एन.ए. तथा प्रोटीन संश्लेषण तथा पीतक के निर्माण से सम्बन्धित होते हैं ।

पॉलिटीन गुणसूत्र भी दीर्घ आकृति वाले गुणसूत्र है, जो डाइफेरा गण के कुछ कीटों की लार ग्रंथियों में पाये जाते हैं । सर्वप्रथम बालबियानी ने इसकी खोज की । पोलीटीन गुणसूत्र बहु वलयक संरचनाएँ हैं, जो गुणसूत्रों के नौ या दस बार क्रमिक रूप से द्विगुणित होने से बनता है ।

इसके अलावा वे गुणसूत्र, जो कि जीवों में लिंग निर्धारण में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं, लिंग गुणसूत्र कहलाते हैं । ये लिंग गुणसूत्र मुख्यत: X तथा Y प्रकार के होते हैं । मनुष्य तथा अधिकांश जीवों तथा पौधों में XX युग्म गुणसूत्र स्त्रीलिंग का तथा XY युग्म नर लिंग का निर्धारण करता है ।

3.9 शब्दावली

(1) न्यूक्लिओलर संयोजक

(2) सैट गुणसूत्र

(3) क्रोमोमीयर्स

(4) हिस्टोन

(5) लिंग गुणसूत्र

(6) ऑटोसोम

(7) न्यूक्लिओसोम

(8) टीलोमीयर

(9) बाल्बियानी वलय

(10) क्रोमेटिड

3.10 संदर्भ ग्रंथ

(1) कोशिका विज्ञान, आनुवांशिकी तथा पादप प्रजनन : त्रिवेदी, शर्मा, शर्मा ।

(2) कोशिका विज्ञान, वीरबाला रस्तौगी ।

(3) सैल व मॉलिस्थूलर बाइलॉजी : डी. रॉबर्टीस एवं राबर्टीस ।

3.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (अ) 2. (द) 3. (ब) 4. .(ब)

(5) द्वितीयक संकीर्णन से

(6) छोटे मणिकाकार संरचना, जो क्रोमेटिड पर अर्धसूत्री विभाजन की प्रोफेज अवस्था में दृष्टिगोचर होती है ।

3.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. गुणसूत्रों की आणविक संरचना का विस्तार से वर्णन कीजिए ।
2. गुणसूत्रों में प्राथमिक तथा द्वितीयक संकीर्णन के बारे में विस्तार से बताइये ।
3. लैम्पब्रश गुणसूत्रों का वर्णन कीजिए ।
4. पॉलीटीन गुणसूत्र क्या है तथा कैसे उत्पन्न होते हैं?
5. लिंग गुणसूत्र क्या होते हैं? मानव में लिंग निर्धारण की क्रियाविधि समझाइये ।

इकाई 4: गुणसूत्र विपथन (Chromosomal Abbreviations)

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना: गुणसूत्र विपथन विलोपन, द्विगुणन, प्रतिलोमन एवं स्थानान्तरण बहुगुणिता - न्यून एवं पर बहुगुणिता
4.2 गुणसूत्री संरचना में परिवर्तन
4.2.1 विलोपन
4.2.2 द्विगुणन
4.2.3 प्रतिलोमन
4.2.4 स्थानान्तरण
4.3 गुणसूत्रों की संख्या में परिवर्तन
4.3.1 न्यून बहुगुणिता
4.3.2 बहुगुणिता
4.3.3 बहुगुणिता का कोशिका विज्ञान, परिणाम तथा महत्व
4.4 सारांश
4.5 शब्दावली
4.6 संदर्भ ग्रन्थ
4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य

1. गुणसूत्र विपथन (chromosomal abbreviation) के बारे में जानकारी प्राप्त करना ।
2. गुणसूत्र विपथन के विभिन्न प्रकार का ज्ञान प्राप्त करना ।
3. चित्रों के माध्यम से विपथन को समझना ।
4. बहुगुणिता (polyploidy) का अभिप्राय जानना ।
5. न्यून एवं परबहुगुणिता के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करना ।

4.1 प्रस्तावना

किसी प्रजाति का केरियोटाइप (karyotype) सामान्यत: स्थिर होता है । अर्थात् किसी जीव में उपस्थित गुणसूत्रों की संख्या एवं संगठन निश्चित अथवा स्थिर प्रकार का पाया जाता है । गुणसूत्रों में जीन रेखीय (linear) क्रम में व्यवस्थित रहते हैं तथा गुणसूत्र संरचना में प्राय: किसी तरह का परिवर्तन नहीं होता है । परन्तु यदाकदा गुणसूत्र संरचना में परिवर्तन (प्राकृतिक या कृत्रिम अवस्था में) मिलता है । इस परिवर्तन को गुणसूत्रीय विपथन अथवा परिवर्तन

(alteration) कहते हैं । गुणसूत्र के खण्ड की कमी विलोपन (deletion), किसी गुणसूत्र में स्थित किसी जीन का एक से ज्यादा बार उपस्थित होना द्विगुणन (duplication), गुणसूत्र का एक अन्तराली खण्ड गुणसूत्र पर 180 से घूमने के बाद वापस जुड़ना प्रतिलोमन तथा एक गुणसूत्र का खण्ड दूसरे गुणसूत्र पर स्थानान्तरित होना स्थानान्तरण (translocation) कहलाता है ।

किसी जीव में दो या दो से ज्यादा जीनोम (genome) अथवा संजीनों का मिलना बहुगुणिता (polyploidy) कहलाता है । पादपों में यह सामान्यत: पायी जाती है जबकि जन्तुओं में बहुगुणिता बहुत कम देखने को मिलती है । किसी जाति विशेष में उपस्थित निश्चिंत द्विगुणित गुणसूत्रों की संख्या में भिन्नता विषमगुणिता (heteroploidy) कहलाती है । एक पूर्ण द्विगुणित समुच्चय (set) में आंशिक रूप से गुणसूत्र घट अथवा बढ़ जाते हैं तो इसे न्यून बहुगुणिता (aneuploidy) कहलाती है । इसके विपरीत किसी जीव में दो या दो से अधिक जीनोम का मिलना बहुगुणिता कहलाता है । दो से अधिक समान गुणसूत्रों का समुच्चय मिलना स्वबहुगुणिता (autopolyploidy) कहलाता है जबकि किसी जीव में अलग - अलग प्रकार के गुणसूत्रों का समुच्चय पाया जाना परबहुगुणिता (allopolyploidy) कहलाता है ।

4.2 गुणसूत्रीय संरचना में परिवर्तन (Chromosomal Alterations)

प्रत्येक जीव में गुणसूत्रों की संरचना तथा संगठन विशेष प्रकार का होता है । गुणसूत्रों में जीन (gene) रेखीय (linear) क्रम में व्यवस्थित होते हैं । प्राकृतिक अथवा कृत्रिम अवस्थाओं में इन गुणसूत्रों की संरचना परिवर्तित हो सकती है जिससे जीव के आकार तथा कार्य में भी बदलाव आ जाता है । गुणसूत्रीय संरचना के परिवर्तन या बदलाव को गुणसूत्रीय परिवर्तन (chromosomal alternation) अथवा गुणसूत्रीय विपथन (chromosomal abbreviation) कहते हैं । गुणसूत्रीय परिवर्तन दो प्रकार के होते हैं (चित्र 4.1) - (A) अन्त:गुणसूत्रीय परिवर्तन (B) अन्तर गुणसूत्रीय परिवर्तन

(A) **अन्त:गुणसूत्रीय परिवर्तन** (Intrachromosomal Changes). एक ही गुणसूत्र में होने वाले परिवर्तन अन्त:गुणसूत्रीय परिवर्तन कहलाते हैं । ये परिवर्तन भी निम्न प्रकार के होते हैं -

4.2.1 विलोपन (Deletion)

किसी गुणसूत्र से बड़े या छोटे अकेन्द्रकीय खण्ड की कमी अथवा हानि होना विलोपन कहलाता है । इसे हीनता भी कहते हैं । यदि किसी गुणसूत्र के एकल खण्ड के अन्तस्थ भाग की कमी होती है तो इसे अन्तस्त हीनता (terminal deletion) कहते हैं जबकि बीच अथवा अन्तर्वेशी खण्ड

का दो भागों में बटना या टूटना अन्तराली (interstitial) हीनता कहलाती है । चूंकि इस प्रकार

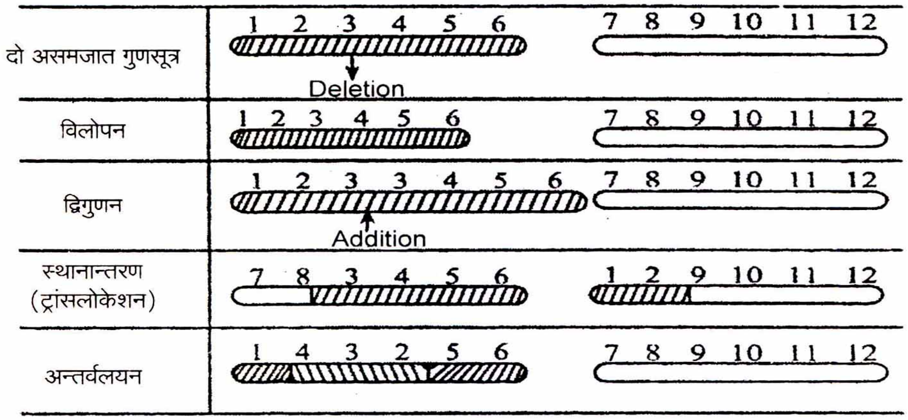

चित्र 4.1 गुणसूत्र संरचना में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन

का टूटा हुआ खण्ड अकेन्द्रीय (acentric) होते हैं अत: तर्कु तन्तु के बिना जुड़े पश्चावस्था (anaphase) की गुणसूत्रीय गति में भाग नहीं लेते हैं तथा अंतिम रूप में केन्द्रक में विघटित हो जाता है । इस प्रकार छोटे -छोटे विलोपन को विषमयुग्मजी दशा अर्थात् जब हीनता दोनों समजात गुणसूत्रों में किसी भी एक में होती है तो जीव उसे सहन कर सकता है परन्तु यदि लुप्त होने वाला खण्ड परिमाप में बड़ा हो तो उस पर लगी हुई जीन की कमी के कारण ही हीनता घातक होती है । यह ड्रोसोफिला, मनुष्य तथा मक्का में मिलती है । विषम युग्मनजी (heterozygous) हीनताओं को अर्द्धसूत्रण के दौरान देखा जा सकता है । समजात गुणसूत्र जब जोड़े बनाते हैं तो सामान्य समजात (homologous) गुणसूत्र में लुप्त टुकड़े के प्रतिरूप को युगलित होने हेतु हीनता वाले गुणसूत्र पर कुछ नहीं मिलता है । इसके विपरीत यदि हीनता अन्तस्थ हो तो प्रतिरूप एक अयुगलित सिरे के रूप में रहती है । यदि हीनता अन्तराली हो तो यह एक पाश (loop) का निर्माण करती है जिसे स्थूल पट्ट (pachytene) अवस्था में देख सकते हैं (चित्र 4.2) । अन्तराली अथवा अन्तराकाशी हीनता सामान्य रूप से मिलती है जबकि अन्तस्थ हीनता मक्का में

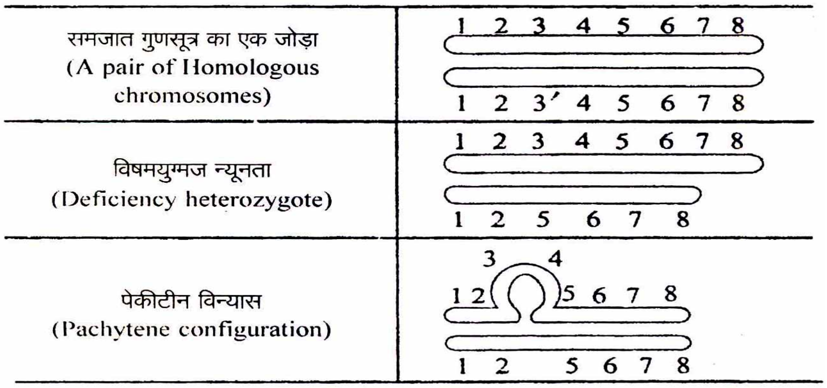

चित्र 4.2 : एक हीनता विषमयुग्मनज में गुणसूत्र का युग्मन

देखी गई । स्टैडलर (Stadler, 1941) ने पराबैंगनी किरणों द्वारा मक्का में अन्तस्थ हीनता उत्पन्न की जबकि एक्सरे (x-ray) द्वारा अन्तराली हीनता उत्पन्न की जा सकती है । ड्रासोफिला के लार ग्रंथि (salivary gland) क्रोमोसोम में पाश हीनता के स्थान पर दिखाई देते हैं क्योंकि

इस तरह के गुणसूत्र युग्मन की स्थायी अवस्था में रहते हैं । हीनताओं के अध्ययन द्वारा ड्रोसोफिला के लार ग्रंथि गुणसूत्रों में जीन का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है ।

प्रभाव (Effect): हीनता का जीव पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है क्योंकि इसमें कुछ जीन की कमी हो जाती है । विषमयुग्मकी अवस्था में छोटी हीनताओं को जीव सहन कर लेता है । इसके विपरीत शरीर क्रियात्मक (physiological) हीनतायें सहन नहीं हो पाती है फलस्वरुप जीव मर जाता है । वंशागति में भी हीनतओं का प्रभाव मिलता है । हीनता होने पर एक अप्रभावी (recessive) युग्मविकल्पी, प्रभावी युग्म विकल्पी (dominant allele) के रूप में कार्य करते हैं इसलिए इसे आभासी प्रभाविता (pseudo-dominance) कहते हैं । मनुष्य में गुणसूत्र 5 में खण्ड का विलोपन " क्राई डू चेट सिन्ड्रोम " पैदा करता है । इसमें बिल्ली जैसे म्याऊं (cat like cry) करने वाले सिन्ड्रोम से ग्रसित बच्चों में सिर छोटा निम्न मानसिक शक्ति तथा बिल्ली की तरह रोने का गुण आ जाता है । इसी प्रकार वाल्टजिंग चूहे (waltzing mice) में जीन 'V' के क्षेत्र में हीनता के कारण तंत्रिकायें असमान्यता उत्पन्न करती है ।

4.2.2 द्विगुणन (Duplication)

द्विगुण में गुणसूत्र का एक भाग द्विगुणित हो जाता है । अर्थात् सामान्य गुणसूत्र में गुणसूत्र का एक अन्य भाग जुड़ जाता है । द्विगुणन यदि दोनों समजात गुणसूत्रों में से केवल एक ही गुणसूत्र पर हो तो इसमें भी अर्द्धसूत्री विभाजन के अन्तर्गत स्थूलपट्ट अवस्था में भी वह लक्षण मिलता है जो हीनता की दशा में मिलता है । अर्थात् इसकी एक विशिष्ट युगली (pairing) पर एक पाश देख सकते हैं ।

एक गुणसूत्र खण्ड का द्विगुणन निम्न प्रकार है

(i) **निकटवर्ती अनुक्रमी द्विगुणन** (Tandom duplication) : इस प्रकार के द्विगुणन में अतिरिक्त भाग की अपने सामान्य स्थल के ठीक बाद में पुनरावृत्ति होती है । इसमें जो खण्ड गुणसूत्र से जुड़ता है उसमें जीन समानक्रम में लगे रहते हैं ।

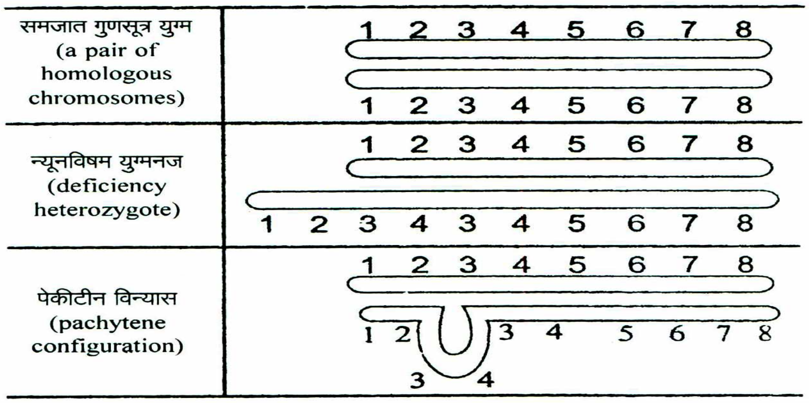

चित्र 4.3 A : द्विगुणन विषमयुग्मनज में गुणसूत्र का युग्मन

(ii) विस्थापित अनुक्रमी द्विगुणन (Displaced tandem duplication) : एक ही भुजा पर इस प्रकार के द्विगुणन में अतिरिक्त खण्ड अपने सामान्य स्थान से थोड़ी दूर पर स्थित

होता है, यह द्विगुणन में एक ही गुणसूत्र की एक ही भुजा में विस्थापित स्थिति में जुड़ने से होता है ।

(iii) विस्थापित अनुक्रमी द्विगुणन (दूसरी भुजा पर) : इस प्रकार में एक ही गुणसूत्र की अन्य भुजा में जुड़ने से द्विगुणन होता है ।

(iv) अन्य गुणसूत्र में द्विगुणन (Duplication on different chromosome) : इस प्रकार के द्विगुणन में गुणसूत्रीय खण्ड असमजात (non homologous) गुणसूत्र से जुड़ जाता है ।

(v) प्रतिलोम अनुक्रमी द्विगुणन (Reverse Tandem Duplication) : जब किसी गुणसूत्र में द्विगुणित भाग में जीनों का क्रम उल्टा हो जाता है तब इसे प्रतिलोम अनुक्रमी द्विगुणन कहते हैं । गुणसूत्रों में होने वाला द्विगुणन जीवों हेतु हीनता की तरह घातक नहीं होता बल्कि जीवों में अप्रभावी जीनों की कमी से होने वाले प्रभाव को रोकता है । द्विगुणन के कारण नया आनुवांशिक पदार्थ का विकास होता है तथा जीवों में लक्षणप्ररूपी (phenotype) प्रभाव दिखाई देता है । उदाहरण के तौर पर ड्रोसोफिला में प्रगुणसूत्र पर स्थित नेत्र आकार का जीन द्विगुणन को दर्शाता है । इसमें सामान्य नेत्र दीर्घवृत्तीय (ellipsoidal) होते हैं जबकि नेत्र जीन के द्विगुणन के कारण मक्खियों में दण्ड नेत्र 2 (bar eye) मिलते हैं । द्विगुणन जीवों में कम घातक हैं ।

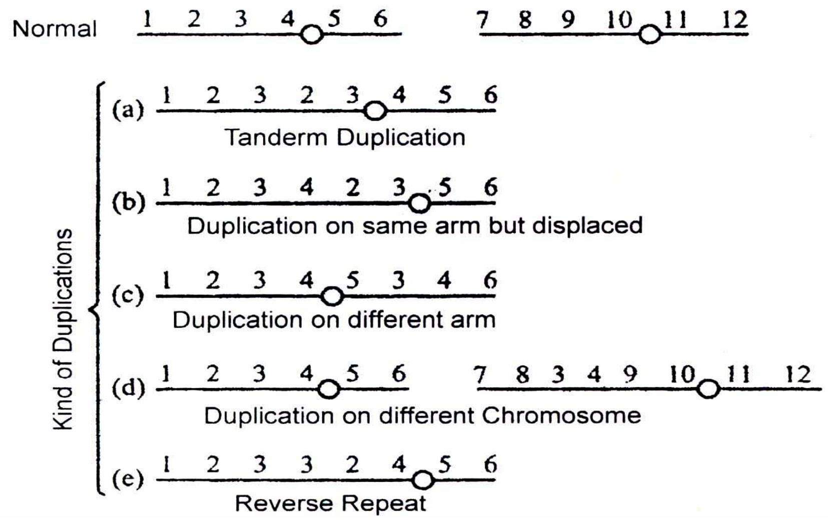

चित्र 4.3 B : गुणसूत्रों में विभिन्न प्रकार के द्विगुणन

4.2.3 प्रतिलोमन (Inversion)

प्रतिलोमन में गुणसूत्र का एक भाग उल्टे क्रम में पुन:व्यवस्थित हो जाता है । इसमें गुणसूत्र दो बिन्दुओं पर खण्डित हो जाता है । यह टूटा हुआ खण्ड 180^0 पर घूम जाता है तथा घूमे हुए भाग पुन: मिल जाते हैं । इस प्रकार जीन क्रम व्युत्क्रमित हो जाता है । यह दो प्रकार का होता है-

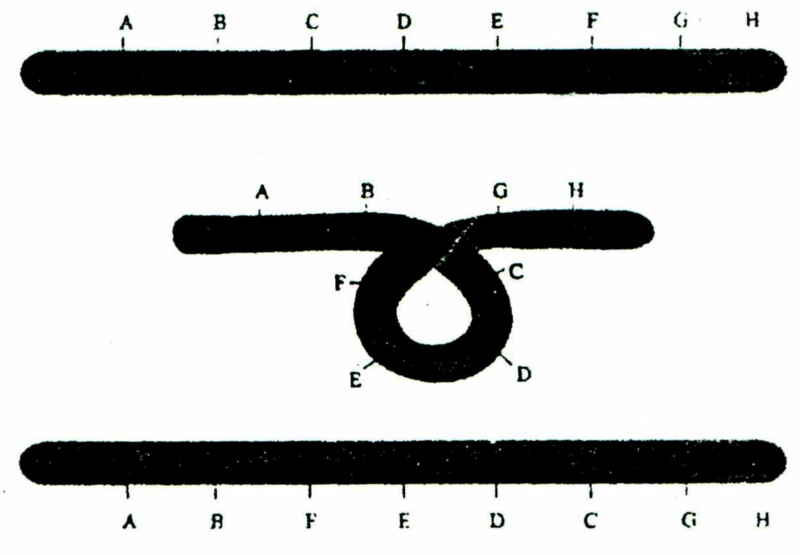

चित्र 4.4 : एक गुणसूत्र में प्रतिलोमन

(i) परिकेन्द्री (Pericentral) : इस तरह के प्रतिलोमन में प्रतिलोमित खण्ड़ में सेन्ट्रोमीयर सम्मिलित रहता है ।

(ii) पराकेन्द्री (Paracentral) : इस प्रकार के प्रतिलोमन में सेन्ट्रीमीयर प्रतिलोमन खण्ड़ के बाहर लगा रहता है ।

विषमयुग्मनजी (heterozygous) प्रतिलोम में दो समजात गुणसूत्रों में से एक गुणसूत्र में प्रतिलोमन खण्ड़ होता है । अत: इसमें सामान्य युग्मन की संभावना नहीं रहती है । इसमें भिन्न - भिन्न प्रकार के परिणाम मिलते हैं । ऐसे परिणामों की भिन्नता प्रतिलोमन की स्थिति उसमें सम्मिलित काइएज्मेटा की उपस्थिति, जीन विनिमय (cross over) की संख्या तथा युग्मकों के अर्द्धसूत्री उत्पादों के वितरण पर निर्भर करते हैं । विषमयुग्मजी प्रतिलोमन भी दो प्रकार के होते हैं-

(i) पराकेद्री प्रतिलोमन एकल जीन विनिमय सहित (Paracentric Inversion with single Cross over) : इसमें प्रतिलोमन द्वारा बने युग्मन सामान्य तरह के होते हैं । प्रतिलोमन क्षेत्र में सिर्फ एकल जीन विनिमय के परिणामस्वरूप दो सेन्ट्रीमीयर युक्त एक द्विकेन्द्रीक (dicentric) गुणसूत्र तथा एक सेन्ट्रोमीयर रहित अकेन्द्रीक (acentric) गुणसूत्र बनते हैं शेष बचे दो अद्धगुणसूत्रों में से एक सामान्य प्रकार का होता है जबकि दूसरे में प्रतिलोमन मिलता है । पश्चावस्था I (anaphare I) में इन द्विकेन्द्रीक तथा अकेन्द्रीक अद्धगुण सूत्र को एक सेतू तथा एक टुकड़े के रूप में देखा जा सकता है ।

(ii) परिकेन्द्री प्रतिलोमन (pericentral Inversion) : इस तरह के प्रतिलोमन में प्रतिलोमित खण्ड़ के अन्दर ही सेन्ट्रोमीयर उपस्थित रहता है । परिकेन्द्री प्रतिलोमन में भी स्थूलपट्ट (pachytene) अवस्था में गुणसूत्रों का विन्यास पराकेन्द्री प्रतिलोमन जैसा ही होता है परन्तु जीन विनिमय उत्पाद तथा अर्द्धसूत्री विभाजन के बाद वाली अवस्थाओं में गुणसूत्रों का विन्यास पराकेन्द्री प्रतिलोमक से अलग तरह का होता है । पराकेन्द्री प्रतिलोमन के अर्द्धसूत्री

विभाजन से बनने वाले चार अर्द्धगुणसूत्रों में से दो द्विगुणन तथा हीनतायें(deletions) होंगी।

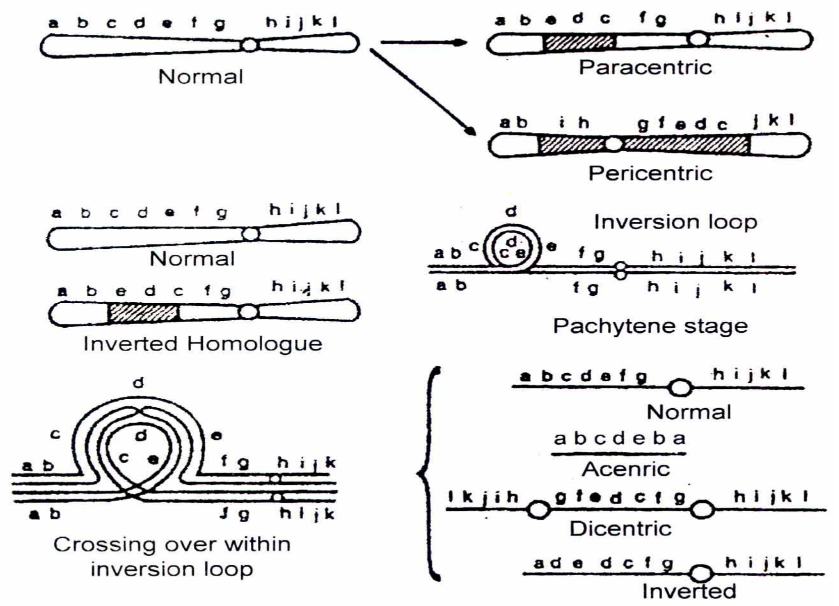

चित्र 4.5 A : प्रतिलोम के प्रकार एवं प्रकेन्द्रीय प्रतिलोमन एकल जीन -विनिमाया सहित

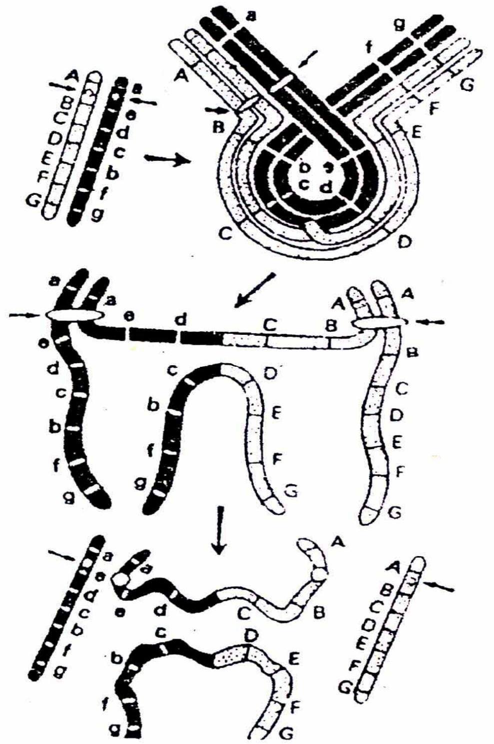

चित्र 4.5 A : प्रकेन्द्री प्रतिलोमन की विभिन्न अवस्थाएँ एवं विनिमाया की क्रियाविधि

लेकिन इसमें द्विकेन्द्री सेतु (dicentire bridge) तथा अकेन्द्री खण्ड़ नहीं मिलते हैं । साथ ही साथ पराकेन्द्री प्रतिलोमन में यदि गुणसूत्र के टूटने के स्थान (breaks A &

B) सेन्ट्रोमीयर से समान अथवा बराबर दूरी पर नहीं होते हैं । ऐसी स्थिति में गुणसूत्र की आकृति में परिवर्तन आ जाता है । एक मध्यकेन्द्री (metacentric) गुणसूत्र उपमध्यकेन्द्री (sub metacentric) गुणसूत्र में बदल जाता है अथवा इसका उल्टा भी बनना संभव है ।

प्रतिलोमनों के अनुवांशिक परिणाम (Genetic Consequences Of Inversion) : यह स्पष्ट है कि परिकेन्द्री प्रतिलोमन द्वारा निर्मित दो अर्द्धसूत्रों (chromatids) में द्विगुणन तथा हीनताओं के मिलने के कारण जिन युग्मनों (pairs) में ये गुणसूत्र उपस्थित रहेंगे वह प्रकार्य (functional) नहीं होते हैं । इतना ही नहीं इनमें पर्याप्त युग्मकी (gametics) तथा युग्मनजी घातकता (lethality) मिलती है । पौधों में पर्याप्त पराग बन्धयता (pollenstelity) पायी जाती है क्योंकि एकल जीन विनिमय के उत्पाद (product) प्रकार्य (functional) नहीं होते हैं । अत : संतति में द्विक जीन विनिमय (double cross over) ही प्राप्त होते हैं जिसमें दो जीनों के बीच पुर्नयोजन की मात्रा काफी घट जाती है, इसलिए प्रतिलोमक जीन विनिमय दमनकारी (supressor) कहलाते हैं ।

(B) अन्तर गुणसूत्रीय परिवर्तन (Inter Chromosomal Changes) : असमजात गुणसूत्रों में यदि खण्ड्न होता है तथा उनके खण्ड आपस में स्थानान्तरित हो जाते हैं तो यह परिवर्तन अन्त: गुणसूत्रीय परिवर्तन कहलाता है । स्थानान्तरण (translocation) इसका उदाहरण है ।

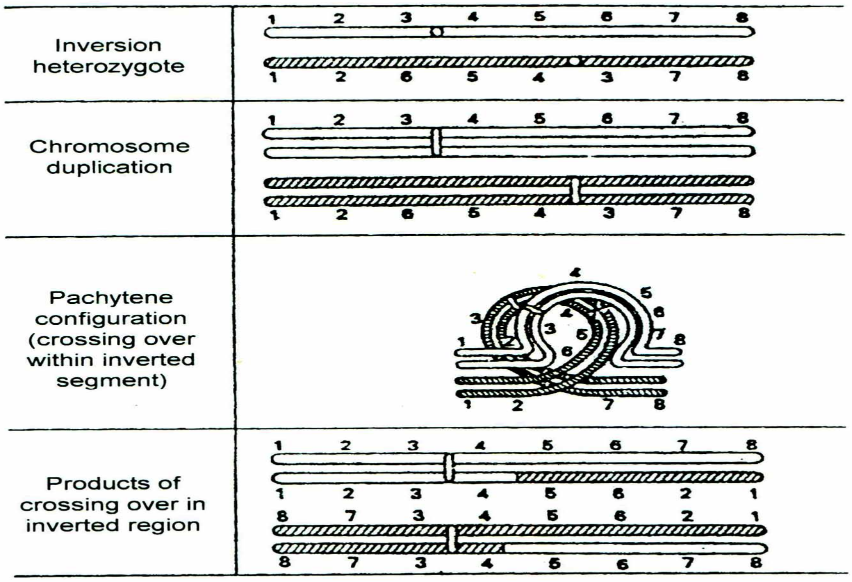

चित्र 4.6 : एक परिकेन्द्री प्रतिलोमन विषययुग्मजी

4.2.4 स्थानान्तरण (Translocation)

गुणसूत्र का टुकड़ा (खण्ड़) दूसरे गुणसूत्र पर स्थानान्तरित हो जाता है । एक पार्श्विक (unilateral) स्थानान्तरण में एक गुणसूत्र से गुणसूत्र खण्ड़ दूसरे गुणसूत्र में जाता है । परन्तु दोनों दिशाओं में आदान प्रदान नहीं होता है । इसके विपरीत द्विपार्श्विक (bilateral)

स्थानान्तरण में गुणसूत्र खण्ड़ों का आदान प्रदान दोनों दिशाओं में होता है । यदि दो असमजात गुणसूत्रों में पारस्परिक गुणसूत्रों के खण्ड़ों का स्थानान्तरण हो तो यह पारस्परिक स्थानान्तरण(reciprocal translocation) कहलाता है ।

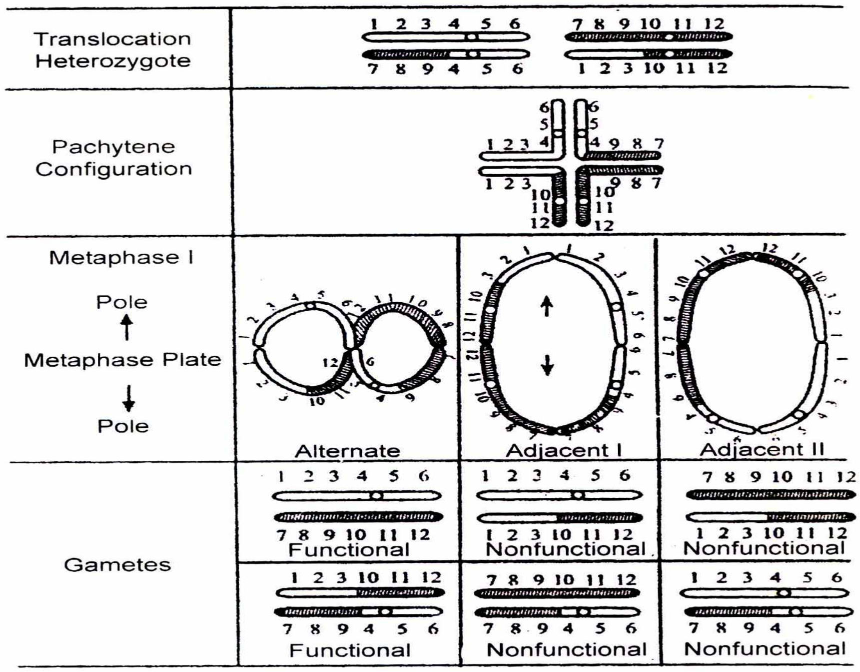

चित्र 4.7 : स्थानान्तरण विषययुग्मनज में गुणसूत्र युग्मन (pairing) एवं विभिन्न प्रकार के बने युग्मक

1. **विषमयुग्मनज स्थानान्तरण** (Hetero) : यदि गुणसूत्र के दोनों समुच्चयों में से किसी एक में स्थानान्तरण उपस्थित हो तो इसे विषम युग्मनज स्थानान्तरण कहते हैं । जिन पौधों में इस प्रकार का स्थानान्तरण होता है उनमें स्थानान्तरण में भाग लेने वाले गुणसूत्रों के बीच सामान्य युग्मन द्वारा युगलियों का बनना संभव नहीं होता है । गुणसूत्रों के समजातीय खण्ड़ों के मध्य सामान्य युग्मन द्वारा युगलियो का बनना संभव नहीं है । इन गुणसुत्रों के समजातीय खण्ड़ों के बीच सामान्य युग्मन के कारण स्थूलपट्ट (pachytee) अवस्था में एक क्रासित आकृति दिखाई देती है जिसमें चार गुणसूत्र सम्मिलित रहते हैं । मध्यावस्था I (metaphare) के अन्तर्गत इन चारों गुणसूत्रों द्वारा एक चतु :संयोजन (quadrivalent) बनता है जो विभिन्न कोशिकाओं में निम्न प्रकार के विन्यास प्रदर्शित करता है ।

(a) एकान्तर (Alternate): इस तरह के अभिविन्यास में एकान्तर गुणसूत्र एक ही ध्रुव की तरफ अभिविन्यासित होत हैं । यह आठ अंक (8) की तरह दिखाई देता है ।

(b) आसन्न I (Adjacent I): इसमें असमजातीय सेन्ट्रोमीयर (non homologous centromeres) वाले नजदीकी गुणसूत्र एक ही ध्रुव की तरफ अभिविन्यासित रहते हैं तथा समजातीय सेन्ट्रोमीयर वाले गुणसूत्रों का अभिविन्यास विपरीत ध्रुवों पर होता है । चारों गुणसूत्र एक छल्ला (ring) बनाते हैं ।

(c) आसन्न II (Adjacent II) इस में समजातीय सेन्ट्रोमीयर वाले नजदीकी गुणसूत्र एक ही ध्रुव पर अभिविन्यासित रहते हैं तथा चारों गुणसूत्र एक वलय या छल्ले के रूप में दिखते हैं। इनके कारण निम्न तरह के युग्मक बनेंगे |

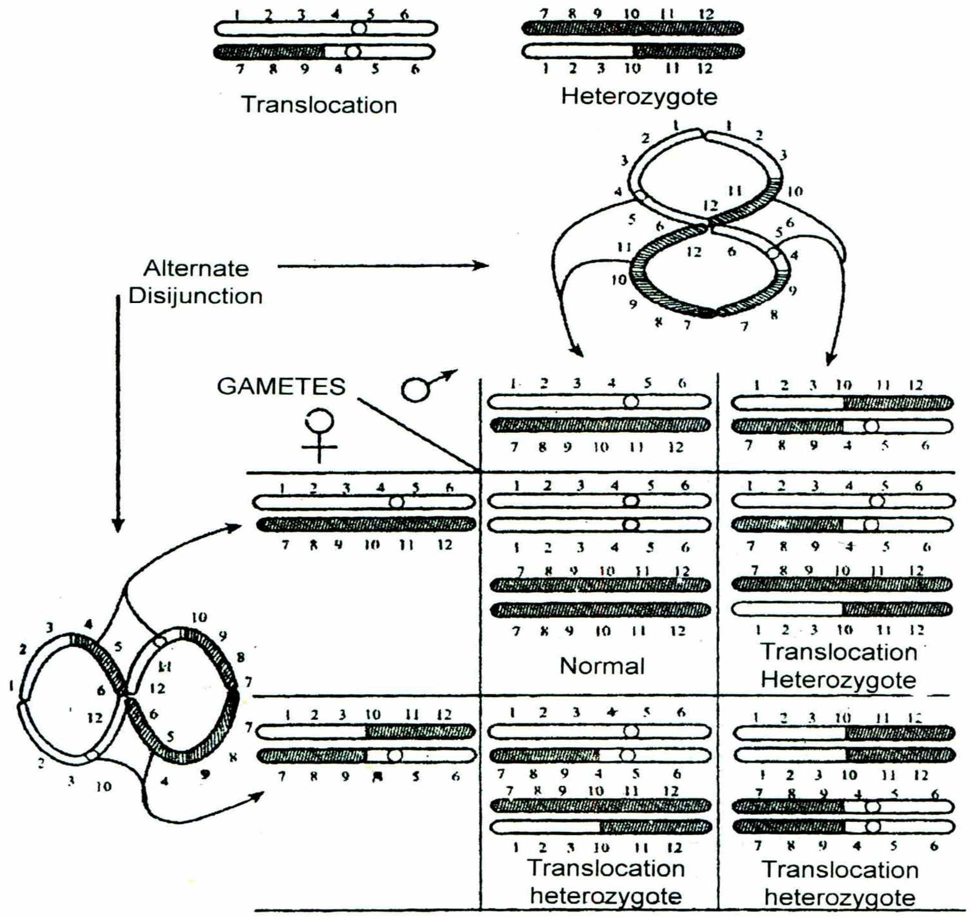

चित्र 4.8 : एक स्थानान्तरण विषययुग्मनज में स्वयं निषेचन के कारण प्रपट विविध प्रकार की संताने

(i) एकान्तर वियोजन (Disjunction) होने से प्रकार्यात्मक युग्मक निर्मित होते हैं।

(ii) आसन्न I व आसन II दशाओं में अप्रकार्य (non functional) या बूध्य (sterile) युग्मक बनते हैं क्योंकि उनमें मिलने वाले गुणसूत्रों में हीनता या द्विगुणन होता है । स्थानान्तरण इनोथेरा (Oenothera) तथा ट्रेडस्केंशिया (Tradescantia) में देखी गई ।

2. **समयुग्मनज स्थानान्तरण (Homozyous Translocation):** चूंकि इस तरह के स्थानान्तरण में अर्द्धसूत्री विभाजन सामान्य रहता है अत: इन्हें कोशिका दृष्टि (cytologically) से पहचान करना मुश्किल है ।

4.3 गुणसूत्रों की संख्या में परिवर्तन (Changes in Chromosome Number)

गुणसूत्रों की संख्या में परिवर्तन (Variations in Chromosome Number)

प्रत्येक जाति की कायिक कोशिका(somatic cells) व युग्मकों (gametes) में गुणसूत्रों की संख्या निश्चित होती है । एक युग्मक में गुणसूत्रों की संख्या अगुणित ((haploid) या एकगुणित (monoploid) कहलाती है । इसे 'n' द्वारा प्रदर्शित करते हैं । जब नर व मादा युग्मक के मिलने से बने युग्मनज (zygote) में गुणसूत्रों के दो समुच्चय पाये जाते हैं । गुणसूत्रों की यह संख्या द्विगुणित संख्या कहलाती है । इसे '2n' द्वारा प्रदर्शित करते हैं । इस प्रकार युग्मनज में पाये जाने वाले द्विगुणित समुच्चय में प्रत्येक प्रकार का गुणसूत्र दो बार उपस्थित है । अत : एकसमान गुणसूत्रों के एक जोड़े में प्रत्येक सदस्य दूसरे का समजात (homologous) है, जिसमें से एक सदस्य मादा जनक से तथा दूसरा नर जनक से मिलता होता है । उदाहरणार्थ मटर के पौधे की कायिक कोशिका में 14 (2n) गुणसूत्र होते हैं । अत : इसमें समजात गुणसूत्रों के सात जोड़े पाये जाते हैं । इनमें से यद्यपि संरचनात्मक रूप से 7 गुणसूत्र एक दूसरे से भिन्न होते हैं किन्तु वे आपस में मिलकर ही कार्य करते हैं तथा गुणसूत्रों में की यह संख्या प्रारम्भिक समुच्चय (basic set) बनाती है जिसे जीनोम (genome) कहते हैं, इसे 'x' द्वारा दर्शाते हैं ।

एक जाति विशेष में निश्चित द्विगुणित गुणसूत्रों की संख्या में भिन्नता विषमगुणिता (heteroploidy) कहलाती है । यह मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है (चित्र 4.9) ।

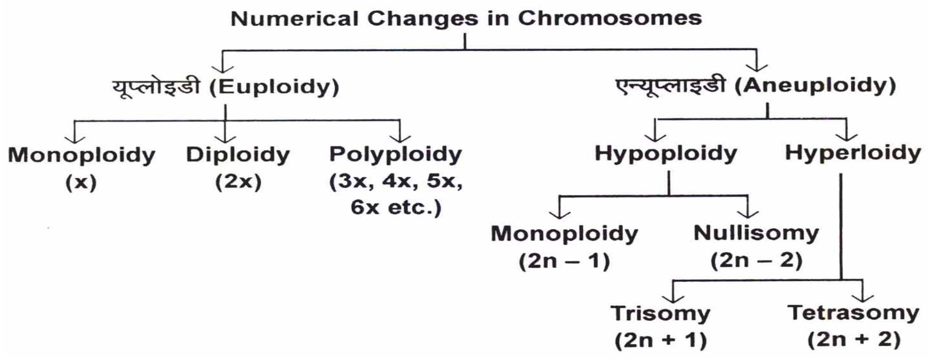

चित्र 4.9 : गुणसूत्रों में विभिन्न प्रकार के संख्यात्मक परिवर्तन

4.3.1 न्यून बहु गुणिता (Aneuploidy)

एक पूर्ण द्विगुणित समुच्चय में आंशिक रूप से गुणसूत्र बढ़ व घट जाते हैं तो इसे न्यूनबहु गुणिता कहते हैं । बढ़ने या घटने वाले गुणसूत्रों की संख्या प्रारम्भिक समुच्चय (x) का गुणन नहीं होती है -

यह दो प्रकार की होती है-

1. अधिगुणिता (Hyperploidy):

जब द्विगुणित जीनोम (2*n*) में एक अथवा एक से ज्यादा गुणसूत्र बढ़ जाते हैं तो इसे अधिगुणिता कहते हैं । यह दो प्रकार की है -

(a) **एकाधिसूत्रता** (Trisomy,2*n*+1). इस प्रकार की अधिगुणिता में केवल एक गुणसूत्र की अधिकता होती है । अत : एकाधिसूत्री (trisomy's) जीवों में गुणसूत्रों की संख्या को 2*n* +1 द्वारा प्रदर्शित करते हैं, क्योंकि यह अतिरिक्त गुणसूत्र एक अगुणित घटक (haploid component) के विभिन्न गुणसूत्रों में से कोई भी एक हो सकता है, अत : किसी जाति विशेष में जितनी अगुणित गुणसूत्र संख्या होगी उतने ही एकाधिसूत्री बन सकते हैं ।

एकाधिसूत्री तीन प्रकार के होते हैं (चित्र 4.10)

(i) **प्रारम्भिक एकाधिसूत्री** (Primary trisomics): इनमें अतिरिक्त गुणसूत्र किसी एक गुणसूत्र की तरह होता है ।

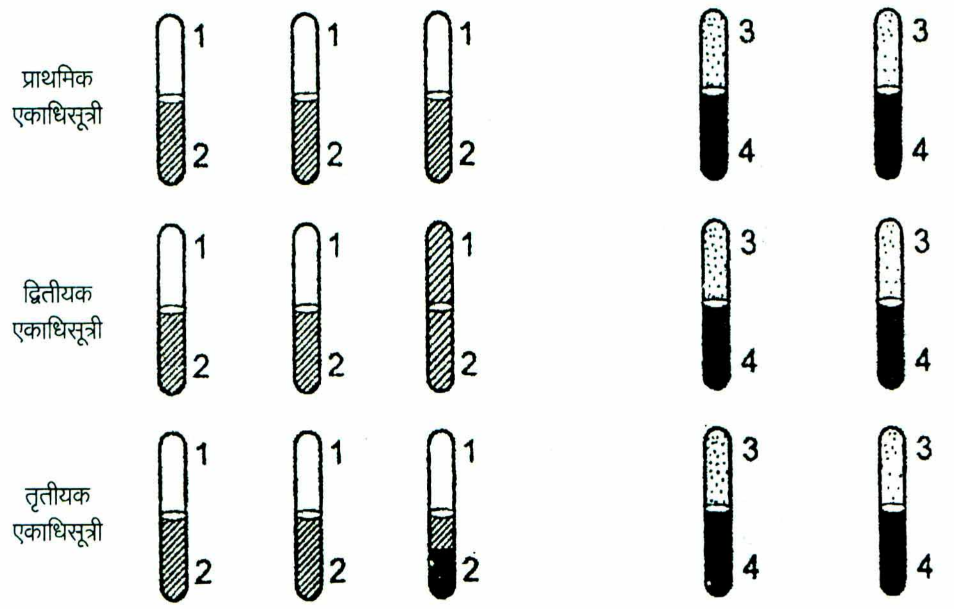

चित्र 4.10 : एकाधिसूत्रीय के प्रकार

(ii) **द्वितीयक एकाधिसूत्री** (Secondary trisomics) :जब अतिरिक्त गुणसूत्र एक समगुणसूत्र (isochromosome) होता है जिसमें दोनों भुजाएँ समान होती हैं ।

(iii) **तृतीयक एकाधिसूत्रीसूत्री** (Tertiary trisomics) :इनमें अतिरिक्त गुणसूत्र दो गुणसूत्रों में खण्डों के परस्पर स्थानान्तरण द्वारा बनता है ।

एकाधिसूत्री (trisomics) प्रकृति मैं विभिन्न जीवों में पाये जाते हैं । इसका प्रमुख उदाहरण मानव में पाये जाने वाले डाउन संलक्षण (down's syndrome) या मंगोलियता (monogolism) का लक्षण है जो बच्चों में सामान्य है । इस असामान्यता से बच्चों में मानसिक मंदन, छोटा शरीर, सूजी हुई जीभ तथा नेत्र पलक (eyelids) वलन मंगोल जाति के लोगों के समान होते हैं । इस प्रकार ब्लैक्सली एवम् सहयोगियों (Blakeslee et al., 1924) ने धतूरा में फल के परिमाण, आकृति व अन्य आकारिक लक्षणों में सामान्य लक्षणों से विभिन्नताओं का कारण एकाधि -सूत्रता

(trisomy) बताया । धतूरा स्ट्रेमोनियम में गुणसूत्रों की सामान्य संख्या (2*n* = 24) होती है । लेकिन धतूरा में (उत्परिवर्ति प्रकारों में) 25 गुणसूत्र देखे गये । अर्धसूत्री विभाजन की मध्यावस्था में 11 जोड़े गुणसूत्र सामान्य थे एक जोड़ा गुणसूत्र एकाधिसूत्री था ।

(b) **द्विअधिसूत्रता** (Tetrasomy,2*n* + 2) : इस प्रकार की अधिगुणिता में द्विगुणित जीनोम में, समजात गुणसूत्रों के एक युग्म की अधिकता होती है । इसे 2*n* + 2 द्वारा दर्शाते हैं । द्विअधिसूत्रियों (tetrasomics) में एक विशेष गुणसूत्र चार बार पाया जाता है । इसे 2*n* + 1 द्वारा निरूपित नहीं कर सकते हैं, क्योंकि इस सूत्र द्वारा द्विएकाधिसूत्रों (double trisomics) को प्रदर्शित करते हैं । अर्धसूत्री विभाजन के समय द्विअधिसूत्रियों (tetrasomics) के चारों समजात गुणसूत्र चतुर्संयोजक (quadrivalent) बनाते हैं । यदि इनका वितरण नियमित (दो के समूह में) होता हैं तो आनुवंशिक तंत्र सामान्य रूप से काम करता है । उदाहरण-गेहूँ (wheat) में 21 द्विअधिसूत्री ।

2. अधोगुणित (Hypoploidy)

जब एक द्विगुणित समुच्चय (2*n*) में से एक अथवा एक से अधिक गुणसूत्र कम हो जाते हैं तो इसे अधोगुणिता (hypoploidy) कहते हैं । इसके दो प्रकार निम्न हैं -

(a) **एकन्यूनसूत्रता** (Monosomy. 2*n*-1) : जब एक द्विगुणित समुच्चय में केवल एक गुणसूत्र की कमी होती हैं तो यह न्यूनसूत्रता कहलाती हैं । एक न्यूनसूत्रता को हम इस प्रकार समझ सकते हैं । माना कि किसी जीव में द्विगुणित समुच्चय (2*n*) में चार जोड़ी गुणसूत्र हैं । इनमें से यदि किसी कारण से एक गुणसूत्र घट जाये तो, इसमें गुणसूत्रों के तीन जोड़ें तो सामान्य होंगे तथा एक एकल गुणसूत्र होगा । यह जीव एकन्यूनसूत्री (monosomic) कहलाता है । एकन्यूनसूत्री असामान्य प्रकार का अर्धसूत्रण दर्शाता हैं, क्योंकि एकन्यूनसूत्री जीवों में एक पूर्ण गुणसूत्र की कमी होती है इसलिए इनमें दो प्रकार के युग्मकों का निर्माण होता है । कुछ में गुणसूत्रों की संख्या (*n*) व दूसरों में (*n*-1) होती है । एकल गुणसूत्र जिसका कोई समजात नहीं होता है वह पश्चावस्था में विलुप्त हो जाता है । जिन पौधों में (*n*-1) युग्मक होते हैं वे जीवित नहीं रहते । जबकि जन्तुओं में आनुवंशिक असन्तुलन होने के कारण उनकी जनन क्षमता घट जाती है । कुछ पौधों जैसे धतुरा में एकन्यूनसूत्री जीवित रहते हैं । सीयर्स 1948 ने ट्रिटिकम वलगोयर में 21 सम्भावित एकन्यूनसूत्री प्राप्त किये ।

(b) **द्विन्यूनसूत्रता** (Nullisomy 2*n*-2): वह जीव जिसमें समजातीय गुणसूत्रों के एक युग्म का अभाव होता है, द्विन्यूनसूत्री जीव (nullisomy) कहलाते हैं । इन्हें 2*n* -2 जीनोमिक सूत्र द्वारा निरूपित करते हैं । इनमें गुणसूत्र संख्या को 2*n*-1-1 न लिखकर 2*n*-2 लिखते है, क्योंकि 2*n*-1-1 सूत्र द्विएकन्यूनसूत्री के लिए लिखा जाता है । द्विनूलसूत्रीयों (nullisomics) में क्योंकि एक जोड़ी गुणसूत्र का पूर्ण अभाव होता है, अत: उन पर उपस्थित जीनों के अभाव के कारण ये सामान्य पौधों से कई लक्षणों में विभिन्नता रखते हैं । ये भी प्राय: एकन्यूनसूत्रियों के समान जीवित नहीं रहते हैं लेकिन द्विन्यूनसूत्री बहुगुणित जैसे हैक्साप्लोइड गेहूँ (6*x*-2) जीवित रह सकते हैं किन्तु इनमें भी जनन क्षमता कम होती है ।

जिन युग्मको में गुणसूत्रों की संख्या *n*-1 होती है उनके संयुग्मन से द्विन्यूनसूत्रियों का निर्माण होता है ।

न्यूनबहु गुणिता का उद्भव (Origin Aneuploids)

पौधों में न्यूनबहु गुणिता कई कारणों से हो सकती है । इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं -

1. प्रकृति में स्वत: ही पौधों में *n*+1 अथवा *n*-1 युग्मकों का निर्माण होता रहता है । यदि *n*+1 अथवा *n*-1 गुणसूत्र संख्या वाले युग्मक प्रगुणसूत्र संख्या वाले युग्मकों के सा थ संयोजित हो जाते हैं तो 2*n*+1 अथवा 2*n*-1 प्रकार
   के युग्मनज का निर्माण हो जाता है ।
2. त्रिगुणित (3*n*) पौधों में अधिकतर *n*+1 या *n*-1 प्रकार के युग्मकों का निर्माण होता है । जिनसे न्यूनबहु गुणिता संततियाँ प्राप्त होती है ।
3. अधिकतर टेट्रासोमिक (2*n*+2) पौधों में n+1 प्रकार के युग्मक पाये जाते हैं, जिनके संयोजन से ट्राइसोमिक (2*n*+1) प्रकार के युग्मनज बनते हैं ।
4. स्थानान्तरण विषमयुग्मनजों (translocation heterozygotes) में क्वाड्रीवेलेण्ट (quadrivalent) के चारों गुणसूत्रों का पृथक्करण के कारण *n*+1 तथा *n*-1 युग्मकों का निर्माण हो सकता है । जब ये युग्मक सामान्य युग्मक (*n*) से संयोजित होते हैं तो न्यूनबहु गुणिता पौधों का उद्भव होता है ।

4.3.2बहु गुणिता (Polyploidy)

किसी भी जीव में दो से आधिक सजीवों या जीनोम का पाया जाना बहु गुणिता कहलाता है । बहु गुणिता सामान्यत: पादपों में पायी जाती है, जन्तुओं में बहु त कम देखने को मिलती है । पुष्पीय पादपों की अधिकतर जतियों में बहु गुणित पायी जाती है (स्टेबिन्स,1950) गुलदाऊदी (Chrysanthemum),सोलेनम (Solanum) ब्रेसिका (Brassica), गैहूँ (Triticum) तथा निकोशिआना (Nicotiana) ऐसे पादप हैं जिनमें बहु गुणिता सामान्य रूप से पायी जाती है (चित्र 4.11) । काइसेन्थीमम में प्रारम्भिक गुणसूत्र संख्या 9 होती है । इसकी विभिन्न जातियों में 36,54,63,72 तथा 90 गुणसूत्र भी पाये जाते हैं ।

द्विगुणिता (2*n*) से बहु गुणिता दो कारकों द्वारा उत्पन्न होती है -

(i) युग्मक बनाने वाले ऊतकों की कोशिकाओं में गुणसूत्रों की संख्या में द्विगुणन होने के कारण ।

(ii) युग्मकों के निर्माण के समय गुणसूत्रों का अर्धसूत्रण नहीं होना ।

बहु गुणितों के प्रकार (Types Polyploids)

1. **स्वबहु गुणित** (Autopolyploids) : वे जीव जिनकी प्रत्येक कोशिका में दो से अधिक जीनोम या समजात गुणसूत्रों का समुच्चय पाया जाता है, स्वबहु गुणित कहलाते हैं । उदाहरणार्थ, यदि किसी द्विगुणित जाति में गुणसूत्रों के दो समान समुच्चय या संजीन AA हैं तो एक स्वत्रिगुणित (autotriploid) में तीन समान संजीन AAA तथा एक स्वचतुर्गुणित (autotetraploid) में इस प्रकार के चार संजीन होंगे AAAA (चित्र 4.11) ।

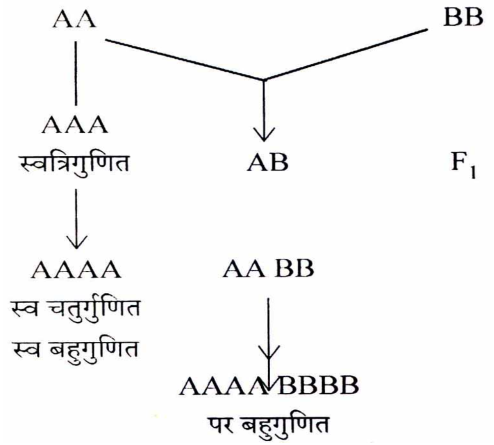

चित्र 4.11 : स्व एवं परबहु गुणित

2. **परबहु गुणिता** (Allopolyploids). जब दो विभिन्न जातियों से व्युत्पन्न F1 संकर संतति में गुणसूत्रों की संख्या को दुगुना करने के फलस्वरुप बहु गुणिता उत्पन्न की जाती हैं तो इसे परबहु गुणिता (allopolyploidy) कहते हैं । अत: जिन जीवों की कोशिकाओं में दो से अधिक विभिन्न जीनोम पाये जाते हैं परबहु गुणित (allopolyploids) कहलाते हैं । उदाहरण के तौर पर यदि दो विभिन्न जातियों में से एक जाति का जीनोम AA तथा दूसरी का BB है । यदि इन दो जातियों में संकरण कराया जाये तो F1 संतति में उत्पन्न होने वाले संकर में केवल एक A तथा एक B जीनोम होगा । इस F1 संकर संतति AB में यदि गुणसूत्रों को दुगुना कर दिया जाये तो एक चतुर्गुणित (tetraploid) की उत्पत्ति होगी जिसमें दो A और दो B जीनोम (AA,BB) होंगे (चित्र 4.11) । इस प्रकार की परबहु गुणिता को उभयद्‌विगुणिता (amphidiploidy) या परचतुर्गुणिता (alloteraploid) कहते हैं । यदि एक या दोनों जनक स्वयं भी बहु गुणित हों, तब ऐसे परबहु गुणितों का उभयबहु गुणित (amphipolyoliad) कहते हैं । जैसे-हेक्साप्लोइड गेहूँ (AABBDD) (चित्र 4.12) ।

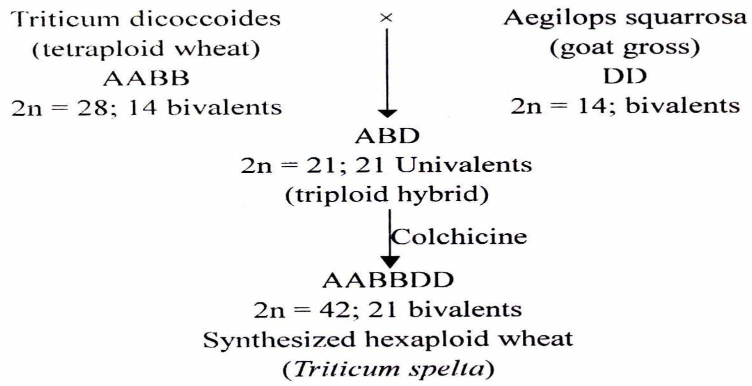

चित्र 4.12 षट्‌गुणित गेहूँ का कृत्रिम संश्लेषण

4.3.3 बहु गुणिता का कोशिका विज्ञान (Cytology of polyploidy)

क्योंकि एक स्वत्रिबहु गुणित (autotriploid) अपने सभी समजातों के लिए वास्तव नें एकाधिसूत्री (trisomic) होता हैं, अत इनमें अर्धसूत्रण के दौरान,एक त्रिसंयोजक विन्यास (trivalent configuration) अथवा एक द्विसंयोजक (bivalent) तथा एक संयोजक (univalent) हो सकते हैं । पश्चावस्था I (anaphase I) में त्रिसंयोजी एवम् एक संयोजी गुणसूत्रों का वितरण अनियमित होता है जिससे सभी सम्भावित प्रकार के युग्मकों में गुणसूत्रों की संख्या अगुणित (n) से द्विगुणित (2n) हो सकती है । इस प्रकार आनुवंशिक रूप से असन्तुलित युग्मकों का निर्माण होता है तथा स्वत्रिबहु गुणित में उच्च स्तर की ब्रध्यता पायी जाती है । जबकि एक स्वचतुर्गुणित (autotcetraploid) में प्रत्येक समजात चार बार प्रदर्शित होता है । यहाँ चतुर्सयोजन विन्यास (quadrivalent configuration) या दो द्विसंयोजक विन्यास (bivalents) या एक त्रिसंयोजक तथा एक एकसंयोजक या चार एक संयोजक बनते हैं । इनमें उर्वरता कुछ अधिक हो सकती है फिर भी द्विगुणितों (diploids) से कम होती है ।

इसी प्रकार एक परचतुर्गुणित (allotetraploid) में प्रत्येक गुणसूत्र जोड़े में उपस्थित होता है । यह द्विगुणित के समान सामान्य युग्मन दर्शाते हैं । उदाहरणार्थ A,A के साथ व B,B के साथ जोड़े बनाते हैं । इसे ऑटोसिन्डेसिस (autosyndesis) कहा जाता है । लेकिन विषमजात गुणसूत्रों (non-homologous chromosomes) जैसे A तथा B गुणसूत्रों में पूर्ण अथवा आंशिक युग्मन एलोसिन्डेसिस (allosyndesis) कहलाता है । दो विषमजात गुणसूत्रों में एक अथवा अधिक छोटे खण्ड़ आनुवंशिक रूप से समान हो सकते हैं । इस प्रकार के गुणसूत्रों वाले जीन सखण्ड परबहु गुणित (segmental allopolyploids) कहलाते हैं । ये विकासीय महत्व के है ।

परबहगुणिता के कुछ मुख्य उदाहरण (some examples of allopolyploidy)

(a) **रैफेनोब्रैसिका** (*Raphanobrassica*): एक रूसी वैज्ञानिक जी. डी. कार्पिचेन्क्रो (G.D Karpenchenko) ने सन् 1927 में एक कृत्रिम परबहु गुणित रैफेनोब्रैसिका उत्पन्न किया । इन्होंने मूली अथवा रैफेनस सैटाइवस (Raphanus sativus,2n=18) तथा गोभी अथवा ब्रेसिका ओलेरेसिया (Brassica aleracea,2n=18) के बीच संकरण द्वारा एक F1 संतति को प्राप्त किया, जो पूर्ण रूप से बन्ध्य थी । बन्ध्यता का मुख्य कारण गुणसूत्रों के बीच युग्मन नहीं होना था, क्योंकि रैफैनस सैटाइवस त था ब्रेसिका ओलेरैसिया के गुणसूत्र आपस में समजात नहीं थे । इन बन्ध्य F1 संकर संतति के पौधों मे कुछ में जनन क्षमता देखी गयी । जनन सूक्ष्म पौधों में 2n=36 गुणसूत्र पाये गये जिनमें अर्धसूत्री विभाजन के समय सामान्य युग्मन द्वारा 18 युगलियाँ (bivalents) देखे गये (चित्र 4.13)।

(b) **ट्रिटिकेल** (*Triticale*) : कृत्रिम परबहु गुणिता का एक अन्य उदाहरण ट्रिटिकेल है । इसे निर्मित करने के लिए चतुर्गुणित (2*n*=28) अ थवा षदगुणित ट्रिटिकम (*Titicum*- गेहूँ) का द्विगुणित (2*n*=14) राई Scale cerecale) से संकरण कराया जाता है (चित्र

4.14) । संकरण द्‌वारा व्युत्पन्न F1 संतति बध्य होती है । किन्तु कोलचिसिन (colchicine) द्‌वारा गुणसूत्रों का द्‌विगुणन प्रेरित किया जाता है, जिससे षट्‌बहुगुणित (allohexaploid) जाति ट्रिटिकेल उत्पन्न होती है । इन्हें और अधिक उन्नतिशील बनाने के लिए इनका पुन: राई (*Secale cereale*) के साथ संकरण किया जाता है । प्राप्त ट्रिटिकेल को व्यापारिक स्तर पर खेती के लिए प्रयोग में लाया जाता है ।

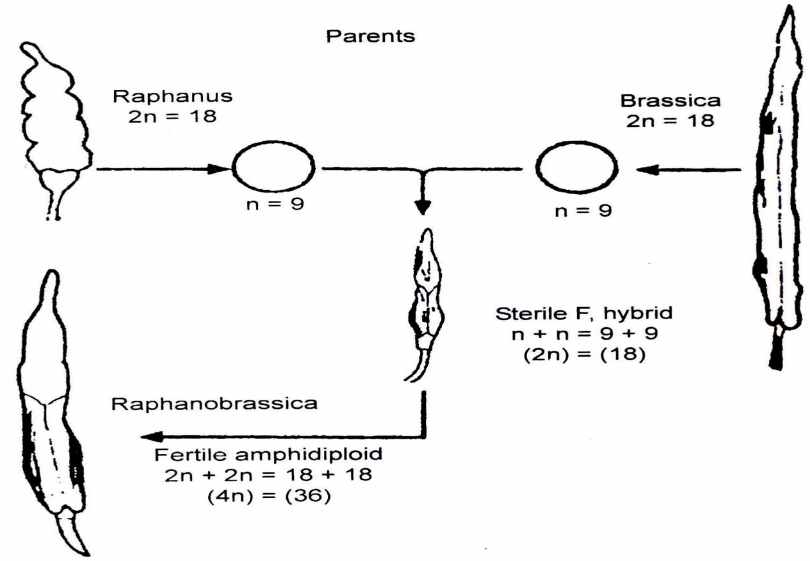

चित्र 4.13 : राइफेनोब्रेसिका (Raphanobrassica) का कृत्रिम संश्लेषण

(a) *Triticum durum* × *Secale cereale*

2n = 28 ↓ 2n = 14

F_1 hybrid (sterile)

2n = 21

↓ Chromosome doubling

2n = 42

hexaloid triticale

(b) *Triticum aestivum* × *Secale cereale*

2n = 42 ↓ 2n = 14

F_1 hybrid (sterile)

2n = 28

↓ Chromosome doubling by colchicine

2n = 56

octoploid triticale

चित्र 4.14 षट्‌गुणित ट्रिटिकेल का कृत्रिम संश्लेषण

(c) **कपास** (Cotton). गोसीपियम बारवेडेन्स (Gossypium barbadense) तथा गोसीपियम हिरसूटम कृत्रिम बहु गुणिता के अच्छे उदाहरण हैं । कपास की इन जातियों को गोसीपियम हरबेसियम (G,herbaceum-asian cotton) तथा गोसीपियम वेमोन्डी (G.vaimondi) को आपस में क्रॉस कराकर उत्पादित किया गया है (चित्र 4.15) ।

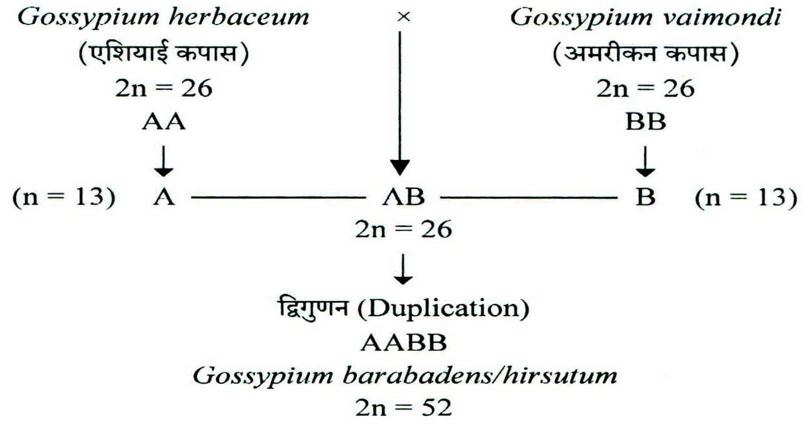

चित्र 4.15 : चतुर्गुणित कपास का कृत्रिम संश्लेषण

(d) **तम्बाकू** (Tabaco). तम्बाकू की एक जाति निकोशियाना टेबेकम (Nicotiana) को कृत्रिम रूप से, तम्बाकू की दो जातियों निकोशियाना सिल्वेस्ट्रिस (Nicotiana syvestris) तथा निकोशियाना टोमेन्टोसा (Nicotiana tomentosa) को क्रॉस कराने पर प्राप्त किया गया है । इन दोनों जातियों में क्रमश : गुणसूत्रों की संख्या 12 होती है । इनके संकरण से प्राप्त होने वाली F1 पीढ़ी के पौधे बन्ध्य होते हैं किन्तु उनमें द्विगुणन द्वारा निकोशियाना टेबेकम जाति प्राप्त होती है जिसमें गुणसूत्रों की संख्या 48 होती है । इसी प्रकार निकोशियाना टेबेकम (Nicotiana tabacum) तथा निकोशियाना ग्लूटीनोसा (Nicotiana glutinosa) क्रॉस कराने पर F1 पीढ़ी में बन्ध्य पादप प्राप्त होते हैं, जिनमें गुणसूत्रों की संख्या 36 होती है । इन पौधों द्विगुणन के फलस्वरुप निकोशियाना डिगलूटा (N. digluta) जाति के पीधे प्राप्त होते हैं जिनमें गुणसूत्रों की संख्या 72 होती है (चित्र 4.16) ।

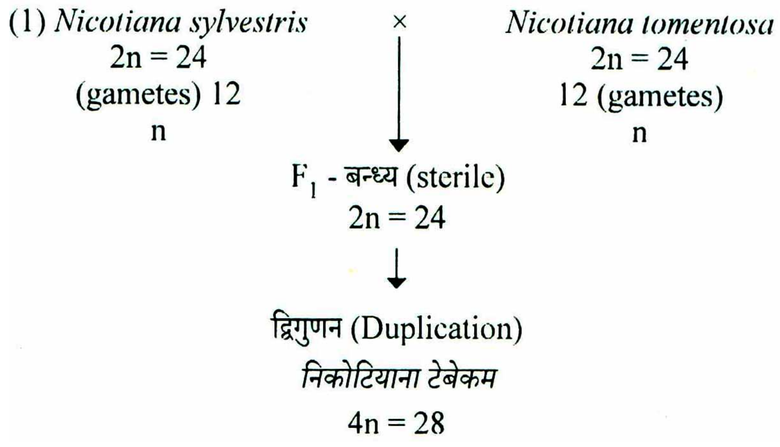

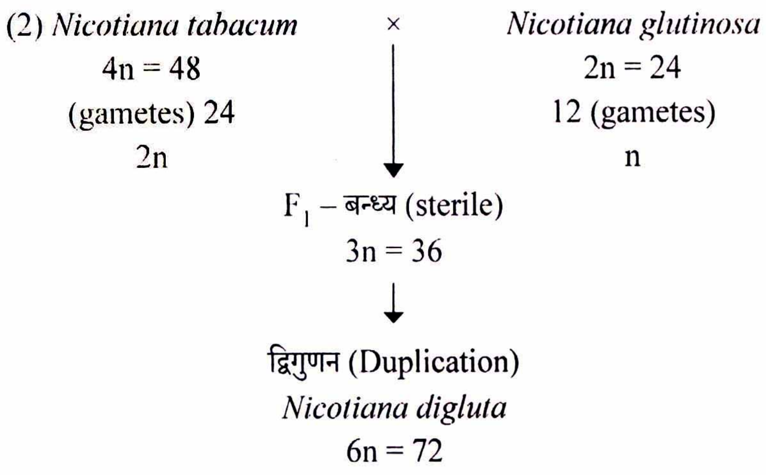

चित्र 4.14 षट्गुणित तम्बाकू का कृत्रिम संश्लेषण

गुणसूत्र बहुगुणिता के परिणाम तथा महत्व

(Consequences of polyploidy & its important)

पौधों में बहुगुणिता के कारण विभिन्न प्रकार के अकारिकीय, रासायनिक एवम् कार्यिकी निम्न परिवर्तन होते हैं -

(a) आकारिकीय परिवर्तन

1. किसी भी जीव में बहुगुणिता का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव महाकायता (gigantism) उत्पन्न करना है । बहुगुणित पौधे के तने मोटे, छोटे व भद्दे हो जाते हैं ।
2. पत्तियाँ अधिक चौड़ी माँसल व गहरे हरे रंग की हो जाती हैं । रोम व रंध्रों का आकार बढ़ जाता है ।
3. पुष्प आकार में बहुत बड़े हो जाते हैं जिनमें जननांग आधिक विकसित हो जाते हैं ।
4. फल व बीजों का आकार बढ़ जाता है ।
5. पौधे की कोशिकाओं में जल वृद्धि के कारण परिमाण बढ़ जाता है ।

(b) रासायनिक परिवर्तन

1. कुछ पादपों जैसे - चुकन्दर की जड़ों में शर्करा की मात्रा में वृद्धि हो जाती है ।
2. बहुगुणित पादपों ($4n$) में द्विगुणित ($2n$) पादपों की अपेक्षा एस्कोर्बिक अम्ल (Ascorbicacid) तथा विटामिन A की मात्रा अधिक पायी जाती है ।
3. इसी प्रकार तम्बाकू के पौधों में निकोटिन की मात्रा बढ़ जाती है ।
4. पादपों में मुख्य खनिजों जैसे - नाइट्रोजन (N_2), मैग्नीशियम (Mg), पोटेशियम (K), कैल्शियम (Ca) आदि की मात्रा बढ़ जाती है । किन्तु कुछ पादपों में कार्बोहाइड्रेट्स, सल्फर व फॉस्फोरस की मात्रा कम हो जाती है ।

(c) कार्यिकी परिवर्तन

1. कोशिका विभाजन की दर कम होने की वजह से वृद्धि कम हो जाती है तथा 'ऑक्सिन' (Auxin)की आपूर्ति में कमी के कारण श्वसन क्रिया घट जाती है ।

2. पौधे वृद्धि करना बन्द कर देते हैं ।
3. पौधों की कोशिकाओं में जल अंश में वृद्धि के कारण परासरण दाब (osmotic pressure) कम हो जाता है । अत: पाले इत्यादि के प्रति प्रतिरोधकता कम हो जाती है ।
4. फल व बीज देर से पकते हैं ।
5. पुष्प देर से खिलते हैं व अधिक समय तक खिले रहते हैं ।
6. उच्च गुणिता स्तर पर पौधों की मृत्यु हो जाती है ।

उपरोक्त वर्णित परिवर्तनों के अतिरिक्त पौधों में बहुगुणिता के और भी कई महत्व हैं, जैसे - परबहुगुणितों (allpolyploids) में, क्योंकि दोनों ही जनकों के संरचनात्मक व प्रकार्यात्मक लक्षणों का समावेश होता है इसलिए ये द्विगुणितों (2n) से अधिक प्रबल (vigorous) होते हैं । ये बन्ध्य होते हैं, किन्तु ऐपोमिक्सिस (apomixis) लैंगिक जनन की सामान्य प्रक्रिया के स्थान पर अलैंगिक जनन) करते हैं । इसी प्रकार स्वत्रिबहुगुणितों में क्योंकि उच्च स्तर की बन्ध्यता होती है, अत: आर्थिक रूप से उपयोगी पादपों की बीजरहित जाति उत्पन्न करने में इनका व्यापारिक महत्व होता है । उदाहरण - जापान में एच. किहारा (H.kihara) द्वारा उत्पन्न की गयी तरबूज की बीज रहित प्रजाति । इसी कारण अन्य फलों, जैसे - चुकन्दर, टमाटर, अँगूर व केले आदि की खेती के लिए इनकी बीज रहित प्रजातियाँ कृत्रिम बहुगुणिता द्वारा उत्पन्न की जाती है । खाद्यान्नों फसलों के अधिक उत्पादन के लिए स्वचतुर्गुणित पौधे उत्पन्न किये जाते हैं । इनमें मुख्य राई, मक्का, तथा गेंदा, फ्लॉक्स, सेब आदि हैं ।

बहुगुणिता का कृत्रिम प्रेरण (Artificial Induction of polyploidy)

बहुगुणिता को निम्न विधियों द्वारा कृत्रिम रूप से प्रेरित किया जा सकता है -

(1) क्षति या चोट द्वारा (By injury): जब किसी पौधे का विभाज्योतकी क्षेत्र (meristematic) चोट से क्षतिग्रस्त हो जाता है तो उस क्षेत्र में कोशिकाएँ वृद्धि करके कैलस (callus) का निर्माण करती है । कैलस की वृद्धि को कोमेरिन (coumerine) नामक रासायनिक पदार्थ द्वारा बढ़ाया जा सकता है । यह पदार्थ बहुगुणिता भी उत्पन्न करता है । इस प्रकार टमाटर के चोटग्रस्त भागों में चतुर्गुणित (4n) उत्पन्न किये जा सकते हैं ।

(2) विकिरणों द्वारा (By radiations) यदि कुछ पौधों की कायिक व पुष्प कलिकाओं को विभिन्न प्रकार के विकिरणों जैसे UV,X तथा गामा, किरणों द्वारा विकिरित किया जाये तो उनमें बहुगुणिता उत्पन्न हो जाती है । इन्हें r-बहुगुणित कहा जाता है । विकिरण कोशिका विभाजन की दर को बढ़ा देते हैं, जिससे गुणसूत्रों की संख्या में गुणन हो जाता है ।

(3) रसायनों द्वारा (By chemicals) आज के समय में बहुत से ऐसे रसायनों के बारे में ज्ञान हो चुका है जो पौधों में बहुगुणिता प्रेरित करते हैं । उनमें से मुख्य कोल्चीसीन, ग्रेनोसेन, क्लोरोफॉर्म, क्लोरलहाइड्रेट, ऐल्कोलॉइड्स, हेक्साक्लोरोसाइक्लोहेक्सेन आदि है । इनमें से भी बहुगुणिता प्रेरित करने के लिये कोल्चीसीन (Colchicine) सबसे आधिक प्रभावकारी होता है । इसकी खोज सर्वप्रथम परनिस (Pernice, 1889) ने की । इसें कोल्चीकम ऑटमनेल (Colchicum autumnale), कोल्चीकम न्यूटियम (Colchicum leuteum) तथा

ग्लोरीओसा सुपरबा (Gloriosa superba) आदि पादपों के बीज तथा शल्क कंदों (bullbs) से प्राप्त किया जाता है । ये रसायन निम्न में से किसी भी विधि द्वारा बहुगुणिता उत्पन्न कर सकते हैं ।

(1) अस्पष्ट पश्चावस्था (anaphase) के बाद गुणसूत्रों के दो समुच्चय का सायुज्यन (fusion) द्वारा ।

(2) तर्कु निर्माण (Spindle formation) के पूर्ण रूप से रूक जाने के कारण ।

(3) चिपचिपे गुणसूत्र पूलों के निर्माण द्वारा ।

बोधप्रश्न

1. विलोपन की परिभाषा दीजिये?

....

....

....

2. बहुगुणिता कितने प्रकार की होती है ।

....

....

3. हेक्साप्लोइड़ व आक्टोप्लोइड़ ट्रिट्रिकेल निर्माण को आलेख द्वारा प्रदर्शित करें ।

(a)..

....

....

....

(b)..

....

....

....

4.4 सारांश

गुणसूत्रों में दो प्रकार के परिवर्तन मिलते हैं, प्रथम गुणसूत्र संरचना में परिवर्तन जिसमें गुणसूत्र की संरचना कतिपय कारणों से बदल जाती है । इन परिवर्तनों में गुणसूत्र के किसी भाग की कमी या लोप हो जाना विलोपन कहलाता है । अत: विलोपन में गुणसूत्र खण्ड़ कम हो जाता है । गुणसूत्रीय खण्ड़ का असमजात गुणसूत्र से जुड़ना द्विगुणन (duplication) कहलाता है । इस प्रकार गुणसूत्रीय भाग की बढ़ोतरी होती है जबकि विलोपन इसके विपरीत परिवर्तन है जिसमें गुणसूत्र खण्ड़ की कमी हो जाती है । संरचनात्मक परिवर्तन के क्रम में प्रतिलोमन भी कम महत्व का नहीं है । प्रतिलोमन में गुणसूत्र का एक अन्तराली खण्ड़ गुणसूत्र पर ही 180^{o} से घूम कर पुन : जुड़ जाता है जिससे गुणसूत्र की मूल संरचना में बड़ा परिवर्तन आ जाता है । यह दो प्रकार का होता है । पराकेन्द्री तथा परिकेन्द्री । इनमें बनने वाले दो अर्द्धसूत्रों में द्विगुणन तथा हीनताओ के

मिलने के कारण जिन युग्मनों (pairs) में गुणसुत्र उपस्थित रहेंगे वह प्रकार्य (functional) नहीं होते हैं । इनमें युग्मकी व युग्मनजी घातकता भी मिलती है । गुणसूत्र संरचना में एक और परिवर्तन मिलता है जिसे स्थानान्तरण कहते हैं इस परिवर्तन में एक गुणसूत्र का खण्ड़ या टुकड़ा दूसरे गुणसूत्र पर स्थानान्तरित हो जाता है । यह समजात अथवा असमजात गुणसूत्र पर हो सकता है । यह एक अथवा द्विपाश्विक प्रकार का मिलता है । विषमयुग्मनज स्थानान्तरण एकान्तर, आसन्न I तथा आसन्न II प्रकार के मिलते हैं । समयुग्मनजी स्थानान्तरण में अर्द्धसूत्री विभाजन सामान्य प्रकार का होता है अत: इन्हें पहचान पाना प्राय: कठिन है ।

प्रत्येक जाति की कायिक कोशिकाओं व युग्मकों में गुणसूत्रों की संख्या निश्चित रहती है । एक जाति विशेष में निश्चित द्विगुणित गुणसूत्रों की संख्या में विभिन्नता को विषमगुणिता कहते हैं । गुणसूत्र संख्या में परिवर्तन दो प्रकार का होता है । न्यूनबहुगुणिता में एक पूर्व द्विगुणित समुच्चय में आंशिक रूप से गुणसूत्र घट या बढ़ जाते हैं । यह अधिगुणिता तथा अधोगुणित प्रकार की होती है । किसी जीव में प्राय: दो से ज्यादा जीनोम मिलना बहुगुणिता कहलाता है । पादपों में यह गुण सामान्य रूप से मिलती है । बहुगुणिता स्व तथा परबहुगुणिता प्रकार की होती है । स्वबहुगुणिता में किसी द्विगुणित जाति में गुणसूत्रों के दो समान समुच्चय AA है तो एक स्वत्रिगुणित में तीन समान संजीन AAAA होंगे । पर बहुगुणित में इसके विपरीत दो अलग -अलग जातियों से प्राप्त व्यतुपन्न F1 संकर संतति में गुणसूत्रों की संख्या को दुगना करने से बहुगुणिता उत्पन्न होती है । अतः यह AABBDD प्रकार द्वारा दिखाया जा सकता है । रेफेनोब्रोसिका ट्रिट्रिकेल्स तथा तम्बाकू में परबहुगुणिता को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । बहुगुणिता के फलस्वरुप आकारिक तथा रासायनिक परिवर्तनों द्वारा भी इसके परिणाम का अध्ययन कर सकते हैं ।

4.5 शब्दावली

विलोपन : किसी जीव के गुणसूत्र खण्ड़ की कमी हो जाना

द्विगुणन : किसी जीव के गुणसूत्र खण्ड़ का असमजात गुणसूत्र से जुड़ना ।

प्रतिलोमन : गुणसूत्र का एक अन्तराली खण्ड़ गुणसूत्र पर ही 180^{0} पर घूमकर पुन: जुड़ना ।

स्थानान्तरण : एक गुणसूत्र के खण्ड़ का दूसरे गुणसूत्र पर स्थानान्तरित होना ।

बहुगुणिता : किसी जीव में दो या दो से ज्यादा जीनोम का मिलना

4.6 संदर्भ ग्रन्थ

1. कोशिका विज्ञान, आनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन, त्रिवेदी, शर्मा, शर्मा, RBD Publication
2. Genetics-P.K. Gupta

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. किसी जीव के गुणसूत्र खण्ड़ की कमी हो जाना जैसा गुणसूत्र का संरचनात्मक परिवर्तन विलोपन कहलाता है ।
2. यह स्वबहुगुणिता तथा परबहुगुणिता प्रकार की होती है ।

3. (a)

Triticum durum × *Secale cereale*

2n = 28   2n = 14

↓

F_1 Hybrid (sterile) बन्ध्य

2n = 21

↓ क्रोमोसोम द्विगुणन

2n = 42

Hexaploid Triticale

(b)

Triticum aestivum × *Secale cereale*

2n = 28   2n = 14

↓

F_1 Hybrid (sterile) बन्ध्य

2n = 28

↓ क्रोमोसोम द्विगुणन

2n = 56

Octaploid triticale

4.8 अभ्यास प्रश्न

1. प्रतिलोमन का सचिव वर्णन कीजिये?
2. स्थानान्तरण का सचित्र वर्णन कीजिये?
3. बहु गुणिता की परिभाषा दीजिये? इसके प्रकारों का विस्तार से विवरण दीजिये?

इकाई 5 : कोशिका विभाजन (Cell Division)

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 कोशिका विभाजन
5 2.1 कोशिका चक्र
5.2.2 समसूत्री विभाजन प्रावस्थायें एवं महत्व
5.2.3 अर्द्धसूत्री विभाजन प्रावस्थाऐं
5.2.4 सिनेप्टोनिमल कॉम्प्लेक्स क्याज्मेटा एवं क्रासिंग ओवर
5.3 सारांश
5.4 शब्दावली
5.5 संदर्भ ग्रंथ
5.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.0 उद्देश्य

कोशिका विभाजन के निम्न बिन्दुओं से अवगत कराना है

1. कोशिका चक्र (cell cycle)
2. समसूत्री विभाजन प्रावस्था तथा तर्कु उपकरण व पश्चावस्था में गुण सूत्र गति
3. अर्द्धसूची विभाजन प्रावस्थाऐं
4. सिनेप्टोनिमल कॉम्प्लेक्स
5. क्याज्मेटा तथा क्रासिंग ओवर

5.1 प्रस्तावना

एक कोशिकीय जीव में पूर्ववर्ती कोशिका द्वारा नयी कोशिकाएं बनती है जबकि बहुकोशिकीय जीव में शरीर की वृद्धि, मरम्मत एवं जनन हेतु कोशिका विभाजन की प्रमुख भूमिका रहती है । यह भी सत्य है कि प्रत्येक जीव का जीवन एक कोशिका से ही प्रारंभ होता है । युग्मनज (zygote) जैसे एक कोशिकीय भाग के विभाजनों के परिणाम स्वरूप ही पूर्ण जीन के शरीर का निर्माण होता है । कायिक (vegetative) तथा जनन (reproductive) कोशिका में विभाजन अलग - अलग प्रकार का मिलता है । कायिक कोशिकाओं में विभाजन द्वारा समान प्रकार की दो कोशिकाएं बनती हैं जिनमें गुणसुत्रों की संख्या मातृ कोशिका के बराबर होती है । जनन कोशिकाओं में अर्द्धसूत्री (meiosis) विभाजन द्वारा पुत्री कोशिकाओं (चार) में क्रोमोसोम्स की संख्या आधी रह जाती है अतः द्विगुणित मातृ कोशिका के अर्द्धसूत्री विभाजन द्वारा चार अगुणित कोशिकाएं बनती है ।

5.2 कोशिका विभाजन

5.2.1 कोशिका चक्र (Cell Cycle)

यूकेरिओटा सदस्यों में कोशिका जनन एक चक्रीय व जटिल क्रिया है जिसके परिणामस्वरूप कोशिका वृद्धि, केन्द्रक विभाजन तथा कोशिका द्रव्य विभाजन क्रियाएँ होती हैं, यह कोशिका चक्र (cell cycle) कहलाता है । कायिक कोशिकाओं में कोशिका चक्र में निम्न चार प्रावस्थायें मिलती हैं (चित्र 5.1)

(A) G_1 (Gap I)

(B) S-प्रावस्था (phase of DNA synthesis)

(C) G_2 (Gap II) प्रावस्था (Premitotic phase)

(D) M-प्रावस्था (Mitotic phase)

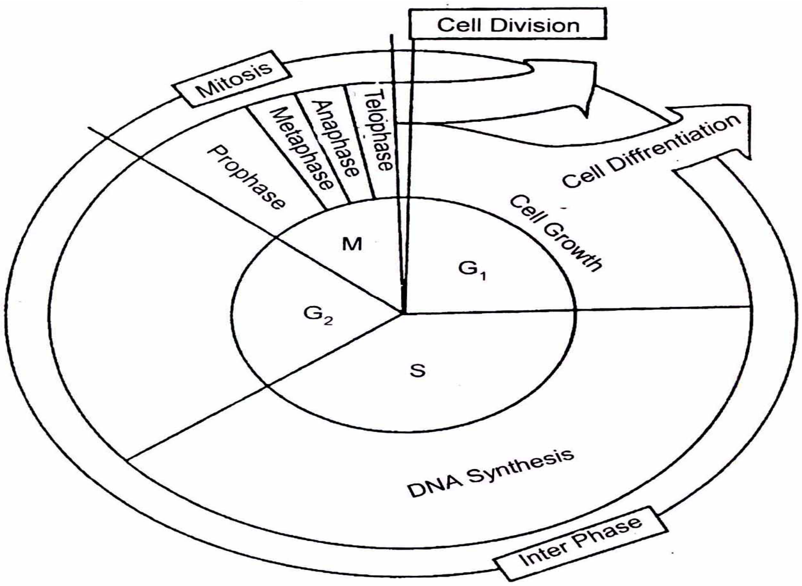

चित्र 5.1 : कोशिका चक्र

इनमें से प्रथम 3 प्रावस्थाएँ (G_1, S & G_2 phase) विभाजनांतराल प्रावस्था (interphase) अथवा उपापचयी प्रावस्था (Metabolic phase) कहलाती है जो दो कोशिका विभाजन के बीच की प्रावस्था है जिसमें कोशिका स्वयं को नये विभाजन के हेतु तैयार करती है । कोशिका व केन्द्रक दोनों ही अपनी अधिकतम वृद्धि प्राप्त कर लेते हैं । केन्द्रिका अधिक स्पष्ट हो जाती है । गुणसूत्र क्रोमेटिन जाल के रूप में दिखाई देते हैं तथा कोशिका द्रव्य से रिक्तिकाएँ विलीन हो जाती है । इस प्रावस्था के दौरान केन्द्रक में विशिष्ट प्रकार की महत्वपूर्ण जैव रासायनिक क्रियाएँ होती भी हैं जैसे कोशिका द्रव्य की वृद्धि, DNA तथा प्रोटीन का संश्लेषण जिसमें DNA का द्विगुणन सम्भव होता है । यह कोशिका विभाजन से पूर्व की अवस्था है । इसके बिना कोई भी कोशिका, विभाजन की अन्य प्रावस्थाओं में प्रवेश नहीं कर सकती है । G2 प्रावस्था के बाद M-प्रावस्था आती है जिसमें केन्द्रक व कोशिका द्रव्य विभाजित होकर दो पुत्री कोशिकाओं को बनाता है ।

(1) G1 (Gap I)प्रावस्था : यह प्रावस्था कोशिका विभाजन के तुरन्त बाद शुरू हो जाती है । इस प्रावस्था में कोशिका विभाजन चक्र में लगने वाले कुल समय का लगभग 25-40% समय लग जाता है । इस अवस्था में गुणसूत्र लम्बे व पतले होते हैं तथा ट्राँसक्रिप्शन (transcription) के लिए अधिक सक्रिय होते हैं । वे आपस में लिपटकर जाल बनाते हैं । इस प्रावस्था के दौरान कई उपापचयी क्रियाएँ होती हैं, जो DNA के द्विगुणन को शुरू करने के लिए आवश्यक होती हैं । इस अवस्था में प्रोटीन RNA,DNA-संश्लेषण के लिए आवश्यक एन्नाइप्स तथा नाइट्रोजन क्षारों का संश्लेषण व संग्रह भी होता है । कोशिका चक्र की यह एक महत्वपूर्ण प्रावस्था है जिसमें कोशिका विभाजन के नियन्त्रण के लिए विशिष्ट आणविक सूचक उपस्थित रहते हैं जो यह तय करते हैं कि कोशिका विभाजित होगा या नहीं ।

(2) S-प्रावस्था (Phase of DNA synthesis) :G^1 के बाद S-प्रावस्था आती है । जैव रसायनिक रूप से यह अधिक सक्रिय प्रावस्था है जिसमें कोशिका चक्र के कुल समय का 30 से 50% समय लगता है । इस दौरान DNA, RNA तथा हिस्टोन प्रोटीन्स का संश्लेषण होता है । DNA प्रतिकृति (replication) द्वारा DNA का द्विगुणन (Doubling) होता है जिसके फलस्वरूप पतले लम्बे अर्द्ध गुणसूत्र से पूर्ण गुणसूत्र (Complete chromosome or bivalent) बनते हैं ।

(3) G_2-प्रावस्था (Gap II) : S-प्रावस्था के पश्चात् G_2 प्रावस्था आती है । इसमें कौशिक चक्र के कुल समय का 10 से 25% समय लगता हैं । इस प्रावस्था में गुणसूत्र दो क्रोमोटिड्स के बने हुए होते हैं । इस प्रावस्था में गुणसूत्रों का संघनन (condensation) भी शुरू होता है । इस सम्बन्धित कारक भी इसकी अवस्था में पाये जाते हैं । इस प्रावस्था मैं विभिन्न प्रकार के RNAs तथा प्रोटीनों का संश्लेषण होना रुक जाता है किन्तु साथ ही M-प्रावस्था में तर्कु उपकरण (spindle apparatus) के निर्माण के लिए ट्यूबूलिन (tubulin) नामक प्रोटीन का संश्लेषण शुरू हो जाता है ।

(4) M-प्रावस्था (Mitotic phasae): G2 प्रावस्था के बाद M-प्रावस्था आती है, जिसमें पूर्ण कोशिका चक्र समय का 5 -10% समय लगता है । इस प्रावस्था के दौरान कोशिका विभिन्न प्रावस्थाओं, पूर्वावस्था, मध्यावस्था, पश्चावस्था व अन्त्यावस्था से गुजरती है तथा अन्त में दो पुत्री कोशिकायें बनती है, जिनमें प्रत्येक गुणसूत्र का एक -एक क्रोमेटिड पाया जाता है ।

M-प्रावस्था की पूर्वावस्था के अन्त में प्रोटीन तथा RNAs का संश्लेषण पूर्णरूप से रुक जाता है । किन्तु अन्त्यावस्था में इनका संश्लेषण पुन: शुरू हो जाता है । केन्द्रिक तथा केन्द्रक भित्ति लुप्त होना शुरू हो जाती है किन्तु अन्त्यावस्था में पुन: ये संरचनाएँ बन जाती है ।

कोशिका विभाजन के प्रकार (Types of cell Division)

कोशिका विभाजन के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं :

(1) **असूत्री विभाजन** (Amitosis) : अधिकतर प्रोकैरिओटा सदस्यों जैसे जीवाणु, प्रोटोजोआ एवं कुछ निम्न श्रेणी के पादपों जैसे शैवाल, कवक आदि की कोशिकाओं में केन्द्रक लगभग मध्य भाग में दबाव के कारण टूटकर दो भागों में बँट जाता है तथा साथ ही कोशिका द्रव्य भी विभाजित होकर दो अर्धांशों (halves) में बँट जाता है (चित्र 5.2) । इस प्रकार का विभाजन असूत्री विभाजन कहलाता हैं, क्योंकि इसमें दोनों पुत्री कोशिकाओं में क्रोमेटिन पदार्थ बराबर मात्रा में नहीं बँट पाता है ।

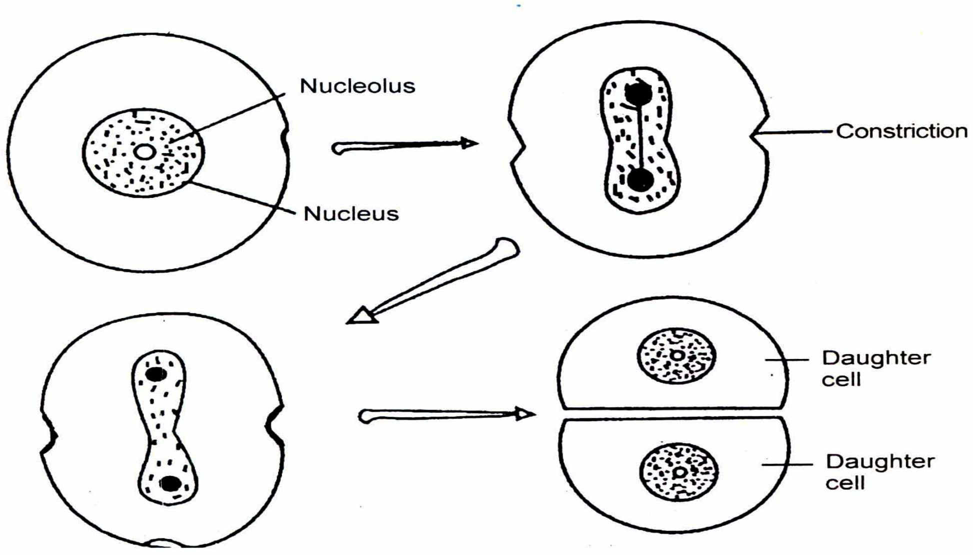

चित्र 5.2 : एमाइटोसिस (Amitosis)

(2) **समसूत्री विभाजन** (Mitotic Division) : समसूत्री विभाजन (Mitosis) जनन कोशिका में तथा कायिक विभाजन (Somatic division) कायिक कोशिकाओं में होने वाला विभाजन है जिसके फलस्वरूप दो समान आकार व परिमाण की पुत्री कोशिकायें बनती है । इनमें जिनमें गुणसूत्रों की संख्या मातृकोशिका में पाये जाने वाले गुणसूत्रों की संख्या के समान होती हैं । 'माइटोसिस ' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम डब्ल्यू - फ्लेमिंग ने किया । उनके अनुसार केन्द्रक विभाजन के समय क्रमबद्ध प्रतिक्रियाएँ व प्रावस्थाएँ प्रदर्शित होती रहती हैं । इस विभाजन में केन्द्रक में पाये जाने वाले गुणसूत्र लम्बवत् रूप से दो भागों में बँट जाते हैं, तथा प्रत्येक गुणसूत्र का एक -एक क्रोमेटिड संतति केन्द्रकों में चला जाता है । इस प्रकार गुणसूत्रों की संख्या में परिवर्तन नहीं आ पाता है । इस क्रिया के दौरान कोशिका द्रव्य में विशिष्ट प्रकार की संरचना तर्कु उपकरण (spindle apparatus) का बनती है ।

पादपों में ट्रेडेस्केन्शिया की तरुण पत्ती तथा प्याज की जड़ों के शीर्ष भागों में इस प्रकार के विभाजन का अध्ययन किया जा सकता है ।

A केन्द्रक विभाजन (Karyokinesis)

केन्द्रक विभाजन में लगातार चलने वाली क्रियाओं को अध्ययन की दृष्टि से निम्न प्रावस्थाएँ हैं -

(1) विभाजनान्तराल प्रावस्था (Interphase)

(2) पूर्वावस्था (Prophase)

(3) मध्यावस्था (Metaphase)

(4) पश्चावस्था (Anaphase)

(5) अन्त्यावस्था (Telophase)

(1) **विभाजनान्तराल प्रावस्था** (Interphase) : जब कोशिका अविभाजन की अवस्था में होती है तो उस समय इसका केन्द्रक विभाजनान्तराल प्रावस्था या उपापचयी अवस्था में होता है (चित्र 5.3A) । इस प्रावस्था में केन्द्रक द्रव घना, केन्द्रक भित्ति से घिरा हुआ होता है । केन्द्रक द्रव में अस्पष्ट क्रोमेटिन जाल व एक या अधिक केन्द्रिक पाये जाते हैं । इस प्रावस्था के दौरान होने वाली विभिन्न उपापचयी क्रियाओं का वर्णन कोशिका चक्र के वर्णन के अन्तर्गत किया जा चुका है।

(2) (Prophase): विभाजनान्तराल प्रावस्था के पश्चात् केन्द्रक विभाजन की यह प्रावस्था प्रारम्भ हो जाती है । यह M-प्रावस्था की सबसे लम्बी अवस्था है जो कुछ मिनटों या घण्टों में पूरी होती है । जैसे प्याज की जड़ में 71 मिनटों में पूरी होती है । इस प्रावस्था के प्रमुख तीन लक्षण हैं:

(i) **क्रोमेटिन जाल से गुणसूत्रों का विभेदन** : इस प्रावस्था के प्रारम्भ में क्रोमेटिन से बने गुणसूत्र कुण्डलित और पतले होते हैं । ये बाद में मोटे व छोटे होने लगते हैं (चित्र 5.4) । इसके लिए क्रोमेटिन जाल के सूत्रों से जल की हानि शुरू हो जाती है, जिससे वे धीरे - धीरे संघनित व मोटे हो जाते हैं । ये संरचनाएँ ही गुणसूत्र कहलाती हैं । प्रत्येक जाति विशेष में इनका आकार व संख्या निश्चित होती है । तथा ये जोड़ों (Pairs) में पाये जाते हैं । S -प्रावस्था में DNA द्विगुणन के कारण इस प्रावस्था में स्पष्ट होने वाला प्रत्येक गुणसूत्र दो क्रोमेटिड्स (bivalents) का बना दिखाई देता है । क्रोमेटिड्स छोटे व मोटे होते हैं तथा प्राथमिक संकीर्णन (Primary constriction) जिसमें सेन्ट्रोमीयर तथा काइनेटोकोर होता है स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं । पूर्वावस्था के अन्त तक गुणसूत्र केन्द्रक झिल्ली की ओर बढ़ना शुरू कर देते हैं ।

(ii) केन्द्रक झिल्ली, केन्द्रक द्रव तथा केन्द्रित विलुप्त हो जाते हैं एवं केन्द्रक पदार्थ कोशिका द्रव्य से सीधे सम्पर्क में आ जाता है ।

(iii) तर्कु उपकरण का बनना ।

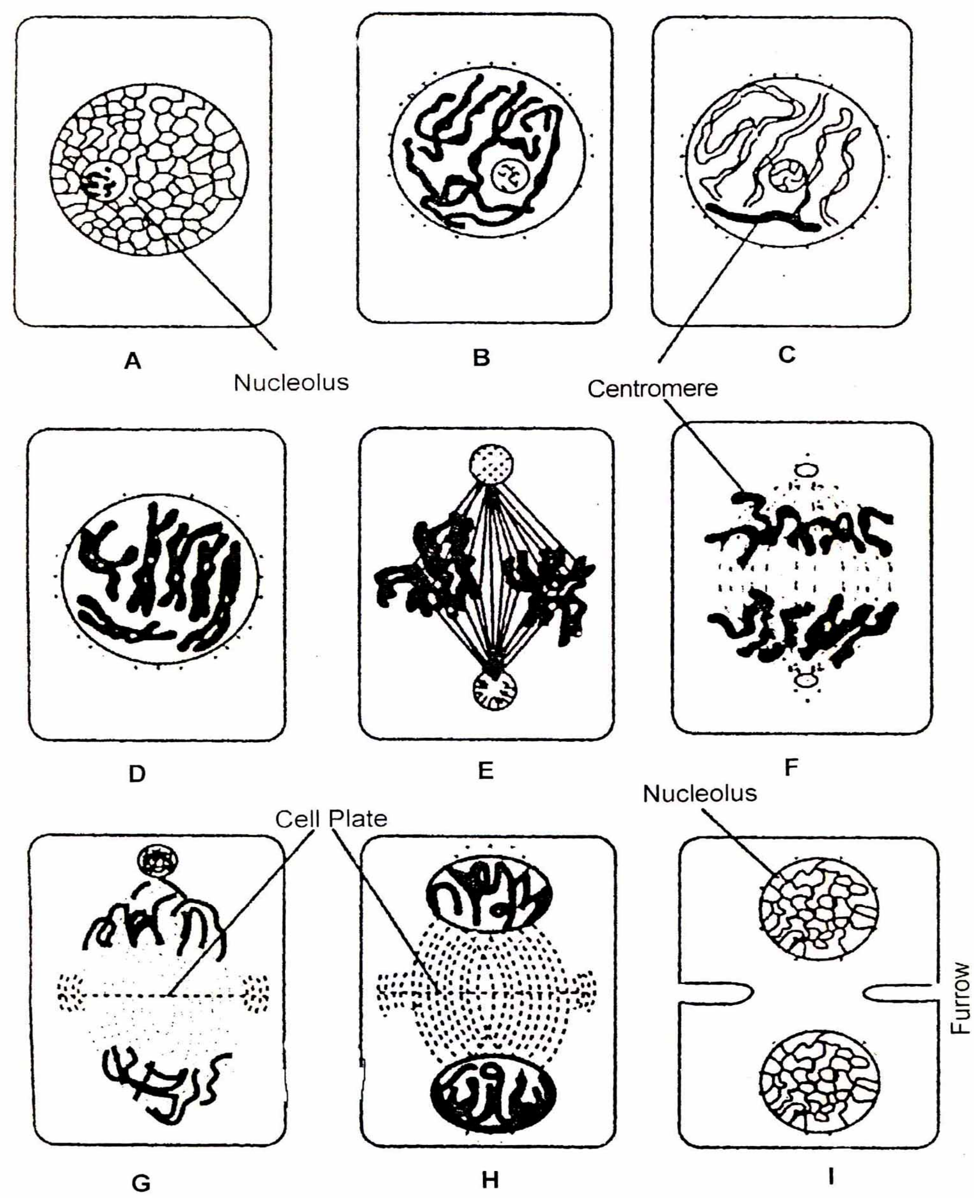

चित्र 5.3 : माइटोसिस विभाजन की विभिन्न अवस्थाएँ,(A) इन्टरफेज (B-C) प्रोफेज (D-E) मेटाफेज (F) एनाफेज का प्रारम्भ (G) एनाफेज का अन्त (H) टीलोफेज (I) नई संतति कोशिकाएँ

जन्तु कोशिका में तर्कु उपकरण तीन भागों से मिलकर बनता है :

(a) **तारा केन्द्रक** (Centrioles) (b) एस्टर्स (aster) एवम् तर्कु तन्तु (Spindle fibres) तर्कु उपकरण में सेन्ट्रिओल्स ध्रुवों पर स्थित होते हैं एवम् प्रत्येक सेट्रिऑल तन्तुओं द्वारा घिरा रहता है । दोनों सेन्ट्रियोल्स के मध्य सूक्ष्म नलिकाओं द्वारा बने तर्कु तन्तु पाये जाते हैं । तर्कु तन्तु चार प्रकार के होते हैं

(i) गुणसूत्रीय तन्तु: वे तन्तु जो तर्कु उपकरण के मध्य भाग से ध्रुवों तक जाते हैं तथा जिन पर गुणसूत्र अपने सेन्ट्रोमीयर द्वारा जुड़ा रहता हैं, गुणसूत्रीय तन्तु कहलाते हैं।

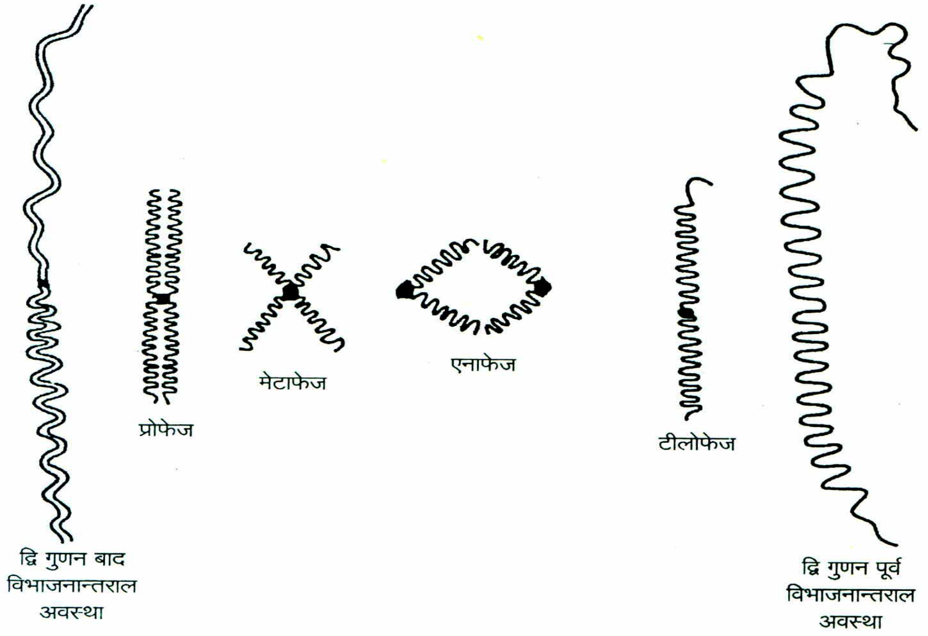

चित्र 5.4: समसूत्री विभाजन में गुणसूत्रों की स्थिति

(ii) निरन्तर तन्तु अथवा सहारा देने वाला तन्तु (Continuous or supporting fibres) : दोनों ध्रुवों से जुड़े हुए तन्तु जिनकी लम्बाई सबसे अधिक होती है से सहारा देने वाले तन्तु भी कहलाते हैं ।

(iii) अन्तर क्षेत्रीय तन्तु (Interzonal fibres). अलग हो रहे दो क्रोमेटिड्स के सेन्ट्रोमीयर के मध्य उपस्थित तन्तु अन्तर क्षेत्रीय कहलाते हैं । इन्हें एनाफेज व टीलोफेज प्रावस्थाओं में देखा जा सकता है ।

(iv) एस्ट्रल तन्तु: सेन्ट्रियोल के चारों ओर स्थित तन्तु एस्ट्रल तन्तु कहलाते हैं । पादप कोशिकाओं में तर्कु उपकरण में सेन्ट्रियोल्स एस्ट्रल तन्तु उपस्थित होते हैं । दोनों ध्रुवों के मध्य ट्यूबूलिन (tubulin) प्रोटीन द्वारा बने सूत्र पाये जाते हैं जिन्हें तर्कु कहते हैं । एस्ट्रल तन्तुओं को छोड़कर शेष तीनों प्रकार के तन्तु तर्कु उपकरण बनाते हैं ।

तर्कु तन्तुओं को बनाने वाली प्रोटीन की श्रृंखलाएँ डाइसल्फाइड (S-S) व सल्फाहाइड्रिल (-SH) बन्धों द्वारा जुड़ी रहती हैं । इनका निर्माण कोशिका द्रव्य में होता है । इनका मुख्य कार्य कोशिका विभाजन के समय गुणसूत्रों को गति प्रदान कर ध्रुवों तक पहुँचाना है ।

(3) **मध्यावस्था** (Metaphase) : मध्यावस्था के प्रारम्भ (Prometaphase) होते ही केन्द्रक झिल्ली का पूर्णरूपेण विलय हो जाता है, लेकिन साथ ही स्पिन्डल सूत्र दिखाई देना शुरू हो जाते हैं (चित्र 5.3 E) । इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप में स्पिन्डल सूत्र ट्यूबूलिन द्वारा निर्मित माइक्रोट्यूबूल्स से बने दिखाई देते हैं । इनसे स्पिन्डल उपकरण का निर्माण होता है । गुणसूत्र स्पिन्डल की मध्य रेखा (equatorial plance) पर पहुँचना शुरू कर देते हैं । प्रोमेटाफेज अल्प अवधि अवस्था होती है । मध्यावस्था में गुणसूत्र अपने - अपने काइनेटोकोर (centromere) द्वारा तर्कु उपकरण के ट्रेक्टाइल सूत्रों से जुड़ जाते हैं । सभी गुणसूत्र स्वतन्त्र रूप से अपने

आपको स्पिन्डल की मध्य रेखा पर व्यवस्थित कर लेते हैं तथा मध्य पट्टिका बनाते हैं । इस अवस्था में गुणसूत्र और अधिक कुण्डलित -होकर बहु त छोटे व मोटे हो जाते हैं किन्तु इनके क्रोमेटिड्स आपस में कभी भी कुण्डलित नहीं होते हैं । मध्यावस्था के अन्त में प्रत्येक गुणसूत्र लम्बाई में दो अर्धांशों में विभक्त हो जाता है । इस प्रकार क्रोमेटिड्स का काइनेटोकोर भाग, जिसमें पुत्री सेन्ट्रोमीयर होता है अलग हो जाता है तथा क्रोमेटिड्स एक -दूसरे से अलग हो जाते हैं ।

(4) **पश्चावस्था** (Anaphase) : यह प्रावस्था कोशिका चक्र की M -प्रावस्था की सबसे अल्पकालिक प्रावस्था है । इसमें क्रोमेटिड्स सक्रिय होकर विपरीत ध्रुवों की ओर जाना प्रारम्भ कर देते हैं । क्रोमोटिड्स की गति के लिए सेन्ट्रोमीयर व माइक्रोट्यूबूल्स की आपसी क्रिया आवश्यक होती है, जिससे धीरे-धीरे ट्रेक्टाइल सुकड़ना शुरू कर देते हैं । इनसे जुड़े हु ए मोनोवेलेन्ट्स विपरीत ध्रुवों की ओर खिसकते रहते हैं, जब तक कि वे ध्रुवों पर नहीं पहुँच जाते । इसी समय कुछ निरन्तर सूत्र के माइक्रोट्यूबूल्स लम्बाई में बढ़ कर फैल जाते हैं । ये सूत्र इन्टरजोनल सूत्र (Intezonal fibres) कहलाते हैं । इनमे फैलने की वजह से गुणसूत्र अपने - अपने ध्रुवों की ओर खिंच जाते तैं । प्रत्येक ध्रुव पर इनकी संख्या उतनी ही होती है जितनी की पूर्वावस्था में थी (चित्र 5.3 F, G) ।

(5) **अन्त्यावस्था** (Telophase). यह लम्बी अवधि वाली आखिरी प्रावस्था है जिसमें निम्न परिवर्तनों के बाद दो पुत्री कोशिकाएँ बनती हैं ।

दोनों ध्रुवों पर पाये जाने वाले गुणसूत्र जल अवशोषित करके अकुण्डलित होकर लम्बे हो जातै हैं तथा धीरे - धीरे अदृश्य हो जाते हैं । इनके स्थान पर पतले, लम्बे सूत्र क्रोमेटिन जाल बनाते हैं जो कि शुरू में केन्द्रक झिल्ली के खण्डों से घिर जाता है किन्तु बाद में ये टुकड़े आपस में जुड़कर पुत्री केन्द्रकों के चारों तरफ केन्द्रक आवरण बनाते हैं । इस प्रावस्था के अन्त में केन्द्रिक फिर से दिखाई देना शुरू कर देते हैं । इस प्रकार ध्रुव के स्थान पर संतति केन्द्रक दिखाई देते हैं । अत एक ही जनक कोशिका में दो स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगते हैं (चित्र 5. 3 ll) । केन्द्रक विभाजन के पश्चात् कोशिका द्रव्य विभाजन प्रारम्भ हो जाता है ।

B कोशिका द्रव्य विभाजन (Cytokinesis):

केन्द्रक के बाहर होने वाले जीवद्रव्य विभाजन को कोशिका द्रव्य विभाजन कहते हैं । पादपों में सामान्यत: इस विभाजन के लिए स्पिन्डल वाले क्षेत्र के लगभग मध्य में एक कोशिका पट्टिका (cell plate) बनती है । इस पट्टिका के निर्माण हेतु कैल्शियम तथा मैग्नीशियम पेक्टेट्स के कण स्पिण्डल के मध्य में एकत्रित हो जाते हैं तथा मध्य पटलिका (middle lamella) बनाते हैं । वह परिधि की ओर बढ़कर पूरी हो जाती है । बाद में इस सेल्यूलोज तथा अन्य भित्ति पदार्थो के जमाव के कारण प्राथमिक, द्वितीयक एवम् तृतीयक भित्ति का निर्माण हो जाता है तथा इस प्रकार जनक कोशिका दो संतति कोशिकाओं में बँट जाती है । पुत्री कोशिकायें गुणात्मक तथा मात्रात्मक रूप से आपस में तथा जनक कोशिका से समानता रखती हैं (चित्र 5.5) । इस अवस्था के पूर्ण होने पर समसूत्री विभाजन समाप्त हो जाता है । जन्तु कोशिकाओं में कोशिका द्रव्य विभाजन खाँच (constriction) बनने से होता है ।

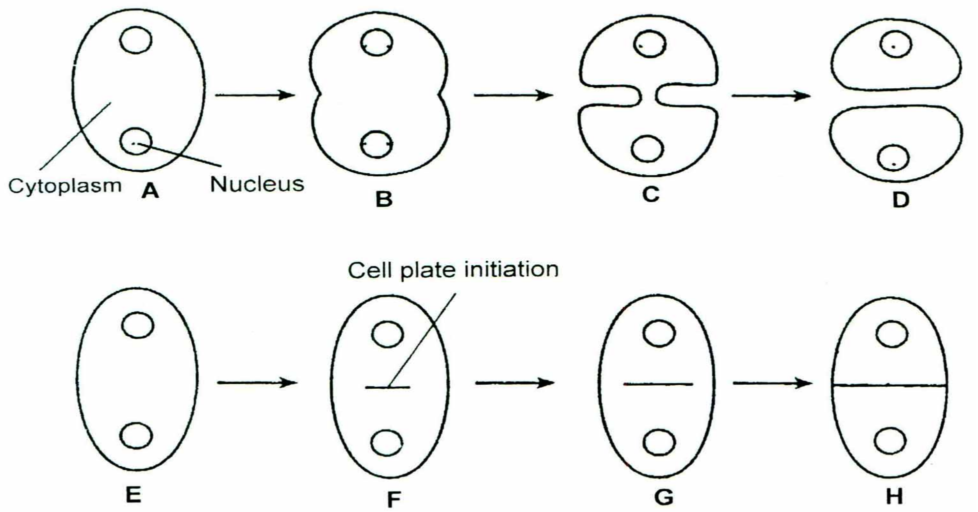

चित्र 5.5 : (A-D) कोशिका खाँच विधि (जन्तुओं में) (E-H) कोशिका पट्टी विधि (पादपों में)

C-माइटोसिस

विभाजित होने वाली कोशिका में कोल्चिसिन (colchicine) के प्रेरण (induction) से समसूत्री विभाजन रुक जाता है । कोल्चिसिन स्पिन्डल उपकरण निर्माण में असंगति (abnormality) उत्पन्न कर देता है । इसके परिणामस्वरूप बहुगुणित कोशिकाओं का निर्माण होता है तथा गुणसूत्रों में बहुगुणन हो जाता है । इसे C-माइटोसिस कहते हैं ।

5.2.2 समसूत्री विभाजन का महत्व (Significance of Mitosis)

(1) इस विभाजन दो संतति कोशिकायें बनती है जो संरचना व आनुवंशिक गुणों में जनक कोशिकाओं से समानता रखती है ।

(2) समसूत्री विभाजन जीवों में वृद्धि, पुनर्जनन तथा घाव भरने व ऊतकों की मरम्मत हेतु अति आवश्यक विभाजन है । इस विभाजन द्वारा पुरानी, विकृत, मृत कोशिकाएँ विस्थापित कर दी जाती हैं ।

(3) इस विभाजन द्वारा ही बहुकोशिकीय जीव अपना जीवन एक कोशिकीय युग्मनज से शुरू कर सम्पूर्ण बहुकोशिकीय संरचना बनाता है ।

(4) यह विभाजन जीवों में अलैंगिक जनन की प्रक्रिया है ।

(5) यह विभाजन जाति विशेष के आनुवंशिक गुणों की निश्चितता बनाये रखता हैं । क्योंकि इस विभाजन के दौरान आनुवंशिक पदार्थ का पुनर्योजन नहीं होता है एवम् पुत्री कोशिकाओं में गुणसूत्रों की संख्या जनक कोशिकाओं के समान बनी रहती हैं ।

5.2.3 अर्द्धसूत्री विभाजन (Meiotic Division)

उच्च श्रेणी के पादपों व जन्तुओं में मुख्य रूप से लैंगिक जनन होता है । इन जीवों में लैंगिक जनन के समय नर व मादा युग्मक बनते है जिनमें निषेचन (fertilization) की क्रिया के फलस्वरूप बनने वाले युग्मनज में गुणसूत्रों की संख्या द्विगुणित (2n) हो जाती है । अत: यह

आवश्यक हो जाता है कि युग्मकों में गुणसूत्रों की संख्या अगुणित (n) हो, जिससे किसी जाति विशेष की संततियों में पीढ़ी दर पीढ़ी गुणसूत्रों की संख्या स्थिर बनी रहे । **अत: द्विगुणित जनन कोशिकाओं इस क्रियाविधि के फलस्वरूप प्रत्येक लैंगिक पीढ़ी में गुणसूत्रों की द्विगुणित संख्या (2n) घटकर अगुणित (n) हो जाती है । यह अर्धसूत्री विभाजन या मिओसिस (Reduction division or meiosis) कहलाता है ।**

फारमर तथा मूर (Farmer & Moore,1905) ने **' मिओसिस '** (Meiosis) शब्द का प्रयोग कर बताया कि यह एक विशेष प्रकार का विभाजन है, जिसमें गुणसूत्रों की संख्या द्विगुणित (2n) से घटकर अगुणित (n) हो जाती है । मिओसिस एक लम्बी प्रक्रिया है जिसमें केन्द्रक और कोशिका द्रव्य का दो बार विभाजन होता है । प्रथम विभाजन मिओसिस प्रथम (I) अथवा ह्रास विभाजन कहलाता है जिसके फलस्वरूप गुणसूत्रों की संख्या घटकर आधी हो जाती है । जबकि दूसरा विभाजन मिओसिस द्वितीय (II) साधारण समसूत्री विभाजन के समान ही होता है । अर्धसूत्री विभाजन के परिणामस्वरूप एक द्विगुणित (2n) कोशिका से चार अगुणित (n) पुत्री कोशिकाओं का निर्माण होता हैं \

अर्धसूत्री विभाजन के प्रकार (Types of meiosis)

अलग - अलग जीवों के जीवन चक्र में अर्धसूत्री विभाजन का समय अलग होता है उसके आधार पर इस प्रकार के विभाजन को तीन प्रकारों में बाँटा गया है.

(1) युग्मकीय अर्धसूत्रण (Gemetic Meiosis): इस प्रकार का अर्धसूत्री विभाजन जन्तुओं तथा कुछ निम्न श्रेणी के पादपों में युग्मक बनने से पहले होता है ।

(2) युग्मनीज अर्धसूत्रण (Zygotic Meiosis): इस प्रकार का अर्धसूत्री विभाजन पौधों में निषेचन की क्रिया के फलस्वरूप बनने वाले युग्मनज में होता है ।

(3) बीजाणुकीय अर्धसूत्रण (Sporic Meiosis): इस प्रकार का अर्धसूत्री विभाजन जीवन - चक्र में निषेचन की क्रिया तथा युग्मकों के निर्माण के बीच बीजाणु जनन (sporogenesis) के समय होता है ।

अर्धसूत्री विभाजन का अध्ययन कुछ पादपों, जैसे : ट्रेडेस्केन्शिया, धतूरा, त था प्याज के तरुण परागकोषों में किया जा सकता है -

(A) **अर्द्धसूत्रण प्रथम** (Meiosis): प्रथम अधिक महत्वपूर्ण विभाजन होता है, क्योंकि इसमें गुणसूत्रों की संख्या घटकरन आधी रह जाती है । यह विभाजन भी दो चरणों में पूरा होता है, जिसमें प्रथम चरण में केन्द्रक का विभाजन तथा दूसरे में कोशिका द्रव्य का विभाजन होता है।

(1) केन्द्रक विभाजन (Karyokinesis): अर्द्धसूत्रण प्रथम के दौरान होने वाले केन्द्रक विभाजन में निम्नलिखित चार प्रावस्थाएँ पायी जाती हैं (चित्र 5.6) ।

(i) पूर्वावस्था प्रथम (Prophase)

(ii) मध्यावस्था प्रथम (Metaphase)

(iii) पश्चावस्था प्रथम (Anaphase)

(iv) अन्त्यावस्था प्रथम (Telophase)

(i) पूर्वावस्था प्रथम (Prophase)

अर्द्धसूत्रण प्रथम की पूर्वावस्था । एक लम्बी, जटिल क्रिया है । इसके विस्तृत अध्ययन के लिंए, इसे निम्न पाँच उप -प्रावस्थाओं में बाँटा गया है:

(A) लेप्टोटीन (Leptotene)

यह उपावस्था विभाजनान्तराल अवस्था के बाद शुरू होती है । इस उपावस्था में मुख्य रूप से निम्नलिखित परिवर्तन होते हैं:

केन्द्रक आयतन में वृद्धि से उसका आकार बढ़ जाता है । गुणसूत्र पतले, लम्बे सूत्रों के रूप में दिखायी देने लगते हैं जिन पर अधिक संख्या में मोती के समान संरचनाएँ दिखाई देने लगती हैं जिन्हें क्रोमोमीयर्स कहते हैं (चित्र 5.64 A) । सामान्यत: गुणसूत्र केन्द्रकीय क्षेत्र में समान रूप से बिखरे हुए दिखाई देते हैं । किन्तु कभी- कभी गुणसूत्र केन्द्रक के एक हिस्से में ही एकत्रित हो जाते हैं, जिससे केन्द्रक का दूसरा हिस्सा खाली दिखाई देता है । यह घटना आपुजन (synizesis) कहलाती हैं । डस उपावस्था में गुणसूत्र एक क्रोमोनिल सूत्र के रूप में (Monovalent) दिखायी देते हैं । यद्‌यपि S-phase में DNA का द्‌विगुणन हो चुका होता है लेकिन फिर भी इस उपावस्था में गुणसूत्र में दो क्रोमेटिड्स दिखायी नहीं देते हैं । गुणसूत्रों की संख्या प्रत्येक जीव में निर्धारित होती है, जैसे: जौ में 2n =14 अत: इसकी कोशिकाओं के केन्द्रक में 14 गुणसूत्र दिखायी देते हैं । केन्द्रिक का आकार बढ़ जाता है ।

(B) जाइगोटीन [(Zygotene)]

यह अर्द्धसूत्री विभाजन की महत्वपूर्ण उपावस्था है, इसके दौरान दो मुख्य क्रियाएँ होती हैं । पहली क्रिया में समजात गुणसूत्र (Homolous chromosome) युग्म अथवा जोड़े बनाते हैं (चित्र 5.7) । दूसरी क्रिया के दौरान गुणसूत्र युग्मों के बीच सिनेप्टोनिमल कॉम्पलेक्स (synaptonemal complex) बनता है ।

इस उपावस्था के मुख्य लक्षण निम्न हैं:

(1) **दो समान या समाजात गुणसूत्र** (Homologous chromosomes) जोड़े बनाना शुरू कर देते हैं जिसे युग्मन (pairing) या सिनेप्सिस (synapisis) कहते हैं । एक गुणसूत्र माता से (maternal) तथा दूसरा पिता से (paternal) प्राप्त होता है । युग्मन की क्रिया सटीक एव अतिविशिष्ट होती है जिससे सिनेप्टोनिमल कॉम्पलेक्स का निर्माण होता है । वैज्ञानिकों द्‌वारा किये गये शोध के आधार पर ऐसा माना जाता है कि समजातों के युग्म बनाने की क्रिया के लिए केन्द्रक द्रव में उत्पन्न होने वाला जलीय गतिज बल (hydrodynamic) उत्तरदायी है । यह बल गुणसूत्रों में कम्पन पैदा करता है जिससे समजात गुणसूत्र धीरे - धीरे गति करते हुए पास आते हैं तथा आवश्यक रूप से सिनेप्टिक जोडे (bivalents) बनाते हैं । समजातों में युग्मन जिप के समान (Zip like)होता हैं । यह तीन तरह का है

(i) प्रोसैन्ट्रिक (Procentric): इस प्रकार के जोड़े बनाने की क्रिया में युग्मन सेन्ट्रोमीयर से शुरू होता है |

(ii) प्रौटर्मिनल (Proterminal): इस प्रकार के जोड़े बनने की क्रिया समजातों के अन्तस्थ सिरों से शुरू होकर सेन्ट्रोमीयर की ओर होती है

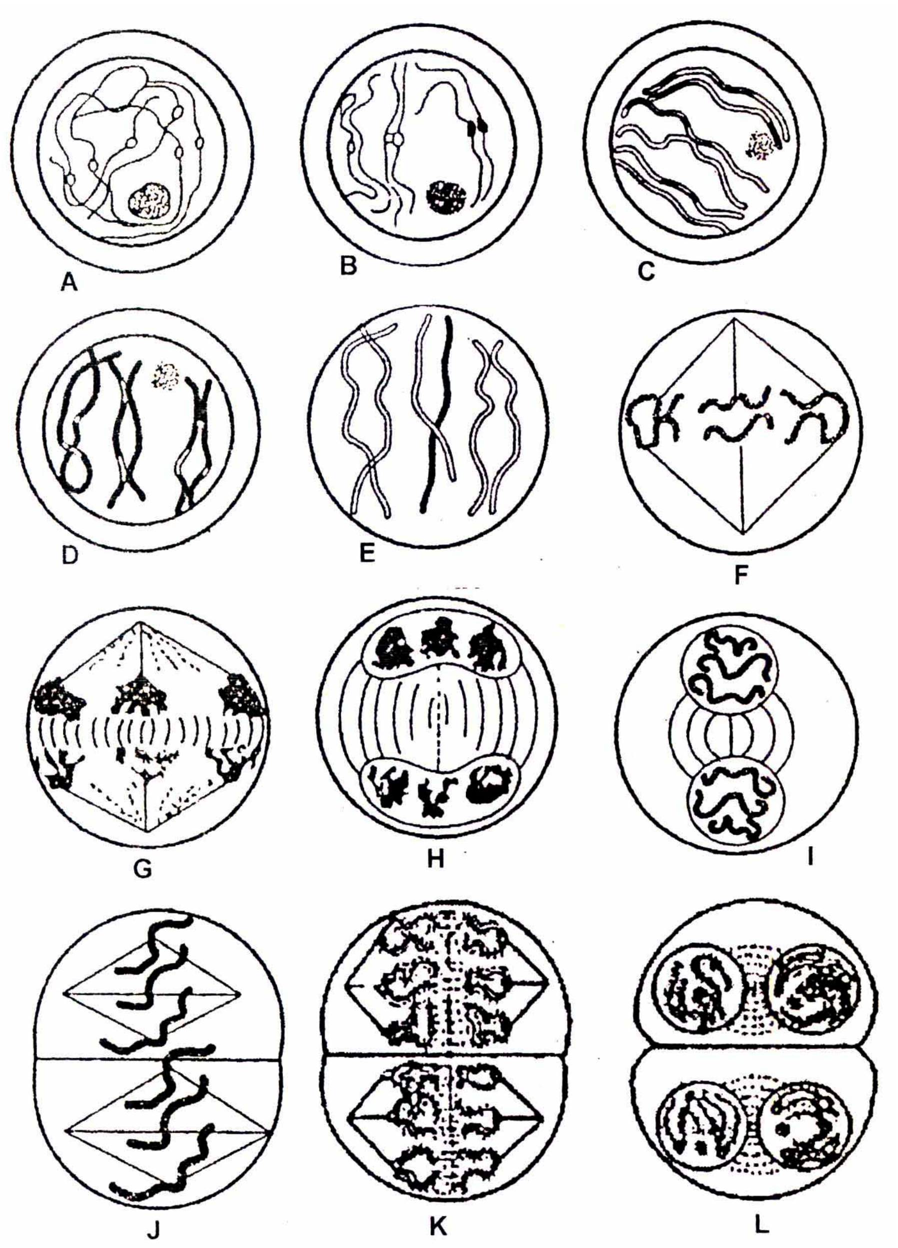

चित्र 5.6 : एक जनन कोशिका में अर्द्धसूत्री विभाजन की विभिन्न अवस्थाएँ: A लेप्टोटीन ,B जाइगोटीन ,C-पेकीटीन,D -डिप्लोटीन,E-डाइकाइनेसिस,F-मेटाफेज I,G-एनाफेज-I,H-टीलोफेज I,I-प्रोफेज II,J- मेटाफेज II,कK-एनाफेज II,L- टीलोफेज II

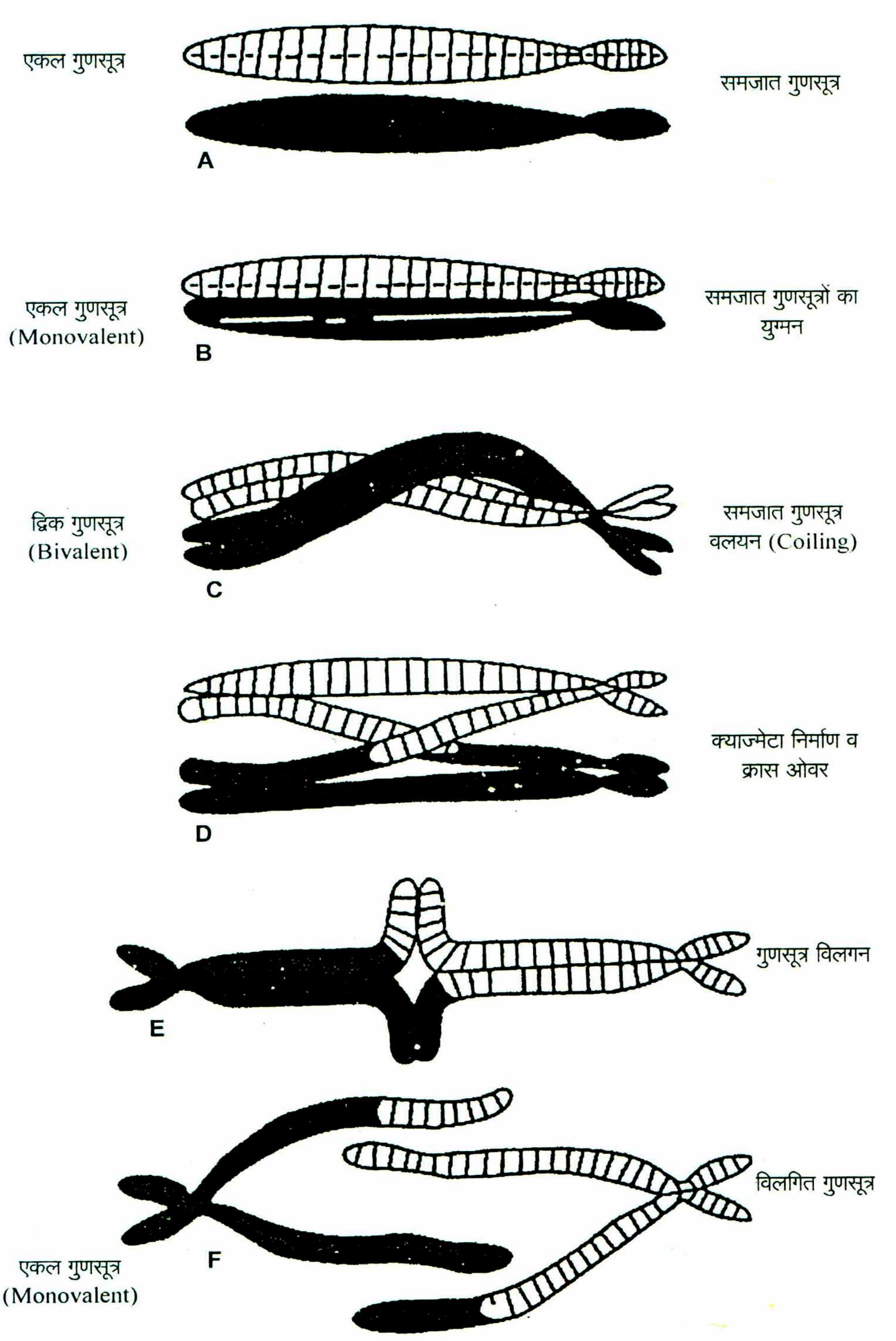

चित्र 5.7 : मिओसिस प्रथम के समय क्रोमोसोम्स में होने वाले परिवर्तन का चित्रीय निरूपण

(iii) लोकेलाइज्ड (Localised): इस प्रकार के जोड़े बनने की क्रिया समजात गुणसूत्रों से पूरी लम्बाई मेन कई स्थानों पर कहीं भी शुरू हो जाती हैं तथा यह तब तक चलती

रहती हैं जब तक की समजात पूर्ण लम्बाई मेन जोड़े नहीं बना लेते | युग्मन के समय दोनों समजात गुणसूत्र पूर्णरूप से नहीं जुड़ते हैं, बल्कि उनके मध्य स्थान रहता है जिसमें सिनेप्टोनिमल कॉम्पलेक्स बनता है ।

युग्मन केवल समजात खण्डों के बीच ही होता है, चाहे वह असमजात गुणसूत्रों पर ही स्थित क्यों न हो । इसके अलावा यह युग्मन एक क्षेत्र विशेष में केवल दो गुणसूत्रों के बीच ही होता है, जैसे एक स्वचतुर्गुणित (autotetraploid) मैं प्रत्येक प्रकार के चार समजात गुणसूत्र होते हैं किन्तु एक क्षेत्र विशेष में केवल दो गुणसूत्रों के बीच ही युग्मन होता है (चित्र 5.8) ।

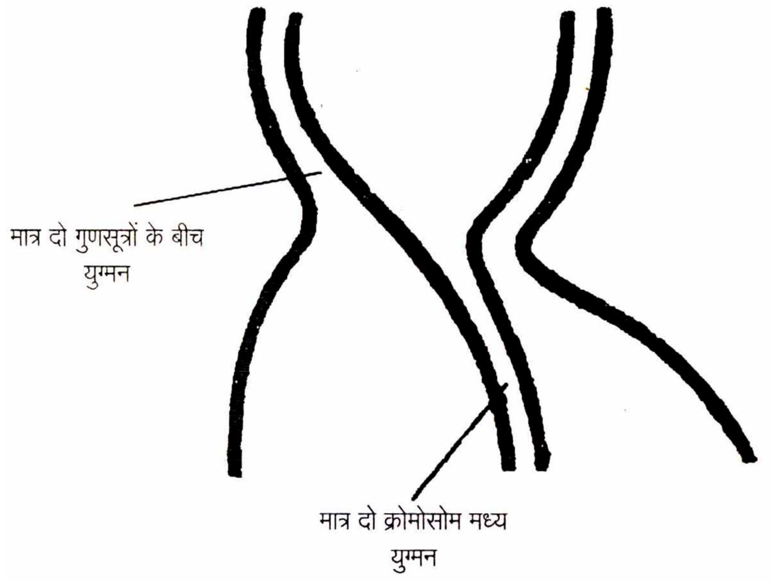

चित्र 5.8 : केवल दो गुणसूत्रों के बीच युग्मन

5.2.4 सिनेप्टोनिमल कॉम्पलेक्स

इसको समजातों के युग्मन का भौतिक आधार माना जाता है । इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा यह संरचना दो समजातों के बीच प्रोटीन द्वारा निर्मित तीन समानान्तर रेखीय धागों के जटिल के रूप में दिखायी देती है (चित्र 5.9) । इसमें एक घना केन्द्रीय धागा केन्द्रीय तत्व कहलाता है । केन्द्रीय तत्व दोनों तरफ दो पार्श्व धागों या तत्वों द्वारा घिरा रहता है जिन्हें पार्श्व तत्व कहते हैं । विभिन्न जातियों में सामान्यत: सिनेप्टोनिमल कॉम्पलेक्स की कुल चौड़ाई लगभग 160 से 240mn के बीच सीमित रहती है । इस जटिल में पार्श्व तत्व का व्यास 30 से 65nm, केन्द्रीय तत्व का व्यास 12 से 50 nm तथा केन्द्रीय तत्व व पार्श्व तत्वों के मध्य पाया जाने वाला स्थान 65 से 12nm तक हो सकता है । केन्द्रीय तत्व पार्श्व तत्वों से अनुप्रस्थ तन्तुओं द्वारा जुड़ा रहता है जिन्हें L.C. तन्तु कहते हैं । ये दोनों समजातों को पार्श्व तत्वों से जोड़े रहते हैं, स्थिरता प्रदान करते हैं तथा उनके मध्य आवश्यक दूरी बनाये रखते हैं । अनुप्रस्थ तन्तु पतले, सीधे व निश्चित लम्बाई के अवलित प्रोटीन पदार्थों से मिलकर केन्द्रीय तत्व बनाते हैं । ऐसा माना जाता है कि सिनेप्टोनिमल कॉम्पलेक्स एक संरचनात्मक ढाँचा होता है जिस पर क्रोमेटिन आकर व्यवस्थित होते हैं । इस क्रोमेटिन का केवल कुछ भाग ही खींचकर पार्श्व तत्वों को भेदता हुआ

केन्द्रीय स्थान में प्रवेश करता है, जहाँ पर आणविक युग्मन (molecular pairing) तथा आनुवंशिक पदार्थ का आदान -प्रदान होता है डिप्लोटीन उपावस्था में सिनेप्टोनिमल कॉम्पलेक्स बिखर जाता है ।

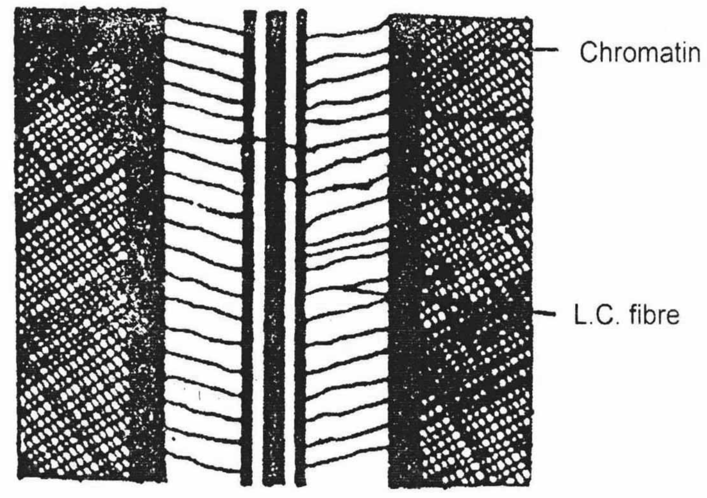

चित्र 5.9 :

(C) पैकीटीन (Pachytene)

यह उपावस्था समजातों के युग्मन पूर्ण होने के पश्चात् शुरू होती है । इसमें क्रॉसिंग आवर (crossing over) होता है तथा समजात क्रोमेटिड्स के बीच पुनर्योजन (recombination) होता है । इस उपावस्था में होने वाली मुख्य घटनाएँ निम्न हैं:

(i) बाइवैलेन्ट (bivalent) आपस में लिपट जाते हैं तथा लम्बाई में और अधिक संकुचित होकर छोटे व मोटे हो जाते हैं ।

(ii) इस उपावस्था के मध्य समय में केन्द्रक में गुणसूत्रों की सख्या आधी दिखाई देती है, क्योंकि प्रत्येक गुणसूत्र इकाई जिसे बाइवैलेन्ट कहते हैं, दो समजात गुणसूत्रों के मिलने से बनती है, जिनमें चार क्रोमोटिड्स होते हैं, जिनकी अपनी सेन्ट्रोमीयर होती हैं ।

(iii) इस उपावस्था के अन्त में प्रत्येक बाइवैलेन्ट अब टैट्रावेलेन्ट दिखाई देने लगता है (चित्र 5.7)।

(iv) इसके पश्चात् समजातों की दो क्रोमोटिड्स (non-sister) के बीच क्रासिंग ओवर होता है जिसके दौरान एक क्रोमेटिड्स के खण्डों के टूटने तथा पुन: दूसरे क्रोमेटिड्स से जुड़ने के समय क्रॉस रूपी आकार बनते हैं, जिन्हें क्याज्मेटा (chiasmata) कहते हैं । क्याज्मेटा की संख्या गुणसूत्रों की लम्बाई पर निर्भर करती है ।

(v) केन्द्रिक अभी भी उपस्थित रहता है (चित्र 5.6) ।

(D) डिप्लोटीन (Diplotene): इस उपावस्था में:

(i) टेट्रावैलेन्ट और अधिक स्पष्ट हो जाते हैं ।

(ii) टेट्रावैलेन्ट के दोनों गुणसूत्रों के बीच प्रतिकर्षण उत्पन्न हो जाता है तथा वे सिर्फ क्याज्मेटा वाले स्थानों पर एक -दूसरे से जुड़े रहते हैं जहाँ क्रॉसिंग ओवर की क्रिया पूर्ण हो रही होती है । प्रतिकर्षण बल बढ़ने के कारण चारों क्रोमेटिड्स और अधिक स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं ।

(iii) प्रत्येक गुणसूत्र पर मैट्रिक्स चढ़ जाता हैं यद्यपि उनमें प्रतिकर्षण काफी होता है किन्तु मैट्रिक्स से घिरे होने के कारण वे अलग नहीं हो पाते (चित्र 5.6, 5.7) ।

(iv) इस उपावस्था के अन्त में टर्मिनेलाइजेशन (terminalization) द्वारा क्याज्मेटा समाप्त हो जाते हैं ।

(E) **डाइकाइनेसिस (Diakinesis)** : इस उपावस्था में :

(i) क्याज्मेटा पूर्णरूप से अद्दश्य हो जाते हैं ।

(ii) धीरे - धीरे केन्द्रक झिल्ली तथा केन्द्रिक अद्दश्य हो जाते हैं ।

(iii) स्पिण्डल उपकरण बनना शुरू हो जाता है ।

(iv) टेट्रावैलेन्दस मध्य रेखा (equator) पर जाना शुरू कर देते हैं ।

(v) गुणसूत्र और अधिक संघनित होकर छोटे व मोटे दिखाई देते हैं (चित्र 5.6 E) ।

(2) **मध्यावस्था प्रथम** (Metaphase I): इस प्रावस्था में.

(i) इस प्रावस्था तक पहुँचने पर केन्द्रक झिल्ली पूर्णरूप से अद्दश्य हो जाती है ।

(ii) स्पिण्डल उपकरण पूर्णरूप से बन जाता है ।

(iii) टेट्रावैलेन्टस (tetravalents) मध्य रेखा पर व्यवस्थित होकर मेटाफेज प्लेट बनाते हैं ।

(iv) टेट्रावैलेन्दस (tetrvalents) के दोनों गुणसूत्रों की सेन्द्रोमीयरस ट्रैक्टाइल सूत्रों से जुड़ जाती है, उनके बीच प्रतिकर्षण बढ़ने लगता है (चित्र 5.6 F) ।

(v) मध्य रेखा पर इनकी व्यवस्था इस प्रकार रहती है कि इनकी सेडोमीयर ध्रुव की ओर तथा भुजाएँ मध्य रेखा की ओर रहती हैं ।

(3) **पश्चावस्था प्रथम** (Anaphase) : इस पश्चावस्था में:

(i) प्रतिकर्षण और अधिक बढ़ने से बाइवैलेन्टस के दोनों समजातों के सेन्ट्रोमीयर अलग - अलग हो जाते हैं तथा ट्रेक्टाइल सूत्रों के संकुचन से दोनों समजात गुणसूत्र एक -दूसरे से दूर, दो विपरीत ध्रुवों की ओर गमन करना शुरू कर देते हैं । इस प्रावस्था में प्रत्येक समजात की सेन्ट्रोमीयर अविभाजित रहती है, अत : प्रत्येक बाइवैलेन का एक -एक समजात अलग - अलग ध्रुवों पर पहुँच जाता है ।

(ii) इस प्रकार प्रत्येक ध्रुव पर गुणसूत्रों की द्विगुणित संख्या (2n) घटकर आधी अगुणित (n) रह जाती है ।

(iii) पश्चावस्था प्रथम के अन्त में स्पिण्डल बीच में से दब जाता है जिससे ध्रुवों की दूरी और अधिक बढ़ जाती हे (चित्र 5.6 G) ।

(4) अन्त्यावस्था प्रथम (Telophase): जब गुणसूत्र ध्रुवों पर पहुँच चुके होते हैं तो अन्त्यावस्था शुरू होती है । इनमें.

(i) प्रत्येक ध्रुव पर गुणसूत्र अकुण्डलित होकर पतले लम्बे हो जाते हैं ।

(ii) उनके चारों ओर मैट्रिक्स आवरण बन जाता है ।

(iii) केन्द्रक झिल्ली एव केन्द्रिका पुन: दिखाई देने लगते हैं । इस प्रकार दोनों ध्रुवों के स्थान पर दो केन्द्रक बन जाते हैं जिनमें गुणसूत्रों की संख्या आधी होती है । कुछ कोशिकाओं में कोशिका द्रव्य का विभाजन हो जाता है किन्तु जिनमें कोशिका द्रव्य का विभाजन नहीं

होता है केन्द्रक सीधे ही मिओसिस द्वितीय में प्रवेश कर जाते हैं । मिओसिस प्रथम के परिणामस्वरूप बनने वाले दोनों केन्द्रक अथवा कोशिकाएँ एक साथ ही विभाजित होते हैं । यह विभाजन समसूत्र विभाजन की तरह ही होता है, जिसके परिणामस्वरूप बनने वाले केन्द्रको में गुणसूत्रों की संख्या समान रहती है (n) (चित्र 5.6 H) ।

(B) अर्द्धसूत्री विभाजन द्वितीय (Equational Division)

इसमें भी केन्द्रक चार प्रावस्थाओं से गुजरता है :

(A) पूर्वावस्था द्वितीय (Prophase ii) : इस प्रावस्था में :

(i) केन्द्रक धीरे - धीरे लुप्त गायब होने लगते हैं ।

(ii) गुणसूत्रों के दोनों क्रोमेटिड्स अलग स्पष्ट दिखाई देते हैं, वे केवल सेन्ट्रोमीयर पर ही जुड़े हुए दिखाई देते हैं । इस प्रावस्था के अन्त में गुणसूत्र और अधिक मोटे व छोटे हो जाते हैं । इनके सेन्ट्रोमीयर अविभाजित रहते हैं ।

(iii) दोनों केन्द्रकों के स्थान पर स्पिण्डल बन जाता है जौ कि पहले स्पिंण्डल के साथ 90^0 का कोण बनाता है (चित्र 5.6) ।

(B) मध्यावस्था द्वितीय (Metaphse ii) : इस प्रावस्था में :

(i) गुणसूत्र अपने सेन्ट्रोमीयर द्वारा सेन्ट्रोमीयर के ट्रेक्टाइल सूत्रों से जुड़ जाते हैं । गुणसूत्र सेन्ट्रोमीयर की मध्य रेखा पर व्यवस्थित होकर मेटाफेज प्लेट बनाते हैं ।

(ii) प्रत्येक गुणसूत्र की दोनों क्रोमेटिड्स के बीच प्रतिकर्षण उत्पन्न हो जाता है ।

(iii) प्रत्येक गुणसूत्र के सेन्ट्रोमीयर लम्बवत् विभाजित हो जाते हैं (चित्र 56.K) ।

(C) पश्चावस्था द्वितीय (Anaphase ii) : इस प्रावस्था में :

(i) शुरू में दोनों क्रोमोटिड्स के सेन्ट्रोमीयर के बीच प्रतिकर्षण और अधिक बढ़ जाता है।

(ii) प्रत्येक क्रोमेटिड्स विपरीत ध्रुवों की ओर जाना शुरू कर देते हैं ।

(iii) प्रत्येक गुणसूत्र की दोनों क्रोमेटिड्स के बीच प्रतिकर्षण उत्पन्न हो जाता है । इस प्रावस्था के अन्त में प्रत्येक गुणसूत्र का एक -एक क्रोमेटिड विपरीत ध्रुवों पर पहुँच जाता है (चित्र 5.6 K)।

कोशिका द्रव्य विभाजन (Cytokinesis)

अन्त्यावस्था द्वितीय पूर्ण होने के बाद कोशिका पट्टिका (cell plate) विधि से कोशिका द्रव्य का विभाजन हो जाता है यदि मिओसिस प्रथम के बाद कोशिका द्रव्य का विभाजन नहीं होता है तो चारों केन्द्रकों को अलग - अलग करती हुई भित्तियाँ बनती है जिसके फलस्वरूप चार संतति कोशिकाएँ बन जाती है ।

अर्धसूत्री विभाजन का महत्व (Significance of Meiosis)

1 इस विभाज की पैकीटीन तथा डिप्लोटीन अवस्था में होने वाले जीन विनिमय के कारण संततियों में आनुवंशिक विविधताएँ पाई जाती हैं जो कि नई जातियों के विकास का आधार हैं । इनसे नई जातियों की उत्पत्ति होती है ।

2 यह विभाजन लैंगिक चक्र को पूर्ण करने के लिए अति आवश्यक है क्योंकि इस विभाजन के द्वारा ही युग्मक बनते हैं ।

3 इस विभाजन द्वारा जीवों की संततियों में पीढ़ी दर पीढ़ी गुणसूत्रों की संख्या निश्चित बनी रहती है ।

4 इस विभाजन के न होने से कोशिकाओं में बहु गुणिता उत्पन्न होती है ।

अर्धसूत्री विभाजन व समसूत्री विभाजन में अन्तर

(Diffrence between Meeiosis and Mitosis)

अर्द्धसूत्री	समसूत्री
1. इस प्रकार का विभाजन जटिल होता है	यह विभाजन सरल होता है ।
2. यह केवल जनन कोशिकाओं में होता है ।	यह केवल कायिक कोशिकाओं में होता है ।
3. इस क्रिया को पूर्ण होने में कोशिका में दो निरन्तर विभाजन होते हैं ।	इसके पूर्ण होने से कोशिका एक बार ही विभाजित होती है ।
4. मिओसिस प्रथम की **पूर्वावस्था** जटिल, बहु त लम्बी तथा पाँच उपावस्थाओं में बँटी होती है । पैकीटीन उपावस्था में 0.3% DNA तू का निर्माण होता है ।	इसकी पूर्वावस्था कम अवधि की व सरल होती है । DNA द्विगुणन पूर्वावस्था से पहले ही हो जाता है ।
5. समजातों में युग्मानुबंधन (synapsis) उपस्थित ।	युग्मानुबंधन अनुपस्थित
6. **मियोसिस पक्ष्म विभाजन में** गुणसूत्रों की द्विगुणित सख्या आधी रह जाती है । मिओसिस द्वितीय समसूत्री विभाजन के समान होता है । इसके परिणामस्वरूप चार पुत्री कोशिकाएँ बनती हैं जिनमें गुणसूत्रों की सख्या अगुणित हो जाती है ।	इस विभाजन के फलस्वरूप दो पुत्री कोशिकाएँ बनती हैं जिनमें गुणसूत्रों की संख्या मातृ कोशिका में गुणसूत्रों की सख्या के समान रहती है ।
7. समजातों के बीच क्याज्मेटा बनते हैं तथा क्रॉसिंग ओवर होता है । इसके फलस्वरूप आनुवंशिक पदार्थ का आदान -प्रदान होता है।	ये दोनों क्रियाएँ सम्पन्न नहीं होती है । अत : आनुवंशिक पदार्थ का आदान -प्रदान नहीं होता है ।
8. **पश्चावस्था I** समजात गुणसूत्रों के जोड़े का एक -एक गुणसूत्र विपरीत ध्रुवों की ओर बढ़ता है । पश्चावस्था II में प्रत्येक गुणसूत्र एक -एक क्रोमेटिड में बँट जाता है तथा चारों क्रोमेटिड एक -एक पुत्री कोशिका में चले जाते हैं ।	प्रत्येक गुणसूत्र का सेष्ट्रोमीयर दो भागों में टूट जाता है अत : आधा - आधा गुणसूत्र अथवा एक -एक क्रोमेटिड विपरीत ध्रुवों की ओर गमन करता है त था दोनों पुत्री कोशिकाओं में एक -एक क्रोमेटिड चला जाता है ।
9. मध्यावस्था प्रथम में समजात गुण सूत्रो का जोड़ा होता है जो कि चार क्रोमोटिड्स(Tetrad) से बना दिखाई देताहै।	इसकी मध्यावस्थामें गुणसूत्र दो क्रोमेटिड्स (Diad) के बने दिखाई देते हैं ।

10. बनने वाली संतति कोशिकाएँ मातृ कोशिका से आनुवंशिक लक्षणों में भिन्नता प्रदर्शित करतीहे ।	संतति कोशिकाएँ मातृ कोशिका के समान होती है ।

बोधप्रश्न

1. कोशिकाचक्र की प्रावस्थाओं के नाम लिखिए?

………

………………………………………………………………………………………

2. असूत्री (Amitosis) विभाजन किन विभाजन जीवों में मिलताहैं?

…………………………………………………………………………………

…………………………………………………………………………………

3. अर्द्धसूत्री विभाजन का कोई एक महत्व बताइऐं?

……………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………

5.3 सारांश

स्वत: जनन जीव द्रव्य का प्रमुख लक्षण है । अत: पुराने जीव द्रव्य के विभाजन द्वारा नयी जीव द्रव्य इकाईयां उत्पन्न होती रहती हैं । एक कोशिकीय अथवा बहुकोशिकीय जीवों में कोशिका विभाजन द्वारा नयी कोशिकाये बनतीरहतीहैं । समसूत्री विभाजन में विभाजन द्वारा बनी दो पुत्री कोशिकाओं में गुणसूत्रों की संख्या मातृ कोशिका के बराबर होती है । जबकि अर्द्धसूत्री विभाजन में गुणसूत्रों की संख्या पुत्री कोशिकाओं में आधी रह जाती है । यूकेरिओटा सदस्यों में कोशिका जनन एक चक्रीय व जटिल प्रक्रिया है जिसमे कोशिका वृद्धि, केन्द्रक विभाजन तथा कोशिका द्रव्य विभाजन होता है इसे कोशिका चक्र कहते हैं । कोशिका चक्र की चार प्रावस्थायें G_1,S,G_2 तथा M हैं । समसूत्री विभाजन में पूर्वावस्था, मध्यावस्था, पश्चावस्था व अन्त्यावस्था होती हैं । इन अवस्थाओं के पश्चात कोशिका द्रव्य विभाजन होता है । इस प्रकार एक मातृक कोशिका से दो पुत्री कोशिकायें बनती हैं । समसूत्री विभाजन जीवों में वृद्धि, पुर्नजनन तथा घाव भरने हेतु आवश्यक है । यह विभाजन जीवों में अलैंगिक जनन की प्रकिया है । अर्द्धसूत्री विभाजन में गुणसूत्रों की संख्या पुत्री कोशिकाओं में आधी रह जाती हैं । अत : अर्द्धसूत्री विभाजन लैंगिक जनन से जुड़ा विभाजन है जिसमें युग्मकों का निर्माण होता है । इस विशेष विभाजन में गुणसूत्रों की संख्या द्विगुणित 2n) से घटकर अगुणित (n) रह जाती है । अर्द्धसूत्री विभाजन के केन्द्रक विभाजन में पूर्वावस्था प्रथम, मध्यावस्था प्रथम, पश्चावस्था प्रथम एवं अज्यावस्था प्रथम प्रावस्थाओं में पूर्वावस्था प्रथम में पाँच उपप्रावस्थायें लेप्टोटीन, जाइगोटीन, पेकीटीन, डिप्लोटीन तथा डाइकाइनेलिस मिलती हैं । इनके अलावा अर्द्धसूत्री विभाजन द्वितीय में भी चार प्रावस्थायें पूर्वावस्था द्वितीय मध्यावस्था द्वितीय, पश्चावस्था द्वितीय तथा अन्त्यावस्था द्वितीय होती हैं । इन सब के पश्चात् कोशिका द्रव्य समजात गुणसूत्र के जोड़े बनते हैं तथा सिनेप्टोनिमल कॉम्पलेक्स का निर्माण होता है जो डिप्लोटीन उपप्रावस्था में बिखर जाता है । पेकटिनि

उपप्रावस्था में कियाज्मेटा बनते हैं । अर्द्धसूत्री विभाजन विशेष महत्व का है क्योंकि इसकी पेकीटीन तथा डिप्लोटीन जैसी उपप्रावस्था में जीन विनिमय के परिणामस्वरूप संततियों में आनुवंशिक विविधतायें मिलती हैं । इनके कारण नयी जातियों का विकास होता है ।

5.4 शब्दावली

कोशिका चक्र (cell cycle) : वह चक्रीय व जटिल प्रक्रिया जिसके परिणामस्वरूप कोशिका वृद्धि केन्द्रक विभाजन तथा कोशिका द्रव्य विभाजन क्रियायें होती हैं ।

कायिक कोशिका विभाजन (somatic cell Division) : कायिक कोशिकाओं में मिलने वाला वह विभाजन जिसके परिणामस्वरूप दो समान आकार व परिमाण की पुत्री कोशिकायें बनती हैं । यह समसूत्री विभाजन भी कहलाता है ।

अन्तरक्षेत्रीय तन्तु (interzonal Fibres) : अलग हो रहे दो क्रोमेटिड के सेन्ट्रोमीयर के बीच उपस्थित तन्तु अन्तरक्षेत्रीय तन्तु कहलाते हैं ।

क्याज्मेटा (Chiasmata) : कॉसिंग ओवर के दोहराव एक क्रोमेटिड के खण्डों के टूटने व पुन : दूसरे क्रोमेटिड से जुड़ने से बना क्रॉस रूपी आकार क्याज्मेटा कहलाता है ।

5.5 संदर्भ ग्रन्थ

1. कोशिका विज्ञान आनुवांशिकी, त्रिवेदी, शर्मा एवं शर्मा, रमेश बुक डिपो
2. Gentics - P.k Gupta

5.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. G_1 अवस्था, S - प्रावस्था, G_2 प्रावस्था तथा M-प्रावस्था
2. अधिकतर प्रोकैरियोटा सदस्य जैसे जीवाणु, प्रोटोजोआ, कुछ निम्न श्रेणी के पादप जैसे शैवाल, कवक आदि ।
3. इस विभाजन की पेकटिनि व डिप्लोटीन उपप्रावस्थाओं में जीन विनिमय के कारण संततियों में अनुवांशिक विविधता मिलती है यह नई जातियों के विकास का आधार है ।

5.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सिनेप्टोनिमल कॉम्पलेक्स किसे कहते हैं इसका निर्माण किस उपप्रावस्था में होता है ।
2. अर्द्धसूत्री व समसूत्री विभाजनों का महत्व बताइऐं?
3. क्रॉसिंग ओवर पर टिप्पणी लिखिए ।
4. प्रोफेस प्रथम की उपप्रावस्थाओं का सचित्र वर्णन कीजिए ।
5. समसूत्री विभाजन की विभिन्न प्रावस्थाओं का सचित्र विवरण दीजिए?

इकाई 6 : डी.एन.ए. एवं आर.एन.ए. (DNA and RNA)

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 डी.एन.ए. एवं आर.एन.ए.(DNA and RNA)

6.2.1 डी.एन.ए.आनुवांशिक पदार्थ - प्रयोगात्मक प्रमाण

6.2.2 डी.एन.ए. संरचना, प्रकार

6.2.3 डी. एन. ए. पुनरावृत्ति आर. एन. ए. प्राइमर ओकाजाकी खण्ड पॉलीमरेज

6.2.4 आर. एन. ए. संरचना, प्रकार

6.3 सारांश

6.4 शब्दावली

6.5 सदर्भ ग्रन्थ

6.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य

1. डी. एन. ए. आनुवांशिक पदार्थ होने के प्रयोगों कीं जानकारी
2. डी. एन. ए. की संरचना व प्रकार का अध्ययन करना
3. डी. एन. ए. प्रतिलिपिक (प्रतिकृति) का अध्ययन करना
4. आर. एन. ए. की संरचना, प्रकार का ज्ञान प्राप्त करना

6.1 प्रस्तावना

न्यूक्लिक अम्ल (nuclcic acid) डी. एन. ए. (डीऑक्सी राइबोन्यूक्लिक अम्ल तथा आर. एन .ए. (राइबोन्यूइक्लक अम्ल) प्रकार के होते हैं । कुछ वाइरसों को छोड्कर सभी जीवों में पर DNA आनुवांशिक पदार्थ के रूप में पाया जाता है । न्यूक्लिक अम्लो में प्यूरीन तथा पिरिमिडीन प्रकार के क्षारक (base) मिलते हैं । प्यूरीन (purine) दो प्रकार के होते हैं एडीनीन (adenine) तथा ग्वानीन (guanine) इसी प्रकार पिरिमिडीन भी दो तरह के होते हैं साइटोसीन (cytosine) तथा थायमीन (thymine) ग्रिफिथ, हर्षे एवं चेज ऐवेरी एव साथियों ने पर DNA को आनुवांशिक पदार्थ के रूप में सिद्ध किया । डिऑक्सीराइबोस शर्करा तथा नाइट्रोजनी क्षारक मिलकर न्यूक्लिओसाइड बनाते हैं इनमें फॉस्फेट के जुड़ने पर न्यूक्लिओटाइट बनता है । वाटसन व क्रिक ने एक मॉडल (model) के रूप में DNA की संरचना को समझाया । बाद में DNA के चार प्रारूप 'A' प्रारूप 'B' प्रारूप 'C' तथा Z प्रारूप का विवरण मिला । DNA की पुनरावृत्ति भी एक विल क्षण प्रक्रिया का परिणाम है जिसके परिणामस्वरूप नवीन सूत्रों का निर्माण होता है ।

आर एन. ए. (राइबोन्यूइक्लक अम्ल) कोशिका द्रव्य तथा केन्द्रक में पाया जाता है । कुछ कोशिकांगो - माइटोकॉन्ड्रिया क्लोरोप्लास्ट तथा यूकेरियोटिक कोशिकाओं के गुणसूत्रों में भी RNA की उपस्थिति मिलती है । इसमें नाइट्रोजन क्षारक एडीनीन, गु आनीन, साइटोसीन तथा यूरेसिल (uracil) मिलते हैं (ज्ञात रहे DNA में यूरेसिल की जगह थायमिन पाया जाता है) RNA आनुवांशिक प्रकार का होता है । आनुवांशिक RNA तीन प्रकार का मिलता है I mRNA व tRNA प्रकार । क्लोवर लीफ मॉडल द्वारा tRNA का विवरण भी प्रस्तुत किया गया है ।

6.2 डी. एन. ए. एवं आर. एन. ए (DNA and RNA)

6.2.1 डी. एन. ए. आनुवांशिक पदा र्थ - प्रयोगात्मक प्रमाण

न्यूक्लिक अस्त मुख्य रूप से डी एन. ए. (DNA) तथा आर. एन. ए. (RNA) होते हैं । कुछ वायरसों को छोड़कर स भी जीवों में DNA मुख्य रूप में पाया जाता है । यह से प्रमाणित किया जाता चुका है कि DNA ही आनुवांशिक सामग्री है न कि प्रोटीन्स । इस में आनुवांशिक सूचनाएँ निहित होती हैं जो सजीवों में होने वाली समस्त जैविक क्रियाओं का नियन्त्रण करती है । DNA में उपस्थित सूचना ट्राँसक्रिप्शन (transcription) की क्रिया द्वारा RNA अणु (ribonucleic acid molecule) में स्थानान्तरित (transcription) कर दी जाती है । RNA अणुओं से ट्राँसलेशन की क्रिया द्वारा प्रोटीन का संश्लेषण होता है । न्यूक्लिक अम्लों में प्यूरिन (purine) तथा पिरिमीडीन (pyrimidine) क्षारों की उपस्थिति होती है । पिरिमीडीन दो प्रकार के साइटोसीन (cytosine) तथा थायमीन (thymine) होते हैं । प्यूरीन भी दो प्रकार के एडीनीन (adenine) व ग्वानीन (guanine) होते हैं । ऐवेरी, मैकलिओइड तथा मैककार्थी ने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया कि DNA ही आनुवांशिक पदार्थ है जो वंशागति के लिए उत्तरदायी है । चारगाफ (Chargaff, 1947) ने DNA की रासायनिक संरचना का अध्ययन कर यह बताया कि DNA के अणु में प्यूरीन बड़े व पिरिमीडीन (pyrimidine) छोटे क्षारक होते हैं तथा समानुपात में पाये जाते हैं । DNA अणु में प्यूरीन व पिरिमीडीन क्षारक एक -दूसरे से 34 A दूरी पर स्थित होते हैं तथा दस न्यूक्लिओटाइड इकाईयाँ 34 A दूरी में व्यवस्थित रहती हैं । इसके अलावा पर DNA अणु रेखीय संरचना नहीं दर्शाता है । यह एक कुण्डलित संरचना है । वाटसन त था क्रिक (1953) ने DNA अणु की द्विक कुण्डलीय (double stranded) संरचना बताई ।

पादप वायरसों को छोड़कर सभी सजीवों में DNA पाया जाता है । यूकैरिओटिक कोशिकाओं में अधिकतर । DNA मै केन्द्रक में लम्बे,अशाखित तथा सर्पिल कुण्डल के रूप में पाया जाता है जबकि प्रोकैरियाटिस में तथा यूकैरिओटिक कोशिका के कोशिकांगों जैसे माइटोकॉन्ड्रिया (Mitochondria) व लवकों (plastids) में DNA वृत्ताकार (Circular) तथा कोशिका द्रव्य में अनावृत रूप में मिलता है I

डी एन .ए. के आनुवांशिक पदार्थ होने के प्रमाण

(Evidences for DNA as the genetic matrical)

(1) **जीवाणु रूपान्तरण** (Bacterial transformation) : फ्रेडरिक ग्रिफिथ (1928) ने सर्वप्रथम न्यूमोनिया रोग कारक जीवाणु डिप्लोकोकस न्यूमोनी (*Diplococcus pneumoniae*) में आनुवांशिक रूपान्तरण का अध्ययन किया । इसके पश्चात् ऐवेरी, मैकलिओइड तथा मैककार्थी (1944) ने प्रयोगों द्वारा इस जीवाणु में होने वाले रूपान्तरण अउग्र प्रभेद (non virulent) से उग्र प्रभेद (virulent strain) में परिवर्तित होने हेतु पर DNA रसायन को ही उत्तरदायी बताया। *डिप्लोकोकस न्यूमोनी* जीवाणु के दो प्रभेद (strain), उग्र (virulent) तथा अउग्र (non virulent) के रूप में पाया जाते हैं । उग्र प्रभेद - SIII (virulent Strain-III) केप्सूल परत पॉलीसेकेराइड्स की बनी होती है तथा इसकी कॉलोनी चमकदार तथा चिकनी होती है । यह प्रभेद रोग कारक है । दूसरा अउग्र प्रभेद RII (non virulent strain-RII) है जिसकी कॉलोनी खुरदरी व अनियमित हौती है । इसकी कोशिका के चारों ओर केप्सूल अनुपस्थित होता है तथा यह प्रभेद रोग कारक नहीं है । ऐसा देखा गया है कि S प्रकार की जीवाणु कोशिकाएँ कभी-कभी R प्रकार की जीवाणु कोशिकाओं में बदल जाती है, किन्तु R से S प्रकार में परिवर्तन कभी भी नहीं देखा गया । ग्रिफिथ ने जीवित अनुग्र प्रभेद -RII को चूहे में इंजेक्शन द्वारा प्रविष्ट कराया (चित्र 6.1) तो पाया कि चूहे की मृत्यु नहीं हुई किन्तु जब जीवित उग्र प्रभेद - SIII को प्रविष्ट कराया ता यह पाया गया कि चूहे की न्यूमोनिया रोग से मृत्यु हो गई । परन्तु जब प्रभेद -SIII को गर्म करके नष्ट करने के बाद जब चूहे के शरीर में प्रविष्ट कराया तब चूहे को न्यूमोनिया रोग नहीं हुआ तथा उसकी मृत्यु नहीं हुई । अत: यहाँ ताप केवल उग्रभेद की रोग उत्पन्न करने की क्षमता को नष्ट करता है । उपरोक्त प्रयोगों की इस श्रृखला में जब अनुग्र प्रभेद -RII की जीवित कोशिकाओं को ताप द्वारा नष्ट कर दिये गये उग्र प्रभेद -SIII की कोशिकाओं के साथ इंजेक्शन द्वारा चूहे के शरीर में प्रविष्ट कराया तो यह पाया गया कि चूहे की न्यूमोनिया रोग से मृत्यु हो जाती है । जब मृत चूहे का अत्य परीक्षण किया गया तो उसके हृदय रक्त में RII तथा SIII दोनों तरह के न्यूमोकोकस मिले ।

ग्रिफिथ ने इस प्रयोग के आधार पर यह परिणाम निकाला कि गर्म किये हुये SIII उग्र प्रभेद की कोशिकाओं में से कुछ रूपान्तरित करने वाला कारक निकलता है तथा वह अनुग्र प्रभेद - RII की कोशिकाओं द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है तथा अनुग्र प्रभेद RII को केप्सूल युक्त SIII जीवाणु प्रभेद में रूपान्तरित कर देता है (चित्र 6.1) इन प्रयोगों से यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो गया कि DNA ही आनुवांशिक सामग्री है, न कि प्रोटीन ।

ऐवेरी तथा उसके साथियों ने अनुग्र प्रभेद - RII को संवर्धित किया तथा उसके संवर्धन माध्यम में अलग किये गये उपरोक्त रासायनिक घटकों को एक -एक करके अलग - अलग डाला तो उन्होंने पाया कि DNA घटक में ही यह क्षमता थी कि वह R प्रकार की कोशिकाओं (केप्सूल रहित) को S प्रकार की (केप्सूल युक्त) कोशिकाओं में बदल सकें । रूपान्तरित पु कोशिकाएँ सभी लक्षणों में SIII उग्र प्रभेद के समान थी, क्योकि उनमें DNA भाग SIII प्रभेद द्वारा प्राप्त किया गया था (चित्र 6.2) ।

इन प्रयोगों से भी प्रमाणित हो गया कि । DNA ही आनुवांशिक पदार्थ है ।

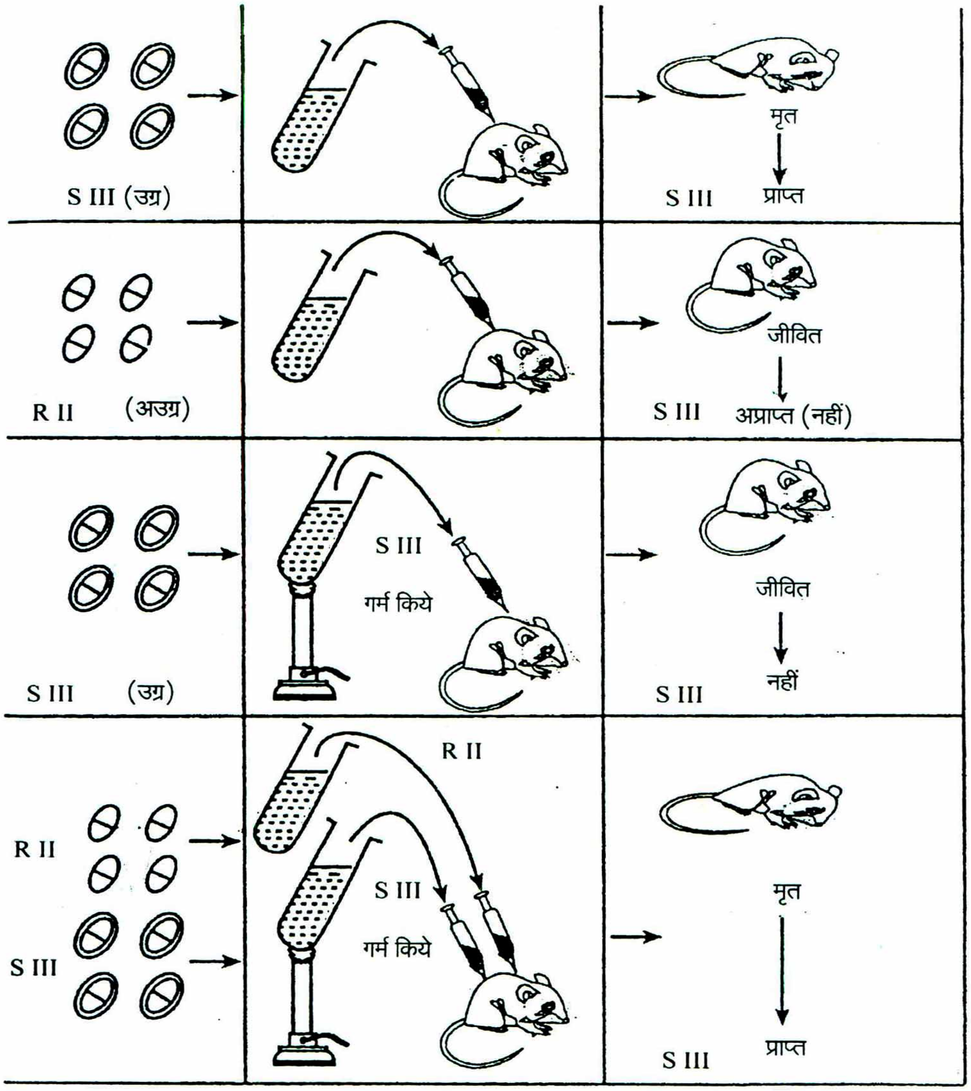

चित्र 6.1 ग्रिफिथ का प्रयोग जिसमें न्यूमोकोकस (Pneumococcus) में रूपान्तरण दिखाया गया है|

(2) **जीवाणु भोजी संक्रमण** (Bacteriophage infection) जीवाणु भोजी में जनन किया का अध्ययन : DNA एक आनुवांशिक पदार्थ के रूप में प्रमाणित करने के लिए एक और उदाहरण है । यह वायरस जीवाणु कोशिका को संक्रमित करता है तथा जीवाणु कोशिका में ही इसका गुणन होता है । उसके बाद जीवाणु कोशिका का लयन(Lysis) हो जाता है तथा कोशिका मृत हो जाती है । जीवाणुभोजी संरचना (चित्र 6.3) में मुख्य रूप से दो भाग होते हैं एक शीर्ष (head) तथा एक पुच्छ (tail) पाई जाती है । शीर्ष प्रोटीन आवरण तथा DNA कोर का बना होता है जबकि पुच्छ भाग की रचना में एक गुच्छ (tail core,), पुच्छ आवरण (tail sheath) तथा कुछ कुछ रेशे (tail firber) होते हैं । संक्रमण के लिए पहले जीवाणुभोजी (Bacteriophage) जीवाणु कोशिका पर पुच्छ रेशों की सहायता से चिपक जाता है तथा इसके शीर्ष में उपस्थित DNA

जीवाणु कोशिका में स्थानान्तरित (transfer) कर दिया जाता है । वहाँ DNA द्विगुणन (duplication) की क्रिया द्वारा भोजी DNA के अणु का गुणन होता है तथा नये भोजी DNA अणु बनते हैं जिनके चारों ओर प्रोटीन आवरण का संश्लेषण होता है । इस तरह अधिक मात्रा में नई भोजी संतति उत्पन्न होती है । वे आनुवांशिक रूप से संक्रमणकारी भोजी की तरह ही होती हैं । इस क्रिया से जीवाणु कोशिका का लयन हो जाता है तथा नये बनने वाले भोजी मुक्त हो जाते हैं ।

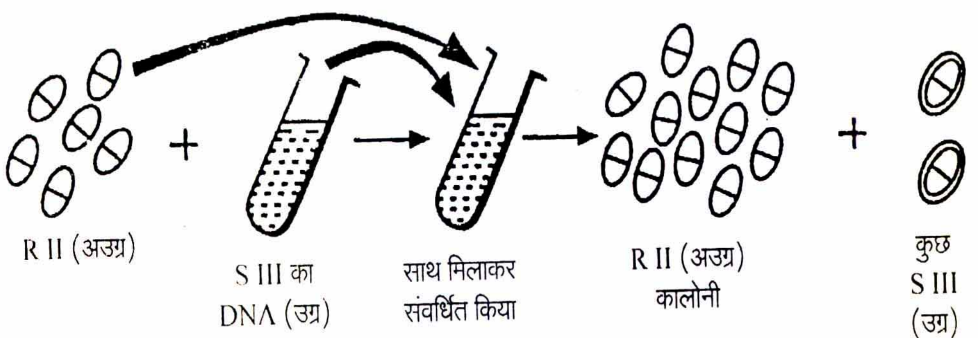

चित्र 6.2 : एवेरी (Avcry) व अन्य साथियों द्वारा किया ज्ञ रूपान्तरण प्रयोग

हर्षे तथा चेज (Hershey and Chase) ने विषाणु '1_2' भोजी पर प्रयोग कर यह कि DNA मै आनुवांशिक पदार्थ है, क्योंकि इस क्रिया में संक्रमण करने वाले भोजी का केवल DNA अंश ही परपोषी जीवाणु कोशिका में प्रवेश करता है । वहीं आनुवांशिक सूचंनाओं का वहन करता है जिससे नई भोजी सन्तानों का समाकलन सम्भव हो पाता है ।

इन वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों में रेडियोएक्टिव सल्फर S^{35} तथा रेडियोएक्टिव व फॉस्फोरस (P^{32}) युक्त माध्यम पर उगाकर जीवाणु भोजी DNA को रोडियोएक्टिव बना दिया, क्योंकि भोजी कणों की प्रोटीन में फॉस्फोरस नहीं होता है, जबकि DNA में फॉस्फोरस होता है इसलिए केवल DNA ही रेडियोएक्टिव फॉस्फोरस द्वारा अंकित होता है । इसी प्रकार भोजी प्रोटीन में ही सल्फर पाया जाता है । जिसे उन्होंने रेडियोएक्टिव सल्फर (S^{35}) द्वारा अंकित कर दिया । इस तरह के विभेदी अकन द्वारा जीवाणुभोजी के DNA व प्रोटीन घटकों को बिना किसी रासायनिक परीक्षण के सरलता से अलग - अलग पहचानना संभव हो पाया इसके बाद हर्षे तथा चेज ने इन अंकित भोजी कणों से अलग - अलग जीवाणु कोशिकाओं को संक्रमित कराने पर पाया कि केवल रेडियोएक्टिव (P^{32}) ही जीवाणवीय कोशिकाओं के साथ सम्बद्ध था, किन्तु रेडियोएक्टिंव S^{35} नहीं, इस प्रयोग द्वारा यह सिद्ध हुआ कि जीवाणवी कोशिका में केवल णपार ही प्रवेश करता है न कि प्रोटीन । प्रोटीन आवरण परपोषी के बाहर ही रह जाता है तथा DNA ही प्रवेश करने के बाद अपने समान नये भोजी कणों का संश्लेषण करता है । हर्षे तथा चेज के इस प्रयोग द्वारा और अधिक स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो गया कि DNA ही आनुवांशिक पदार्थ है ।

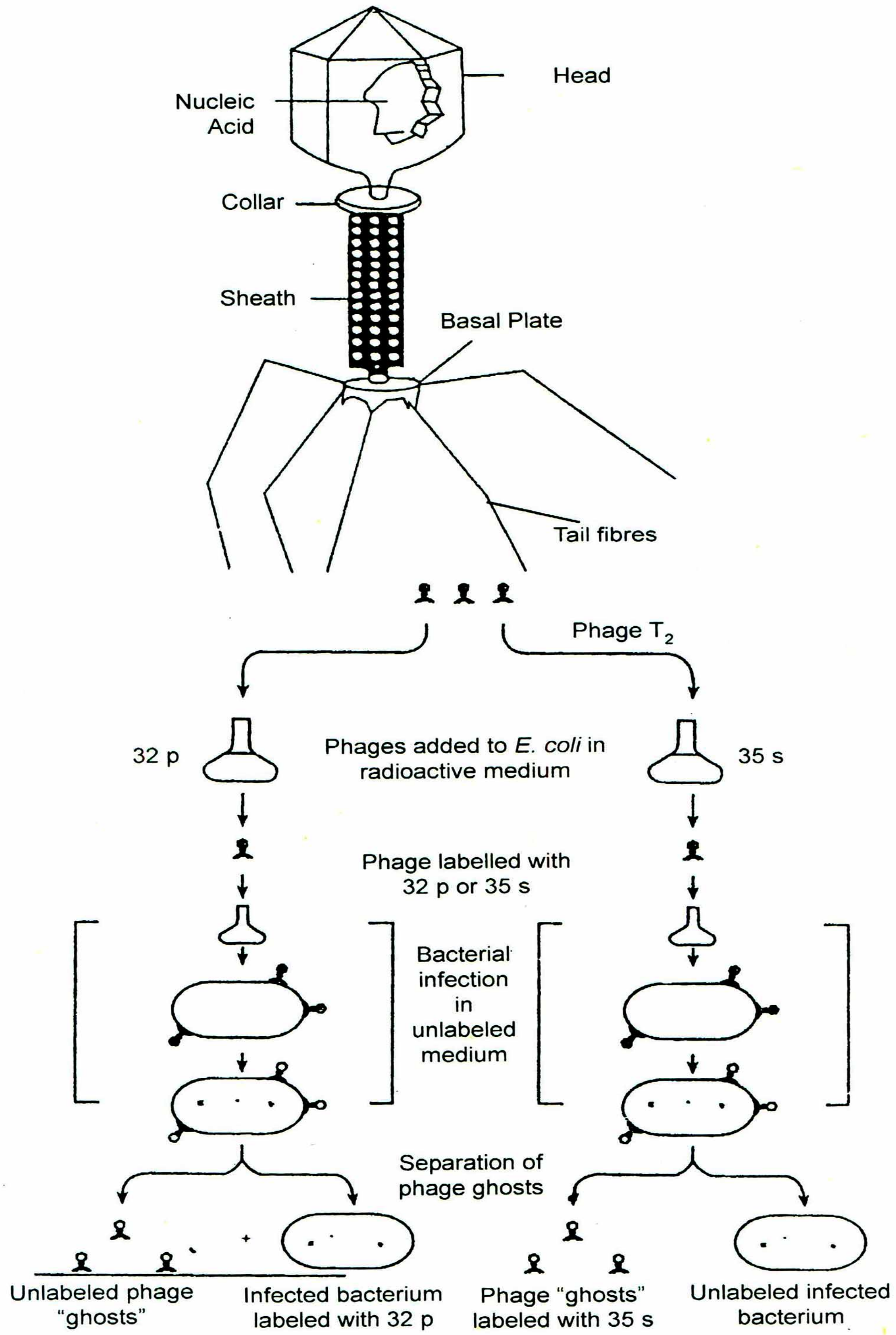

चित्र 6.3 : हर्षे और चेज़ (Hershey and Chase) का प्रयोग जिसमें जीवाणुभोजी के DNA को P^{32} द्वारा और प्रोटीन को S^{35} द्वारा अंकित किया गया था

6.2.2 डि - ऑक्सी राइबोन्यूक्लिक अम्ल की संरचना (Structureof DNA)

डि - ऑक्सी राइबोन्यूक्लिक अम्ल का अणु 5 कार्बन शर्करा नाइट्रोजनी क्षारक तथा फॉस्फोरिक अम्ल से मिलकर बनता है । न्यूक्लिक अम्ल का एक अणु एक रेखीय बहुलक है जिसमें न्यूकिलओटाइड इकाइयाँ एक दूसरे से फॉस्फोडाइएस्टर बंधों द्वारा जुड़ी रहती है । ये बंध एक न्यूक्लिओटाइड के पेन्टोज शर्करा के 3 ' कार्बन को पास वाली न्यूकिलओटाइड की पेन्टोज शर्करा के 5 ' कार्बन से जोड़ते हैं । इस प्रकार DNA अणु की संरचना में फॉस्फेट्स तथा पेन्टोजेज एकान्तर क्रम में लगे रहते हैं तथा नाइट्रोजनी क्षारक शर्करा से जुड़ा रहता है ।

आणविक संरचना

रासायनिक संघटन (Chemical Composition)

रासायनिक दृष्टि से DNA मुख्य रूप से तीन घटकों. (A) फॉस्फोरिक अम्ल (B) शर्करा अणु तथा (C) नाइट्रोजनी क्षारकों का बना होता है ।

(A) **फॉस्फोरिक अम्ल** (phosphoric acid) : यह फॉस्फेट के रूप में पाया जाता है तथा शर्करा अणुओं के साथ जुड़कर DNA अणु की मेरुदण्ड बनाता है । यह दो न्यूक्लिओसाइड की शर्करा की 3 ' कार्बन के OH समूह से जुड़कर एक एस्टर बंध बनाता है तथा दूसरी न्यूक्लिओसाइड की शर्करा 5' कार्बन के OH समूह से जुड़कर दूसरा एस्टर बंध बनाता है । इस प्रकार फॉस्फोडाएस्टर बंधों द्वारा न्यूक्लिओसाइड्स आपस में जुड़ती जाती है (चित्र 6.4)

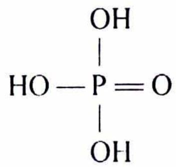

फॉस्फोरिक अम्ल में पाये जाने वाले तीन अम्ल समूहों में से दो तो न्यूक्लिओसाइड्स की शर्कराओं को जोड़ने में काम आ जाते हैं तथा बचा हुआ तीसरा अम्ल समूह क्षारीय प्रोटीनों के साथ आयनिक बंध बनाता है ।

(B) **शर्करा अणु** (sugar molecule). DNA में डि - ऑक्सीराइबोज शर्करा पायी जाती है । जिसमें राइबोज शर्करा से एक ऑक्सीजन परमाणु कम पाया जाता है । इस शर्करा कार्बन - 1 (C-1) पर हमेशा हाइड्रोक्साइल OH) समूह पाया जाता है जिस पर क्षारक जुड़ता है । इस बंध में पिरिमीडीन क्षारक का प्रथम नाइट्रोजन परमाणु (I Nitrogination) (OH) समूह से जुड़ता है जबकि प्यूरीन क्षारक का नवाँ नाइट्रोजन परमाणु (9 -Nigrigination) जुड़ता है । डि - ऑक्सी राइबोज शर्करा में पचकोणीय वलय होती है । जिसमें 5 कार्बन (1', 2', 3', 4', & 5', होते हैं । उनमें से दो कार्बन 3' तथा 5' कार्बन फॉस्फोरिक अम्ल से तथा एक कार्बन 1 ' नाइट्रोजनी क्षारक से जुड़े रहते है ।

(C) नाइट्रोजनी क्षारक (Nitrogenous Bases) ' ये दो तरह के होते हैं (a)र चूरीन्स तथा

(b) पिरिमीडीन्स । इन कार्बनिक यौगिको मे नाइट्रोजन पाई जाती है ।

(a) **प्यूरीन्स** : इसमे दो बेन्जीन वलय आपस में मिली रहती है । ये दो प्रकार के होते हैं.

(1) एडीनीन तथा (11) ग्वानीन (guanine) ।

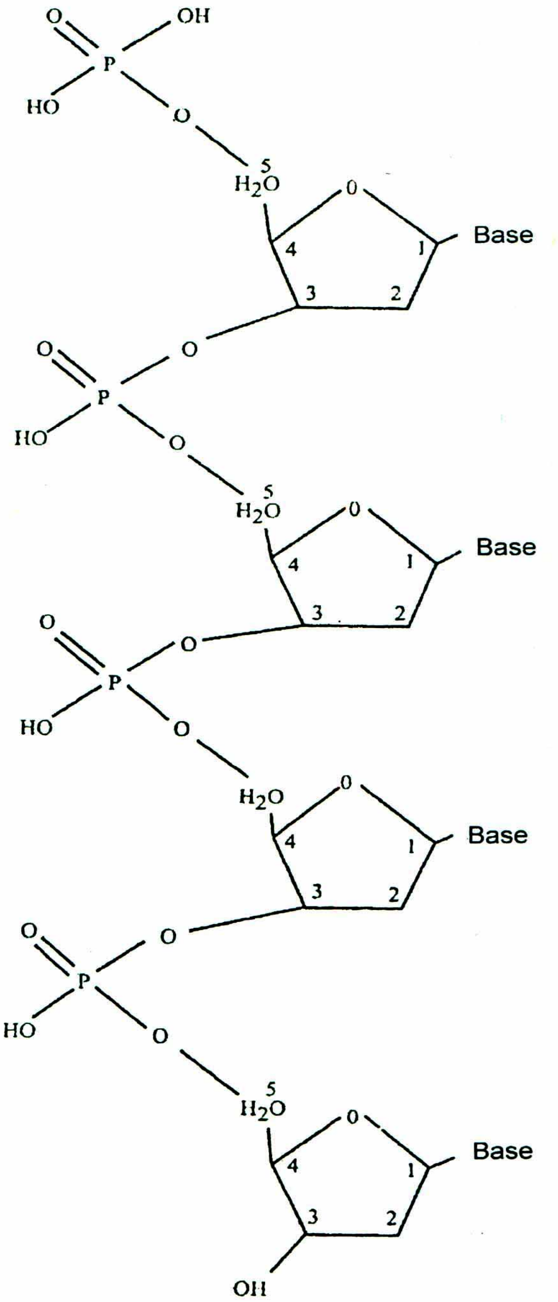

चित्र 6.4 : एक बहुन्यूक्लिकओटाइड श्रृंखला जिसमें फास्फोडाइएस्टर बन्धनो (phosphodiester bonds) को दिखलाया गया है|

(b) **पिरिमीडीन्स** : इनमें केवल एक बेन्जीन वलय पाई जाती है । DNA में पाये जाने वाले पिरिमीडीन्स (1) साइटोसीन (cytisine) व (ii) थायमीन (thymine) होते हैं किन्तु राइबोज न्यूक्लिक अम्ल (RNA) मैं थायमीन के स्थान पर यूरेसिल (uracil) पाया जाता है (चित्र 6.5) ।

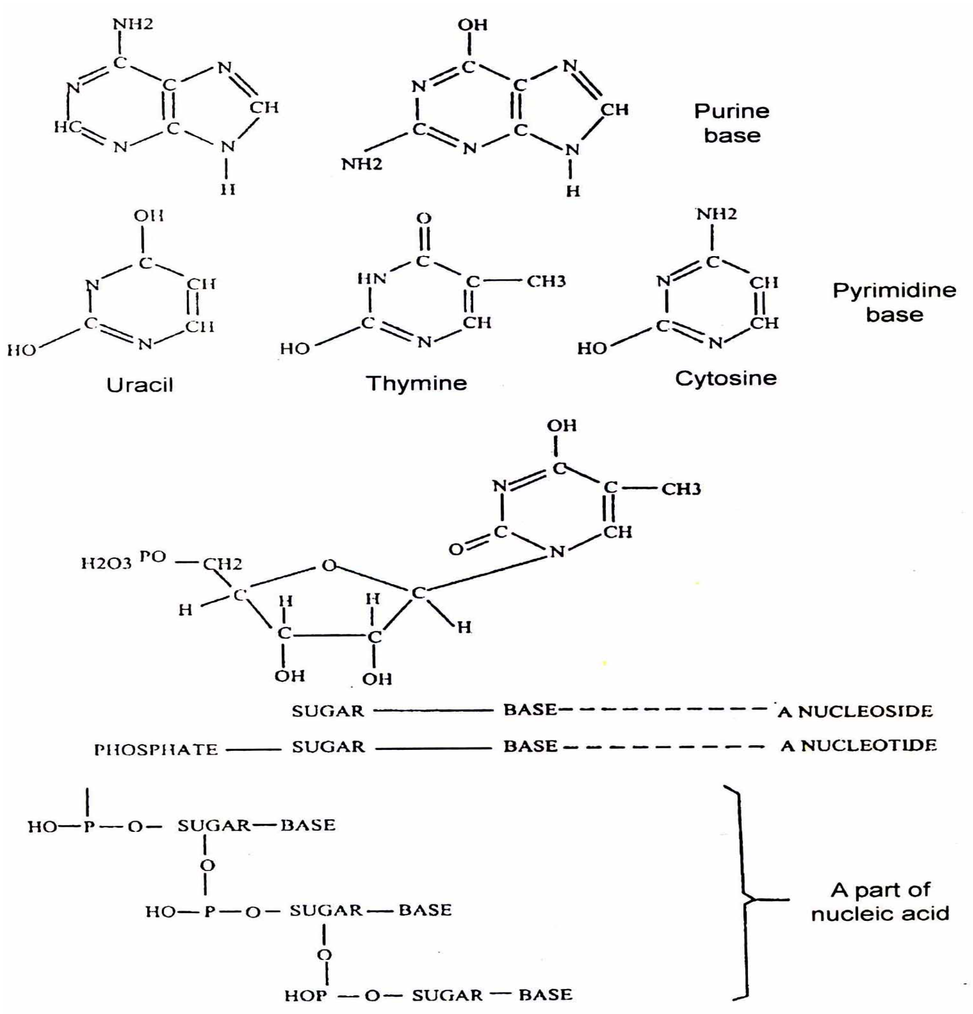

चित्र 6.5 : विभिन्न नाइट्रोजनी क्षारक ,न्यूक्लिओसाइड एवं डी .एन.ए. खण्ड

न्यूक्लिओसाइडस (Nucleosides) : डि - ऑक्सीराइबोज शर्करा त था नाइट्रोजनी क्षारक प्रत्येक का एक अणु जुड़कर न्यूक्लिओसाइड्स बनाता है । इसमें फॉस्फेट समूह अनुपस्थित होता है । चार प्रकार के क्षारकों के द्वारा DNA में निम्न न्यूक्लिओसाइडस बनते हैं (चित्र 6.6) ।

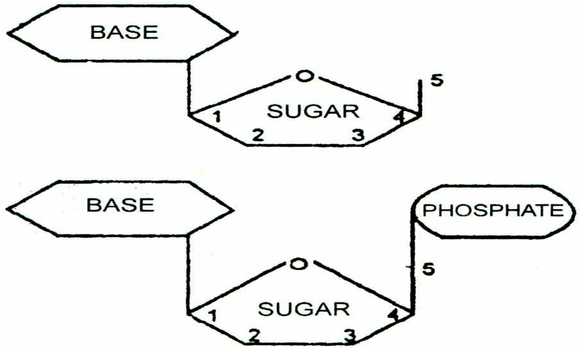

चित्र 6.6 न्यूक्लिओसाइड व न्यूक्लिओसाइड का चित्रित निरूपण

(1) एडीनीन (Adenine) + डि-ऑक्सीराइबोज शर्करा (Deoxyribose sugar) : एडीनोसीन (Adenosine)

(2) ग्वानीन (Guanine) + डि-ऑक्सीराइबोज शर्करा (Deoxyribose sugar). ग्वानोसीन

(3) थायमीन (Thymine) + डि -ऑक्सीराइबोज शर्करा : थायमीडीन (Thymidine)

(4) साइटोसीन (Cytosine)+ डि-ऑक्सीराइबोज शर्करा : साइटीडीन (Cytidine)

न्यूक्लिओटाइडस (Nucletides) : प्रत्येक न्यूक्लिओटाइड इकाई में फॉस्फोरिक अम्ल, डि-ऑक्सीराइबोज शर्करा तथा नाइट्रोजनी क्षारक का एक-एक अणु पाया जाता है । DNA में निम्नलिखित चार प्रकार की न्यूक्लिओटाइड्स पाई जाती है ।

(1) एडीनीन (Adenine) + डि-ऑक्सीराइबोज शर्करा (Deoxyribose sugar) + फॉस्फोरिक अम्ल (phosphoric acide) डि-ऑक्सी एडिनाइलिक अम्ल (Deoxyadenylic acid AMP)

(2) ग्वानीन (Guanine) + डि-ऑक्सीराइबोज शर्करा (Dexoyribose sugar) + फॉस्फोरिक अम्ल (phosphoric acide) डि-ऑक्सी ग्वानिलिक अम्ल Deoxyguanylic acide-dGMP)

(3) साइटोसिन (Cytosine)+ डि-ऑक्सीराइबोज शर्करा (Dexoyribose sugar) + फॉस्फोरिक अम्ल (phosphoric acide) + डि - ऑक्सीसाइटिडिलक अम्ल (Dexycytidylic acide-dCMP)

(4) थायमीन (Thymine) + डि-ऑक्सीराइबोज शर्करा (Dexoyribose sugar) + फास्फोरिक अम्ल ' डि-ऑक्सी थायमिडाइलिक अम्ल (Deoxythymidylic acid-dTMP) (चित्र 6.7) I

पॉलीन्यूक्लिओटाइडस (Pplynucleotide structure) : DNA एक वृहद अणु है जिसका निर्माण बहुत सारी मोनोमर्स (Monomers) इकाईयों (जिन्हें डि - ऑक्सीराइबोन्यूक्लिओसाइड्स कहते हैं), के रेखीय क्रम में जुड़ने से बनी पॉलीन्यूक्लिओटाइडस श्रृखलाओं से होता है । प्रत्येक श्रृंखला के मुख्य अवयव चार तरह के न्यूक्लिओटाइड्स है । जिन्हें चार अलग - अलग प्रकार के क्षारकों की उपस्थिति के आधार पर विभेदित किया जा सकता है ।

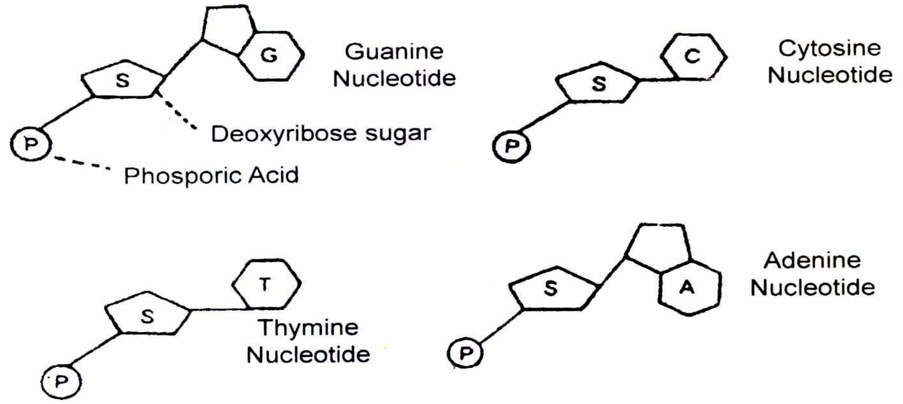

चित्र 6.7 : DNA न्यूक्लिओटाइड्स के प्रकार

इस श्रृंखला को बनाने वाली न्यूक्लिओटाइड्स आपस में फॉस्फोडाइस्टर बंधो द्वारा जुड़ी रहती है । श्रृंखला के एक सिरे पर शर्करा का C- 5' कार्बन होता है जिनसे आगे कोई और न्यूक्लिओटाइड नहीं जुड़ा रहता है । इन्हें क्रमश : 3' व 5' सिरे कहते हैं । DNA अणु में यह शृंखला आकृति में सर्पिल होती है (चित्र 6.8) । चारगाफ (Chargraff) ने बताया DNA मै अणु में एडीनीन क्षारक की मात्रा थायमीन क्षारक की मात्रा के बराबर होती है ।

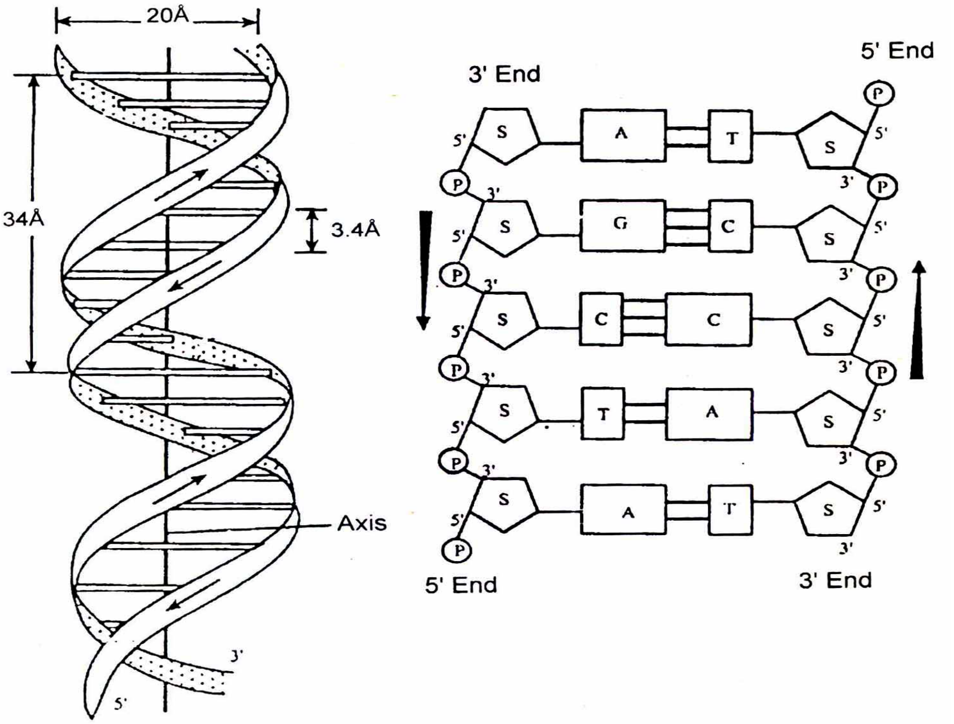

चित्र 6.8 : वॉटसन तथा क्रिक द्वारा प्रस्तावित DNA का मॉडल

इसी प्रकार ग्वानीन की मात्रा साइटोसीन के बराबर होग है । यह सर्वमान्य धारणा है जो प्रकृति में पाये जाने वाले लगभग प्रत्येक DNA अणु पर लागू होती है । जो चारगाफ का नियम (Chargraff Law) कहलाता है । इसके अनुसार A/T तथा G/C का अनुपात एक (1) होता है (विलगित कोलिफाज में X 174 इसका अपवाद है।)

वॉटसन तथा क्रिक द्वारा प्रदत्त डी.एन.ए. प्रारूप

(Mpdel of DNA Given by Watson & Crick)

सन् 1953 में वॉटसन व किक (Watson & Crick) ने DNA अणु की संरचना के लिए द्विक कुण्डलीय प्रारूप (double helical model) प्रस्तावित किया । इसके लिए सर 1962 में वॉटसन, क्रिक तथा विलकिन्स को नोबल पुरस्कार द्वारा सम्मानित भी किया गया । उस मॉडल द्वारा DNA की संरचना को निम्न बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है (चित्र 6.8) ।

(i) DNA पॉलीन्यूक्लिओटाइड श्रृंखला से बने है । इस श्रृंखला में चार प्रकार की न्यूक्लिओटाइडस का क्रम DNA अणु की प्राथमिक संरचना बनाता है । प्रत्येक DNA अणु में ऐसी दो पॉलीन्यूक्लिओटाइड श्रृंखलाएँ पाई जाती हैं, जो एक -दूसरे की पूरक होती है ।

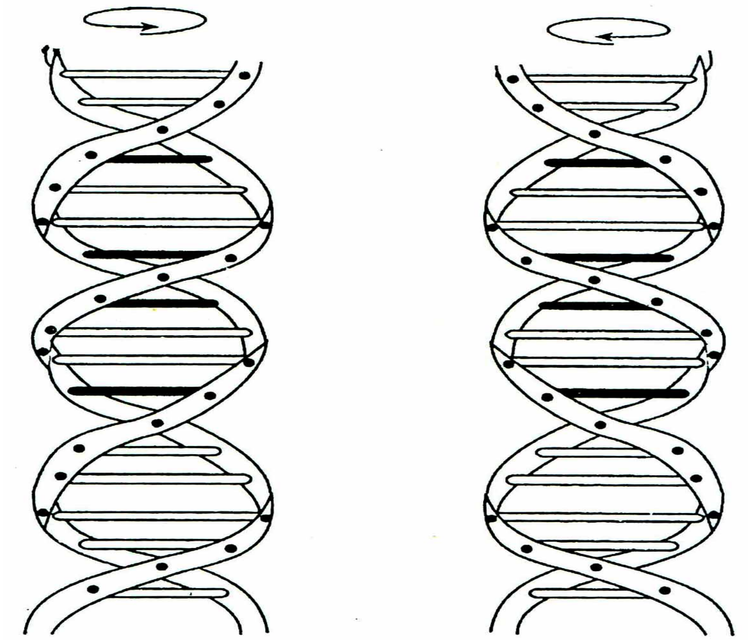

चित्र 6.9 : DNA की दो द्विकुण्डलियाँ (helix),जिसमें एक दाहिनी दिशा में कुण्डलित है (B-DNA में पाया जाता है), और दूसरी,बाई ओर कुण्डलित है (Z-DNA में पाया जाता है)

(ii) ये श्रृंखलाएँ समानान्तर (parallel) होती हैं किन्तु इनमें विपरीत (Polarity) पाई जाती है । अत : एक श्रृंखला का C -3 ' सिरा दूसरी श्रृंखला के C- 5 ' सिरे के सामने होता है । एक श्रृंखला चढ़ती हुई तथा दूसरी उतरती हुई दिखाई देती है । दोनों श्रृंखलाओं में अणुओं का क्रम विपरीत दिशा में होता है । यदि एक पॉलीन्यूक्लिओटाइड श्रृंखला में फॉसफोडाइएस्टर बंध 3'-5 ' दिशा में है तो दूसरी पूरक श्रृंखला में 5'-3' दिशा में फॉस्फोडाइएस्टर बंध होंगे ।

(iii) DNA अणु को बनाने वाली दोनों पूरक श्रृंखलाएँ एक ही अक्ष के चारों ओर दक्षिणावर्ती (right handed) कुण्डलन दर्शाती हैं । जिसमें प्रत्येक कुण्डल लगभग 34 A की दूरी पर स्थित होती हे । DNA अणु की यह सरचना द्वितीयक सरचना (secondary structure) कहलाती है ।

(iv) द्विक कुण्डल में न्यूक्लिओटाइड्स में फॉस्फेटस बाहर की तरफ पाये जाते हैं तथा क्षारक अन्दर की ओर होते हैं । न्यूक्लिओटाइड्स कुण्डल की अक्ष से 90^0 कोण पर व्यवस्थित होती हैं ।

(v) दोनों श्रृंखलाएँ आपस में हाइड्रोजन बंधों द्वारा जुड़ी रहती हैं । हाइड्रोजन बंध क्षारक युग्मों के मध्य पाए जाते हैं ।

(vi) क्षारकों के मध्य युग्मन विशेष प्रकार का होता है, क्योंकि दोनों विपरीत श्रृंखलाओं के शर्करा अणुओं के बीच निश्चित दूरी (10 से 11A) होती है । इस दूरी में हमेशा 1 प्यूरिन क्षारक 1 पिरिमीडीन क्षारक आपस में जुड़कर स्थापित हो सकते हैं । एडीनीन थायमीन के साथ (A=T). साइटोसीन ग्वानीन के साथ (C=G) अथवा थायमीन एडीनीन के साथ (T=A) व

ग्वानीन साइटोसीन के साथ (G=C) जुड़ते हैं । A तथा T दो H-बंधों द्वारा C तथा G तीन H=बंधों द्वारा जुड़े रहते हैं । इस प्रकार दोनों श्रृंखलाओं में क्षारकों का क्रम एक -दूसरे का पूरक होता है । किन्तु एक पॉलीन्यूक्लिओटाइड श्रृंखला में क्षारकों का क्रम निश्चित नहीं होता है । एक काल्पनिक DNA अणु के टुकड़े में क्षारका का युग्मन निम्नानुसार होगा ।

A – T – T – C – A – G – A – C – G   I Strand
|| || || || || || || || ||
T – A – A – G – T – C – T – G – C   II Strand

DNA द्विकुण्डलन के विभिन्न प्रारूप (Different forms of DNA double helix)

विल्किन्स एवम् सहयोगियों ने प्रयोग द्वारा यह बताया किया कि DNA द्विकुण्डलन अलग - अलग परिस्थितियों में विभिन्न संरचनात्मक प्रारूप प्रदर्शित करता है, जिन्हें A,B,C एवं Z DNA नाम दिया गया है । DNA संरचना आर्दता एव क्षारक युग्मों की संख्या प्रति मोड़ आदि में अलग - अलग प्रदर्शित होती है । विभिन्न प्रकार के प्रारूपों हेतु आवश्यक परिस्थितियाँ अग्र सारणी में वर्णित हैं.

सारणी :DNA द्विकुण्डलनके विभिन्नप्रारूप (A,B,C & Z DNA)

हैलिक्स का प्रकार.	परिस्थितियाँ	क्षार युग्म प्रति मोड़ (n)	घुमाव प्रति युग्म क्षार (bp)	लम्बवत् चढ़ाव प्रति क्षार युग्म pp (h)	हैलिक्स का व्यास
A	सापेक्षिक आदर्ता 75%; Na^+K^+ Cs+ions	11	+32. दक्षिणवर्ती (right handed)	2.3A	25.5A
B	सापेक्षिक आदर्ता 92% का आयनिक	10	36.0^0 दक्षिणवर्ती	3.4 A	23.7 A
C	सापेक्षिकदर्ता 66% Li^+ions	933	$+38.6^0$	3.3 A	23.7 A
Z	लवण सान्द्रण बहु त अधिक	12	-30.0 वामावर्ती left handed	5.7 A	18.4 A

(1) 'A' प्रारूप: इस प्रारूप में 'B' प्रारूप की अपेक्षा DNA कुण्डलन की लम्बाई घटकर 28.15 A रह जाती है । प्रति हैलिक्स 11 क्षार युग्म पाये जाते हैं । हैलिक्स का व्यास 25. A होता है । अक्ष के साथ क्षार युग्म का लम्बवत् चढ़ाव 2.3 A होता है ।

(2) 'B' प्रारूप : वॉटसन एवं क्रिक (Watson & Crick) द्वारा दिये गये DNA हैलिक्स को यही प्रारूप माना गया है । इस प्रकार के प्रारूप में DNA हैलिक्स दक्षिणावर्ती होती है । अधिकतर DNA इसी प्रारूप में पाया जाता है । इसमें एक कुण्डलन की लम्बाई 34 A होता है जिसमें 10 जोड़ी एकल न्यूक्लिओटाइड इकाइयाँ पाई जाती हैं । प्रति क्षार युग्म लम्बवत् चढ़ाव 3.4 A होती है । DNA अणु का व्यास 20 A होता है । शर्करा अणु का विन्यास एकान्तर नहीं

होता है । रिपिटिंग इकाई एकल न्यूक्लओटाइड होती है (चित्र 6.9) । क्षार युग्मों का झुकाव 6° तथा अवशेष की प्रति घुमाव 36° होता है ।

(3) 'C' प्रारूप : DNA -हैलिक्स की लम्बाई 'A' प्रारूप की अपेक्षा अधिक किन्तु 'B' DNA से छोटी होती है । जो करीब 31 A होती है । प्रति मोड़ 9.33 क्षार युग्म उपस्थित प्रति क्षार युग्म अक्षीय चड़ाव 3.32 में तथा क्षार युग्म का झुकाव 7.8 होता है ।

(4) 'Z' प्रारूप : रिच एवं साथियों इस DNA संरचना में दोनों विपरीत समानान्तर (antiparallel) श्रृंखलाओं को बनाने वाली शर्करा - फॉस्फेट रज्जु टेढ़ी - मेढ़ी (zig-zag) होती है, इसलिए इसे ZDNA कहा गया । B-DNA के विपरीत, इस DNA में रिपीटिंग इकाई दो न्यूक्लिओटाइड्स (Dimers) से मिलकर बनती है । इस प्रकार एक पूर्ण हैलिक्स (कुण्डलन) में क्षार युग्म अथवा रिपीटिंग इकाइयाँ होती है (चित्र 6.9 व 6.10A) ।

जिसकी लम्बाई 45 A होती है । Z- DNA का व्यास लग भग 18 A होता है । क्षार युग्मों का झुकाव 7° तथा अवशेष का प्रति घुमाव 60° प्रति डाइमर होता है ।

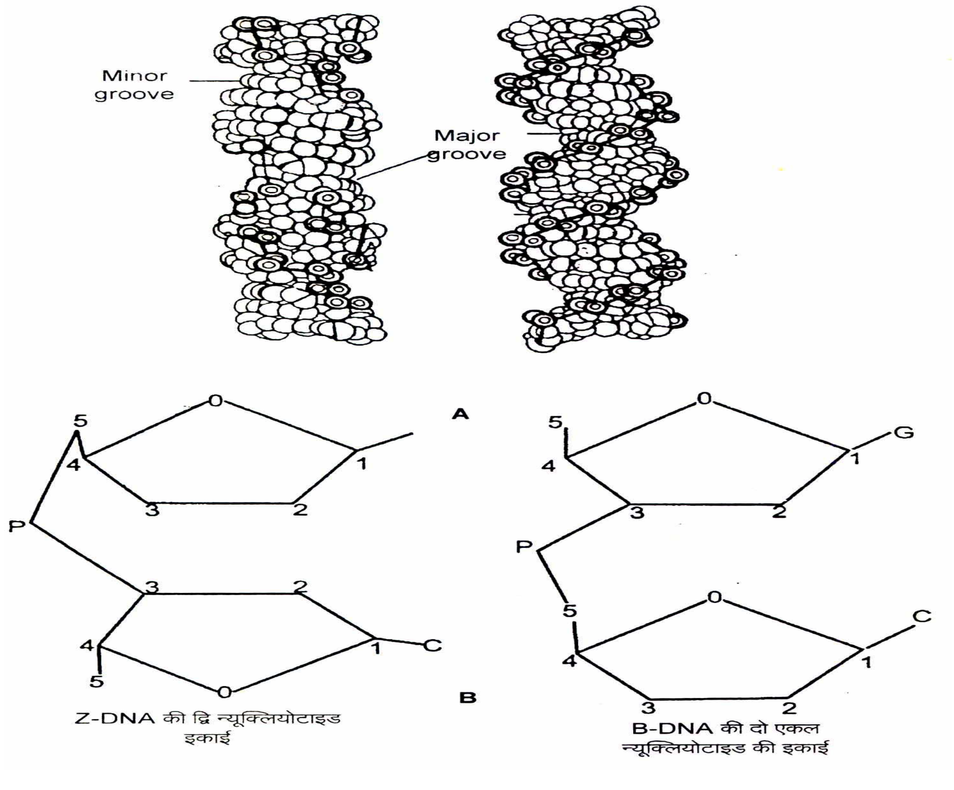

चित्र 6.10 A-B : Z-DNA व B-DNA में फास्फेट Backbone (zigzag) व तथा शर्करा अणुओं का विन्यास प्रदर्शित

6.2.3 डी. एन. ए. की पुनरावृत्ति (DNA replication) :

DNA में एक -दूसरे की पूरक दो पॉलीन्यूक्लिटाइड श्रृंखलाएँ होती है । उनके प्यूरीन तथा पिरीमीडीन क्षारक आपस में क्षीण हाइड्रोजन बंधों से जुड़े रहते हैं । DNA की पुनरावृत्ति के लिए

प्रत्येक पॉलीन्यूक्लिओटाइड श्रृंखला एक टेम्पलेट की तरह कार्य करती है जिस पर नये DNA अणु का संश्लेषण हो जाता है । DNA पुनरावृत्ति की क्रिया क्षारीय युग्मन नियम के अनुसार होती है । जिसके अन्तर्गत A क्षार केवल T के साथ अथवा T,A के साथ बनाते हैं । इसी प्रकार G केवल C के साथ या C.G के साथ युग्म बनाते हैं । जिस के परिणामस्वरूप बनने वाली नयी संतति DNA श्रृंखला पूर्णरूप से DNA श्रृंखला की प्रतिकृति होती है (चित्र 6.11) ।

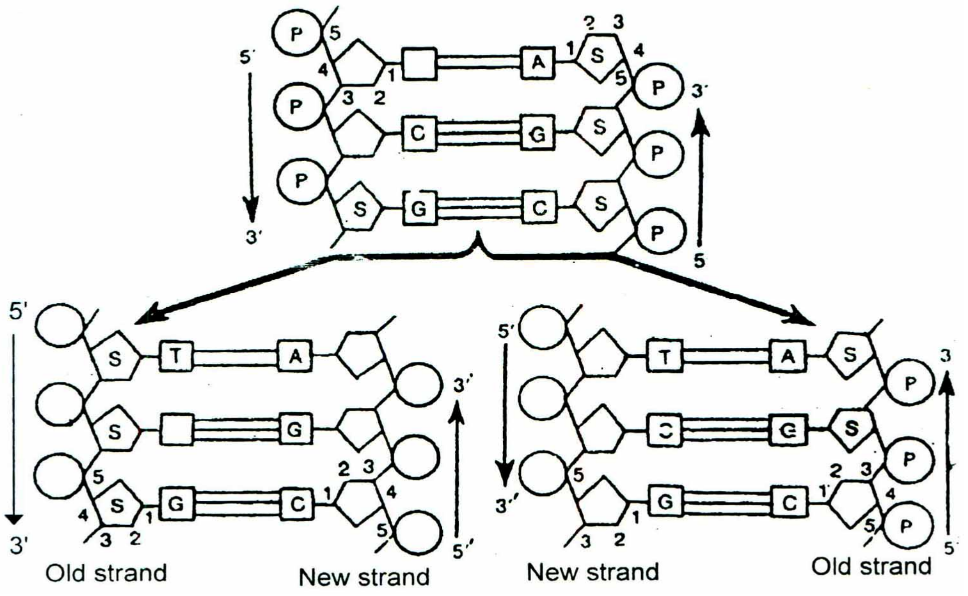

चित्र 6.11 : द्विककुण्डलनीय DNA की संरचना एवं उसकी अर्धसंरक्षी प्रतिकृति

डी.एन.ए. पुनरावृत्ति के प्रकार (Types of DNA replication) :

(a) DNA पुनरावृत्ति एक अर्धसंरक्षी विधि (DNA replication is a semiconservative method) : नये बनने वाले संतति DNA अणु में एक श्रृंखला तो नयी संश्लेषित होती है, किन्तु दूसरी श्रृंखला जो नयी बनने वाले श्रृंखला के लिए टैम्पलेट का कार्य करती है, पैतृक DNA अणु से ही प्राप्त होती है । इस प्रकार DNA पुनरावृत्ति हेतु पैतृक DNA श्रृंखला का नव संश्लेषित श्रृंखला के साथ वितरण अर्धसरक्षी वितरण कहलाता है एवं पुनरावृत्ति की यह प्रक्रिया अर्धसरक्षी है ।

मैथ्यू मैसलसन तथा फ्रेंकलिन स्टॉहल ने पैतृक DNA अणु को नाइट्रोजन के भारी आइसोटोप N^{15} द्वारा अंकित कर दिया । जिससे यह सामान्य नाइट्रोजन वाले DNA अणु से अधिक घनत्व का हो गया । इसके बाद वह माध्यम जिसमें N^{14} H_4 Cl पूर्ण नाइट्रोजन स्रोत था उस माध्यम में जीवाणु ई. कोलाई का संवर्धन कई पीढ़ियों तक कराया गया । तत्काल जीवाणु संतति को उस माध्यम में स्थानान्तरित कर दिया गया जिसमें नाइट्रोजन स्रोत में नाइट्रोजन का सामान्य आइसोटोप N^{14} उपस्थित था । इस आइसोटोप का घनत्व N^{15} से कम होता है । तदुपरान्त DNA को विलगित करके अल्ट्रासेन्ट्रीस्थूगेशन द्वारा उसका घनत्व ज्ञात किया तो यह पाया गया कि प्रथम विभाजन चक्र के बाद संकर DNA अणु को व्यक्त करने वाली केवल एक ही घनत्व पट्टी प्राप्त हुई थी जिसमें एक श्रृंखला 14N नाइट्रोजन द्वारा तथा दूसरी 15N नाइट्रोजन द्वारा

अंकित थी । इसी प्रकार दूसरे विभाजन चक्र के बाद DNA को व्यक्त करने के लिए दो घनत्व पट्टियाँ दिखाई दी । पहली में दो DNA द्विक कुण्डलों में 14N नाइट्रोजन त था दूसरी दो में संकर DNA अणु के लिए थी । संकर DNA अणु में उन्होंने पाया कि दोनों श्रृंखलाओं में परिणामस्वरूप इस अणु का घनत्व 15N वाले DNA की प्रतिकृति अर्धसरक्षी विधि से होती है (चित्र 6.12) ।

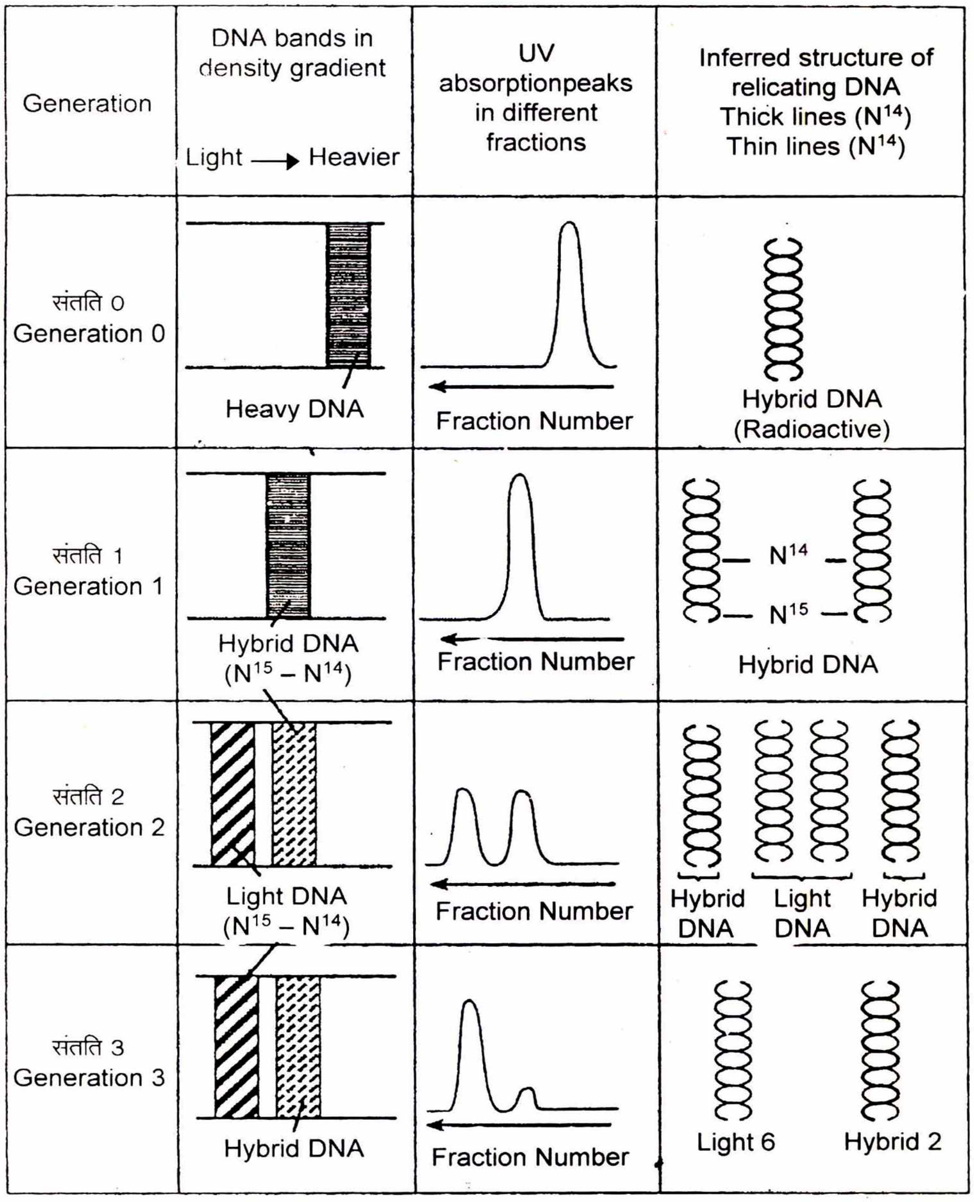

चित्र 6.12 : मेसेल्सन(Meselson)एवं स्टाहल (Stahl) का प्रयोग,जो DNA की अर्धसंरक्षी पुनरावृत्ति को प्रदर्शित करता है|

(b) **DNA की एक श्रृंखला पर असतत पुनरावृत्ति** (Discontinuous replication on one strand) : DNA पुनरावृत्ति की प्रक्रिया के अध्ययन द्वाराज्ञात होताहैकि DNA पुनरावृत्ति असतत खण्डों के रूप में भी होती है ।

DNA का संश्लेषण एक महत्वपूर्ण एन्जाइम द्वारा होता है, जिसे DNA' पॉलीमरेज III (DNA polymerase III) कहते हैं । यह एन्जाइम DNA की पुनरावृत्ति तथा DNA पॉलीमरेज I कि मरम्मत के लिए आवश्यक है । इस एन्जाइम को अपना कार्य शुरू करने के लिए एक DNA टैम्पलेट की जरूरत होती है जिसे प्राइमर कहते हैं । जीवित कोशिका में केवल RNA खण्ड (50 से 100 न्यूक्लिओटाइड द्वारा निर्मित) प्राइमर की तरह कार्य करता है किन्तु कोशिका के बाहर कृत्रिम माध्यम में RNA या DNA खण्ड प्राइमर की तरह कार्य कर सकते हैं ।

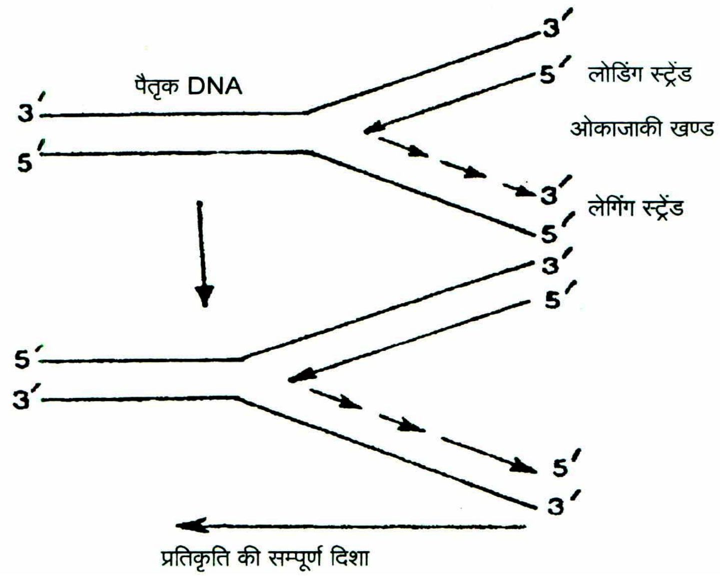

चित्र 6.13 : DNA प्रतिकृति के विभिन्न सोपान

RNA - प्राइमर (RNA primer)

DNA निर्दिष्ट (DNA directed)आ.एन.ए. पॉलीमरेज (RNA ploymerase) RNA के प्राइमर सूत्र का संश्लेषण करता है । आर.एन.ए. प्राइमर सूत्र करीब 50 से 100 न्यूक्लिओटाइड का बना होता है जो डी.एन.ए. के विकुण्डलित सूत्रों का पूरक होता है । इनमें 5' ट्राइफॉस्फेट सिरा त था 3' OH सिरा मिलता है । इनका निर्माण DNA टैम्पलेट द्वारा होता है । डी.एन.ए. श्रृंखला के संश्लेषण की शुरूआत RNA के प्राइमिंग टुकड़े की ओर से होता है । टैम्पलेट 3' से 5' द्वारा नया DNA सूत्र के प्राइमर RNA के 3 ' सिरे पर डी - ऑक्सीराइबो न्यूक्लिओटाइड जुड़ने से 5' - 3' दिशा में निर्मित होते हैं (चित्र 6.13) । DNA पॉलीमरेज III तथा ATP I की उपस्थिति न्यूक्लिओटाइड को प्रभावित करती है । डी एन. ए. पुनरावृत्ति प्रक्रिया में आर.एन.ए. प्राइमिंग (RNA priming) भी एक चरण है जिसमें डी एन.ए. निर्दिष्ट आर.एन. ए. पॉलीमरेज RNA के नये (primer strand) बनाता है जिन पर DNA का निर्माण होता है । अत DNA प्रतिकृति में आर.एन.ए. प्राइमर की भी महत्वपूर्ण भूमिका रहती है ।

ओकाजाकी खण्ड (Okazaki Segment)

ओकाजाकी (Okazaki) ने सर 1968 में जीवाणु कोशिका ओं को 3H थायमिडिन युक्त माध्यम में कुछ समय रखने पर छोटे -छोटे DNA खण्डों की खोज की । इन जीवाणु कोशिकाओं में ओकाजाकी ने एक DNA खण्ड में 1000 से 2000 तक की संख्या में न्यूक्लिओटाइड देखे तथा इन DNA खण्डों को ओकाजाकर खण्ड (Okazaki segment) नाम दिया । यूकेरियोटा में ये खण्ड करीब 100 न्यूक्लिओटाइड के बने होते हैं । उन्होंने यह भी बताया कि DNA प्रतिकृतिकरण के दौरान सूत्र आयतन प्रतिकृतिकरण दर्शाता है तथा इसमें छोटे DNA खण्ड (ओकाजाकी खण्ड) का निर्माण होता है । यह प्रतिकृतिकरण चाप की दिशा के ठीक विपरीत दिशा में बनते है । अत : मूल DNA के दोनों सूत्रों पर नये DNA का संश्लेषण एक साथ एक दिशा में न होकर विपरीत दिशा में तथा खण्डों में होता है । ओकाजाकी के अनुसार एक ही एन्जाइम इन खण्डों को बनाता है । प्रत्येक DNA खण्ड (ओकाजाकी खण्ड) पहले ओकाजाकी खण्ड के RNA प्राइमर के 5' सिरे से जुड़ता है । बाद में DNA पॉलीमरेज की एक्सोन्यूक्लिएज प्रक्रिया (Exonuclease activity) द्वारा RNA प्राइमर से न्यूक्लिओटाइड अलग हो जाते हैं । DNA लाइगेज (DNA-logase) एन्जाइम की उपस्थिति में फॉस्फोडाइएस्टर लिंकेज द्वारा ओकाजाकी खण्डों के सिरे जुड़ते जाते हैं । अत : पॉलीन्यूक्लिओटाइड लाइगेज एन्जाइम ओकाजाकी खण्डों को जोड़कर पॉलीन्यूक्लिओटाइड खला की निर्माण प्रक्रिया को सम्पादित करता है ।

DNA प्रतिकृति के एन्जाइम (Enzymes for DNA replication)

डी.एन.ए. प्रतिकृति में भाग लेने वाले एन्जाइम निम्नलिखित हैं (चित्र 6.14)

(A) DNA हैलीकेज (DNA-Helicase) DNA संश्लेषण हेतु DNA द्विरज्जुओं के ऐंठन खुलना अति आवश्यक है, क्योंकि इन रज्जुओं को टेम्पलेट की तरह कार्य करना होता है । एन्जाइम DNA हैलीकेज ही इस महत्वपूर्ण क्रिया को उत्प्रेरित करता है । इस क्रिया हेतु ऊर्जा ATP द्वारा प्राप्त होती है । अलबटर्स व साथियों ने इस एन्जाइम को T'^4 - phage (वायरस) में खोजा ।

(B) एक्सोन्यूक्लिएज श्रृंखलाओं के कुण्डलन खुलने के पश्चात् दोनों शृंखलाओं के मध्य उपस्थित H -बन्धों को तोड़ने का कार्य एन्जाइम एक्सोन्यूक्लिएज द्वारा किया जाता है । जिससे दोनों श्रृंखलाएँ अलग - अलग हो जाती है ।

(C) टोपोआइसोमरेजज (Toposomerases) इस एन्जाइम की खोज को तथा गेलर्ट (wang & Gellert) ने की । इस एन्जाइम द्वारा पृथक् हुई रज्जुओं की ऐंठन निकालने का कार्य किया जाता है । यूकैरिओटिक कोशिकाओं में दो प्रकार के टोपोआइसोमरेजेज पाए जाते हैं टाइप - I टोपोआइसोमरेज दोनों रज्जुओं में से केवल एक रज्जु को तोड़ता है, ऐंठन निकालकर टूटे सिरों को पुनर्योजित करता है, इसमें ATP' की आवश्यकता नहीं होती है । जबकि टाइप - II टोपोआइसोमरेज दोनों श्रृंखलाओं को तोड़कर तनाव मुक्त करके उन्हें पुन : जोड़ने का कार्य करता

है । इसमें भी ATP काम में आती है । इसे DNA गाइरेज भी कहते हैं । जीवाणु ई कोलाई में चार प्रकार (टाइप - I से IV) के टोपोआइसोमरेज पाए जाते हैं ।

(D) एकल रज्जु बंधित प्रोटीन (single strand binding protein): ये प्रोटीन सीधी हुई एकल श्रृंखला (single stranded DNA or Template) को बाँधने का कार्य करता है, जिससे सरलता से DNA संश्लेषित हो सके तथा इसमें पुन : ऐंठन न हो व फिर से H-बंध नहीं बन सके ।

(E) DNA पॉलीमरेज (DNA ploymerase): DNA टेम्पलेट पर नयी DNA श्रृंखला का संश्लेषण करवाने वाला एन्जाइम DNA पॉलीमरेज कहलाता है । इसकी खोज सर्वप्रथम जीवाणु ई. कोलाई में हुई । ये तीन तरह के होते हैं

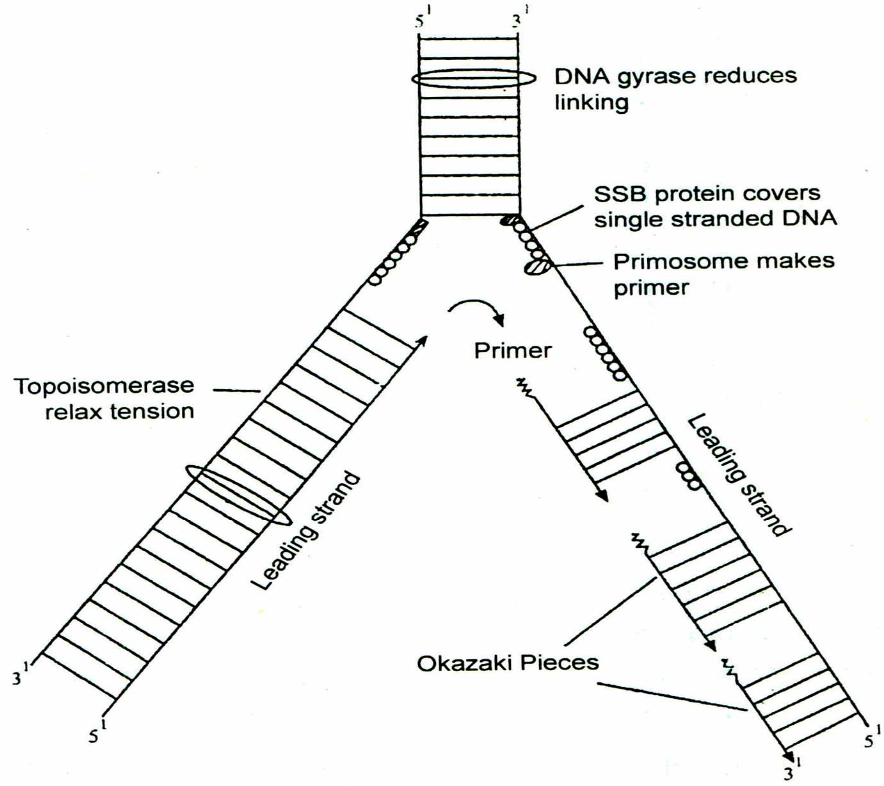

चित्र 6.14 : DNA प्रतिकृति का एक एकीकृत चित्र (unified picture),जिसमें विभिन्न प्रोटीन और अन्य एन्जाइमो के योगदान को दिखलाया गया है|

(a) DNA पॉलीमरेज -I : यह एन्जाइम पेय' की मरम्मत करने का कार्य करता है, तथा DNA की अर्धसंरक्षी पुनरावृत्ति में सहायक होती है । इसका अणुभार 103,000 डाल्टन होताहै । यह श्रृंखला प्रोटीयोलाइटिक (proteolytic) क्रिया द्वारा दो हिस्सों में टूट जाती है । बड़ा हिस्सा (68000-डाल्टन) कलीनाऊ फ़ेगमेन्ट (Klenow fragment) कहलाता है इसमें संश्लेषित क्रियाशीलता तथा 3'-5' एक्सोन्यूक्लिएज पूफ रिडिंग क्रियाशीलता पाई जातीहै । छोटे हिस्से (35,000डाल्टन) में 5'- 3' एक्सोन्यूकिलओलाइटिक क्रियाशीलता पाई जाती है । DNA पॉलीमरेज I की उपरोक्त तीनों क्रियाएँ मिलकर ही इसे DNA

Nick पर DNA प्रतिकृति प्रारम्भ करने योग्य बनाती हैं । इस प्रकार DNA पॉलीमरेज I पाँच विशिष्ट बन्धन स्थल उपलब्ध करवाता है ।

(i) टेम्पलेटस्थल : यह DNA टेम्पलेट के बंधन हेतु स्थल है ।

(ii) प्राइमर स्थल : DNA की प्राइमर श्रृंखलाओं के बंधन हेतु स्थल प्राइमर कहलाता है I

(iii) प्राइमरटर्मिनस स्थल : प्राइमर के 3'-OH अन्त सिरे के लिए उपलब्ध स्थल है I

(iv) 5'-ट्राइफॉस्फेट स्थल : 5' -ट्राइफॉस्फेट समूह के जुड़ने के लिए स्थल 5 ' ट्राइफॉस्फेट स्थल कहलाता है ।

(v) 5' -3' एक्सोन्यूक्लिएज स्थल : एन्जाइम एक्सोन्यूकिएज की क्रिया हेतु स्थल है ।

(b) DNA पॉलीमरेज II - इसक अणुभार 1,20.000 डॉल्टन होता है । यह भी DNA मरम्मत में भाग लेता है । 3'- 5' दिशा में एक्सोन्यूक्लिएज क्रिया को गति देता है ।

(c) DNA पॉलीमरेज III : यह एन्जाइम बहु उपइकाईयों युक्त प्रोटीन है । यही वास्तव में वह प्रतिकृति एन्जाइम है जो कि नई पेर मं श्रृंखला के स्वत : संश्लेषण के लिए आवश्यक है । यह एन्जाइम ही 3'-OH अन्त पर न्यूकिलओटाइड्स को जो जोड़कर DNA श्रृंखला को लम्बाई में बढ़ाने का कार्य करता है । इसका अणुभार 4,40,000 डाल्टन होता है । यह क्रियाशील होने से पूर्व एक अन्य सक्रिय एन्जाइम DNA - कोपॉलीमरेज - III (DNA-copolymerase-III) से संलग्न होकर एक जटिल बनता है । यह जटिल ही पुनरावृत्ति की शुरूआत करता है । इस एन्जाइम को कार्य करने के लिए एक DNA टेम्पलेट एक RNA प्राइमर व आवश्यक मात्रा में ATP की जरूरत पड़ती है।

(F) **प्राइमेजेज (primases)** : इस एन्जाइम का मुख्य कार्य DNA टेम्पलेट के 5 ' सिर पर RNA प्राइमर का निर्माण करता है । RNA प्राइमर प्राय : RNA ऑलीगोन्यूकिलओटाइड्स होती हैं, जो कि एक खण्ड के रूप में होता है । इसके 3' अन्त पर OH समूह होता है जिस पर DNA पॉलीमरेज न्यूक्लिओटाइड्स का संयोजन करता है ।

(G) **लाइगेजेज (DNA logases)** : DNA पुनरावृत्ति के दौरान RNA प्राइमर को हटाकर उसके स्थान पर DNA को जोड़ना एन्जाइम DNA पॉलीमरेज - I का मुख्य कार्य है । इस RNA प्राइमर को हटाने पर खाली स्थानों को DNA द्वारा भरते समय DNA रज्जु में कई तोड़ दिखाई देते हैं जिन्हें nicks कहते हैं । इन nicks को जोड़ने वाला एन्जाइम DNA पुनरावृत्ति के पूर्ण हो जाने पर DNA रज्जुओं पर DNA रज्जुओं के सिरों 3' व5 ' को फॉस्पोडाइएस्टर बन्ध द्वारा जोड़ता है । यह बंध दोनों रज्जुओं के -1' व 5' सिरों को संयुक्त कर अन्त : खण्ड भी बनाता है । यह एन्जाइम भी एकल पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला द्वारा निर्मित होती है । इसका अणुभार 77,000 डाल्टन होता है । इस कार्य के लिए ATP या NAD+ द्वारा रासायनिक ऊर्जा दी जाती है ।

(H) **सुवीलेजेज (swivelases)** : यह एन्जाइम DNA की पुनरावृत्ति के समय हेलीकल सूत्रों के मध्य घूर्णन हेतु आवश्यक है क्योंकि DNA के दोनों सूत्र आपस में प्लेक्टोनिमिक कुण्डलन द्वारा गुंधे रहते हैं ।

जीवाण्वीय DNA' में द्विदिशीय पुनरावृत्ति

जोहन केरेन्स ने ऑटोरेडियोग्राफी प्रयोगों द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि DNA का संश्लेषण केवल एक दिशा में ही ना होकर दोनों दिशाओं में होता है । जीवाणु ई. कोलाई (प्रोकैरियोदस) में एक वृत्ताकार द्विक कुण्डलित I DNA पाया जाता है । खुलने पर इसकी लम्बाई 1.1 mm होती है । यह प्लाज्मा झिल्ली पर एक बिन्दु पर जुड़ा रहता है । यूकैरिओदस के समान ई. कोलाई में भी DNA पुनरावृत्ति द्विदिशीय होती है जो एक निश्चित प्रारम्भ बिन्दु से शुरू होती है तथा इसके लिए दो फोर्क बनते हैं ।

जिनसे दो दिशा में DNA संश्लेषण होता है (चित्र 7.15) । अत _ प्रोकैरियोदस DNA प्रतिकृति कोशिका द्रव्य में होती है । जबकि यूकैरियोदस में DNA प्रतिकृति केन्द्रक में समसूत्री विभाजन की S-(S-phase) प्रावस्था या अर्धसूत्री विभाजन I में होती है ।

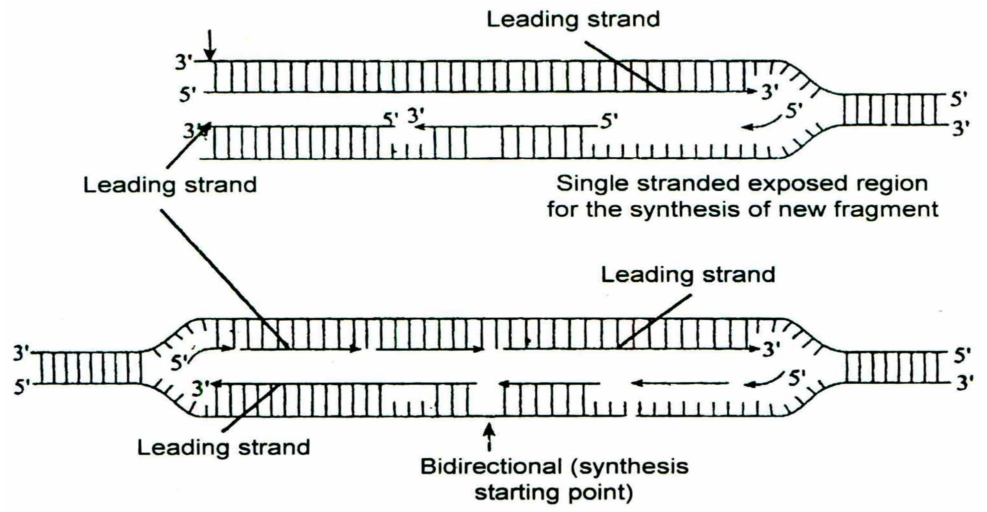

चित्र 6.15: DNA की अर्ध - असंतत प्रतिकृति (semi -discontinuous replication):
(A) एकदिशीय प्रतिकृति,(B) द्विदिशीय प्रतिकृति

यूकैरियोदस में DNA अणु को बहुत अधिक लम्बाई होने के कारण उनमें DNA पुनरावृत्ति के लिए एक से अधिक प्रारम्भ बिन्दु होते हैं । यूकैरियोटिक कोशिकाओं में केवल दो ही पॉलीमरेज एन्जाइम पाए जाते हैं । DNA में एक ही समय पर बहुत - सी पुनरावृत्ति इकाइयाँ पाई जाती हैं, अत ' पुनरावृत्ति की क्रिया एक साथ अनेक स्थानों पर गतिमान रहती है । किन्तु यह द्विदिशीय ही होती है । DNA श्रृंखला का विस्तार फोर्क रूपी वृद्धि बिन्दु ओं के रूप में होता है । फोर्क एक - दूसरे की ओर अग्रसर होते हैं, इस प्रकार बनने वाली नयी DNA श्रृंखला आपस में संयोजित हो जाती है तथा DNA की एक लम्बी द्विकुण्डलित श्रृंखला को बनाते है (चित्र 7.15)

डी.एन. ए. प्रतिकृति की प्रक्रिया (Mechanism of DNA replication) :

DNA प्रतिकृति DNA repliction) एक जटिल प्रक्रिया है । इसका अध्ययन सर्वप्रथम जीवाणु ई. कोलाई में किया गया । इस जीवाणु में DNA पुनरावृत्ति के लिए आवश्यक बहु त सारे एन्जाइम का सम्मिश्र उपस्थित रहता है जिसे रेप्लिसोम (replisome) कहते हैं । जिसमें करीब 12 प्रोटीनों का सम्मिश्र होता है

यह प्रक्रिया निम्न बिन्दुओं द्वारा समझी जा सकती है

(1) डी. एन. ए. पुनरावृत्ति के लिए प्रारम्भन स्थलज (initiation points of site for DNA replication) - DNA अणु में पुनरावृत्ति एक विशिष्ट स्थल से शुरू होती है जिसे आँख (Eyse) या प्रारम्भन स्थल कहते हैं । DNA पर इन स्थलों की पहचान एक विशेष प्रोटीन द्वारा होती है । DNA एन्जाइम RNA पॉलीमरेज को निर्देश देता है जिससे RNA पॉलीमरेज प्रारम्भन प्रोटीन के साथ मिलकर RNA प्राइमर का निर्माण करता है । यह प्रारम्भक नई DNA श्रृंखला के निर्माण के लिए अति आवश्यक होता है । यह 50 से 100 न्यूक्लिओटाइड्स का बना होता है ।

(2) डी.एन.ए. विकुण्डलन (DNA Unwinding). एन्जाइम टोपोआइसोमरेज तथा रैप (rep) प्रोटीन की सहायता से DNA अणु के दो सूत्रों का विकुण्डलन (unwinding) होता है । विकुण्डलन प्रोटीन, विशिष्ट प्रारम्भन स्थल पर बंधन बना लेती है तथा इसके एक लूप को खोल देती है जिससे DNA के दोनों सूत्र पृथक हो जातै हैं । इसके बाद SSB (stranded binding) प्रोटीन एकल सूत्रों का स्थायीकरण करती है ।

(3) आर.एन.ए. प्राइमर पर डी.एन.ए. का निर्माण (Formation of DNA on RNAprimers): RNA प्राइमर एक छोटा राइबोन्यूक्लिओटाइड है जो कि 8 से 10 न्यूक्लिओटाइड का बना होता है । इसका निर्माण 5' -3 ' दिशा में होता है । यह DNA आश्रित RNA पॉलीमरेज (DNA dependent RNA polymerase) द्वारा लिडिंग स्ट्रैण्ड में संश्लेषित होता है, किन्तु लेगिग स्ट्रेण्ड में RNA प्राइमर, एन्जाइम प्राइमरेज द्वारा संश्लेषित होता है । RNA प्राइमर DNA सूत्र के संश्लेषण के लिए टेम्पलेट का कार्य करता है । इसके 3' - OH सिरे पर डी - ऑक्सीराइबोन्यूक्लिओटाइड्स आकर जुड़ती हैं, जिससे 5' - 3' दिशा में DNA के नये सूत्र का निर्माण होता है । इस क्रिया के लिए DNA पॉलीमरेज III व ATP की आवश्यकता होती है । नव DNA सूत्र का संश्लेषण शुरू होने पर एन्जाइम DNA पॉलीमरेज की सहायता से प्रोटीन कोपोल III अलग हो जाती है त था एन्जाइम का सक्रिय भाग पॉल III DNA की प्रतिकृति बनाता रहता है । इस समय तक मातृ DNA के दोनों सूत्रों को फोर्क वाले स्थान से विकुण्डलन प्रोटीन द्वारा पृथक् कर दिया जाता है । पहला संश्लेषित होने वाला DNA सूत्र 5' -3' दिशा में में वृद्धि करता है, किन्तु असतत् पुनरावृत्ति में DNA का संश्लेषण विपरीत दिशा में छोटे -छोटे खण्डों के रूप में होता है जिन्हें ओकाजाकी खण्ड कहते हैं ।

(4) प्रारम्भिक आर.एन.ए. का विच्छेदन (Excision of RNA primer): ओकाजाकी खण्ड बनने के पश्चात् DNA पॉलीमरेज -I की सहायता से (5' - 3' exonuclease activity) 5' सिरे से एक -एक करके होर से प्राइमर हटा लिया जाता है । जिसके फलस्वरूप लैगिग स्टैण्ड (lagging strand) में उत्पन्न खाली स्थान पर मं पॉलीमरेज - I की सहायता से भर दिये जाते हैं ।

(5) ओकाजाकी खण्डों का जुड़ना (joining of okazaki framents) : दो ओकाजाकी खण्ड DNA लाइगेज अथवा DNA सिन्थटेज द्वारा जुड़ जाते हैं । DNA लाइगेज एन्जाइम कभी भी एक DNA अणु या वलयाकार DNA अणु को नहीं जोड़ता है । यह केवल DNA डुप्लेक्स को ही जोड़ता है । इसके लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है ।

डी.एन.ए. के कार्य (Function of DNA) :

DNA एक ऐसा स्थिर जैविक यौगिक है जो अमर माना जा सकता है । यह सजीवों में होने वाली समस्त वशागत एवं जैव संश्लेषित क्रियाओं को नियंत्रित करता है ।

DNA का महत्वपूर्ण कार्य आनुवांशिक सूचनाओं को एक पीढ़ी से संतति पीढ़ी में ले जाना है । इसके अतिरिक्त यह ट्रांसक्रिपान की क्रिया द्वारा RNA का संश्लेषण करता है जिससे ट्रांसलेशन की क्रिया द्वारा प्रोटीन का निर्माण होता है । प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया का नियमन करना भी DNA का कार्य है । यह जनन के लिए उपयोगी पदार्थ है क्योंकि इसमें द्विगुणन का लक्षण है ।

6.2.4 राइबोन्यूक्लिक अम्ल (Ribonclcic Acid RNA):

राइबोन्यूक्लिक अम्ल कोशिका द्रव्य तथा केन्द्रक में उपस्थित होता है । कोशिका द्रव्य में यह tRNA एवं mRNA के रूप में तथा rRNA के रूप में राइबोसोम्स में पाया जाता है । यहीं नहीं, प्रमुख कोशिकांगो, जैसे. माइटोकॉन्ड्रिया, क्लोरोप्लास्ट एवं यूकैरियोटिक कोशिकाओं के क्रोमोसोम्स में भी RNA की कुछ मात्रा पाई जाती है । बहुत से पादप वारिसों एवं कुछ जन्तु वायरसों में तो RNA ही आनुवांशिकी पदार्थ के रूप में पाया जाता है ।

RNA अणु की संरचना (structure of RNA molecule)

सामान्य रूप से RNA की संरचना DNA से काफी कुछ समानता दर्शाती है । RNA प्राय : पॉली न्यूक्लिओटाइड द्वारा निर्मित एक सूत्री एवं अशाखित संरचना या श्रृंखला होती है । सामान्यतया यह श्रृंखला अत्यधिक वलित होकर एक कुंडलित आकृति ग्रहण कर लेती है । RNA एकल सूत्रों का निर्माण असंख्य न्यूक्तिओटाइड्स के 3 - 5 बन्धों द्वारा परस्पर रेखीय क्रम में विन्यासित होने से सम्पन्न होता है ।

RNA में राइबोस शर्करा (Ribose sugar) उपस्थित होती है, जो कि नाइट्रोजनी क्षारकों से मिलकर राइबोन्यूक्लिओटाइड बनाती है । एडीनीन, गुआनीन, साइटोसिन एवं यूरेसिल इत्यादि चार नाइट्रोजनी क्षारक RNA में मिलते हैं । दूसरे शब्दों में यूरेसिल के अतिरिक्त RNA के शेष सभी क्षारक DNA के समान ही होते हैं, क्योंकि DNA में श्रेसिल की बजाए थायमीन नामक क्षारक पाया जाता है ।

RNA के बारे में एक और प्रमुख तथ्य यह है कि यहाँ नाइट्रोजनी क्षारकों अर्थात A/U: G/C का अनुपात समान या A/U: G/C= I नहीं होता । RNA के अणु में पाये जाने वाले न्यूक्लिओटाइड के बीच अन्तरा आण्विक युग्मन मिलता है और यह इसकी एकल सूत्री संरचना को स्थायित्व प्रदान करता है । प्रोकैरियोटिक या यूकैरियोटिक कोशिकाओं में विभिन्न प्रकार की RNA संरचनाएँ पाई जाती हैं, जो प्रोटीन संश्लेषण के अन्तर्गत अलग - अलग कार्यों को संधारित करती है । इन तथ्यों से स्पष्ट है कि सजीवों में दो प्रकार के न्यूक्लिक अम्ल क्रमश.: RNA एवं DNA पाये जाते हैं ।

कार्यों के आधार पर शेष मै को सामान्यतया दो श्रेणियों में बाँटा गया है :

(1) आनुवांशिक आर एन.ए. (Genetic RNA)

(2) अननुवाशिक आर एन.ए. (Non-genetic RNA)

1. **आनुवांशिक आर.एन.ए. (Genetic RNA**) _ अधिसंख्य पादप वायरसों एवं कुछ जन्तु वायरसों में तथा इसके साथ ही अनेक जीवाणुभोजियों में भी RNA ही एकमात्र आनुवांशिक पदार्थ है । ऐसा सम्भवत: DNA की अनुपस्थिति के कारण हो सकता है । यह एकल रज्जुकी या द्विरज्जुकी हो सकता है । द्विरज्जुकी rRNA में नाइट्रोजनी क्षारक DNA के समान ही जोड़ों में पाये जाते हैं ।

विभिन्न वायरसों का आनुवांशिक आर.एन.ए.

(Genetic RNA of Different Viruses)

क्र.सं.	वायरस का प्रकार	वायरस का नाम	आर.एन.ए. प्रकार
1.	पादप वायरस (Plant Viruses)	TMV (टोबैको मोजेक वायरस) घाव अर्बुद (Wound tumour)	एकरज्जुकी (SS) द्विरज्जुकी (DS)
2.	जन्तु वायरस (Animal Viruses)	इनफ्लूऐंजा वायरस पोलियो माइलाइटिस रियो वायरस	एक-रज्जुकी (SS) एक-रज्जुकी (SS) द्वि-रज्जुकी (DS)
3.	जीवणुभोजी (Bacteriophages)	MS2 F2 r17	एक-रज्जुकी (SS) एक-रज्जुकी (SS) एक-रज्जुकी (SS)

2. **अननुवांशिकी आर.एन.ए.** (Non-genetic RNA) : सजीव जिनमें आनुवांशिक पदार्थ के रूप में DNA पाया जाता है, वहाँ पृथक् प्रकार का RNA मिलता है जो आनुवांशिक सूचनाएँ सम्प्रेषित नहीं करता नॉन - जेनेटिक आर.एन.ए. कहलाता हैं । इसका संश्लेषण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से DNA टेम्पलेट द्वारा ही होता है । यह सदैव एक रज्जुकी होता है एवं नॉन - जेनेटिक आर.एन.ए. का प्रमुख कार्य कोशिका में प्रोटीन संश्लेषण करने का होता है । कार्य के आधार पर नॉन -जेनेटिक आर.एन.ए. तीन प्रकार का है.

(1) संदेश वाहक आर.एन.ए. (Messenger RNA, m-RNA)

(2) राइबोसोमल आर.एन.ए. (Ribosomal RNA, r-RNA)

(3) स्थानान्तरण आर.एन.ए. (Trnasfer RNA, t-RNA)

विभिन्न प्रकार के आनुवांशिक आर.एन.ए. का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित रूप में हैं :

1. **संदेशवाहक आर.एन.ए. (**Messenger RNA) : इसे सूचनावाहक RNA (Information RNA) या दूत RNA या पूरक (Complementary RNA) भी कहा जाता है । संक्षिप्त रूप से इसे m-RNA कहते हैं ।

हक्सले (Huxley 1956) ने बेक्टीरिया एवं वायरसों में इसकी खोज की इसका प्रमुख कार्य गुणसूत्र DNA से प्रोटीन संश्लेषण के लिए कोशिका द्रव्य में आनुवांशिक सूचनाओं का सम्प्रेषण करना है । इसकी मात्रा कोशिकीय RNA की 5 से 10 प्रति भाग है जो तीनों आर.एन.ए. प्रकारों में सबसे कम है । इसकी निम्न विशेषताएँ हैं :

(i) इसका संश्लेषण द्विरज्जुकी DNA के किसी एक रज्जु के पूरक सूत्र की भाँति होता है । इसी वजह से इसमें मूल DNA के समान क्षारकों का व्यवस्था - क्रम पाया जाता है । केवल एक क्षारक अर्थात् DNA के थाइमीन के स्थान पर यूरेसिल उपस्थित होता है, जो कि DNA से अलग है । अत : इस प्रकार संश्लेषित m-RNA में वही आवश्यक सूचना निहित होती है, जो कि इसके मूल DNA टेम्पलेट खण्ड में उपस्थित पाई जाती है ।

(ii) राइबोसोम्स पर एकत्र m-RNA प्रोटीन संश्लेषण के लिए टेम्पलेट का कार्य करते हैं ।

(iii) m-RNA का अणुभार 5 लाख से 20 लाख डाल्टन एवं इसका अवसादी गुणाक 80S होता है ।

(iv) m-RNA संश्लेषण के बाद, केन्द्रक से बाहर आकर कोशिका द्रव्य में स्थानान्तरित हो जाता है एवं कुछ निश्चित राइबोसोम्स पर इसके अणु इकट्ठे हो जाते हैं ।

(v) ये अणु अल्पजीवी होते हैं तथा कुछ अनुलिपिकरण के कार्य को करने के बाद नष्ट हो जाते हैं । अत: m-RNA का संश्लेषण तेजी से होता है ।

(vi) इनके अणु भार एवं अणुओं के आकार में भिन्नता पाई जाती है । अत: m-RNA के अणु विषमांगी होते हैं ।

(vii) इसके कुल क्षारक लगभग एकसमान होते हैं, तथा व्यवस्था क्रम अलग - अलग होता है ।

m-RNA की संरचनात्मक विशेषताएँ (Structural features of m-RNA):

m-RNA की संरचना में घटक निम्न हैं:

(i) टोपी (Cap) : m-RNA सूत्र के 5 ' सिरे पर एक टोपी जैसी संरचना उपस्थित होती है जो कि 3 में से किसी भी मिथाइलेटेड यौगिक द्वारा अवरुद्ध होती है । m-RNA की यह टोपी जैसी संरचना प्रोटीन संश्लेषण की दर (Rate) को प्रभावित करती है, क्योंकि टोपी के बिना m-RNA सूत्र में राइबोसोम्स को अपने साथ संलग्न करने की क्षमता बहुत कम हो जाती है।

(ii) नान -कोडिंग क्षेत्र (Non-coding region-I) : टोपी वाले क्षेत्र के ठीक बाद में प्रथम नान-कोडिंग क्षेत्र (NC-I) पाया जाता है, जो कि 10 से लेकर 100 न्यूक्लिओटाइड्स द्वारा बना

एवं A तथा U क्षार बहुल संरचना है । यह क्षेत्र प्रोटीन के अनुलेखन में कोई भूमिका नहीं निभाता ।

(iii) प्रारम्भन कोडोन (Initiation Codon) : नाम-कोडिंग क्षेत्र के ठीक बाद AUG कोडोन उपस्थित होता है, जो पोलीपेप्टाइड श्रृंखला का प्रारम्भ करने का कार्य करता है ।

(iv) काडिंग क्षेत्र (Coding Region) : प्रारम्भन कोडोन से आगे कोडिंग क्षेत्र पाया जाता है, जो कि लगभग 1500 न्यूइक्लओटाइडों द्वारा निर्मित होता है । यह किसी प्रोटीन विशेष के अणु का अनुलेखन करता है ।

(v) समापन कोडोन (Termination codon) : कोडिंग क्षेत्र के बाद समापन कोडोन पाया जाता है, जो -RNA पर प्रोटीन संश्लेषण का समापन करता है । यूकैरोओट्स(Eukaryotes) में m-RNA के समापन कोडोन क्रमश: UAA, UAG एवं UGA होते हैं ।

(vi) नान कोडिंग क्षेत्र II (Non-coding region II) : समापन कोडोन से आगे 50 - 150 न्यूक्लिओटाइड्स युक्त नान कोडिंग क्षेत्र (NC II) होता है । यह प्रोटीन का अनुलेखन नहीं करता । इस क्षेत्र में AAU क्षार अनुक्रम पाया जाता है ।

(vii) पोली A अनुक्रम (Poly-A-sequence) -mRNA अणु के 3' सिरे पर पॉली - एडिनाइलेट अनुक्रम (Poly-A) पाया जाता है । इसमें 200 - 250 न्यूक्लिओटाइड्स उपस्थित होते हैं ।m-RNA के कोशिका द्रव्य में मुक्त होने से बहुत पहले ही Poly-A अनुक्रम केन्द्रक से जुड़ जाता है ।

m-RNA की विषमांगी प्रकृति (Heterogenous Nature of m-RNA):

अलग - अलग परिमाप एवं अणुभार के कारण m-RNA के अणु विषमांगी होते हैं जो दो कारकों पर निर्भर करती है

(1) सिस्ट्रॉन की साइज एवं संख्या

(2) प्रोटीन अणु की साइज

सिस्ट्रॉन अथवा विशिष्ट DNA खण्डों की संख्या के आधार पर दो प्रकार का m-RNA पाया जाता है :

(A) एकल सिस्ट्रॉनिक या मोनोसिस्ट्रानिक m-RNA (Monocistronic-m-RNA) : प्राय: m-RNA संरचनाओं में केवल एक सिस्ट्रॉन का कूट या कोडोन (Code or Codon) पाया जाता है, अत: इस प्रकार का m-RNA प्रोटीन के केवल एक अणु का संश्लेषण कर सकता है।

(B) बहुलसिस्ट्रॉनिक या पॉली सिस्ट्रॉनिक m-RNA (Poly-cistronic m-RNA) : इस प्रकार की m-RNA संरचनाओं में एक से अधिक तरह के सिस्ट्रॉन के कोडोन (Codon) पास -पास एक साथ पाये जाते हैं । इस प्रकार का m-RNA एक से अधिक प्रोटीन के उपापचय (Metabolism) का नियमन करने वाला m-RNA इस श्रेणी का उपयुक्त उदाहरण है, इसमें इस विशिष्ट एन्जाइम - प्रोटीन के संश्लेषण कोडोन भी पाये जाते हैं ।

m-RNA का स्थायित्व एवं जीवन काल (Stability and Life Span of m-RNA):

कोशिका में उपलब्ध तीनों प्रकार के RNA's में m-RNA सबसे कम मात्रा में अर्थात् 5 से 10 प्रतिशत हिस्से के रूप में मिलता है । m-RNA की अल्प स्थायी प्रकृति इसका सबसे बड़ा कारण है, क्योंकि यह कुछ प्रेषण कार्य के बाद ही नष्ट हो जाता है । राइबोन्यूक्लिएस एन्जाइम द्वारा विघटित हो जाने के बाद चारों प्रकार की न्यूक्लिओटाइड्स m-RNA से पृथक हो जाती हैं ।

प्रोकैरियोटिक कोशिकाओं में m-RNA का जीवन काल अत्यन्त छोटा होता है, बैक्टीरिया में यह अवधि केवल 2 मिनट की होती है, जबकि यूकैरियोटिक कोशिकाओं में इसका जीवनकाल 1 से 4 घण्टे एवं कभी -कभी कुछ दिनों तक का पाया गया है ।

राइबोसोमल आर.एन.ए. (Ribosomal RNA) :

राइबोसोम में पाया जाने वाला आर.एन.ए. r-RNA या राइबोसोमल आर.एन.ए. कहलाता है । इसकी मात्रा कोशिकीय आर.एन.ए. में सर्वाधिक अर्थात् 80 प्रतिशत तक होती है, इस प्रकार तीनों प्रकार के RNA में यह सबसे ज्यादा मात्रा में पाया जाता है । राइबोसोमल आर.एन.ए. को अघुलनशील RNA भी कहते हैं । राइबोसोम्स में यह सर्वाधिक महत्व का घटक है क्योंकि एक राइबोसोम में 50 से 65 प्रतिशत हिस्सा r-RNA का एवं शेष भाग प्रोटीन्स का बना होता है । यह सबसे ज्यादा स्थायी एवं दीर्घजीवी RNA संरचना होती है । इस प्रकार राइबोसोम्स को न्यूक्लियोप्रोटीन अणु संरचना के रूप में परिलक्षित किया जा सकता है ।

यूकैरियोटिक कोशिकाओं के राइबोसोम्स में r-RNA त्रिआयामी कणों में पाई जाती है । ये 28 S एवं 18 S एवं 5 S कण होते हैं । राइबोसोम की बड़ी उप -इकाई 60S में क्रमश : 28 S एवं 5 S अणु पाये जाते हैं जबकि 50S की छोटी उप -इकाई में 18S अणु मिलते हैं । r-RNA के 28S अणु का आण्विक भार $1.5\text{-}1.8x10^6$ डॉल्टन एवं 18S का अणुभार $0.8\text{-}1.0x10^6$ डॉल्टन होता है । वहीं दूसरी ओर प्रोकैरियोटिक कोशिकाओं में 23S एवं 16 S के r-RNA कण पाये जाते हैं, जिनका अणुभार क्रमश : $1.2x10^6$ एवं $0.6x10^6$ डॉल्टन होता है ।

इसमें क्षारकों की मात्रा भी m-RNA एवं t-RNA की तुलना में अलग होती है क्योंकि r-RNA में गुआनीन एवं साइटोनीन अधिक मात्रा में होते हैं ।

स्थानान्तरण आर.एन.ए. या घुलनशील RNA (Transfer RNA or Soluble RNA) :

स्थानान्तरण आर.एन.ए. या t-RNA का निर्माण 60 S प्रकार के छोटे आकृति के राइबोन्यूक्लिक अम्ल द्वारा होता है । ये RNA अणु स्वतन्त्र रूप से कोशिका द्रव्य में रहते हैं तथा वहाँ उपस्थित अमीनो अम्ल के अणुओं को अपने साथ जोड़कर m-RNA की उपस्थिति में पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला के निर्माण में सहायता करते हैं । t-RNA का प्रमुख कार्य m-RNA पर उपस्थित कोडोन की पहचान करके एवं इसके अनुरूप सक्रिय अमीनो अम्लों से संयुक्त होकर उनके प्रोटीन संश्लेषण के स्थलों तक पहुँचाने का होता है । ये 20 सक्रिय अमीनो अम्लों से

अत्यधिक बन्धुता के कारण संयुक्त होते हैं । स्थानान्तरण RNA की मात्रा कोशिका में उपस्थित RNA की कुल मात्रा का लगभग 10 से 15 प्रतिशत भाग होती है, t-RNA में 75 से 80 न्यूक्लिओटाइड पाये जाते हैं । इनका अणुभार 25000 डॉल्टन होता है । इस प्रकार के RNA की न्यूक्लिओटाइड्स श्रृंखला तीन निश्चित स्थलों पर अधिवलित होकर दो पार्श्वीय एवं एक केन्द्रीय द्विरज्जुकी कुण्डलित संरचना बनाती है । जबकि शेष स्थलों पर यह RNA श्रृंखला एकरज्जुकी ही पाई जाती है । कुण्डलित स्थानों पर t-RNA श्रृंखला अपने ऊपर कुछ इस प्रकार से अधिवलित होती है कि इसके 3 ' सिरे व 5 ' सिरे एक -दूसरे के नजदीक आ जाते हैं । पॉलीन्यूक्लिओटाइड श्रृंखला के 3 ' सिरे पर CCA नाइट्रोजनी क्षारक क्रम पाया जाता है, जहाँ पर इससे सक्रिय अमीनो ऐसिड संलग्न होता है । इसी प्रकार गुआनीन क्षारक श्रृंखला के अन्तिम सिरे पर उपस्थित होता है । स्थानान्तरण RNA की प्रत्येक कुण्डली में तीन क्षारक एक विशिष्ट क्रम में उपस्थित रहते हैं (चित्र 6.16) । ये तीनों नाइट्रोजनी क्षार प्रतिकोडोन बनाते हैं, जो कि m-RNA पर कोडोन को चिन्हित करते हैं । इस प्रकार प्रत्येक t-RNA अणु में चार विशेष प्रकार के स्थल उपस्थित होते हैं :

(1) अमीनो एसिड का संलग्न स्थल (Attachment site for Amino acid)

(2) पहचान स्थल (Recognition site)

(3) एन्टीकोडोन या कोड पहचान स्थल (Anticodon)

(4) राइबोसोम चिन्हीकरण स्थल (Ribosome Recognition Site)

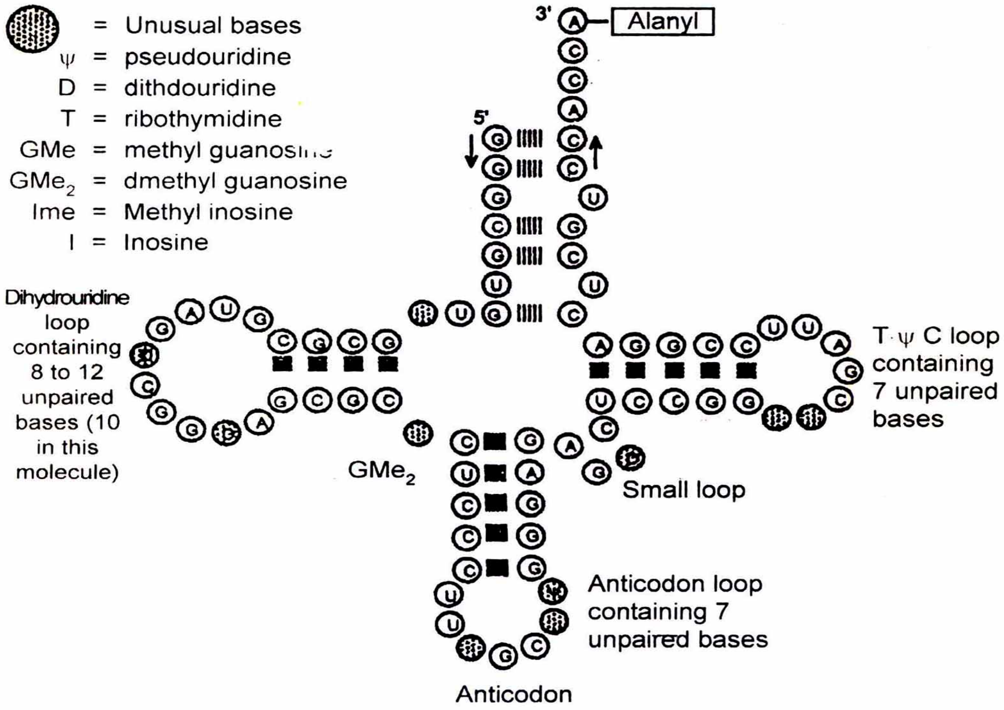

चित्र 6.16 : यीस्ट एलेनीन 2t-RNA का क्लोवर पत्ती (Clover leaf model)मॉडल

t-RNA में साइटोसिन, गुआनीन, एडिनीन एवं यूरेसिल जैसे सामान्य नाइट्रोजनी क्षारकों के अतिरिक्त कुछ असामान्य क्षारक जैसे इनोसिनिक अम्ल, एवं मिथाइल अमीनो प्यूरीन इत्यादि भी पाये जाते हैं । इन विरल अथवा दुर्लभ क्षारकों के कारण ही m-RNA से t-RNA का युग्मन (pairing) से प्रभावित नहीं होता । ऐसा अनुमान है कि ये दुर्लभ क्षारक t-RNA की स्वतन्त्र कुण्डली में अन्तराआण्विक क्षारक युग्मन को प्रभावित करते हैं ।

t-RNA के अणु सक्रिय एवं निष्क्रिय दोनों प्रकार के पाये जाते हैं । इसके निष्क्रिय अणुओं में नाइट्रोजनी क्षारक का CCA क्रम पूर्ण या अपूर्ण श्रृंखला के 3' सिरे पर अनुपस्थित होता है । इसलिए इस CCA क्रम को जोड़कर t-RNA श्रृंखला को सक्रिय बनाया जा सकता है । AAT (एडीनोसीन ट्राइफॉस्फेट) एवं CTP (सिटीडीन ट्राइफॉस्फेट) नामक यौगिकों द्वारा इस क्रिया का नियमन होता है, एक प्रारूपिक t-RNA श्रृंखला को सक्रिय बनाया जा सकता है । एक प्रारूपिक t-RNA का मध्य भाग क्लोवर (रिजका) नामक पौधे की पत्ती के समान फैली हुई संरचना प्रदर्शित करता है (चित्र 6.17) । इस संरचना के चार द्विकुण्डलित भाग होते हैं, इनमें से तीन द्विकुण्डलित भुजाओं (Arms) के अन्तिम सिरे छल्ले या लूप बनाते हैं ।

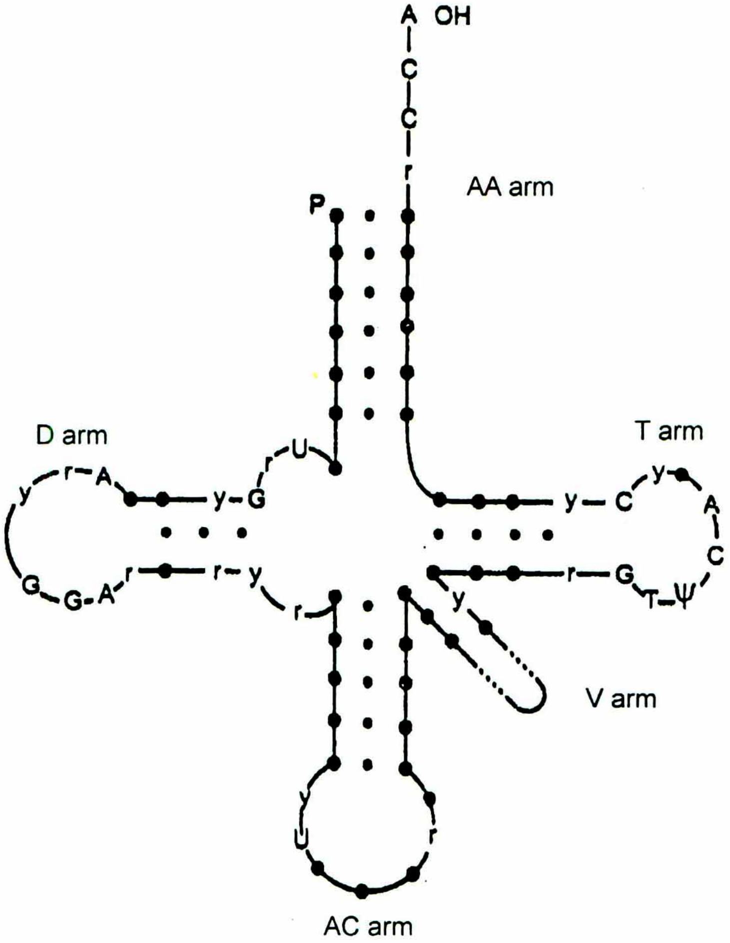

चित्र 6.17 : t-RNA के लिए सामान्य प्रकार का क्लोवर पत्ती मॉडल

बोध प्रश्न

1. जीवाणु रूपान्तरण (Bacterial Transformation) की खोज करने वाले वैज्ञानिक का नाम लिखिये?

………………………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………………………

2. दो प्रकार के पिरिमिडीन के नाम लिखिये?

………………………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………………………

3. ए.डी.हर्षे (A.D. Harshey) एवं एम.जे. चेज (M.J. Chase) ने किस पर प्रयोग कर सिद्ध किया कि DNA आनुवांशिक पदार्थ है?

………………………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………………………

4. Z-DNA तथा B-DNA में कोई दो समानताएँ बताइये?

………………………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………………………

5. एन्डोन्यूक्लिएज (Endonuclease) एन्जाइम किस बन्ध को तोड़ने का कौर्य करता है?

………………………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………………………

6. क्लोवर लीफ मॉडल से किस की संरचना को समझाते हैं?

………………………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………………………

6.3 सारांश

एवेरी, मेकलिओइड व मेककार्थीं (1944) ने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया कि DNA ही आनुवांशिक पदार्थ है जो वंशागति हेतु उत्तरदायी है । सन् 1953 में वॉटसन तथा क्रिक ने DNA अणु की द्विक कुण्डलनीय (Double Standard) संरचना बताई जिसके माध्यम से DNA अणु की विभिन्न क्रियाओं को समझा जा सका । पादप वायरसों के अलावा सभी सजीवों में DNA पाया जाता है । आशाखित तथा सर्पिल कुण्डल के रूप में मिलता है । इसके विपरीत प्रोकैरियोटा सदस्यों तथा यूकैरियोटा के माइटोकॉन्ड्रिया तथा लवक (plastid) जैसे कोशिकांगों में DNA वृत्ताकार तथा कोशिका द्रव्य में अनावृतरूप रूप में पाया जाता है । ग्रिफिथ ने न्यूमोनिया रोग कारक जीवाणु डिप्लोकोकस न्यमोनी में आनुवांशिक रूपान्तरण का अध्ययन किया । तत्पश्चात् एवरी, मेकलिओइड व मेककार्थी ने प्रयोगों द्वारा जीवाणु में मिलने वाले रूपान्तरण अउग्र प्रभेद (Non-virulent) से उग्र प्रभेद (Virulent strain) में परिवर्तन होने के कारण DNA रसायन

को ही बताया । उन्होंने चूहों पर प्रयोग कर विशेष परिणामों की पुष्टि की । हर्षे व चेज (1952) ने विषाणु T-2 भोजी पर प्रयोग कर निष्कर्ष निकाला कि DNA आनुवांशिक पदार्थ है । अत : हर्षे तथा चेज के प्रयोग द्वारा यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो गया कि DNA की आनुवांशिक सामग्री है । रासायनिक रूप से DNA में तीन प्रमुख घटक फॉस्फोरिक अम्ल, शर्करा अणु तथा नाइट्रोजन क्षारक मिलते हैं । डिऑक्सीराइबोस शर्करा तथा नाइट्रोजन क्षारक प्रत्येक का एक अणु जुड़कर न्यूक्लिओसाइड बनाता है । न्यूक्लिओसाइड में फॉस्फेट अणु मिलने पर न्यूक्लिओटाइड बनता है । DNA में प्यूरीन तथा पिरिमिडीन क्षारक मिलते हैं ।प्यूरीन क्षारक दो प्रकार के होते हैं एडीनीन तथा गुआनीन । इसी प्रकार पिरिमिडीन क्षारक भी दो प्रकार के होते हैं साइटोसीन तथा थायमिन । RNA में थायमिन के स्थान पर यूरोसिल मिलता है । वॉटसन व क्रिक ने DNA की संरचना को सीढ़ी रूपी मॉडल के रूप में प्रस्तुत किया । DNA के चार प्रारूप A-DNA, B-DNA, C-DNA तथा Z-DNA पाये जाते हैं । DNA का प्रतिकृतिकरण एक विशिष्ट प्रक्रिया है । इससे नवीन DNA सूत्र बनते हैं । RNA कोशिकाद्रव्य व अन्य स्थितियों में मिलता है । यह आनुवांशिक तथा अनआनुवांशिक दोनों प्रकार का मिलता है । अनआनुवांशिक RNA के तीन प्रकार मिलते हैं । प्रोटीन संश्लेषण इनकी विशेष भूमिका है ।

6.4 शब्दावली

न्यूक्लिओसाइड (Nucleoside) : डिऑक्सीराइबोस शर्करा तथा नाइट्रोजनी क्षारक के जुड़ने से बनी संरचना न्यूक्लिओसाइड कहलाती है ।

न्यूक्लिओटाइड (Nucleotide) : न्यूक्लिओटाइड तथा फॉस्फोरिक अम्ल से मिलकर बनी संरचना न्यूक्लिओटाइड कहलाती है ।

न्यूक्लिओसोम (Nucleosome) : क्रोमेटिन के प्रथम स्तर के पैकिंग में हिस्टोन प्रोटीन द्वाराबनी कोर के चारों तरफ DNA के कुण्डलित होने से बनी संरचना न्यूक्लिओसोम कहलाती है।

B-DNA (B-प्रारूप): वह प्रारूप जिसमें DNA हेलिक्स दीक्षणावर्ती होता है तथा कुण्डलन लम्बाई 34Å तथा दस जोड़ी एकल न्यूक्लिओटाइड इकाई युक्त है ।

Z-DNA (Z-प्रारूप): DNA द्विकुण्डलन हेतु वह वामावर्ती (Left handed) मॉडल जिसमें दोनों विपरीत समानान्तर श्रृंखलाओं को बनाने वाली शर्करा - फॉस्फेट रज्जु टेढ़ी - मेढ़ी (zig-zag) होती है तथा इसकी रिपीटींग इकाई दो न्यूक्लिओटाइडस के मिलने से बनी है ।

6.5 संदर्भ ग्रन्थ

1. कोशिका विज्ञान, आनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन त्रिवेदी शर्मा, शर्मा रमेश बुक डिपो
2. Cytogenetics - P.K. Gupta

6.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. फ्रेडरिक ग्रिफिथ (Frederich Griffith)
2. साइटोसिन (Cytosine) तथा थायमीन (Thymine)

3. विषाणु T-2 भोजी

4. 1. दोनों में ही द्विकुण्डलन की दोनों श्रृंखला विपरीत समानान्तर (Antiparellel) होती है ।
   2. दोनों में ही A=T व G=C युग्मन पाया जाता है ।

5. कुण्डलन खुलने के बाद दोनों शृंखलाओं के बीच उपस्थित प्त -बन्धों को तोड़ने का कार्य करता है ।

6. t-RNA को

6.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. DNA ही आनुवांशिकी पदार्थ है इसे प्रमाणित करने हेतु हर्षे व चेज द्वारा किये गये प्रयोग का वर्णन कीजिये?
2. DNA आणविक संरचना हेतु वॉटसन व क्रिक द्वारा दिये गये द्विकुण्डलनीय प्रारूप का सचित्र वर्णन कीजिये?
3. DNA प्रतिकृकरण की प्रक्रिया (Mechanism) के मुख्य बिन्दुओं का सचित्र वर्णन कीजिये?
4. RNA के प्रकार एवं कार्यों का वर्णन कीजिये?

इकाई 7 : जीन की संरचना, प्रोकैरियोट्स एवम् यूकैरियोट्स में जीन अभिव्यक्ति का नियमन (Structure of Gene, Regulation of Gene Expression in Prokaryotes And Eukaryotes)

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 जीन संरचना

7.2.1 जीन की परिभाषा (Defination)

7.2.2 कारक अवधारणा (Factor Concepts)

7.2.3 जीन की आधुनिक अवधारण (Modern Concept of Gene)

7.3 जीन अभिव्यक्ति (Gene Expression) प्रोटीन संश्लेषण (Protien Synthesis)

7.4 जीन नियमन (Regulation of Gene)

7.5 सारांश (Summary)

7.6 शब्दावली (Glossary)

7.7 संदर्भ ग्रंथ (Refrences)

7.8 बोध प्रश्न व उनके उत्तर (Questions and Answers)

7.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का मुख्य उद्देश्य पाठकों को सजीवों के लक्षणों व लक्षणों की आनुवंशिकी को निर्धारित करने वाली महत्वपूर्ण इकाई 'जीन ' (Gene) की संरचना व जीन में निहित सूचनाएँ किस प्रकार अभिव्यक्त (express) होती हैं, इस बारे में पूर्ण जानकारी उपलब्ध करवाना है । इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् पाठक यह जानने में सक्षम होंगे कि, सन् 1900 से लेकर वर्तमान समय में जीन की संरचना, स्वरूप व क्रियाशीलता हेतु कौन -कौन सी अवधारणाएँ व सिद्धान्त प्रतिपादित किये गए हैं जिनकी 'जीन ' को समझने में अहम भूमिका रही है । इसके अतिरिक्त पाठक यह भी समझ सकेंगे कि, सजीवों में निहित आनुवंशिक सूचनाएँ (genetic information) एवम् विविधताओं (variations) के लिए स्वयं जीन ही उत्तरदायी होते हैं । संतति पीढ़ी में इनके संचरण हेतु भौतिक संरचनाएँ गुणसूत्र होते हैं । गुणसूत्रों के रूप में जीन (न्यूक्लिक अम्ल. डी.एन.ए. आर.एन.ए.) के साथ -साथ प्रोटीन्स का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है । अत : जीन स्वयं को विभिन्न प्रकार के प्रोटीन संश्लेषणों द्वारा अभिव्यक्त करते हैं, जो कि एक अत्यन्त महत्वपूर्ण व जटिल प्रक्रिया है । सजीवों में संरचनात्मक व क्रियात्मक दृष्टि से प्रोटीन

अतिआवश्यक घटक हैं । इसके अलावा पाठक प्रोकैरियोट्स तथा यूकैरियोट्स में डी.एन.ए., आर.एन.ए. तथा प्रोटीन के बीच आनुवंशिक सूचनाओं की क्रियाविधि क्या है? इससे अवगत होंगे । इसके साथ ही जीन अभिव्यक्ति का नियमन (gene regulation) किसके द्वारा व किस प्रकार संचरित होता है, इस विषय में पूर्ण ज्ञान उपलब्ध हो सकेगा ।

7.1 प्रस्तावना

'जीन' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम जोहनसन (Johanson, 1903) ने किया । उनके अनुसार "किसी लक्षण विशेष की आनुवंशिकी को निर्धारित करने वाली इकाई 'जीन' है । वर्तमान समय में यह पूर्णरूपेण ज्ञात है कि रासायनिक रूप में जीन न्यूक्लिक अम्ल डी.एन.ए. अथवा आर.एन.ए. (वाइरस में) हैं । सन् 1900 से लेकर अभी तक जीन को अलग - अलग वैज्ञानिकों द्वारा इनकी संरचना व विभिन्न कार्यों के अनुरूप परिभाषित किया गया है एवम् विभिन्न तथ्य प्रस्तुत किये गए हैं, जिनका वर्णन प्रस्तुत इकाई में किया गया है ।

सर्वप्रथम 19वीं सदी में मेण्डल (Mendel) ने कल्पना करके बताया कि, आनुवांशिकी घटक जो पीढ़ी दर पीढ़ी लक्षणों की वशांगति के लिए उत्तरदायी होते हैं 'कारक' (factor) कहलाते हैं । जोहनसन ने मेण्डेलियन कारकों को 'जीन ' नाम दिया । सन् 1902 में बॉवेरी व सदटन (Boveri and Sutton) ने आनुवंशिकी के क्षेत्र में गुणसूत्र सिद्धान्त प्रस्तुत किया, जिसके अनुसार जीन एक विशेष भौतिक इकाई के रूप में गुणसूत्रों पर पाये जाते हैं तथा कोशिका विभाजन के समय संतति पीढ़ी में गमन करते हैं । इसके पश्चात् सन् 1905 में बेटसन (Bateson) ने कारक परिकल्पना (Factor hypothesis) प्रतिपादित की तथा बताया कि 'कारक' किसी विशेष लक्षण को परिलक्षित करने वाली इकाई है तथा यह खण्डों द्वारा निर्मित होती है । मॉरगन (Morgan, 1923) के अनुसार 'कारक' एक निश्चित संख्या में, एक साथ सहलग्न समूहों में पाये जाते हैं । प्रत्येक कारक युग्म अथवा जोड़े (Pair) के रूप में उपस्थित होता है जिन्हें युग्मविकल्पी (Allelomorphs) कहते हैं । जोड़े का प्रत्येक सदस्य (Allele) युग्मक निर्माण के समय पृथक हो जाता है तथा प्रत्येक युग्मक में जोड़े का केवल एक ही सदस्य गमन करता है । इसके साथ ही अर्धसूत्रण के समय आनुवंशिक पदार्थ का आदान -प्रदान अथवा जीन विनिमय (Crossing over) व उत्परिवर्तन (Mutations) सजीवों में विविधताओं के कारक होते हैं । सिमोर बेन्नर (Seymor Benzer, 1962) के अनुसार जीन को सिस्ट्रान, रिकोन, म्यूटॉन, रेप्लिकॉन, काम्पलॉन, ओपेरॉन आदि पदों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो कि जीन के विषय में आधुनिक अवधारणा है ।

प्रेकैरियोटिक व यूकैरियोटिक कोशिकाओं में आनुवंशिक पदार्थ डी.एन.ए. में कोशिकाओं की विभिन्न जैविक क्रियाओं हेतु निर्देश चार अक्षरीय वर्णमाला (4 क्षार क्रम) में से तीन अक्षरों (3 क्षार क्रमों) द्वारा निरूपित होते हैं, जिन्हें कोडॉन (Codon) कहा जाता है । इन कोडॉनो का एक संतुलित, उपयुक्त किन्तु जटिल प्रक्रिया के द्वारा अनुलेखन (Transcription) संदेश वाहक आर.एन.ए. (mRNA) के तीन क्षार अक्षरों के रूप में कर लिया जाता है । जिसका अनुवाद (Translation)

प्रोटीन श्रृंखला के संश्लेषण के रूप में कर लिया जाता है । उस श्रृंखला में अमीनो अस्त एक सुनिश्चित संख्या एवम् विशिष्ट क्रम में व्यवस्थित होते हैं तथा पॉलीपेप्टाइड बन्ध द्‌वारा जुड़े रहते हैं । इस प्रकार जीन स्वयं को अभिव्यक्त करते हैं ।

प्रोकैरियोट्स व यूकैरियोट्स में जीनो (genes) द्‌वारा किसी उपापचयी परिपथ की अभिक्रियाओं का नियंत्रण जीन नियमन (Gene regulation) कहलाता है । प्रोकैरियोट्स व यूकैरियोट्स में जीन अभिव्यक्ति का नियमन अलग - अलग प्रक्रियाओं द्‌वारा संचालित होता है, जिनका विस्तृत अध्ययन आवश्यक है । इस इकाई में उपरोक्त सभी बिन्दुओं पर विस्तृत लेख निम्नानुसार वर्णित हैं :

7.2 जीन संरचना

7.2.1 जीन की परिभाषा (Defination)

एक सजीव कोशिका के जीवनचक्र की प्रत्येक क्रिया को नियंत्रित एवम् निर्देशित करने वाली आनुवंशिक सूचनात्मक इकाई 'जीन' कहलाती है । यह कोशिका विभाजन के समय एक कोशिका से दूसरी कोशिका में एवम् पीढ़ी दर पीढ़ी आनुवंशिक सूचनाओं को सम्प्रेषित करती है । पूर्ववर्ती अवधारणाओं के अनुसार " जीन उत्परिवर्तन (Mutation) एवम् पृथक्करण (segregation) की सूक्ष्मतम इकाई के रूप में निरूपित होती है " लेकिन आण्विक आनुवंशिकी विज्ञान (Molecular Genetics) के क्षेत्र में किये गये कार्यों से ज्ञात होता है कि, जीन केवल पुन: संयोजन (Recombination) एवम् अन्य संबंधित क्रियाओं की ही इकाई नहीं हैं, अपितु इसका सक्रिय योगदान अन्य कार्यों में भी होता है ।

7.2.2 कारक अवधारणा (Factor Concepts)

सर्वप्रथम 'कारक' शब्द का प्रयोग मेण्डल (Mendel) ने किया तथा बताया कि कारक वे आनुवंशिक घटक हैं जो पीढ़ी दर पीढ़ी एक अथवा एक से अधिक लक्षणों की वंशागति के लिए उत्तरदायी होते हैं ।

सन् 1905 में बेटसन (Bateson) ने मेण्डल के आनुवंशिकता के सिद्धान्तों को समझाने के लिए कारक परिकल्पना (Foctor hypothesis) प्रतिपादित की । इस परिकल्पना के अनुसार :

(1) कारक (Factor) वह इकाई है जो सजीवों में किसी लक्षण विशेष को परिलक्षित करती है । आजकल इसे जीन कहते हैं ।

(2) क्योंकि उस समय में गुणसूत्रों व जीन्स (chromosomes and genes) के बारे में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं थी, अत: बेटसन (Bateson) ने यह प्रतिपादित किया कि ये कारक अनेक खण्डों या टुकड़ों के बने होते हैं एवम् आपस में संबंधित हो सकते हैं ।

सट्टन एवम् बावेरी (1902) ने मेण्डल के नियमों तथा गुणसूत्रों के पारस्परिक संबंधों की व्याख्या की । उनके अनुसार सजीवों में कोशिका विभाजन के अन्तर्गत एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संचरण के समय मेण्डेलियन कारकों एवम् गुणसूत्रों की कार्यप्रणाली में पर्याप्त समानता पाई जाती है जो कि निम्न प्रकार से है :

(1) मेण्डल के अनुसार विभिन्न कारक जोड़ों (युग्मविकल्पी) में पाये जाते हैं एवम् इसी प्रकर सजीवों की सामान्य कायिक कोशिकाओं में भी गुणसूत्र समजात युग्म (Homologous pair) में पाये जाते हैं ।

(2) मेण्डल के अनुसार युग्मकों के बनते समय युग्मविकल्पी कारकों का एक सदस्य (ऐलील) एक युग्मक में तथा दूसरा दूसरे युग्मक में जाता है, ठीक इसी तरह समजात गुणसूत्र जोड़े के सदस्य अर्धसूत्री विभाजन के समय अलग हो जाते हैं एवम् पृथक रूप से युग्मक में प्रवेश करते हैं ।

(3) जिस प्रकार मेण्डेलियन कारकों में स्वतंत्र अपव्यूहन (Indepepndent assortment) पाया जाता है, ठीक उसी प्रकार विभिन्न प्रकार के समजात गुणसूत्र अर्धसूत्री विभाजन के समय स्वतंत्र रूप से पृथक् होते हैं, एक जोड़ा गुणसूत्र दूसरे जोड़े पर निर्भर नहीं करता ।

(4) मेण्डल की यह मान्यता थी कि कारक नष्ट नहीं होते चाहे वे अभिव्यक्त हों अथवा नहीं । इसी प्रकार सजीव कोशिकाओं में उपस्थित गुणसूत्र अपनी पहचान जीवन पर्यन्त परिलक्षित करते हैं ।

यद्यपि कारकों व गुणसूत्रों की कार्य प्रणाली में उपरोक्त समानताएँ पाई जाती हैं, फिर भी गुणसूत्रों को मेण्डेलियन कारक के समान वंशागति की इकाई नहीं माना जा सकता है, अपितु गुणसूत्र वे भौतिक संरचनाएँ हैं जिनमें जीन विद्यमान रहते हैं तथा ये वंशागति कारकों के वाहकों के रूप में कार्य करते हैं ।

7.2.3. जीन की आधुनिक अवधारणा (Modern Concept of Gene)

सिमॉर बेन्जर (Seymour Benzer, 1962) की आधुनिक अवधारणा के अनुसार जीन को निम्न पदों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है :

(1) **सिस्ट्रान** (Cistron) : DNA का वह सबसे बड़ा खण्ड जो जीन की क्रियात्मक इकाई को निरूपित करता है, सिस्ट्रॉन कहलाता है । यह अनेक उत्पारवर्ती स्थलों (Mutons) से मिलकर बना होता है । अत: सिस्ट्रॉन को एक इकाई के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके घटक (युग्मविकल्पी) सिस-ट्रान्स प्रक्रिया (Cis-Trans Phenomenon) प्रदर्शित करते हैं । अनेक सिस्ट्रॉन मिलकर एक जीन का निर्माण करते हैं, जैसे एस्केरेशिया कोलाई (E.coli) में ट्रिप्टोफेन सिन्थेटेस (Tryptophan Synthetase) एन्जाइम बनाने वाला जीन दो सिस्ट्रॉन द्वारा निर्मित होता है ।

(2) **रिकोन** (Recon) : यह जीन संरचना पुनर्योजन की सूक्ष्मतम इकाई है । (Unit of Recombination) इसकी न्यूनतम अभिव्यक्ति के रूप में DNA अणु में संयोजित न्यूक्लिओटाइड्स के बीच की दूरी को लिया जा सकता है । सबसे छोटी रिकोन संरचना के रूप में दो न्यूक्लिओटाइडों के बीच की दूरी को लिया जा सकता है । सबसे छोटी रिकोन संरचना दो न्यूक्लिओटाइडों द्वारा निर्मित होती है । यह रेखीय विन्यास में व्यवस्थित होकर जीन को संगठित करती है । रिकोन इकाई जीन विनिमय (crossing over) के द्वारा

अलग भी हो सकती है । सर्वप्रथम सन् 1955 में बेन्वर (Benzer) ने जीवाणुभोजी वाइरस T4 बेक्टीरियोफाज के रिकोन जीन में जीन विनिमय का प्रदर्शन किया ।

(3) **म्यूटॉन** (Muton) : यह संरचना उत्परिवर्तन की सबसे छोटी इकाई है तद्नुसार "DNA का वह न्यूनतम या सबसे छोटा खण्ड जिसमें उत्परिवर्तन (Mutation) की क्षमता होती है, उसे म्यूटॉन कहते हैं " । न्यूक्लिओटाइड के एक जोड़े अथवा एक न्यूक्लिओटाइड की संरचना में होने वाला परिवर्तन इसकी न्यूनतम अभिव्यक्ति को परिलक्षित करता है ।

(4) **रेप्लिकॉन** (Replicon) : यह DNA प्रतिकरण (Replication) की सबसे छोटी इकाई है । अनेक रेप्लिकॉन संयुक्त रूप से मिलकर क्रोमोसोम का निर्माण करते हैं । रेप्लिकॉन सम्भवत: एक क्रोमोसोम्स के भाग या DNA के एक अणु के रूप में हो सकते हैं ।

(5) **काम्पलॉन** (Complan) : यह संरचना सिस्ट्रान के स्थान पर प्रयुक्त अनुपूरण (Complementation) की इकाई है । यहाँ कुछ एन्जाइम्स के सक्रिय समूह जो दो या दो से अधिक पॉलीपेप्टाइड श्रृंखलाओं के द्वारा बने होते हैं, वे एक दूसरे के अनुपूरक (complement) होते हैं । इन पॉलीपेप्टाइड श्रृंखलाओं में किसी प्रकार की न्यूनता की आपूर्ति या परिवर्तन अनुपूरक जीन या काम्पलॉन द्वारा सम्पादित होते हैं ।

(6) **ओपेरॉन** (Operon) : यह एक विशिष्ट क्रियात्मक इकाई (Physiological unit) है, जो कि संरचनात्मक जीन (Structural Gene) एवम् ऑपरेटर या प्रचालक जीन, (Operator Gene) दोनों के द्वारा संयुक्त रूप से परिलक्क्षित होती है । ये इकाइयाँ DNA के द्वारा सम्प्रेषित आनुवंशिक सूचनाओं के प्रभावों को बदलने का काम करती है ।

7.3 जीन अभिव्यक्ति (Gene Expression) :

प्रोटीन संश्लेषण (Protein Synthesis)

जीवधारियों में प्रोटीन संश्लेषण एक अत्यन्त महत्वपूर्ण व जटिल प्रक्रिया है । इस प्रक्रिया में अमीनो एसिड्स (Amino acids) संघटित होकर प्रोटीन का निर्माण करते हैं । इस प्रकार उत्पन्न प्रोटीन सजीव कोशिकाओं में उपस्थित महत्वपूर्ण अणु हैं जो कि न्यूक्लिक अम्लों के समकक्ष जटिलता एवम् विविधता निरूपित करते हैं । विभिन्न पौधों तथा जन्तुओं में उपलब्ध आनुवंशिक सूचनाओं व विविधताओं को संतति पीढ़ी में संचरित करने का उत्तरदायित्व न्यूक्लिक अम्लों के साथ प्रोटीन्स का भी होता है । इसके अन्तर्गत न्यूक्लिक अम्लों की चार अक्षरीय वर्णमाला (क्षार क्रम) में निहित आनुवंशिक सूचना तीन अक्षरों से बने कॉडोन (codon) द्वारा निरूपित होती है । कॉडोन में उपस्थित सूचना का एक संतुलित उपयुक्त किन्तु जटिल प्रक्रिया के द्वारा अनुलेखन (Transcription) संदेशवाहक आर.एन.ए. (mRNA) के तीन अक्षरीय कॉडोन द्वारा कर लिया जाता है एवम् अनुवाद अथवा अनुलिपिकरण (Translation) करके प्रोटीन में परिवर्तित कर दिया जाता है । प्रोटीन संश्लेषण की प्रक्रिया में 20 प्रकार के अमीनो अम्ल विविध रूपों में संयोजित होकर पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला (Polypeptide chain) का निर्माण करते हैं । ये विभिन्न प्रकार के अमीनो अम्ल एक सुनिश्चित एवम्, विशिष्ट क्रम व संख्या में व्यवस्थित होते

हैं । प्रोटीन अणु या पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला में अमीनो अम्लों के अनुक्रम को निर्धारित करने का कार्य DNA का पॉलीन्यूक्लिओटाइड्स के व्यवस्था क्रम (Arrangement) पर निर्भर करता है । DNA के अणुओं में उपस्थित नाइट्रोजनी क्षारक (Nitrogenous bases) एक निश्चित एवम् विशेषक्रम (Specific sequence) में संयोजित होती है । इनमें प्रोटीन अणुओं के संश्लेषण के लिए निहित संदेश (code) को त्रिककूट (Triplet code) कहते हैं । सर्वप्रथम पॉल जैमनिक (Paul Zameenik, 1950) ने कोशिका मुक्त (cell free) प्रोटीन का संश्लेषण चूहे की यकृत कोशिकाओं पर कार्य करते हुए किया था । गहन अध्ययन के पश्चात् उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि वस्तुत: राइबोसोम्स ही वे कोशिकांग हैं जिनमें प्रोटीन संश्लेषण होता है । ये प्रोटीन संश्लेषण के प्रमुख स्थल (sites) हैं (चित्र : 7.1) । इस प्रक्रिया में एकल रज्जुकी (single standard) RNA अर्थात m-RNA, r-RNA एवं t-RNA सक्रिय योगदान देते हैं ।

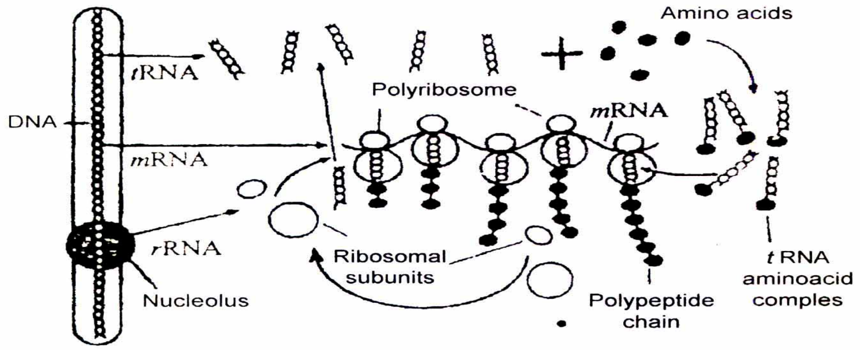

चित्र 7.1 : विभिन्न प्रकार के RNA की प्रोटीन संश्लेषण में भूमिका

प्रोटीन संश्लेषण की प्रक्रिया को निम्न चार चरणों द्वारा समझाया जा सकता है :

(A) **अनुलेखन** (Transcription) : यह प्रोटीन संश्लेषण का आरिम्भक सोपान है, जिसके अन्तर्गत DNA से आनुवंशिक सूचनाओं का m-RNA में स्थानान्तरण (Transfer) होता है। यह प्रक्रिया अनुलेखन (Transcription) कहलाती है ।

(B) **अनुलिपिकरण या अनुवाद** (Translation) : इस प्रक्रिया में न्यूक्लिक अम्लों द्वारा m-RNA पर मौजूद आनुवंशिक सूचनाओं की लिपि को प्रोटीनलिपि (language) में रूपान्तरित (Translate) कर लिया जाता है, इसे अनुलिपिकरण (Translation) कहते हैं ।

(C) **केन्द्रीय डोग्मा अवधारणा** (Central Dogma Concept) : इस शब्द का सर्वप्रथम उपयोग क्रिक (1956) के द्वारा 1) DNA, RNA एवम् प्रोटीन अणु ओं के बीच पारस्परिक सम्बन्धों की व्याख्या करने के लिए किया गया था । यह स्पष्ट है कि प्रोटीन संश्लेषण के दौरान DNA का स्वप्रतिकृतिकरण (self replication) होता है तथा इसमें m-RNA, r-RNA व अन्य RNA^{s} सक्रिय योगदान करते हैं (चित्र : 7.1) । प्रोटीन संश्लेषण के दौरान DNA स्वयं की प्रतिकृति के साथ - साथ सभी प्रकार के RNA$^{'s}$ जो कि प्रोटीन संश्लेषण हेतु आवश्यक होते हैं, उनके संश्लेषण को संचालित करता है । अत : प्रोटीन संश्लेषण में पहले अनुलेखन के अन्तर्गत आनुवंशिक सूचना m-RNA पर स्थानान्तरित होती है, इसके बाद अनुलिपिकरण के दौरान यह सन्देश m-RNA से प्रोटीन की भाषा में अनुवादित हो जाता है

। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रोटीन संश्लेषण के लिए आनुवंशिक सदशों का संचरण केवल एक दिशा में ही होता है । यह सम्प्रेषण DNA m-RNA प्रोटीन के अनुक्रम में होता है । क्रिक द्वारा दिये गये आनुवंशिक सूचनाओं के इस एकदिशीय सम्प्रेषण (Unidirectional Communication) को केन्द्रीय डोग्मा या सेन्ट्रल डोग्मा (Central Dogma) कहते हैं । तत्पश्चात् बैरी कामनर (1968) एवम् अन्यों ने भी सजीवों में आनुवंशिक सूचनाओं के संचरण की अन्य अवधारणाएँ प्रस्तुत की हैं । जिनके अन्तर्गत टेमिन (Temin) का उल्लेख विशेष रूप से किया जा सकता है, जिन्होंने सबसे पहले सन् 1964 में प्रतिलोमी अनुलेखन (Reverse Transcription) के क्षेत्र में विशेष कार्य किया था ।

आनुवंशिक सूचनाओं के सम्प्रेषण की अवधारणाएँ

(Concepts about Communication of Genetics Information)

डी.एन.ए., आर.एन.ए. एवम् प्रोटीन के बीच आनुवंशिक सूचनाओं के सम्प्रेषण हेतु निम्न तीन विचार धाराएँ प्रस्तुत की गई हैं :

(A) **एकदिशीय सम्प्रेषण** (Unidirectional Communication) : इसके अनुसार प्रोटीन संश्लेषण के अन्तर्गत आनुवंशिक सूचनाओं का सम्प्रेषण केवल एक ही दिशा में होता है । सर्वप्रथम ये सूचनाएँ DNA द्वारा अनुलेखन की प्रक्रिया से m-RNA को स्थानान्तीरत होती हैं । इसके बाद विभिन्न प्रकार के RNA'^s^ के माध्यम से m-RNA इन आनुवंशिक सूचनाओं को प्रोटीन की भाषा (अमीनो अम्लों के क्रम में) में अनुलिपिकरण या अनुवाद करता है । यह विचारधारा सेन्ट्रल डोग्मा अवधारणा कहलाती है (चित्र 7.2A) ।

चित्र 7.2 A : रेखीय सम्प्रेषण

(B) वृत्ताकार सम्प्रेषण (Circular Communication) : इस अवधारणा को सर्वप्रथम बैरी कॉमनर (Berry Commoner, 1968) ने प्रस्तुत किया । उनके अनुसार प्रोटीन संश्लेषण हेतु m-RNA को DNA से सूचनाएँ अनुलेखन की प्रक्रिया के द्वारा प्राप्त होती है । DNA द्वारा सम्प्रेषित सूचनाओं का RNA'^s^ द्वारा अमीनो अम्लों (AA) में अनुवाद होता है तथा परिणामस्वरूप प्रोटीन बनते हैं । यह क्रम आगे चलता है, जिसके अन्तर्गत प्रोटीन अणु RNA संश्लेषण को निर्देशित करते हैं, तथा RNA अनुलेखन (Transcription) के द्वारा DNA का संश्लेषण करता है । अत: इस विचारधारा के अनुसार सूचनाओं का सम्प्रेषण का क्रम एक वृत्त के रूप में निरन्तर संचालित रहता है (चित्र 7.2B) ।

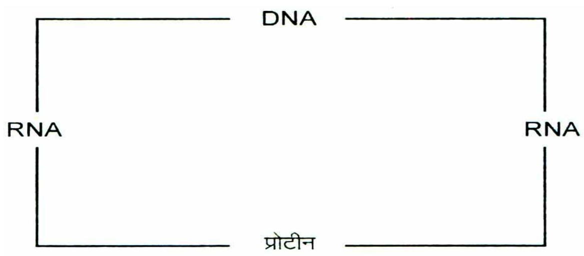

चित्र 7.2 B : वृत्ताकार सम्प्रेषण

(C) **प्रतिलोमी सम्प्रेषण** (Reverse Communication) : यह अवधारणा सर्वप्रथम टेमिन (Temin, 1964) द्वारा प्रस्तुत की गई थी, तत्पश्चात् सन् 1970 में उनके द्वारा ही इसका परिवर्धित प्रारूप प्रस्तुत किया गया, जिसे टेमिनिज्म (Teminism) कहते हैं । टेमिन ने सन् 1970 में सर्वप्रथम आर.एन.ए. अर्बुद वाइरस (RNA Tumour Virus) से एक विशेष एन्जाइम आर.एन.ए. आधारित DNA पॉलीमरेज (RNA dependent DNA polymerase) को विलगित (isolate) किया । इस एन्जाइम को प्रतिलोमी ट्रान्सक्रिप्टेज़ (Reverse Transcriptase) भी कहते हैं । इसमें एक रज्जुकी (Single Standard) वाइरस RNA को टेम्पलेट (Template) के रूप में प्रयुक्त करके उससे द्विरज्जुकी (Double standard) DNA का निर्माण कर सकने का अनूठा गुण (Specific Character) होता है । अत: इस विचारधारा को प्रतिलोमी केन्द्रीय डोग्मा या प्रतिलोमी अनुलेखन (Reverse Transcription) कहते हैं (चित्र : 7.2C) ।

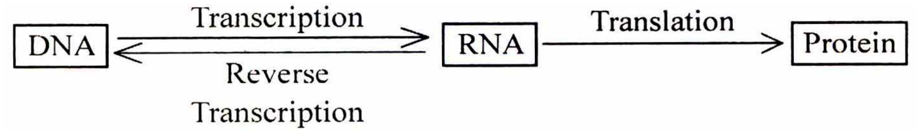

चित्र 7.2 C : प्रतिलोमी केन्द्रीय डोग्मा

सन् 1977 में बाल्टीमोर ने भी एन्जाइम रिवर्स ट्रान्सक्रिप्टेज की उपस्थिति को वाइरस में प्रमाणित किया ।

(D) प्रोटीन संश्लेषण हेतु आवश्यक घटक (Components of Protien Synthesis) : प्रोटीन संश्लेषण हेतु निम्नलिखित अणुओं व कोशिकांगों की आवश्यकता होती है :

(1) **अमीनो अम्ल** (Amino Acids) : अमीनो अम्ल (AA) प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया में कच्चे माल (Rawmaterial) के रूप में प्रयुक्त होने वाले मुख्य घटक होते हैं । काशिकीय द्रव्य में 20 प्रकार के अमीनो अम्ल पाये जाते हैं जो कि प्रोटीन संश्लेषण हेतु सरलता से उपलब्ध होते हैं ।

(2) **डी.एन.ए.** (DNA) : कोशिकाओं में प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया के आरम्भन, निर्देशन, नियमन व नियंत्रण हेतु गुणसूत्रों, माइटोकॉन्ड्रिया व हीरतलवकों में DNA पाया जाता है, जो विभिन्न प्रकार के प्रोटीनों का संश्लेषण करता है ।

(3) **अन - आनुवंशिक आर.एन.ए.** (Non-genetics RNAs) : प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया में मुख्य रूप से तीन प्रकार के RNAs का सक्रिय योगदान रहता है जिन्हें m-RNA, t-RNA, r-RNA कहते हैं ।

(4) **राइबोसोम्स तथा एन्जाइम्स (Ribosomes and Enzymes)** : राइबोसोम्स कोशिका में पाये जाने वालेवे कोशिकांग हैं, जहाँ प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया सम्पन्न होती है, अत: इन्हें प्रोटीन संश्लेषण के स्थल(sites) कहा जाता है । ये कोशिकांग उस अभिक्रिया को सम्पन्न करवाते हैं जिसके परिणामस्वरूप अमीनो अम्ल आपस में

पॉलीपेप्टाइड बंधों द्वारा जुड़कर प्रोटीन श्रृंखला का निर्माण करते हैं । इस क्रिया में अमीनो

अम्लों के अलावा अन्य घटक जैसे : m-RNA, t-RNA, r-RNA, ATP उत्पादन तंत्र, GTP, Mg^{++} व K^{+} आयन्स तथा विभिन्न प्रकार के एन्जाइम्स की आवश्यकता होती है ।

प्रोटीन संश्लेषण की क्रियाविधि (Mechanism of Protein Synthesis)

(A) **अनुलेखन** (Transcription) : अनुलेखन जीन अभिव्यक्ति की प्रथम अवस्था है, जिसके अन्तर्गत DNA से आनुवंशिक सूचनाएँ m-RNA में स्थानान्तरित होती हैं । इस प्रक्रिया को सम्पन्न करने के लिए एक विशेष एन्जाइम RNA-पॉलीमरेज की उपस्थिति आवश्यक होती है । अनुलेखन में सर्वप्रथम DNA अणु के दोनों रज्जुक (strands) अकुण्डलित (uncoiled) होकर खुल जाते हैं, तथा उनमें से एक कोडिंग (coding) रज्जुक टेम्पलेट के रूप में कार्य करती है, जिस पर पूरक (complementary) m-RNA रज्जुक का निर्माण होता है । यह प्रक्रिया अनुलेखन कहलाती है । तथा संश्लेषित m-RNA रज्जुक ट्रांसक्रिप्ट कहलाता है (चित्र : 7.3) ।

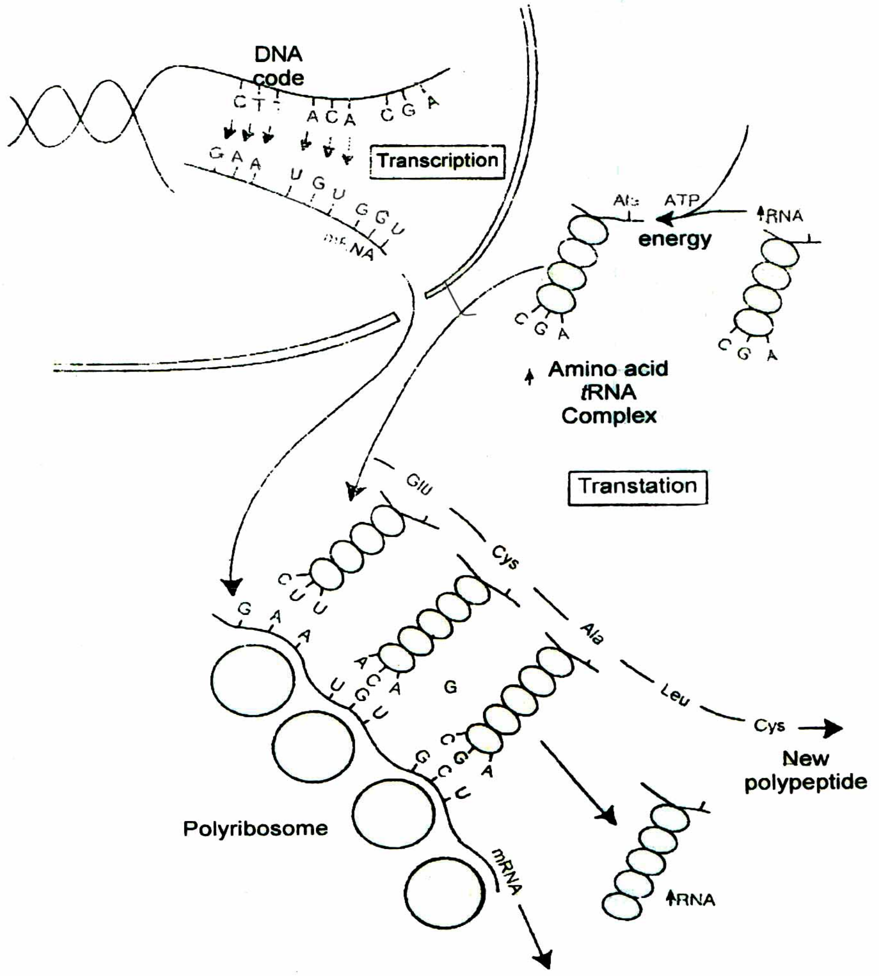

चित्र 7.3 : DNA से m-RNA का अनुलेखन तथा पॉलीपेप्टाइड़ श्रृंखला

प्रोकैरियोट जीवों में अनुलेखन (Transcription in Prokaryotes)

प्रोकैरियोट्स में प्रोटीन संश्लेषण की क्रियाविधि का अध्ययन सर्वप्रथम जीवाणु ई. कोलाई में किया गया जिसमें 70S प्रकार के राइबोसोम प्रोटीन संश्लेषण के स्थल होते हैं । जैसा पहले भी बताया जा चुका है, कि प्रोटीन संश्लेषण हेतु एन्जाइम RNA पॉलीमरेज अत्यन्त आवश्यक है । जीवाणु कोशिका में एक ही प्रकार का RNA पॉलीमरेज एन्जाइम पाया जाता है । अनुलेखन हेतु सर्वप्रथम यह एन्जाइम DNA द्विरज्जुक पर स्थित आरम्भन स्थल (Initiation site) पर जुड़ जाता है । तत्पश्चात् DNA अणु की द्रिरज्जुक अकुण्डलित होकर एक रज्जुक टेम्पलेट के रूप में खुल जाती है । जिस पर पूरक न्यूक्लिओटाइड्स आकर जुड़ती है तथा इस प्रकार m-RNA का संश्लेषण शुरू हो जाता है । DNA रज्जुक पर RNA पॉलीमरेज एन्जाइम गति करता जाता है, तथा बढ़ती हुई m-RNA रज्जुक पृथक होती जाती है, जब तक की समापन स्थल (Termination site) पर नहीं पहुँच जाता (चित्र 7.4) ।

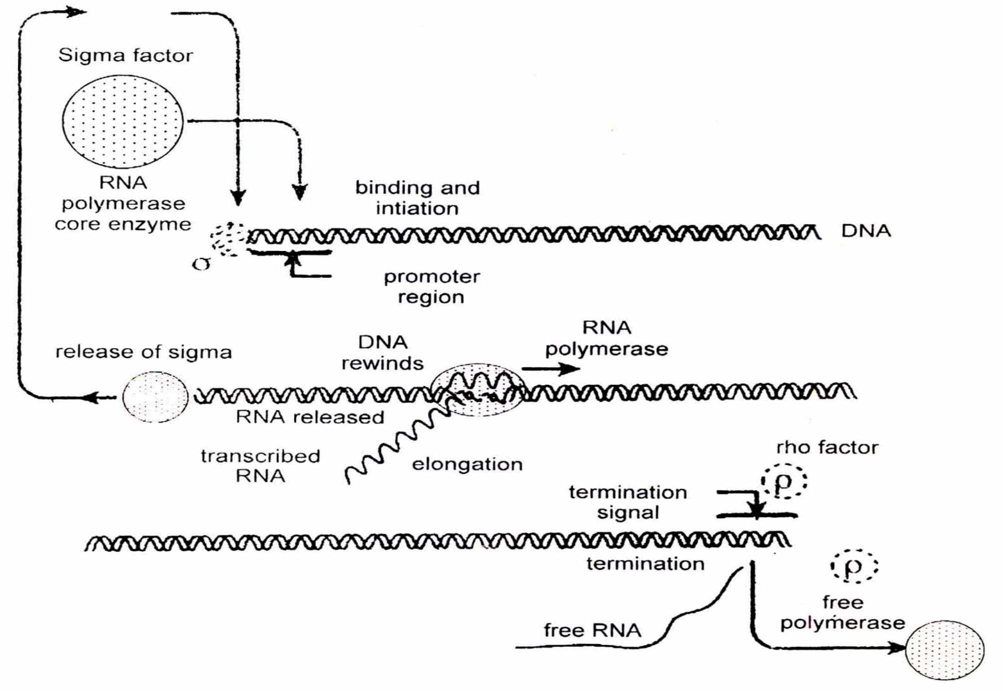

चित्र 7.4 एन्जाइम R.N.A पॉलीमरेज

जीवाणु कोशिका में पाया जाने वाला RNA पॉलीमरेज एन्जाइम, 5 विभिन्न प्रकार की पॉलीपेप्टाइड श्रृंखलाओं द्वारा निर्मित होता है तथा हॉलोएन्जाइम (Holoenzyme) कहलाता है । इस हॉलोएन्जाइम के दो भाग होते हैं : (1) कोर एन्जाइम (core enzyme), (2) कोर एन्जाइम के साथ जुड़ने वाला सिग्मा (∞) कारक (Sigma Factor) (चित्र : 7.5) ।

(1) **कोर एन्ज़ाइम (Core enzyme)** : यह एन्जाइम चार प्रकार की पॉलीपेप्टाइड श्रृंखलाओं द्वारा बना होता है :

(i) दो α- श्रृंखलाएँ DNA के वर्धक (Promotor) स्थल पर बंधित हो जाती है ।

(ii) पहली β' श्रृंखला : इसका आणविक भार 1,60,000 डॉल्टन होता है । यह श्रृंखला DNA टेम्पलेअ के साथ बंधित होकर अनुलेखन की क्रिया में सहायता करती है । अकेला कोर एन्जाइम किसी भी स्थल पर अनुलेखन को आरम्भ (Initiate) करने में सक्षम नहीं होता है । इसकी सक्रियता हेतु, इसका सिग्मा कारक से सम्बद्ध होना अति आवश्यक होता है ।

(2) **सिग्मा (σ) कारक** (Sigma Factor) : सिग्मा कारक का मुख्य कार्य कोर एन्जाइम से सम्बद्ध होकर उसे सक्रिय बनाना है । यह DNA अणु पर वर्धक या प्रमोटर स्थल की पहचान करके कोर एन्जाइम को इसके साथ जोड़ता है तथा इस प्रकार अनुलेखन के संभारंभन (Initiation) में सक्रिय भूमिका निभाता है ।

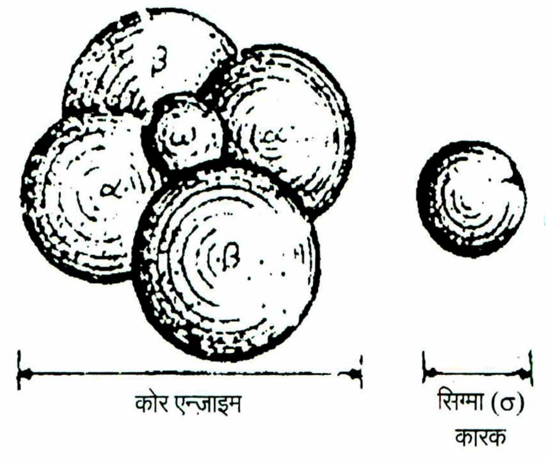

चित्र 7.5 : एन्जाइम RNA पॉलीमरेज का रेखीय प्रस्तुतीकरण

विशिष्ट कारक Rho (p) कारक : इस कारक का आणविक भार 60,000 डॉल्टन होता है । यह विशिष्ट प्रकार का प्रोटीन होता है जो कि m-RNA श्रृंखला संश्लेषण का समापन (Termination) करता है ।

अत : जीवाणु कोशिका में m-RNA संश्लेषण की क्रियाविधि को निम्न बिन्दुओं द्वारा संक्षिप्त में समझा जा सकता है (चित्र : 7.4) ।

(1) सबसे पहले कोर एन्जाइम का सिग्मा कारक से सम्बद्ध होकर सक्रिय हो जाना ।

(2) सक्रिय RNA पॉलीमरेज़ एन्जाइम का DNA वर्धक स्थल (Promotor site) पर बंधित होना ।

(3) DNA द्विरज्जुकी का विकुण्डलन तथा टेम्पलेट DNA पर अनुलेखित RNA संश्लेषण का संभारंभन, वृद्धि तथा पृथक होना ।

(4) कोर एन्जाइम एवम् सिग्मा कारक का अलग होना ।

(5) Rho (P) कारक की उपस्थिति में m-RNA संश्लेषण का समापन ।

(6) m-RNA का केन्द्रक झिल्लि में उपस्थित छिद्रों द्वारा कोशिका -द्रव्य में विमुक्त होना ।

यूकैरियोटिक जीवों में अनुलेखन (Transcription in Eukaryotes)

(I) **यूकैरियोटिक कोशिकाओं में RNA पॉलीमरेज एन्जाइम्स (RNA Polymerase** Enzymes in Eukaryotes) : प्रेकैरियोट्स की तुलना में यूकैरियोट्स में अनुलेखन की क्रिया अभिव्यक्ति का नियमन द्वारा मुख्य रूप से तीन प्रकार के RNAs (m-RNA t-RNA and r-RNA) का संश्लेषण होता है जिसे तीन प्रकार के RNA पॉलीमेरज एन्जाइम्स (I, II & III) उत्प्रेरित करते हैं । वे निम्नानुसार है :

स्थल (Site)	एंजाइम्स (Enzymes)	आर. एन. ए. संश्लेषण (RNA Synthesis)
1. केन्द्रक (Nucleus)	RNA पॉलिमरेज़ I	r-RNA के संश्लेषण में योगदान
2. केन्द्रकीय द्रव्य (Nucleoplasm)	RNA पॉलिमरेज़ II	विषमांगी RNA (Hn-RNA) के संश्लेषण में कार्यशील होता है । साथ ही Hn-RNA से m-RNA बनाने में योगदान
3. केन्द्रकीय द्रव्य (Nucleoplasm)	RNA पॉलिमरेज़ III	5S-RNA एवम् t-RNA के संश्लेषण में कार्यशील होता है ।

ये एन्जाइम्स प्रोकैरियोटिक कोशिकाओं में पाये जाने वाले RNA पॉलीमरेज़ एन्जाइम्स की तुलना में बड़े व जटिल होते हैं । इनका आणविक भार 500,000 डॉल्टन से आधिक होता है । प्रत्येक एन्जाइम्स 2 बड़ी व 10 छोटी इकाईयों से मिलकर बना होता है । इनके अतिरिक्त पॉलीपेप्टाइड श्रृंखलाओं का एक और समूह पाया जाता है, जिसे ट्राँसक्रिप्शन कारक (Transcription factor) कहते हैं ।

(II) Hn-RNA सें m-RNA का संश्लेषण

(Synthesis of m-RNA from Hn-RNA)

यूकैरियोट्स में भी अनुलेखन क्रिया के आधारभूत चरण (Bsic steps) आरंभन (Initiation), लम्बन (Elongation) तथा समापन (Termination) प्रोकैरियोट्स के समान ही होते हैं । इनमें भी द्विरज्जूकी DNA के एक रज्जू (strands) को प्रयुक्त करके m-RNA का संश्लेषण किया जाता है । किन्तु यूकैरियोट्स में पहले एन्जाइम्स RNA पॉलीमरेज़ II विषमांगी (Heterogeneous) RNA के संश्लेषण को उत्प्रेरित करता है । Hn-RNA (विषमांगी) m-RNA के संश्लेषण हेतु पूर्ववर्ती (Precursor) के रूप में कार्य करता है । जब Hn-RNA केन्द्रक के अन्दर ही होता है तो इसके 3' सिरे पर लगभग 200 पॉली-ए. (Poly-A) न्यूक्लिक ओटाइड्स जुड़ जाती है । इसके पश्चात् Hn-RNA का 5' सिरा कटकर केन्द्रक में ही रह जाता है तथा 3' पॉली - ए. सिरा जिस m-RNA रज्जुक से जुड़ा होता है (3 ' पॉली - ए। + m-RNA), केन्द्रक के बाहर कोशिकाद्रव्य में विमुक्त हो जाता है । कोशिका द्रव्य में 3 ' पॉली ए. + m-RNA रज्जुक 7' मिथाईल ग्वानोसीन (7’ Methyl Guanosine) बंधित होकर m-RNA का 5' - सिरा बनाता है । अत: इस प्रकार m-RNA का 3' पॉली - ए. सिरा पुच्छ (Tail) कहलाता

है तथा 5' सिरा जिस पर 7' मिथाईल ग्वानोसीन जुड़ा हुआ होता है, 5' टोपी (cap) कहलाता है (चित्र 7.6) ।

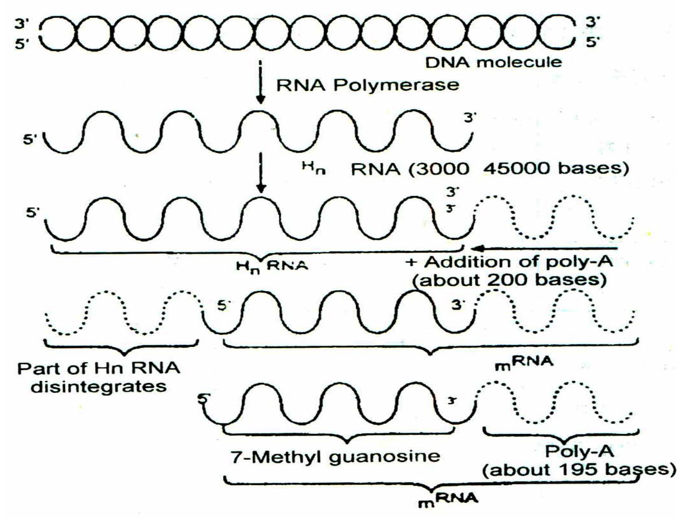

चित्र 7.6 : DNA से m-RNA का अनुलेखन

(B) **अनुलिपिकरण** (Translation) : वह क्रियाविधि जिसके अन्तर्गत अनुलेखित m-RNA का त्रिक-क्षारक अनुक्रम (Triplet base sequence-codon), अमीनों अम्लों (AA) के विशिष्ट अनुक्रम को एक पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला में विन्यासित करने के लिए निर्देशित करता है, अनुलिपिकरण या अनुवाद (Translation) कहलाती है । यह प्रक्रिया राइबोसोम्स पर सम्पन्न होती है ।

अनुलिपिकरण की प्रक्रिया अनुलेखन की तुलना में अपेक्षाकृत जटिल प्रकार की होती है एवम् यह निम्न चरणों में सम्पन्न होती है (चित्र 7.7) ।

(A) **अमीनो अम्लों का सक्रियकरण** (Activation of Amino Acids)

(B) अमीनो अम्लों का t-RNA पर स्थानान्तरण

(Transfer of Amino Acids to t-RNA)

(C) **पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला का निर्माण** (Formation of Polypeptide)

तीसरा चरण निम्न प्रकार से सम्पन्न होता है :

(I) श्रृंखला समारंभन (Chain Initiation)

(II) श्रृंखला लम्बन अथवा दीर्घीकरण (Chain Elongation)

(III) श्रृंखला समापन (Chain Termination)

(A) अमीनो अम्लों का सक्रियकरण (Activation of Amino Acids)

प्रो. पी. जैमनिक एवम् सहयोगियों ने चूहे की यकृत कोशिकाओं में उपापचयी क्रियाओं का अध्ययन कर यह बताया कि इनके कोशिका द्रव्य में उपस्थित अमीनो अम्ल (AA) शुरू में निष्क्रिय (Inactive) अवस्था में पाये जाते हैं । बाद में ATP के द्वारा ये सक्रिय अवस्था में आते हैं अथवा इनका सक्रियकरण जीन की संरचना, (Activation) होता है । इसमें अमीनो

अम्ल, ATP के साथ क्रिया करके अमीनो ऐसाइल एडिनाइलेट जटिल (Amino acyl-AMP Complex) बनाते हैं तथा पायरो फॉस्फेट (PP) विमुक्त होता है । यह जैव - रासायनिक अभिक्रिया एक विशेष प्रकार के अमीनो अम्ल सक्रियकारी एन्जाइम (Specific amino acid activating enzyme) के द्वारा उत्प्रेरित होती है । इस एन्जाइम को अमीनो एसाइल t-RNA सिन्थटेज़ कहते हैं । इसके साथ ही Mg^{++} आयन्स की उपस्थिति भी आवश्यक होती है । प्रत्येक प्रकार के अमीनो अम्ल हेतु अलग - अलग अमीनो एसाइल एन्जाइम प्रयुक्त होते हैं । ATP के फॉस्फेट समूह द्वारा मुक्त ऊर्जा का अधिकांश भाग एमीनो एसाइल - AMP संकुल द्वारा अधिगृहित कर लिया जाता है । यह संकुल (complex) अस्थायी तौर पर एन्जाइम से सम्बद्ध रहता है इस अमीनो एसाइल AMP-एन्जाइम संकुल को सक्रिय अमीनो अम्ल (Activated Amino Acid) कहते हैं ।

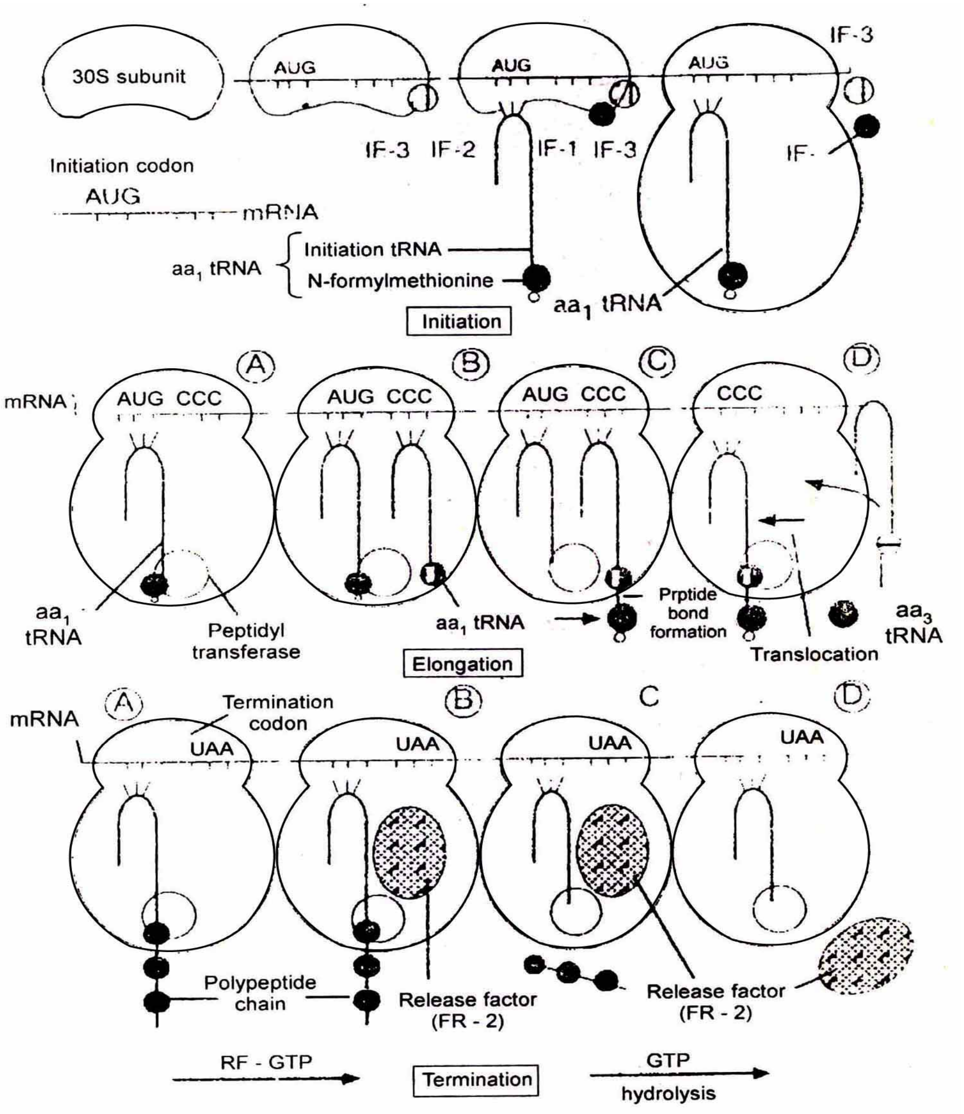

चित्र 7.7 : अनुवादन के विभिन्न चरणों का चित्र द्वारा निरूपण

यह प्रक्रिया निम्न समीकरण द्वारा निरूपित की जा सकती है
अमीनो फाइल सिन्धटेज

$$\text{अमीनो अम्ल AA + ATP} \xrightarrow[\text{Mg}^{++}]{\text{अमीनो एसाइल सिन्थतेज}} \text{अमीनो एसाइल AMP – एंजाइम कॉम्पलेक्स + पायरो फॉस्फेट (PP)}$$

प्रत्येक एन्जाइम अपने अनुरूप पहले विशेष अमीनो अम्ल का चयन करता है, तत्पश्चात् अपने लिए उपयुक्त विशेष प्रकार के t-RNA का चयन करता है । यह अमीनो अम्ल को t-RNA में स्थानान्तरित करने में मुख्य भूमिका निभाता है । एसाइल सिन्थटेज एन्जाइम से अमीनो अम्ल तब तक जुड़ा रहता है, जब तक कि इसके लिए t-RNA का चयन नहीं हो जाता । चयन के बाद अमीनो अम्ल को यह एन्जाइम t-RNA एडिनाइलिक अवशेष (Adenylic residue) पर स्थानान्तरित कर देता है (चित्र : 7.8) I

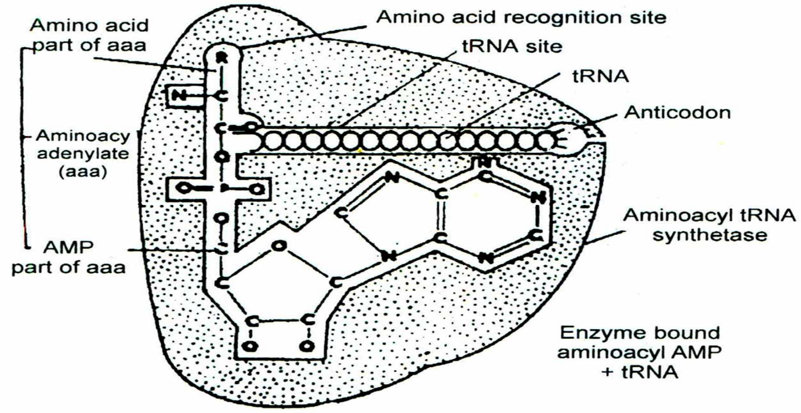

चित्र 7.8 : सक्रियकारी एन्जाइम,अमीनोएसाइल t-RNA सिन्थेटेस,दो सक्रिय स्थलों के साथ (a) अमीनो अम्ल पहचान स्थल एवं (b) t-RNA स्थल

(B) अमीनो अम्लों का t-RNA पर स्थानान्तरण

(Transfer of Amino Acids to t-RNA) :

अनुलिपिकरण के इस चरण में सक्रिय अमीनो अम्ल (AA) के अणु ऐसे t-RNA अणुओं पर स्थानान्तरित हो जाते हैं जिनका अणुभार कम होता है । ये निम्न अणुभार वाले t-RNA अणु कोशिका द्रव्य में स्वतंत्र रूप से विचरण करते हैं । प्रत्येक अमीनो अम्ल (AA) के लिए विशेष (specific) t-RNA अणु मौजूद होते हैं । अमीनो अम्ल को विशिष्ट t-RNA से जोड़ने का काम अमीनो एसाइल- t-RNA सिन्थटेज़ एन्ज़ाइम करता है । अत : इस प्रकार 20 अमीनो अम्लों हेतु 20 अमीनो एसाइल सिन्थटेज़ एन्जाइम्स की आवश्यकता होती है । यह क्रिया निम्न समीकरण द्वारा समझायी जा सकती है I

$$\text{अमीनो एसाइल AMP – एन्जाइम काम्पलेक्स} + \xrightarrow[\text{Mg}^{++}]{\text{Amino acyl t–RNA synthetase}} \text{अमीनो अम्ल t – RNA + AMP + एंजाइम}$$

अमीनो एसाइल AMP – एन्जाइम + tRNAकाम्पलेक्स + $\xrightarrow[Mg^{++}]{\text{Amino acyl t-RNA synthetase}}$ अमीनो अम्ल t – RNA + Mg^{++}AMP + एंजाइम

इस प्रकार इस क्रिया के परिणामस्वरूप अमीनो एसाइल - AMP एन्जाइम का अमीनो अम्ल अवशेष t-RNA के अमीनो अम्ल बंध स्थल पर स्थानान्तरित हो जाता है तथा अमीनो एसाइल t-RNA बनता है तथा इसके साथ ही AMP व एन्जाइम मुक्त हो जाते हैं । इस क्रिया में बनने वाला अमीनो एसाइल - t-RNA, प्रोटीन संश्लेषण के स्थल (राइबोसोम m-RNA सहित) पर पहुँच जाता है ।

(C) पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला का निर्माण (Formation of Polypetide Chain)

(I) **पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला का प्रारम्भन :** पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला का संश्लेषण सदैव एक विशिष्ट अमीनो अम्ल मिथियोनीन (Methionine) के द्वारा प्रारम्भ होता है । इस अमीनो अम्ल को m-RNA के 5 ' सिरे पर उपस्थित प्रारम्भिक कोडोन (codon) 'AUG' के द्वारा कोडित किया जाता है (चित्र 7.9) ।

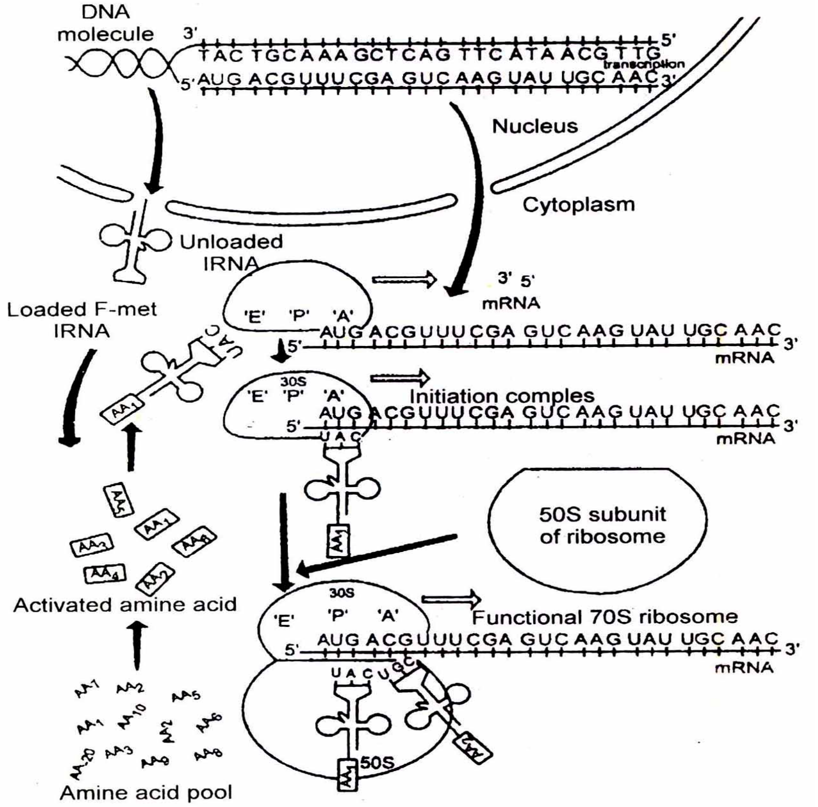

चित्र 7.9 : ई. कोलाई में कोशिका संश्लेषण प्रक्रिया की कुछ प्रारम्भिक अवस्थाओं का चित्र द्वारा निरूपण : 'A' = अमीनोएसाइल स्थल अथवा डिकोडिंग स्थल , 'P' + = पेप्टाइडिल स्थल या संघनन स्थल , 'E' = एविनट स्थल,AA_1=N- फार्माइल मेथीयोनीन,AA_2= थ्रिओनीन

(a) **प्रेकैरियोट्स में पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला का प्रारम्भन** (Initiation of Polypeptide Chain in Prokaryotes) : जीवाणु ई. कोलाई में दो प्रकार के $t\text{-}RNA^{s}$ पाये जाते हैं जो कि मिथियोबीन नामक विशिष्ट अमीनो अम्ल को कोडित करते हैं इन्हें क्रमश: $t\text{-}RNA_{m}^{met}$ (Non-formatable) तथा $t\text{-}RNA_{f}^{met}$ (formatable) अर्थात पहले वाले t-RNA का फॉर्मिलेशन नहीं होता है । प्रोकैरियोट्स में प्रारम्भन अमीनो अम्ल का फॉर्मिलेशन होना अति आवश्यक है, जिससे $t\text{-}RNA_{f}^{met}$ मिथियोनीन अमीनो अम्ल को प्रथम अमीनो अम्ल के रूप में विक्षेपित करने का कार्य करता है । जबकि पहले वाले प्रकार का t-RNA, अमीनो अम्लों को बीच के स्थानों में ही विक्षेपित कर सकता है । अत: प्रोकैरियोट्स में प्रोटीन संश्लेषण का प्रारम्भन $t\text{-}RNA_{m}^{met}$ द्वारा एवम् यूकैरियोटिक कोशिकाओं में $t\text{-}RNA_{m}^{met}$ द्वारा कोशिका द्रव्य में होता है । क्योंकि यूकैरियोटिक पौधों में $t\text{-}RNA_{f}^{met}$ अनुपस्थित होता है तथा जन्तुओं में ट्रॉसफॉरमाइलेज (Transformylase) एन्जाइम अनुपस्थित होता है ।

पॉलीपेप्टाइड प्रारम्भन संकुल (Polypeptide Initiation Complex) : केम्फर एवम् सहयोगियों (Kamfer et al.1964) के अनुसार पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला के प्रारम्भन से पहले 70S प्रकार के राइबोसोम्स की उपइकाईया (50S व 30S) संयुक्त अवस्था में न रहकर, दो उपइकाईयों के रूप में अलग - अलग रहती है । प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया को सुचारू रूप से संचालित करने हेतु इन इकाईयों का आपस में जुड़ना अति आवश्यक होता है, क्यौंकि t-RNA व m-RNA राइबोसोम के RNA से सीधे (Directly) नहीं जुड़ सकते हैं, अपितु पहले यह 30S उपइकाई के सा व जुड़ते हैं । यह अनेक सोपानों में पूर्ण होने वाली एक जटिल प्रक्रिया है, जिसमें 3 विशेष प्रकार के प्रारम्भन प्रोटीन कारक (Initiatingn Protein Factors) क्रमश : IF-I, IF-II व IF-III पाये जाते हैं । ये कारक राइबोसोम की 30S उपइकाई के साथ शिथिलतापूर्वक (loosely) जुड़े रहते हैं एवम् इनके जुड़ने व पृथक होने का क्रम निरन्तर जारी रहता है (चित्र : 7.10) ।

इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम m-RNA IF.II प्रोटीन कारक की उपस्थिति में 30S उपइकाई से बंधित हो जाता है । शीघ्र ही अमीनो अम्लों युक्त कोशिका द्रव्य से N-फॉरमाइलमिथियोनाइल t-RNA ($t\text{-}RNA_{f}^{met}$) आकर, m-RNA के 5^{1} सिरे पर प्रथम त्रिक कोडोन (AUG or AUA) से बंधित होकर प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया का प्रारम्भन (Initiation) करता है, तथा इस समय प्रारम्भन संकुल (Initiation Complex) बन जाता है । इस संकुल के बनने में GTP (Guanosine Triphosphate) व 3 प्रोटीन कारकों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है । प्रारम्भन संकुल बनने के पश्चात् 30S उपइकाई 50S उपइकाई से जुड़कर 70S राइबोसोम बनाती है । इन उपइकाईयों को जोड़ने के लिए Mg^{++} तथा IFI व IF II कारकों की आवश्यकता होती है । mRNA में निहित सूचना केवल एक ही राइबोसोम द्वारा नहीं पढ़ी जा सकती है, इसके लिए बहुत सारे राइबोसोम्स की आवश्यकता होती है जो कि mRNA द्वारा जुड़कर पॉलीराइबोसोम्स (Polyribosomes) बनाते हैं ।

अत : इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया को प्रारम्भ करने में फॉर्मिलेटेड मिथियोनीन (Formylated Methionine) की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । किसी भी प्रकार के

प्रोटीन अणु संश्लेषण में फॉर्मिलेटेड मिथियोनीन (AA_1) प्रथम स्थान ग्रहण करता है, उसके पश्चात् दूसरे अमीनो अम्ल आकर स्थान ग्रहण करता है, उसके पश्चात् दूसरे अमीनो अम्ल आकर जुड़ते हैं । जब प्रोटीन अणु का संश्लेषण पूर्ण हो जाता है तो फॉर्मिलेटेड मिथियोनीन जलअपघटनीय एन्जाइम (Hydrolytic enzyme) की क्रिया द्वारा विमुक्त हो जाता है (चित्र 7.10, 7.11) ।

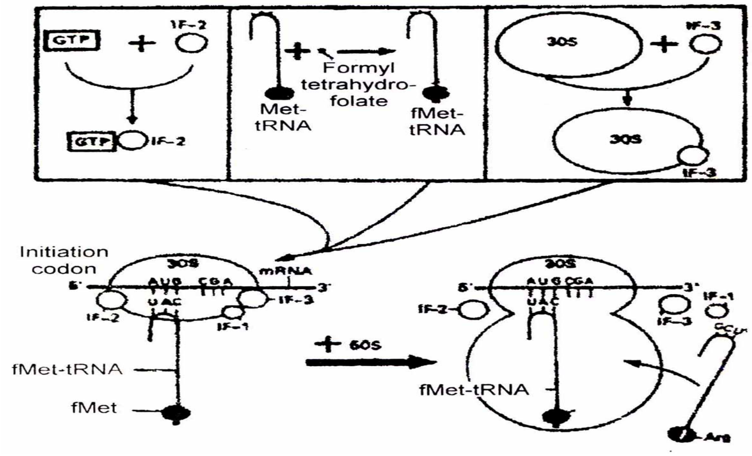

चित्र 7.10 : अनुलिपिकरण का प्रारम्भन

(b) **यूकैरियोटिक जीवों में पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला का प्रारम्भन** (Initiation of Polypeptide Chain in Eukaryotes): यूकैरियोटिस में भी पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला का प्रारम्भन प्रोकैरियोट्स के समान ही होता है, किन्तु इनमें प्रारम्भन अमीनो अम्ल मिथियोनीन का फॉर्मिलेशन नहीं होता है । केवल एक ही प्रकार का $t\text{-}RNA_i$ ($t\text{-}RNA_i^{met}$) पाया जाता है । इसके अलावा यूकैरियोट्स में लगभग 10 प्रारम्भन कारक (Initiation Factor) पाये जाते हैं । वे eIF1, eIF2, eIF3, eIF4A, eIF4B, eIF4C, eIF4D, eIF4F, eIF5 तथा eIF6 हैं । इनमें से eIF2 व eIF3 कारक प्रोकैरियोट्स में पाये जाने वाले कारकों IF2 व IF3 के समान होते हैं । इनमें पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला के प्रारम्भन हेतु राइबोसोम की छोटी इकाई (40S) प्रारम्भन t-RNA से जिसे $t\text{-}RNA_i^{met}$ कहते हैं, बिना m-RNA की मदद से जुड़ जाती है, जबकि प्रोकैरियोट्स सामान्यत: पहले 30S - m-RNA संकुल बनता है तथा बाद में वह $f\text{-}met\text{-}t\text{-}RNA_f^{met}$ से जुड़ता है । इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम GTP eIF2 कारक से बंधित होता है जिसे eIF2-GTP जटिल कहते हैं । इसके बाद यह जटिल $met\text{-}tRNA_i^{met}$ (tRNA) से जुड़कर $met\text{-}TRNA_i^{met}$-eIF2-GTP जटिल बनाता है । यह जटिल 80S राइबोसोम की 40S उपइकाई से जुड़कर 40S प्रारम्भन जटिल (Initiation complex) बनाता है । m-RNA अपने 5' सिरे पर 40S प्रारम्भन जटिल से ATP प्रोटीन कारकों की सहायता से जुड़ जाता है । प्रोकैरियोट्स में यह क्रिया m RNA के 5' सिरे पर न होकर AUG कोडोन पर होती है । यूकैरियोट्स 5' m RNA के सिरे से प्रारम्भन जटिल 3' सिरे की ओर गति करता हुआ AUG कोडोन की खोज करता है तथा इस समय तक 60S उपइकाई भी प्रारम्भन जटिल से जुड़ जाती है । तत्पश्चात् GTP का जल अपघटन हो जाता है ।

met-t RNA_i^{met} राइबोसोम के पेप्टिडाइल स्थल पर स्थित होकर पेप्टाइड श्रृंखला बनाना प्रारम्भ करता है ।

II. **पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला का सुदीर्घीकरण** (Elongation of Polypeptide Chain)

प्रोकैरियोट्स में 70S-m-RNA_f-met-t-RNA संकुल (complex) बन जाने के बाद पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला के निरन्तर दीर्घीकरण का कार्य सक्रिय अमीनो अम्लों के जुड़ते रहने से होता है । इस प्रक्रिया को कई कारक जैसे अमीनो अम्लों की प्राप्ति, GTP उपलब्धता तथा राइबोसोम्स व m-RNA की सापेक्ष (relative) गति प्रभावित करती है । दीर्घीकरण तीन चरणों में पूरा होता है :

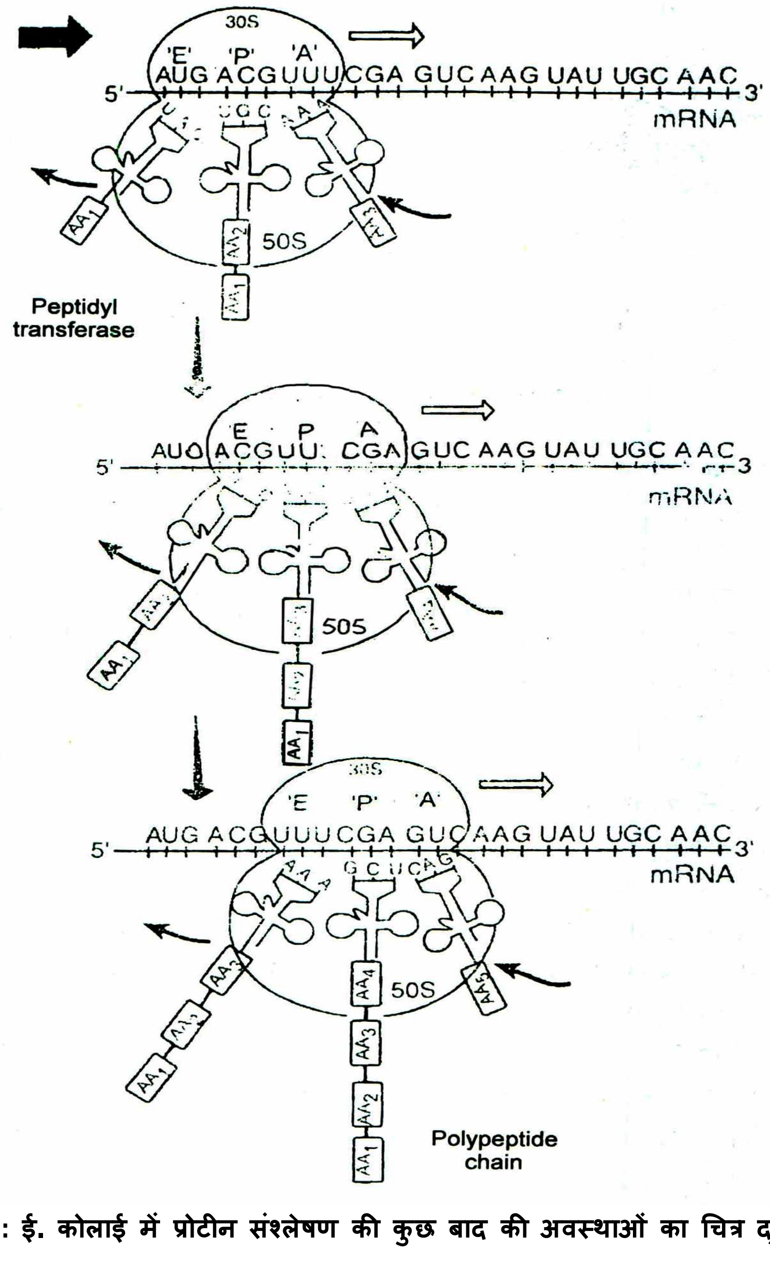

चित्र 7.11 : ई. कोलाई में प्रोटीन संश्लेषण की कुछ बाद की अवस्थाओं का चित्र द्‍वारानिरूपण

1. **अमीनो - एसाइल tRNA (AA-tRNA) का राइबोसोम के 'A' स्थल पर जुड़ना :** प्रत्येक राइबोसोम में दो 'A' व 'P' स्थल पाये जाते हैं जहाँ पर t-RNA बंधित हो सकता है । 'A' अमीनो एसाईल स्थल तथा 'P' पेप्टिडाइल स्थल कहलाता है । इस प्रक्रिया में पहले f-met-$tRNA_f^{met}$ 'P' स्थल पर चला जाता है जिससे अगले (next) अमीनो अम्ल tRNA (AA_2-tRNA) के लिए 'A' स्थल उपलब्ध हो सके । राइबोसोम की छोटी उपइकाई पर एक दूसरा स्थल 'R' पाया जाता है जो कि अनुलिपिकरण को बिल्कुल सही व सटीक होने के लिए जिम्मेदार होता है । पहले इस स्थल पर अमीनो एसाइल tRNA बंधित होकर सटीक कोडोन व एन्टीकोडोन युगल बनाता है । बाद में अमीनो एसाइल tRNA GTP अणु से ऊर्जा प्राप्त कर 'A' स्थल पर पहुँच जाता है ।
2. **दीर्घीकरण कारक की भूमिका :** जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि 70S प्रारम्भन संकुल बनने के बाद AA-tRNA 'A'स्थल में प्रवेश करता है । इस प्रवेश हेतु दो दीर्घीकरण कारक EF-Tu व EF-Ts उत्तरदायी होते हैं । दीर्घीकरण कारक EF-Tu पहले GPT से बंधित होकर EF-Tu-GTP जटिल बनाता है, तत्पश्चात् यह AA-tRNA से जुड़ने में सक्षम होता है, तथा AA-tRNA-EF-Tu-GTP संकुल बनता है । यह संकुल 'A' स्थल परजुड़ता है । जबकि 'P' स्थल पर प्रारम्भन अवस्था में तो पहले से ही f-met-$tRNA_f^{met}$ होता है किन्तु बाद में पेप्टिडाइल tRNA होता है । इस संकुल के राइबोसोम से बंधने के बाद GTP का जल अपघटन हो जाता है तथा EF-Tu-GDP+Phosphate विमुक्त हो जाते हैं । दीर्घीकरण कारक EF-Ts-GDP को विस्थापित करता है तथा Tu से जुड़ जाता है ।जिससे GTP दोबारा EF-Tu से जुड़ सकें व दूसरे AA-tRNA के बाँधने का दूसरा चक्र शुरू हो सके । इस अवस्था में EF-Ts कारक मुक्त हो जाता है तथा फिर से EF-Tu-GDP के साथ प्रयोग में आ जाता है ।
3. **पेप्टाइड बंध का बनना** : राइबोसोम के 'P' स्थल पर बंधित पेप्टिडाइल tRNA के COOH समूह तथा 'A' स्थल पर स्थित - NH_2 समूह के मध्य पेप्टाइड बंध (Peptide bond) का बनना एक उत्प्रेरण अभिक्रिया है, जिसे पेप्टिडाइल ट्राँसफरेज़ एन्जाइम उत्प्रेरित करता है । यह एन्जाइम 50S उपइकाई का हिस्सा होता है । पेप्टाइड बंध बनने के बाद 'P' स्थल पर tRNA डीएसाइलेट (Deacylate) अर्थात् अमीनो अम्ल से मुक्त हो जाता है । इस प्रकार 'A' स्थल पर पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला बनती जाती है (चित्र 7.12) ।

III. पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला का समापन (Termination of Polypeptide Chain)

जब कोशिका में पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन संश्लेषण हो चुका होता है तो इसके समापन हेतु आनुवंशिक संदेश m-RNA द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है । पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला समापन हेतु कोडोन्स UAA, UAG व UGA में से किसी भी एक कॉडोन की उपस्थिति आवश्यक होती है । इन समापन कोडोन्स को पहचानने का कार्य मोचक कारक (Releasing Factor) RF_1 व RF_2 में से किसी एक का होता है । मोचक कारक RFI, UAA व UAG कोडोन्स की पहचान करता है, जबकि RF_2 UGA कोडोन को पहचानता है । ये कारक राइबोसोम को इन त्रिक कोडोन्स की

पहचान करने में सक्षम बनाते हैं । एक अन्य मोचक कारक RF_3 RF_1 व RF_2 कारकों की क्रियाशीलता को बढ़ाता है । मोचक क्रिया (Release reaction) हेतु पॉलीपेप्टाइडल tRNA का 'P' स्थल पर उपस्थित होना आवश्यक होता है । मोचक कारक का मुख्य कार्य पेप्टिडाइल व श्रृंखला पर अंतिम tRNA के मध्य - COOH (कार्बोक्साइल) समूह को तोड़ना है, जिससे श्रृंखला पृथक हो जाती है तथा राइबोसोम्स IF3 कारक की सहायता से अपनी उपइकाईयों में विघटित हो जाते हैं । इस प्रकार प्रोटीन संश्लेषण का समापन हो जाता है।

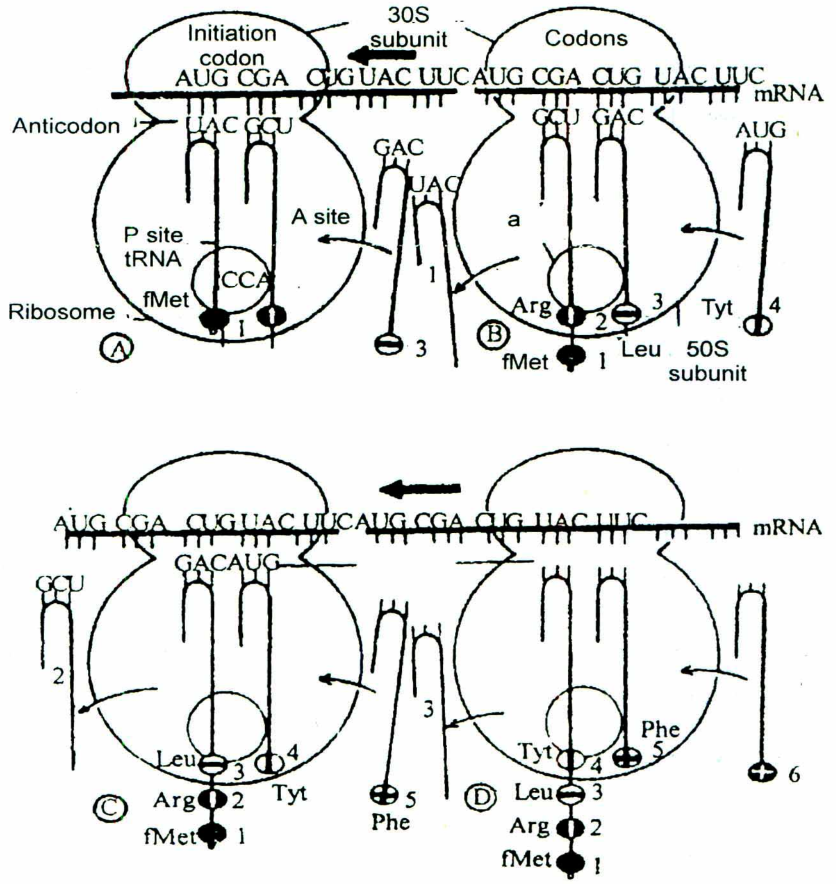

चित्र 7.12 : पोलीपप्टाइड श्रृंखला का दीर्घीकरण (Elongation) A. FMet-t RNA (1) P-स्थल एवं Arg-t RNA(2) A-स्थल पर B. Arg-t RNA का A से P स्थल पर अभिगमन,C. उत्तरवर्ती श्रृंखला दीर्घीकरण D. श्रृंखला सुदीर्घीकरण प्रक्रिया में और अधिक बढ़ोतरी

निर्मुक्त पॉलीपेप्टाइडल श्रृंखला में बदलाव (Changes in Released Polypeptide Chain) : जब पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला विमुक्त हो जाती है तो इसके प्रथम अमीनो अम्ल मिथियोनीन से फोर्माइल (Formyl) समूह, एन्जाइम फॉर्मीलेज (Formylase) द्वारा प्रथक कर दिया जाता है । एक अन्य एन्जाइम एक्सोपेप्टाइडेज़ (exopeptidase) इस श्रृंखला के N टर्मिनल (समापन सिरा) या दोनों टर्मिनलों के कुछ AA को पृथक कर देते हैं । कोशिका की आवश्यकता अनुसार अब पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला प्राथमिक, द्वितीयक, तृतीयक अथवा चतुष्क प्रारूप ग्रहण कर लेती है ।

7.4 जीन नियमन (Regulation of Gene)

उपरोक्त अध्ययन से ज्ञात होता है कि जीन स्वयं को विभिन्न प्रकार के प्रोटीन संश्लेषणों द्वारा अभिव्यक्ति करते हैं । किसी भी जीव कोशिकाओं में विभिन्न क्रियाओं हेतु विशिष्ट प्रोटीन्स अथवा एन्जाइम्स की एक निश्चित मात्रा में आवश्यकता होती है । इसके लिए कोशिकाओं द्वारा एक नियंत्रण प्रक्रिया (control mechanism) अपनायी जाती है, जो कि एक निश्चित समय पर आवश्यकतानुसार जीनों को सक्रिय रखती है तथा बाकी जीन उस समय निष्क्रिय रहते हैं । यह प्रक्रिया जीन अभिव्यक्ति का नियमन (Regulation of gene expression) कहलाती है । जीन नियमन सभी सजीवों का एक महत्वपूर्ण लक्षण है जिसके कारण कोशिकाओं में अनावश्यक प्रोटीन्स का जमाव नहीं होता है तथा जीन स्वयं को वृद्धि व विभेदन (Grwoth & differentiation) की अवस्था में परिवर्तनीय वातावरण में अनुकूलित रख पाते हैं ।

आण्विक जीव विज्ञान (Molecular biology) संबंधी आधुनिक अध्ययन के अन्तर्गत जीन को आभिप्रेरित या दमित करके एन्जाइम की उत्पत्ति को संचालित किया जाता है, इसके साथ ही दूसरी ओर जीन को निष्क्रिय (Inactivate) करके प्रोटीन संश्लेषण में अनुलेखन व अनुलिपिकरण आदि सोपानों को अवरुद्ध या निष्क्रिय किया जा सकता है । इस प्रकार जीनों द्वारा किसी उपापचयी परिपथ की अभिक्रियाओं के नियंत्रण को जीन नियमन (Gene Regulation) कहते हैं । जीन की अभिव्यक्ति का नियमन प्रोकैरियोट्स व यूकैरियोट्स सजीवों में अलग - अलग प्रक्रियाओं द्वारा संचालित होता है, जो कि निम्न प्रकार से है

(A) प्रोकैरियोट्स में जीन अभिव्यक्ति का नियमन

(Regulation of Gene Expression in Prokaryotes)

प्रोकैरियोट्स में सर्वप्रथम जीवाणु ई. कोलाई की कोशिका में जीन अभिव्यक्ति के नियमन को क्रियाविधि का अध्ययन किया गया । इस जीवाणु कोशिका का वर्तुल DNA रज्जुक कुल 3,000 प्रोटीन्स के संश्लेषण को कोडित करता है । यह DNA स्वयं को छोटे - छोटे खण्डों में अनुलेखित करता है । प्रत्येक खण्ड में निश्चित समारंभन व समापन स्थल होते हैं :

(1) **एन्जाइम नियमन** (Enzyme Regulation of Gene Action) : **प्रेरण** (Induction) **अथवा दमन** (Repression) :

ई कोलाई जीवाणु में निम्नलिखित दो प्रकार के एन्जाइम्स संश्लेषित होते हैं ।

(i) **अहेतुक एन्जाइम्स अथवा प्रोटीन्स (Constitutive)** : जीवित कोशिकाओं में कुछ आवश्यक, आधारभूत उपापचयी क्रियाओं हेतु एन्जइम्स का निरंतर संश्लेषण होता रहता है । ऐसे एन्जाइम्स अहेतुक एन्जाइम्स (Constitutiveenzymes) कहलाते हैं । क्योंकि कोशिका में इन एन्जाइम्स की आवश्यकता निरन्तर बनी रहती है, अत: इन एन्जाइम्स के नियमन की आवश्यकता नहीं होती है, उदाहरण : ग्लाइकोलिसिस में प्रयुक्त होने वाले एन्जाइम्स ।

(ii) **नियमन आवश्यक एन्जाइम्स अथवा प्रोटीन्स (Regulated Enzymes of Protiens)** : ये वे एंजाइम्स हैं जो किकोशिका में विशिष्ट अवस्थाओं में संश्लेषित होते हैं तथा जिनका नियमन आवश्यक होता है । ये निम्नलिखित प्रकार के होते हैं

(a) **प्रेरित एन्जाइम्स अथवा प्रेरण (Inducible Enzymes or Induction) :** वे एन्जाइम्स जिनका संश्लेषण केवल तभीप्रेरित होता है, जबकि या माध्यम में इनके क्रियाकारी पदार्थ (substrates) उपस्थित हों, प्रेरित एन्जाइम्स (InducibleEnzymes) कहलाते हैं तथा ये क्रियाकारी रासायनिक पदार्थ (substrates), जिनकी उपस्थिति एन्जाइम्स के संश्लेषण को प्रेरित करती है, प्रेरक पदार्थ (Inducers) कहलाते हैं, एवम् वह प्रक्रिया जिसके अन्तर्गत एन्जाइम्स का संश्लेषण अभिप्रेरित होता है, प्रेरण (induction) कहलाती है । इसी क्रम में वह आनुवंशिक तंत्र जो इस प्रकार के एन्जाइम संश्लेषण हेतु उत्तरदायी होता है, प्रेरक तंत्र (inducible system) कहलाता है ।

उदाहरण जीवाणु ई. कोलाई में लेक्टोज शर्करा का विघटन -

जीवाणु ई: कोलाई में एन्जाइम β -गैलेक्टोसाइडेज़ (β-glactosidase), लेक्टोज शर्करा (substrate) के जलीय अपघटन को उत्प्रेरित करता है । जिसके परिणामस्वरूप ग्लूकोज (Glucose) व गैलेक्टोज शर्कराएँ बनती हैं ।

वैज्ञानिकों के अनुसार ई. कोलाई के संवर्धन माध्यम में यदि लेक्टोज शर्करा की आपूर्ति नहीं की जाये या बंद करदी जाये, तो ये जीवाणु कोशिकाएँ एन्जाइम β-AS गैलेक्टोसाइडेज के संश्लेषण को बद कर देती हैं । परन्तु यदिमाध्यम में लेक्टोज शर्करा की आपूर्ति फिर से शुरू कर दी जाती है, तो एन्जाइम का संश्लेषण भी वापस से प्रारम्भ हो जाता है एवम् इसकी मात्रा थोड़े ही समय में 10,000 गुना अधिक हो जाती है । अत : एन्जाइम β गैलेक्टोसाइडेज एक प्रेरक एन्जाइम है । जिसका संश्लेषण प्रेरक पदार्थ की उपस्थिति पर निर्भर होता है ।

(b) **दमनीय एन्जाइम (Repressible Enzyme) एवम् सह दमनकर (Co-repressor)** : कोशिका तंत्र में कुछ एन्जाइम्स सामान्यत : उपस्थित रहते हैं, किन्तु यदि कोशिकीय तत्र में इनके अंतिम उत्पादों का सान्द्रण बहु त अधिक बढ़ जाता है तो इन एन्जइम्स का संश्लेषण रुक जाता है, ऐसे एन्जाइम्स दमनीय (दमित) एन्जाइम (RepressorEnzyme) कहलाते हैं, तथा अंतिम उत्पाद जिनकी उपस्थिति मात्र से किसी एन्जाइम का संश्लेषण रूक जाता है, सहदमनकर (Co-repressor) कहलाते हैं । इस क्रिया हेतु प्रयुक्त आनुवंशिक तंत्र दमित तंत्र (Repressible system) कहलाता है (Feed-Back-Mechanism) । इस संदर्भ में कुछ अमीनो अम्लों का उदाहरण लिया जा सकता है । इन अमीनो अम्लों की आपूर्ति यदि बाहर से नहीं हो, तो कोशिकाओं में इनके संश्लेषण को अभिप्रेरित करने वाले एन्जाइम्स का निर्माण प्रारम्भ हो जाता है, लेकिन यदि इन अमीनो अम्लों की आपूर्ति बाहरी माध्यम से होना शुरू हो जाता है तो

ऐसी स्थिति में इन अम्लों के कोशिकीय संश्लेषण को अभिप्रेरित करने वाले एन्जाइम्स का निर्माण भी तुरन्त बंद हो जाता है अथवा रूक जाता है, जैसे - हिस्टीडीन (Histidine) नामक अमीनो अम्ल की बाहर से कोशिका में आपूर्ति करने पर, कोशिका में इसके संश्लेषण को अभिप्रेरित करने वाले एन्जाइम का निर्माण कम मात्रा में होने लगता है, परन्तु यदि हिस्टीडीन की बाहरी आपूर्ति रोक दी जाती है तो कोशिका में इसके संश्लेषण के लिए आवश्यक एन्जाइम्स फिर से बनने लगते हैं । अत : यहाँ अमीनो अम्ल हिस्टीडीन सहदमनकर (Corepresser) के रूप में कार्य करता है क्योंकि इसे बाहरी माध्यम से मिलाने से इसके संश्लेषण हेतु आवश्यक 10 एन्जाइम्स का संश्लेषण समाप्त हो जाता है जो कि इसके जैविक संश्लेषण हेतु आवश्यक होते हैं । इस क्रिया में अंतिम उत्पाद प्रथम एन्जाइम से बंधित होकर उसकी तृतीय संरचना को बदल देता है, जिससे एन्जाइम का उत्प्रेरक स्थल निष्क्रिय हो जाता है ।

ओपेरॉन मॉडल (The Opron Model)

सर्वप्रथम जैकब एवं मोनाड (Jacob and Monad, 1961) ने ई. कोलाई जीवाणु का अध्ययन करने पर प्रोकैरियोट्स के जीन नियमन को समझाने के लिए ओपेरॉन मॉडल (Operon Model) प्रस्तुत किया । उन्होंने ई. कोलाई (E. Coli) में β गैलेक्टोसाइडेज एन्जाइम के संश्लेषण से सम्बन्धित प्रेरण तंत्र का अध्ययन करते हुए जीन बीज नियमन की प्रेरण एवं मदन अवधारणा विकसित की । इस कार्य के लिए जेकब एवं मोनाड को सन् 1965 में नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया ।

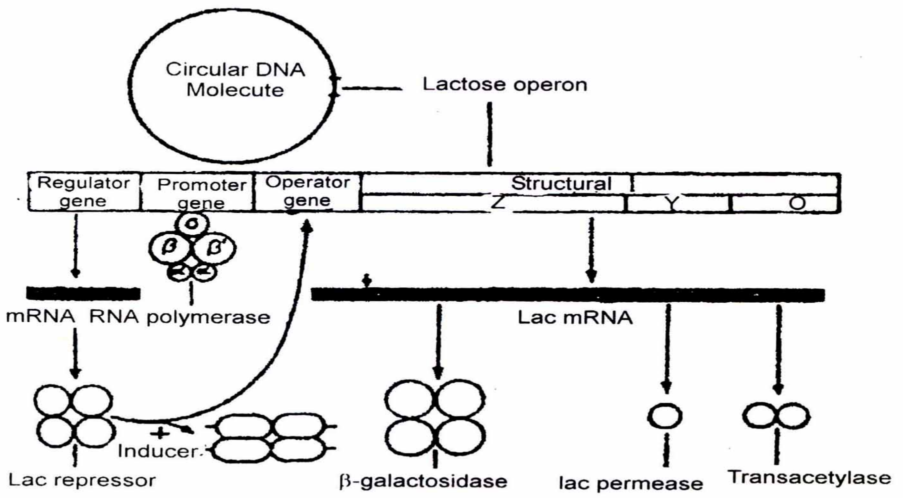

चित्र : 7.13 A : E. Coli में जीवाणु लेक - ओपेरॉन संरचना

ई. कोलाई का लेक ओपेरॉन माडल प्रमुखत : एन्जाइम β गैलेक्टोसाइडेज के संश्लेषण कार्य पर आधारित है । यह एन्जाइम लेक्टोस शर्करा का विघटन ग्लूकोस एवं गैलेक्टोज में करता है । इस मॉडल को इसीलिए लेक ओपेरॉन (Lac Operon) मॉडल भी कहा जाता है ।

लेक ओपेरॉन में एक वर्तुलाकार (Circular DNA) होता है, जिसमें जीवाणु का आधिकांश आनुवांशिक पदार्थ समाहित होता है । इस ओपेरॉन में चार मुख्य घटक पाये जाते हैं जो कि समन्वित रूप से कार्य करते हैं । ये घटक निम्न प्रकार से हैं :

(1) **संरचनात्मक जीन** (Structural Gene) : ये ओपेरॉन के प्रमुख कार्यकारी घटक जीन हैं, जो प्रोटीन के लिए कोड करते हैं । E. Coli के लेक ओपेरॉन में तीन प्रकार के संरचनात्मक जीन क्रमश : z, y तथा a पाये जाते हैं एवं ये एक दीर्घ (Elongated) पॉलीस्ट्रिनिक m-RNA अणु का अनुलेखन (Transcription) करते हैं । यह m-RNA अणु तीन विभिन्न एन्जाइमी - प्रोटीनों क्रमश : β गैलेक्टोसाइडेस, गैलेक्टोसाइड परमिएस एवं गैलेक्टोसाइड ट्रान्स - एसिटाइलेस के संश्लेषण का नियंत्रण करता है । इन एन्जाइमों में क्रमश : 4, 1 व 2 प्रोटीन इकाइयाँ होती हैं । ई. कोलाई में लगभग 2500 संरचनात्मक जीन उपस्थित होते हैं, जिनमें 800 विभिन्न प्रकार के एन्जाइमों को उत्पन्न करने की क्षमता होती है । इनमें से कुछ विशेष प्रकार के एन्जाइमों का संश्लेषण तो नियंत्रित होता है अर्थात् जरूरत एवं उपलब्धता के आधार पर होता है जबकि कुछ एन्जाइम्स का निरन्तर संश्लेषण होता रहता लेक ओपेरॉन में β गैलेक्टोसाइडेस में चार पॉलीपेप्टाइड इकाइयाँ (प्रोटीन) होती है । इनमें से प्रत्येक इकाई का अणुभार 1,25,000 डाल्टन होता है एवं 1021 अमीनो अम्लों की बनी होती हैं । गैलेक्टोसाइडेस पीरमियेस एन्जाइम एक पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला (प्रोटीन) द्वारा निर्मित होता है, जिसमें 275 अमीनो अम्ल होते हैं तथा इसका अणुभार 30,000 डाल्टन होता है । यह एन्जाइम लेक्टोस के कोशिका में प्रवेश को आसान बनाता है ।

दो पॉलीपेप्टाइड श्रृंखलाएँ मिलकर गैलेक्टोसाइडेस - ट्रांसएसिटाइलेस नामक एन्जाइम का निर्माण करती हैं । इनमें से प्रत्येक पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला 275 अमीनो अम्लों की बनी होती है, इसका अणुभार 30,000 डाल्टन होता है । यह एन्जाइम लेक्टोस प्रेरण के समय बहुत थोड़ी मात्रा में पाया जाता है । यह COA से एसिटाइल समूह को गैलेक्टोसाइड डेरीबेटीब्ज में स्थानान्तरित कर सकता है (चित्र 7.13A, 7.13B) ।

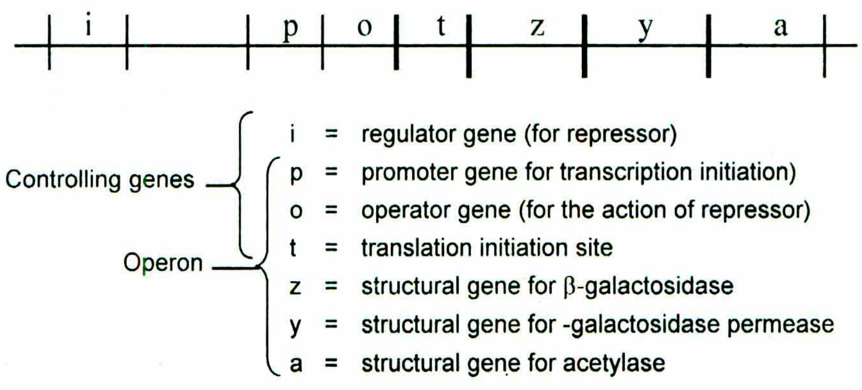

चित्र : 7.13 B : जीवाणु (ई. कोलाई) में लेक -ओपेरॉन तथा इसके नियामक जीन (वाटसन द्वारा)

(2) **रेगुलेटर या नियामक जीन** (Regulator Gene) : यह ओपेरॉन मॉडल में अवस्थित विशेष प्रकार की जीन होती है, जो प्रमोटर जीन के पहले अवस्थित पाई जाती है । इनका विशेष कार्य संरचनात्मक जीन्स को नियंत्रित (Regulate) करने का है । ये आवश्यकतानुसार दमनकारी (Repressor) पदार्थ उत्पन्न करते हैं । इस प्रोटीनीय पदार्थ को 't' जीन भी कहते हैं तथा यह ऑपरेटर जीन के पास स्थित होता है । इस प्रकार यह जीन एन्जाइमी प्रोटीनों की संरचना का निर्धारण न करके ओपेरॉन के अन्य जीनों जैसे संरचनात्मक एवं प्रमोटर जीनों की अभिव्यक्ति क नियमन (Regulation) करते हैं (चित्र 7.14) ।

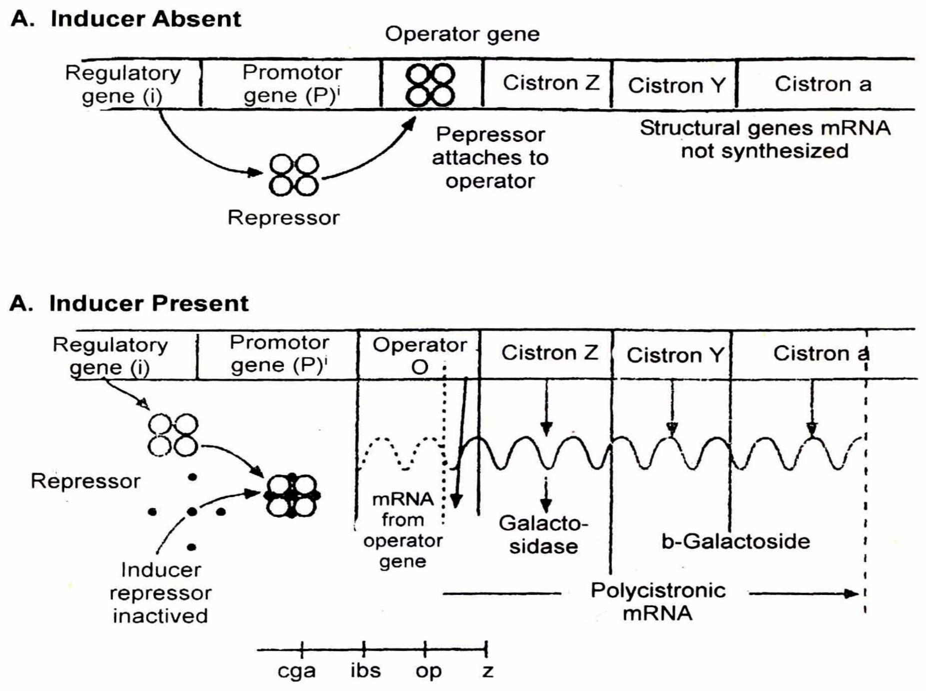

चित्र 7.14 : जीवाणु ई. कोलाई में लेक आपेरॉन की संरचना व कार्य का चित्रण

(3) **ऑपरेटर या प्रवर्तक जीन** (Operator Gene) : यह प्रथम संरचनात्मक जीन के पास अवस्थित जीन होती है । मॉडल में कार्य विभाजन के अनुसार ऑपरेटर जीन, अनुलेखन क्रिया का दमन (Repression) करता है एवं इस प्रकार संरचनात्मक जीनों पर ऋणात्मक नियंत्रण (Negative Control) करता है । E. Coli में ऑपरेटर जीन 21 क्षारों द्वारा निर्मित होता है ।

(4) **प्रवर्धक या प्रमोटर जीन** (Promotor Gene) : यह ऑपरेटर जीन के आगे पाया जाने वाला ओपेरॉन का विशिष्ट भाग होता है क्योंकि एन्जाइम RNA-पॉलीमेरेस इससे सम्बद्ध रहता है । इसका कार्य प्रोटीन निर्माण का नहीं होता, अपितु पॉलीमेरेस की उपस्थिति के कारण प्रवर्धक जीन, संरचनात्मक जीनों के अनुलेखन का प्रारम्भन (Initiation) करता है । प्रिब्नोऊ (Pribnow 1975) के अनुसार इस जीन में तीन स्थल पाये जाते हैं, जिनको (1) अभिज्ञान क्रम (Recognition site), (2) बन्धक कम (Binding Sequence), एवं (3) m-RNA प्रारम्भन स्थल (m-RNA Initiation site) कहते हैं । ई. कोलाई में लगभग 100 प्रकार की प्रवर्धक

जीनों के बारे में अध्ययन किया गया है । विभिन्न वर्धक जीनों में दो छोटी समान अनुक्रम प्राप्त हुई हैं (चित्र 7.14 व 7.15) ।

अहेतुक प्रभेद (Constitutive strains) :

प्राय : यह देखा गया है कि रेगुलेटर या नियामक जीन (i) में उत्परिवर्तन (Mutation) के कारण कुछ परिवर्तन आ जाने पर यह दमनकारी (Repressor) के साथ नहीं जुड़ पाती एवं इसके नहीं जुड़ सकने से यह संश्लेषण को नियंत्रित करने अथवा रोकने में भी असफल रहती है । परिणामस्वरूप एन्जाइम का संश्लेषण निरन्तर अबाध गति से जारी रहता है । अत : " ऐसे प्रभेद जो अनावश्यक रूप से भी एन्जाइम का निरन्तर संश्लेषण करते रहते हैं, उनको अहेतुक प्रभेद (Constitutive strains) कहते हैं " । ऐसा जीन (i) के दमनकारी के साथ जुड़ने में असमर्थ (Incapable) रहने के कारण होता है । इसीलिए ऐसे प्रभेद इस कार्य को स्वतंत्र रूप से निरन्तर कर सकते हैं । इसके अतिरिक्त प्रचालक या ऑपरेटर जीन में भी उत्परिवर्तन हो सकते हैं । ये प्रभेद निम्न दो प्रकार के होते हैं :

(1) नियामक या रेगुलेटर अहेतुक (Regular Constituve)

(2) प्रचालक या ऑपरेटर अहेतुक (Operator Constitutive)

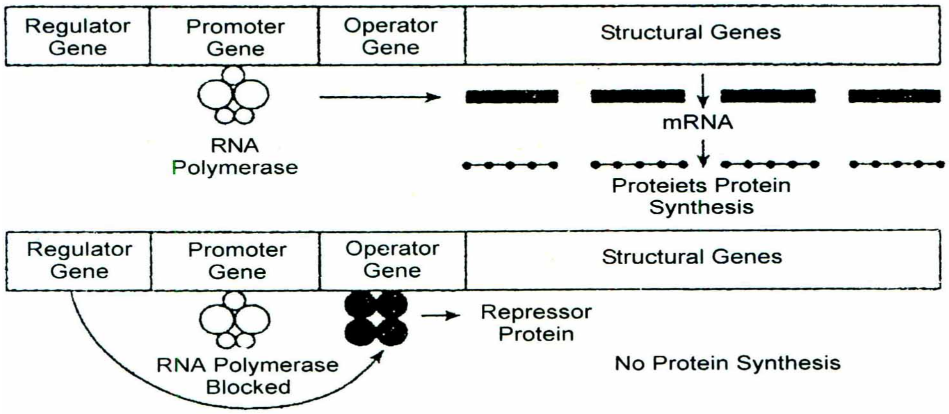

चित्र 7.15 : प्रवर्धक जीन (Promotor gene) : वर्धक जीन से RNA पॉलीमेरेज का बंधन (Binding),RNA पॉलीमेरेज संरचनात्मक जीन के साथ अभिगमन कर प्रोटीन संश्लेषण को उत्प्रेरित करती है, अंत: RNA पॉलीमेरेज की गतिशीलता अवरुद्ध हो जाती है,परिणामस्वरूप प्रोटीन संश्लेषण सम्पन्न नहीं होता है|

इसके अतिरिक्त लेक ओपेरॉन के नियमन की प्रक्रिया में निम्न प्रोटीन्स भी पाये जाते हैं.

(1) लेक दमनकारी प्रोटीन (Lac repressor protien)

(2) केटाबोलिक जीन अभिप्रेरित प्रोटीन (Catabolic gene activate proteins Cga protiens)

दमनकर : यह प्रचालक स्थल एवं Cga प्रोटीन स्थल को सम्बद्ध करता है । जब चक्रिक AMP अणु Cga प्रोटीन को क्रियाशील करते हैं, तभी ये प्रोटीन RNA पॉलीमेरेस को जोड़ती है । अत : यहाँ Cga प्रोटीन धनात्मक नियंत्रण (Positive Control) करती है ।

उपरोक्त तथ्यों द्वारा यह स्पष्ट होता है कि RNA पॉलीमेरेज, लेक ओपेरॉन के अनुलेखन में पहले प्रवर्धक स्थल (Promotor site) पर आता है तथा वहाँ से गतिशील होकर आगे की और बढ़ता है । लेकिन ऐसी अवस्था में जबकि प्रचालक (Operator) से दमनकर जुड़ता है, तो ऐसी अवस्था में साइक्लिक AMP अणु Cga प्रोटीन्स का सक्रियकरण (Activation) करके इनको क्रियाशील कर देता है । यह कार्य धनात्मक नियंत्रण कहलाता है ।

लेक-दमन प्रेरण पदार्थ (Inducer), दमनकारी तत्व को निष्क्रिय बना देता है इस प्रक्रिया को ऋणात्मक नियंत्रण (Negatine Control) कहते हैं ।

लेक ओपेरॉन के मुख्य जीनों की अभिव्यक्ति के नियमन द्वारा प्रोटीन संश्लेषण के अवरुद्ध करने का कार्य होता है । इस कार्य में 1-10, -25 या - 60 न्यूक्लिओटाइडो वाला ओपेरॉन प्रयुक्त होता है । इस ओपेरॉन में किसी प्रकार का बदलाव आने पर या विलोपन (Deletion) होने पर प्रोटीन संश्लेषण की प्रक्रिया भी प्रभावित होती है । साइट-10 पर स्थित प्रमुख अनुक्रम को प्रिबनाऊ द्वारा एक महत्वपूर्ण स्थल के रूप में माना गया, जबकि-60 क्षेत्र में Cga प्रोटीन का सक्रिय स्थल निरूपित किया (चित्र 7.16) ।

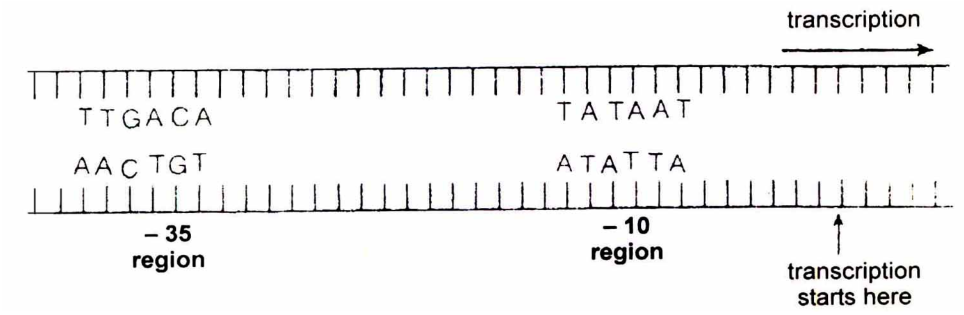

चित्र 7.16 : प्रोकेरियोट्स के DNA खण्ड में -10 तथा -35 स्थितियों पर प्रवर्धक स्थलों का प्रदर्शन

पुनर्भरण निरोध (Feed back Initiation)

वैज्ञानिकों के अनुसार यह एक रोचक तथ्य है कि हालांकि एक सजीव की सभी कोशिकाओं में जीन्स की संख्या पूरी तरह एक समान होती है फिर भी इन कोशिकाओं में संरचनात्मक एवं क्रियात्मक विभिन्नताएँ पाई जाती हैं । जैसे किसी पौधे में एक कोशिका केम्बियम के रूप में प्रदर्शित होती है तो दूसरी कोशिका वल्कुट का कार्य करती है । यही नहीं एक ही कोशिका के सभी जीन एक साथ सक्रिय नहीं होते हैं पादप शरीर की वृद्धि के साथ -साथ (पौधों के उदाहरण में) जीनों की सक्रियता में भी विविधता स्पष्ट होने लगती है । वृद्धि के समय आवश्यकता एव अवस्था के अनुसार कुछ जीन्स सक्रिय व कुछ निष्क्रिय रहते हैं यह "जीनों की सापेक्षिक सक्रियता " (Differential gene action) कहलाती है । ऐसी अवस्था में सक्रिय जीन विशिष्ट एन्जाइमों के संश्लेषण को निर्देशित करते हैं व परिणामस्वरूप कोशिका में इनके अनुरूप लक्षण प्रकट होते हैं । परन्तु उपरोक्त जीनों की सक्रियता से कोशिका में जैसे ही उत्पन्न मात्रा आवश्यकता से अधिक हो जाती है तो इसकी वजह से जीनों द्वारा उस एन्जाइम के संश्लेषण का दमन (Repressor) होता है, अर्थात् इसका संश्लेषण रुक जाता है । इस प्रकार यहाँ संश्लेषण के

दौरान अन्तिम उत्पाद (End Product, एन्जाइम) के उपयोग में न आने पर यह कोशिका में अधिक मात्रा में एकत्र हो जाता है एव इस अधिकता के कारण इसका संश्लेषण रुक जाता है । इसलिए " किसी उत्पाद की अधिक मात्रा कोशिका में एकत्र हो जाने के परिणामस्वरूप इसके संश्लेषण या निर्माण के रुक जाने की प्रक्रिया को पुनर्भरण निरोध (Feed back Inhibition) कहते हैं " । इस निरोध के परिणामस्वरूप अब तक कार्यशील रही जीन्स अक्रिय हो जाती है एवं इनके अक्रिय (Inactive) होने पर अन्य जीन्स सक्रिय (Active) हो जाते हैं, जिससे अन्य प्रकार के एन्ताइम बनने लगते हैं ।

अनुलेखन समापन विस्थल (Transcription Terminator Site)

डी.एन.ए. विशिष्ट अनुक्रम (Sequence) के द्वारा अनुलेखन का समापन (Termination) सम्भव होता है । अधिकांश प्रोकैरियोट सजीवों के m-RNA अनुक्रम 5' UUUUUUA 3' द्वारा समाप्त (Terminate) होते हैं । इस कार्य को सम्पादित करने के लिए कुछ प्रोकेरियोट्स में 'rho' प्रोटीन इसके अनुलेखन समापन संकेत (Transcription terminal signal) पर उपस्थित रहता है ।

ओपेरॉन मॉडल के प्रेरण तंत्र में स्वतंत्र दमनकारी पदार्थ, ऑपरेटर या प्रचालक जीन के साथ सम्बद्ध होकर DNA द्वारा हो रहे अनुलेखन को बन्द कर देता है । अत : ऑपरेटर जीन यहाँ DNA के एक विशेष अनुक्रम के रूप में पीरलक्षित होता है, जो दमनकारी पदार्थ ऑपरेटर प्रेरक संकुल से सम्बद्ध नहीं रह पाता एवं ओपेरॉन के संरचनात्मक जीन की कार्यशीलता अभिप्रेरित (Active and Induce) होकर प्रारम्भ हो जाती है । यहाँ उल्लेखनीय है कि यही संरचनात्मक जीन एन्जाइम संश्लेषण हेतु उत्तरदायी होते हैं ।

दमनकारी ओपेरॉन मॉडल प्रावस्था में स्वतंत्र दमनकारी पदार्थ ऑपरेटर जीन के साथ सम्बद्ध नहीं होता परन्तु सह - दमनकारी संकुल (Corepressor complex) प्रचालक या ऑपरेटर के साथ संलग्न होकर संरचनात्मक जीन (Structural Gene) के अनुलेखन को रोक देता है या " स्विच ऑफ " (Switch off) कर देता है । उपरोक्त दोनों सोपानों को निम्न प्रकार से निरूपित किया जा सकता है :

सक्रिय दमनकारी पदार्थ	=	निष्क्रिय दमनकारी + सहदमनकारी
(Active Repressor	=	Inactive Reressor + Corepressor)
निष्क्रिय दमनकारी पदार्थ	=	सक्रिय दमनकारी + प्रेरक
(Inactive Repressor	=	Active Repressor + Inducer)

इस सन्दर्भ में जैकब एवं मोनाड द्वारा प्रस्तुत ई. कोलाई का लेक - ओपेरॉन मॉडल, जीवाणुओं में उपलब्ध विभिन्न उत्परिवर्तकों (Mutants) तथा मीरोजाइगोट्स (mero-zygotes) की कार्यप्रणाली पर आधारित था । वस्तुत : मीरोजाइगोट एक अर्ध द्विगुणित (Half diloid) जीवाणु कोशिका होती है, जिनमें "Hfr strain" पाये जाते हैं एवं इनके अध्ययन से प्रभावी एव अप्रभावी उत्पीरवर्तनकारी (Dominant and Recessive Mutant) जीन की जानकारी प्राप्त करने में

सहायता मिलती है । इस प्रकार एक प्रारूपिक लेक - ओपेरॉन मॉडल में तीन विस्थल पाये जाते हैं:

(1) प्रवर्धक स्थल (Promoter Site)

(2) एक प्रचालक (Operator)

(3) तीन सरंचनात्मक जीन जो निम्न एन्जाइमों का संश्लेषण करते हैं :

(A) x-β-गैलेक्टोसाइडेस एन्जाइम

(B) y- पीरमिएस एन्जाइम

(C) a- यन्स एसिटाइलेस एन्जाइम

जीन नियामक प्रोटीन (Regulator Gene Protien)

लैक - ओपेरॉन में नियामक जीन, दमनकारी प्रोटीनों का निर्माण करते हैं । ये रेगूलेटरी जीन्स, 360 अमीनो अम्लों द्वारा निर्मित पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला का गठन करते हैं । इस प्रकार की चार पॉलीपेप्टाइड श्रृंखलाएँ कुण्डलित (Coiled) या अधिवलित (Folded) होकर लेक - ओपेरॉन प्रोटीन संगठन का जीन की संरचना, निर्माण करती है । अत: इस प्रकार के प्रोटीन को चतु:लक प्रोटीन या टेट्रामर प्रोटीन (Tetramer protien) कहते हैं । इस प्रोटीन पर 2 अलग - अलग बन्धकारी विस्थल (Binding sites) पाय जाते हैं, जिसका एक सिरा प्रेरक अणु को चिन्हित करता है जबकि दूसरा विस्थल लेक ओपेरॉन की उस अनुक्रम को चिन्हित करता है, जो कि DNA पर उपस्थित होती है ।

यूकेरियोट सजीवों में जीन नियमन (Regulation of Gene in Eukaryotes) :

यूकेरियोट्स में जीन नियमन की प्रक्रिया, प्रोकेरियोटिक कोशिकाओं की भाँति स्पष्ट नहीं होती । इनमें केवल 2 से 15 प्रतिशत जीन ही अपनी अभिव्यक्ति एक समय में कर पाते हैं, अत: इनकी कोशिका में भी जीन नियंत्रण के लिए एक सुव्यवस्थित प्रणाली पाई जाती है । यूकेरियोट्स में मुख्यतया: दो प्रकार के जीन पाये जाते हैं

I. वे जीन्स जिनमें r-RNA, t-RNA तथा 5S-RNA की अनेक प्रतिलिपियाँ पाई जाती हैं ।

(a) यहाँ r-RNA का अनुलेखन RNA पॉलीमेरेस I के द्वारा होता है ।

(b) RNA-पॉलीमेरेस III t-RNA एवं 5S-RNA के अनुलेखन हेतु उत्तरदायी होता है ।

II. ऐसे जीन जिनमें न्यूक्लिक अम्ल की केवल एक प्रति पाई जाती है ।

(a) RNA पॉलीमेरेस II इनके अनुलेखन के लिए उत्तरदायी होता है ।

कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार यूकेरियोटों में जीन अभिव्यक्ति का नियमन चार स्तरों पर देखा जा सकता

है, ये हैं :

(1) अनुलेखन (Transcription)

(2) अनुलिपिकरण (Translation)

(3) जीन प्रतिकृतिकरण (Gene replication)

(4) पश्च अनुलिपिकरण (Post Translation)

यूकेरियोटिक कोशिकाओं में उपस्थित DNA हिस्टोन युक्त अथवा हिस्टोन रहित (Non-Histone) दोनों प्रकार का होता है । इनकी कोशिकाओं में उपस्थित हिस्टोन प्रोटीन सामान्यतया निम्न प्रक्रियाओं द्वारा दमनकारी पदार्थ के रूप में कार्य करतै हैं :

(1) ये DNA से सम्बद्ध होकर गुणसूत्र के कुण्डलन में वृद्धि करते हैं । अत: परोक्ष रूप से अनुलेखन की क्रिया को अवरुद्ध करते हैं ।

(2) DNA के कुण्डलित प्लों के पृ थक्करण को रोकते हैं ।

(3) RNA पॉलीमेरेस की सक्रियता को अवरुद्ध करते हैं ।

यूकेरियोट्स में जीन नियमन के लिए मॉडल

(Models for gene Regulation in Eukaryotes) :

यूकेरियोट्स में जीन नियमन की प्रक्रिया को समझने के लिए वैसे तो अनेक मॉडल प्रस्तुत किए गये थे, जैसे :

(1) फ्रेनस्टर मॉडल (Frenstar Model)

(2) नॉन - हिस्टोन मॉडल (Non-Histone Model)

(3) ब्रिटन - डेविडसन मॉडल (Britten Davidson Model)

परन्तु इनमें से ब्रिटन - डेविडसन मॉडल सर्वाधिक लोकप्रिय एवं सर्वमान्य है । यह मॉडल सन् 1969 में दो वैज्ञानिकों आर.जे.ब्रिटन एवं ई.एच.डेविडसन (R.J.Britten and E.H. Davidson 1969) द्वारा प्रस्तुत किया गया था । इसे "जीन बैटरी मॉडल " भी कहते हैं । इस मॉडल का संशोधित प्रारूप दोनों वैज्ञानिकों के द्वारा ही सन् 1973 में प्रस्तुत किया गया था । इस मॉडल को यूकेरियोट्स में जीन नियमन के लिए सबसे उपयुक्त एवं सर्वोत्तम माना जाता है । इसके अनुसार जीन नियमन के लिए DNA के अनुक्रमों के चार वर्ग होते हैं (चित्र 7.17) :

(A) संवेदक जीन (Sensor Gene ‘S’)

(B) समाकलक जीन (Integrator Gene ‘I’)

(C) ग्राही जीन (Receptor Gene ‘R’)

(D) उत्पादक जीन (Producer Gene ‘P’)

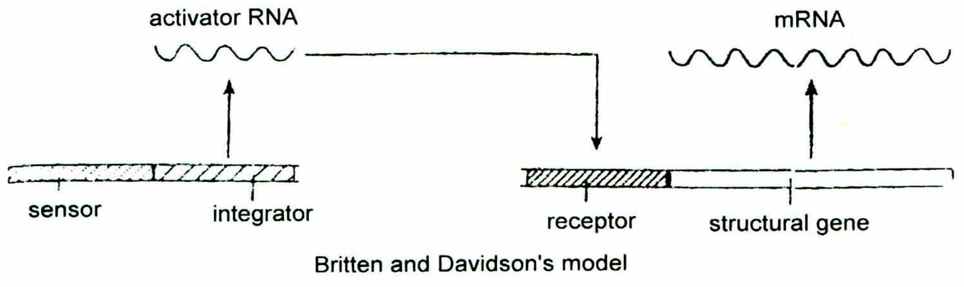

चित्र 7.17 : ब्रिटन डेविडसन मॉडल में बताये गये विभिन्न घटक

(A) **संवदेक जीन** (Sensor Gene) : कोशिका में उपस्थित संवेदक जीन, समाकलन जीन की अनुलेखन क्रिया को प्रेरित कर उसका नियमन करता है । जब संवेदक जीन को सक्रिय किया जाता है, तभी समाकलन जीन का अनुलेखन सक्रियकारी RNA (activator RNA) में सम्भव होता है । प्रोटीन एवं हॉर्मोन जैसे कारक संवेदक जीनों को पहचान कर इनकी

अभिव्यक्ति में परिवर्तन कर देते हैं । अतः समाकलन जीन के अनुलेखन हेतु संवेदक जीनों के साथ हॉर्मोन - प्रोटीन सम्मिश्र का गठबंधन होना आवश्यक है । संवेदक जीन को अधि - नियामक (Surper Regulator) भी कहते हैं ।

(B) **समाकलन जीन** (Integrator Gene 'I') : यह प्रोकैरियोट्स के नियामक जीन (Regulator Gene) के समकक्ष संरचना होती है तथा एक सक्रियक ग्राही जीन (Activated Receptors gene) के संश्लेषण के लिए जिम्मेदार है । यह एक्टीवेटर या सक्रियक RNA प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से, अर्थात् प्रोटीन संश्लेषण के द्वारा ग्राही जीन को सक्रिय करके इसकी क्रियाशीलता को नियंत्रित करते हैं ।

(C) **ग्राही जीन** (Receptor Gene 'R') : ये ई. कोलाई जीवाणु में पाये जाने वाली प्रचालक जीन (Operator gene) के समतुल्य होती है तथा प्रत्येक उत्पादक (Producer) जीन के पास ही अर्थात् पार्श्व में अवस्थित होती है । ग्राही जीन स्थल पर दमनकारी प्रोटीन संलग्न हो जाता है एव RNA पॉलीमेरस का मार्ग अवरुद्ध कर देता है । परिणामस्वरूप उत्पादक की अभिव्यक्ति नहीं हो पाने से प्रोटीन संश्लेषण भी नहीं होता (चित्र :7.18 व 7.19) ।

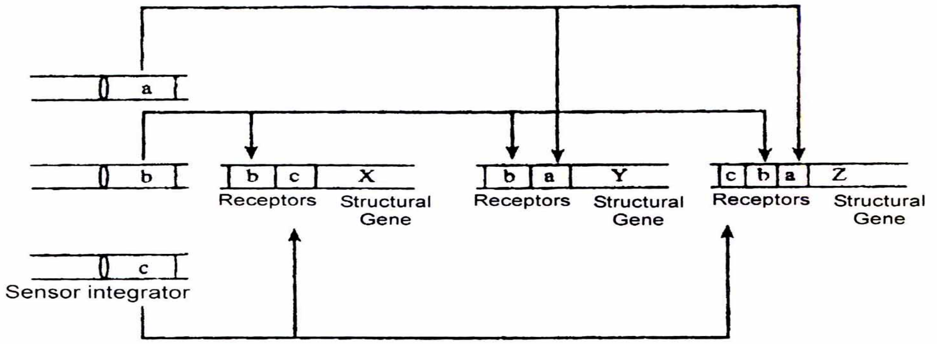

चित्र 7.18 : ब्रिटन डेविडसन मॉडल के अनुसार ग्राही स्थलो की संख्या में अपहवासन

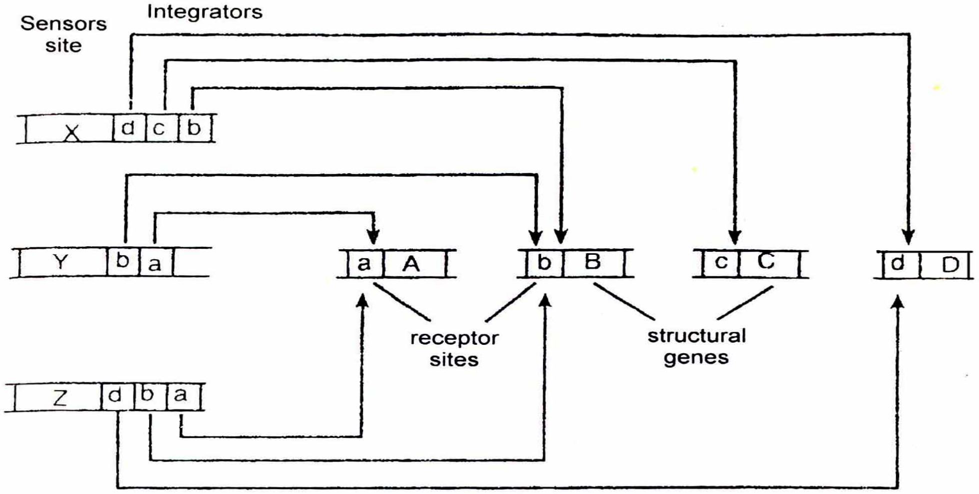

चित्र 7.19 : ब्रिटन डेविडसन मॉडल के अनुसार समाकलन जीनों की अधिकता

(D) **उत्पादक जीन** (Producer Gene 'P') : इस जीन को ऑपेरान मॉडल की संरचनात्मक जीन के समकक्ष माना जाता है । इसके द्वारा m- RNA का अनुलेखन होता है, जो कि अनुलिपिकरण के पश्चात् प्रोटीन संश्लेषण को साकार करता है ।

ब्रिटन-डेविडसन मॉडल के उपरोक्त विवरण के आधार पर निम्न प्रमुख तथ्य उभर कर सामने आते है।

1. उत्पादक एवं समाकलन जीनों में ऐसे अनुक्रम निरूपित होते हैं, जो RNA का संश्लेषण करते हैं ।
2. एक ही विस्थल (Site) पर समाकलन एवं ग्राही जीनों की संख्या एक से अधिक भी हो सकती है ।
3. संवेदक एवं ग्राही जीनों के अनुक्रम RNA संश्लेषण में तो योगदान नहीं करते, परन्तु ये अणु विशेष की पहचान में मुख्य रूप से सहायक होते हैं ।
4. एक से अधिक उपयुक्त जीनों की उपस्थिति की अवस्था में एक ही कोशिका के बहुसंख्यक जीनों का एक साथ नियमन किया जाना सम्भव है ।
5. क्योंकि समाकलन एवं ग्राही जीनों की सामान्यतया अनेक प्रतिलिपियाँ पाई जाती हैं, अत : आवश्यकतानुसार एक ही जीन का अलग - अलग दिशाओं में एक साथ नियमन कर सकता है।
6. ग्राही जीन की अनेक प्रतिलिपियाँ, सक्रियक (Activator) की पहचान करके अनेक आवश्यक एन्जाइमों का एक साथ संश्लेषण कर सकती हैं ।
7. उत्पादक जीन में अनेक ग्राही जीन उपस्थित होते हैं, जो सक्रियक के प्रति अनुक्रिया (Response) प्रदर्शित करते हैं ।
8. एक ही संवेदक जीन पर अनेक समाकलक जीन एक समूह में उपस्थित हो सकते हैं । एक संवेदक जीन द्वारा नियंत्रित समाकलक जीन समूहों को 'बेटरी ' कहा जाता है ।

यूकैरियोटिक व प्रोकैरियोटिक जीन नियमन का तुलनात्मक विवरण

(Comparative account of Eukaryotic and Prokaryotic gene regulation)

यूकैरियोटिक जीन नियमन में संवेदक (Sensor), समाकलक (Integrator), एवं ग्राही (Receptor) जीनों के द्वारा जीन नियमन की प्रक्रिया सम्पन्न होती है । यूकैरियोटिक जीन द्वारा संचालित अनुलेखन, केन्द्रक से होकर, कोशिका द्रव्य में इसका अनुलिपिकरण (अनुवाद Translation) होता है । m-RNA भी दीर्घजीवी होता है । अनुलेखन से पूर्व m-RNA तीन आर.एन.ए. पॉलीमेरेज एन्जाइम I, II, III की उपस्थिति आवश्यक है । यह सामान्यत : आर.एन.ए. पॉलीमेरेज II द्वारा संवर्धित होता है । यूकैरियोटिक जीवों में म- RNA सदैव एक प्रोटीन कोड करता है । आर.एन.ए. न्यूक्लियस में 5 ' सिरे पर टोपी 'cap' 3 ' सिरे पर पोली पुच्छ द्वारा ही रूपान्तीरत होते हैं । अत : यह इनके स्थिर करने में सहायक होते हैं जहाँ यूकैरियोटिक जीन अवस्थित होते हैं । अत : लगातार प्रोटीन कोडित अनुक्रम प्राप्त करने के लिए पूर्व म-RNA के इलेक्ट्रॉन भाग को हटाना आवश्यक होता है । इस कार्य को स्पिलिसिंग (Splicing) नामक प्रक्रिया द्वारा सम्पन्न किया जाता है । अत : यह भी कहा जा सकता हे कि

स्पिलिसिंग (Splicing). यूकैरियोटिक जीन नियमन की एक आवश्यक प्रक्रिया हैं, जो आर एन. ए. प्रोटीन सम्मिश्रण द्वारा सम्पन्न होती है जिसे Sn.RNPS कहते हैं । पूर्ण विकसित m-RNA's इसके परिणामस्वरूप केन्द्रक से राइबोसोम पर प्रोटीन के रूप में अनुवादन या अनुलिपिकरण (Translation) हेतु जाते हैं ।

उपरोक्त नियमकारी जीनों के अलावा यूकैरियोदस में कुछ इस प्रकार के उदाहरण हैं, जिनमें कुछ जीनों का अन्य जीनों की सक्रियता पर नियंत्रण पाया जाता है । उदाहरणार्थ : मेक्लिनटॉक (1941) द्वारा प्रदर्शित मक्का का सक्रियकारक - वियोजनकारक तंत्र (Activator- Dissociator System) एक जीन का दूसरे जीन की क्रिया का प्रभावित करने का एक स्पष्ट उदाहरण है । इस तंत्र के अनुसार मक्का(maize) में, अन्य जीनों के समान, वियोजनकारी जीन स्थायी नहीं होता है । यह गुणसूत्र पर रेखिक गति करता है । गुणसूत्र के जिस हिस्से पर यह जीन अधिक समय के लिए रूक जाता है, उसी स्थान पर गुणसूत्र भंग हो जाता है । किन्तु सक्रियकारी जीन की उपस्थिति में ही वियोजनकारी जीन सक्रिय होता है । अत : इस प्रकार सक्रियकारक जीन नियामक जीन की तरह तथा वियोजनकारी जीन प्रचालक जीन की तरह कार्य करता है । इसके अतिरिक्त यूकैरियोट्स में एक सक्रिय कोशिका के सम्पूर्ण जीनोम का अधिकांश भाग निष्क्रिय रहता है (Exon-Intron के रूप अथवा पुनरावर्ती क्रमों में व्यवस्थित रहता है ।) कुछ भाग ही आवश्यकतानुसार mRNA कोडित करता है, जिससे आवश्यक एन्जाइम तथा प्रोटीन का संश्लेषण हो सके । इस प्रकार जीनोम में स्वनियमन (self regulations) का गुण विद्यमान होता है।

उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है कि जीन अभिव्यक्ति का नियंत्रण अनुलेखन स्तर पर तो होता ही है, किन्तु इसके साथी ही जीन नियमन की क्रिया कोडित प्रोटीन के विभेदक स्थानान्तरण पर भी हो सकती है । उदाहरण के तौर पर जीवाणु भोजी T- 7 एक ऐसे प्रोटीन का निर्माण करता है जो अपने निर्माता m-RNA के अलावा सभी m-RNA के स्थानान्तरण को अवरुद्ध कर देता है । कुछ जीवाणुभोजी ऐसे t-RNA को कोड कर RNA ऐज उत्पन्न करते हैं जो पोषी t-RNA को लिग्नीकृत करके केवल स्वयं का स्थानान्तरण सुरक्षित कर लेते हैं ।

इसी प्रकार यूकेरियोट्स में भी प्रोटीन स्थानान्तरण सम्बंधी नियंत्रण के कई उदाहरण हैं, जैसे : कोशिका में कुछ निरोधी प्रोटीन्स का संश्लेषण हो जाता है । जब ये प्रोटीन्स राइबोसोम्स से जुड़ जाते हैं तो उन्हें निष्क्रिय कर देते हैं किन्तु जैसे ही ये निरोधी प्रोटीन्स राइबोसोम्स से विलग्न होते हैं, राइबोसोम्स फिर से कार्यरत हो जाते हैं । अत : इस प्रकार कोशिका में आवश्यकतानुसार प्रोटीन्स व एन्जाइम्स का स्थानान्तरण नियंत्रित किया जाता है ।

वहीं दूसरी ओर प्रोकैरियोटिक जीवों में जीन नियमन (Gene regulation), एक वर्धक (promotor) एवं एक प्रचालक (Operator) जीन के समन्वयन(Co-ordination) द्वारा सम्पन्न होता है । इसके साथ ही प्रोकैरियोटिक डी.एन.ए. पर मौजूद अनुक्रम, अनुलेखन (Transcription) के प्रारंभन को परिलक्षित करता है । इसके परिणामस्वरूप m-RNA एक या दो प्रोटीन को कोडित करने वाले अनुक्रम को परिलक्षित करता है । इसके साथ ही RNA पॉलीमेरेज । जीन प्रवर्धक (Promoter), से समापक (Terminator) पर अनुलेखन करता है ।

इसका परिणाम यह होता है कि m-RNA एक या दो प्रोटीन को कोडित (Code) करने वाले अनुक्रम को परिलक्षित करता है । अधिक प्रोटीन को कोडित (Code) करने की क्षमता को पॉलीस्ट्रिनिक (Polycistronic) कहते हैं । प्रोकैरियोटिक जीवों में डी.एन.ए. का वह भाग जो कोडित होता है उसे प्रचालक या ऑपेरान (Operen) कहते हैं Im-RNA का कोड करने वाला भाग राइबोसोम द्वारा प्रोटीन में अनुवादित या अनुलिपिकृ (Translate) हो जाता है । इस प्रकार बन्धित होकर अमीनो अप्ल अनुक्रम की प्रारभन (Initiation) कोडोन Aug द्वारा सूचना प्रेषित करता है, तत्पश्चात् F-RNA अमीनो अम्ल, एमीनो एसिड - E आर.एन.ए. के रूप में आनुवांशिक कोड द्वारा चिन्हित करके आगे लाता है ।

प्रोटीन संरचना (Structure of Proteins)

सम्पूर्ण सजीव जगत में प्राकृतिक रूप से केवल 2० अमीनों अम्ल पाये गये हैं, जो संघनित (Condense) होकर प्रोटीन का निर्माण करते हैं । ये प्राय : जटिल नाइट्रोजनी कार्बनिक यौगिक होते हैं, जिनमें 'C', 'H', 'O', एवं 'N' पाये जाते हैं । कतिपय प्रोटीन्स में 'S' व 'P' (सल्फर व फॉस्फोरस) भी सूक्ष्म मात्रा में मौजूद हो सकते हैं ।

प्रोटीन प्राय : प्लाज्मा झिल्ली (Plasma-membrane), जीवद्रव्य एवं अन्य कोशिका उपांगों में पाये जाते हैं । इनको कोशिका के निर्माण खण्ड (Building Blocks) भी कहा जाता है । प्रोटीन्स को आधारभूत रूप से पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला में निरूपित किया जा सकता है, जो अमीनो अम्लों की सरल एकलक (Monomer) उपइकाइयों के गठन से बनती हैं। प्रोटीन निर्माण हेतु प्रयुक्त अमीनों अम्ल के दो विशेष समूह होते हैं:

(I) कार्बोक्सिल या अम्लीय समूह (-COOH)

(II) अमीनो या क्षारीय समूह ($-NH_2$)

पॉलीपेप्टाइड या प्रोटीन्स में अमीनो अम्ल पेप्टाइड बन्धों द्वारा विशिष्ट क्रम में जुड़े रहते हैं । प्रोटीन संरचना को चार स्तरों पर निरूपित किया गया है :

(1) प्राथमिक संरचना (Primary Structure)

(2) द्वितीयक संरचना (Secondary Structure)

(3) तृतीयक संरचना (Tertiary Structure)

(4) चतुर्थक संरचना (Quaternary Structure)

(1) प्रोटीन की प्राथमिक संरचना (Primary Structure of Protein)

इसके अन्तर्गत एक सीधी पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला में अमीनो अम्लों का रेखिक क्रम पाया जाता है । अनेक अमीनो अम्ल इस रेखिक क्रम में विशिष्ट रूप से जुड़े रहते हैं (चित्र 7.20 A) । प्रत्येक पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला एक मुक्त अमीनो समूह (-NH2) से प्रारम्भ होती है । इसे 'N' सिरा कहते हैं । प्राथमिक संरचना महत्वपूर्ण किन्तु कार्यशील नहीं होती । इस श्रृंखला के अन्त में अम्लीय या कार्बोक्सिल समूह (-COOH) पाया जाता है, इसे. 'C' कहते हैं । प्रत्येक प्रोटीन की प्राथमिक संरचना में अमीनो अम्लों का क्रम एवं इनकी संख्या सुनिश्चित होती हैं, जैसे मनुष्य की माँसपेशी प्रोटीन मायोग्लोबिन में 153 अमीनो अम्ल होते हैं । पहले अमीनो अम्ल की प्राथमिक संरचना को

तीन अक्षरों द्वारा निरूपित किया जाता था, परन्तु अब इसे आसान करने के लिए 1 अक्षर के लघुनाम दिये जाते हैं ।

1.	Alanine	-Ala	-A
2.	Cysteine	-Cys	-C
3.	Phenylalanine	-Phe	-F
4.	Histidine	-His	-H
5.	Aspartic acid	-Asp	-D
6.	Lysine	-Lys	-K
7.	Glutamic acid	-Glu	-E
8.	Glycine	Gly	-G
9.	Isoleucine	-Ile	-I
10.	Leucine	-Leu	-L
11.	Methionine	-Met	-M
12.	Asparagine	-Asn	-N
13.	Proline	-Pro	-P
14.	Glutamine	-Gin	-Q
15.	Arginine	-Arg	-R
16.	Serine	-Ser	-S
17.	Valine	-Val	-V
18.	Threonione	-Thr	-T
19.	Tryptophan	-Trp	-W
20.	Tyrosine	-Tyr	-Y

प्रोटीन की द्वितीयक संरचना (Secondary Structure of Protein) :

प्रोटीन की प्राथमिक संरचना को कार्यशील करने हेतु द्वितीय संरचना का निर्माण होता है । यहाँ लम्बी प्रोटीन श्रृंखलाएँ कभी भी सीधी नहीं होती, अपितु विभिन्न स्थानों पर कुण्डलित या वलयित होकर द्वितीयक संरचना का निर्माण करती है । यह संरचना एक स्थानिक संगठन निरूपित करती है । इसमें एक से अधिक पॉलीपेप्टाइड श्रृंखलाओं का वलयित होना या कुण्डलित होने इत्यादि को अन्तराआण्विक हाइड्रोजन बंधों (Intramolecular Hydrogen Bonds) या लवण बंधों द्वारा स्थायित्व प्रदान किया जाता है । द्वितीयक संरचना में पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला का वलयित(Folded) होना इसके अमीनो अम्लों के विन्यास क्रम पर निर्भर करता है । इसे 2 -D संरचना भी कहते हैं (चित्र 7.20) ।

(3) तृतीयक संरचना (Tertiary Structure of Protein)

इसे प्रोटीन की त्रिआयामी संरचना या 3 -D संरचना भी कहते हैं । यहाँ प्रोटीन की द्वितीयक संरचना मुड़कर अत्यधिक वलयित या अन्तर्ग्रंथित (Inter-woven) हो जाती है एवं गोल या

दीर्घवृत्ताकार आकृति ग्रहण कर लेती है । इस प्रकार प्रोटीन की प्राथमिक रेखीय संरचनाएँ a व β हेलिक्स क्रम में कुण्डलित होकर पहले द्वितीयक संरचना का निर्माण करती है एवं इसके बाद इसकी तृतीयक (3 -D) संरचना को बनाने के लिए कुण्डलित द्वितीयक संरचना के पार्श्वीय सिरों से अनेक अमीनो अम्ल, श्रृंखलाएँ बाहर निकलती है, जो इसे सहसंयोजी इलेक्ट्रोस्टेटिक डाइ सल्फाइड, हाइड्रोजन बंध के द्वारा स्थायित्व प्रदान कर गोलाकार या दीर्घवृत्ताकार आकृति में निरूपित करती हैं । त्रिआयामील (Three dimensional,3-D) संरचना को प्रोटीन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण संरचना कहा जा सकता है क्योंकि इसमें एन्जाइम्स की कार्यशीलता हेतु विशिष्ट स्थल (Special sites) पाये जाते हैं जब प्रोटीन की तृतीयक या त्रिआयामी (3 - D) संरचना बनती है तो अमीनो अम्लों में मौजूद सभी पार्श्व श्रृंखलाएँ एक -दूसरे के नजदीक आकर व्यवस्थित हो जाती हैं, परिणामस्वरूप एन्जाइमों की क्रियाशीलताप हेतु विशेष स्थल सक्रिय हो जाते हैं । प्रोटीन की त्रिआयामी (3 - D) संरचना का सजीव गत में एक महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इसमें उपस्थित पार्श्वीय अमीनो अम्लों का सतही व्यवस्था क्रम परिवर्तित हो जाने से इन पर कार्यशील एन्जाइमों एवं अन्य उत्प्रेरक पदार्थों की सक्रियता भी समाप्त हो जाती है। अमीनो अम्लों का सतही विन्यास (Surface sequence) विभिन्न कारकों, जैसे - pH एवं तापक्रम में परिवर्तन से बदल सकता है (चित्र 7.20) ।

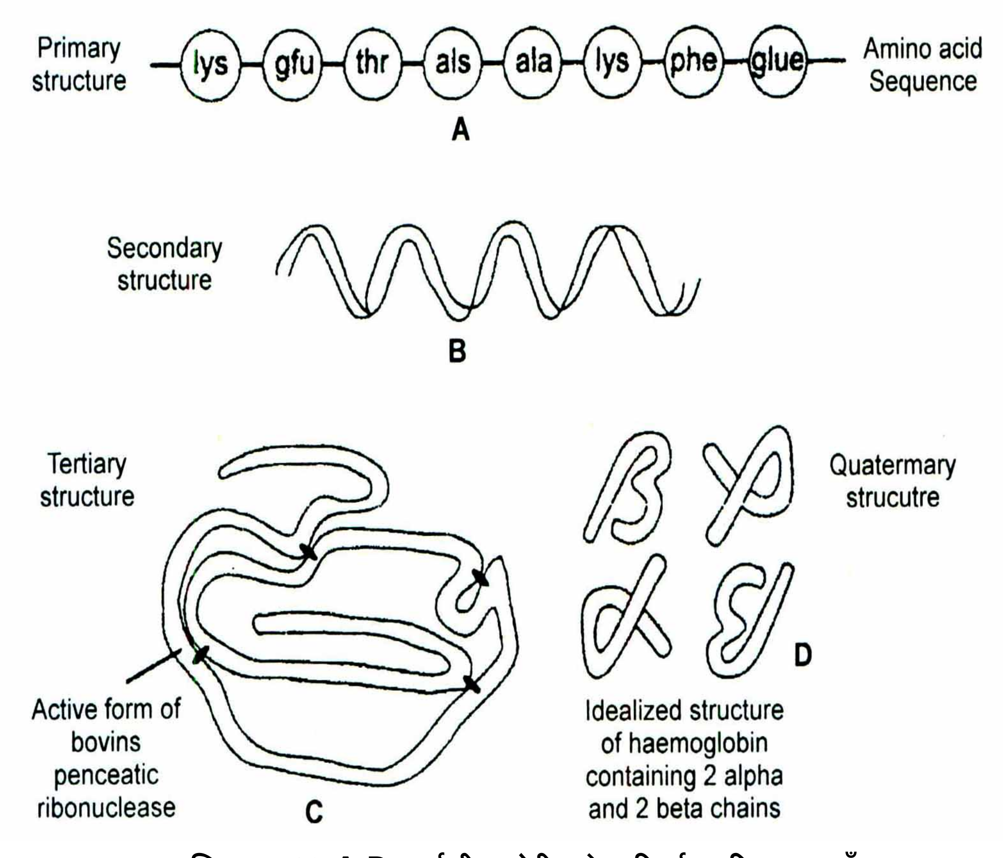

चित्र : 7.20 A-D कार्यशील प्रोटीन के परिवर्धन की अवस्थाएँ

बोध प्रश्न

बहुविकल्पात्मक प्रश्न(Multiple choice Type of Questions)

1. सर्वप्रथम ' जीन ' नामक शब्द प्रस्तुत किया था :
   - (a) जोहनसन ने
   - (b) बेटसन ने
   - (c) मॉरगन ने
   - (d) मेण्डल ने
2. जीन की क्रियात्मक इकाई को निरूपित करने वाला खण्ड कहलाता है.
   - (a) रिकॉन
   - (b) म्यूटॉन
   - (c) सिस्ट्रॉन
   - (d) कॉम्पलान
3. पुनर्योजन की सूक्ष्मतम इकाई है :
   - (a) म्यूटॉन
   - (b) सिस्ट्रॉन
   - (c) कॉम्पलान
   - (d) रिकॉन
4. उत्परिवर्तन की सूक्ष्मतम इकाई है :
   - (a) सिस्ट्रॉन
   - (b) म्यूटॉन
   - (c) रिकॉन
   - (d) ऑपेरान
5. 'कारक' परिकल्पना किसने प्रस्तुत की?
   - (a) बेटसन
   - (b) मेण्डल
   - (c) मॉगर्न
   - (d) नीरेन्वर्ग
6. किस वैज्ञानिक ने संरचना व क्रियाशीलता के आधार पर जीन को अलग - अलग परिभाषित किया :
   - (a) बैंजर
   - (b) मॉर्गन
   - (c) मुलर
   - (d) खुराना
7. सेन्ट्रल डोग्मा किसने प्रतिपादित किया?

(a) वाटसन

(b) मेण्डल

(c) क्रिक

(d) खुराना

8. सजीवों में प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाले अमीनो अम्लों की संख्या है :

(a) 10

(b) 20

(c) 22

(d) 25

9. एक कोडोन में कितने न्यूक्लिओटाइड्स होते हैं?

(a) 1

(b) 3

(c) 4

(d) 2

10. आर.एन.ए. संश्लेषण हेतु प्रयुक्त होने वाला एन्जाइम हैं :

(a) लाइगेज

(b) राइबोन्यकिलऐेज

(c) RNA पॉलीमरेज

(d) RNA सिन्थटेज

रिक्त स्थानों की पूर्ति व अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न :

1. प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया...................... कोशिकांग में होती है ।
2. यूकैरियोटिक कोशिकाओं में.................. S राइबोसोम्स होते हैं ।
3. .... ने आनुवंशिक सूचनाओं के प्रतिलोमी प्रवाह को बताया ।
4. अनुलेखन की क्रिया में डी.एन.ए. से........................ बनता है ।
5. पॉलीसोम्स .... निर्माण के दौरान बनते हैं ।
6. जीन को परिभाषित कीजिए ।

   ....

   ....
7. समारंभ व समापन कोडॉन का नाम लिखो ।

   ....

   ....
8. पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला में सबसे पहले कोडित होने वाला अमीनो अम्ल का नाम लिखो ।

………………………………………………………………………………………………………
………………………………………………………………………………………

7.5. सारांश (Summary)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से ज्ञात होता है कि '**जीन** ' की उपस्थिति सजीवों का लाक्षणिक गुण है, जिसके बिना सजीवों का अस्तित्व नहीं होता है । **जीन** सजीव कोशिकाओं में होने वाली प्रत्येक क्रिया को निर्देशित व नियंत्रित करने वाली इकाई है । सजीवों में निहित आनुवंशिक सूचनाएँ एवम् विविधताओं हेतु स्वयं जीन ही उत्तरदायी होते हैं । रासायनिक संगठन की दृष्टि से जीन **डी - ऑक्सी राइबोन्यूक्लिक** व **राइबोन्यूक्लिक अम्ल** (वाइरस में) के अणु हैं, जो विभिन्न प्रकार के प्रोटीन्स के साथ पारस्परिक क्रिया करके सजीवों के विभिन्न लक्षणों, क्रियाओं व लक्षणों की वंशागति को नियंत्रित करते हैं । कोशिका विभाजन द्वारा जीन, भौतिक संरचनाएँ गुणसूत्रों के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी गमन करते हैं तथा आनुवंशिक सूचनाओं का सम्प्रेषण व निर्धारण करते हैं ।

पूर्व में सन (1900) में जीन को **मेण्डेलियन कारक** के रूप में एक लक्षण अथवा कई लक्षणों को परिलक्षित करने वाली इकाई के रूप में परिभाषित किया गया तथा इसे लक्षणों की वंशागति हेतु उत्तरदायी माना गया । किन्तु वर्तमान समय में जीन को संरचना, स्वरूप व क्रियाशीलता के आधार पर विभिन्न पदों के रूप में परिभाषित किया गया है, जैसे : सिस्ट्रॉन, रिकॉन, म्यूटॉन, रेप्लिकॉन, काम्पलॉन, ऑपेरान आदि । जीन स्वयं को प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया व उसके नियमन द्वारा अभिव्यक्त करते हैं । प्रोकैरियोट्स तथा यूकैरियोट्स दोनों ही प्रकार के जीवों के कोशिकीय संगठनों में विभिन्न जैविक क्रियाओं हेतु DNA में निर्देश 3 क्षार अक्षरों के क्रमों (त्रिक कॉडोनों) में निहित होते हैं । उन्हें संदेशवाहक RNA (mRNA) के तीन -तीन क्षार अक्षरों के रूप में अनुलेखित (Transcribe) कर लिया जाता है, एवम् उनका अनुवाद (Translation) पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला के संश्लेषण के रूप में कर लिया जाता है, जिसमें अमीनो अम्लों का प्रकार क्रम व संख्या निश्चित होती है । यह क्रिया प्रोकैरियोट्स में 70S तथा यूकैरियोट्स में 80S प्रकार के राइबोसोम्स में सम्पन्न होती है । इस क्रिया हेतं ATP, GTP, Mg^{++}, विभिन्न प्रकार के RNA तथा जटिल एन्जाइम्स RNA पॉलीमेरेज व ट्राँसक्रिप्शन कारकों की आवश्यकता होती है।

आनुवंशिक सूचनाओं के सम्प्रेषण हेतु DNA, RNA तथा प्रोटीन अणुओं के पारस्परिक सम्बन्धों की व्याख्या सेन्ट्रल डोग्मा अवधारणा द्वारा की जा सकती है । आनुवंशिक सूचना का सम्प्रेषण **एकदिशीय,**

अनुलेखन (ट्रांसक्रिप्टेज): DNA ⟶ mRNA

अनुवाद प्रोटीन: mRNA ⟶ प्रोटीन

DNA —अनुलेखन / ट्रांसक्रिप्टेज⟶ mRNA —अनुवाद प्रोटीन⟶ प्रोटीन

वृत्ताकार अथवा प्रतिलोमी

$$DNA \underset{\text{रिवर्स ट्रांसक्रिप्टेज}}{\overset{\text{ट्रांसक्रिप्टेज}}{\rightleftharpoons}} mRNA \xrightarrow{\text{अनुवाद}} \text{प्रोटीन}$$

हो सकता है । प्रतिलोमी सम्प्रेषण टेमिनिज्म (Teminism) कहलाता है । टेमिनिज्म में एन्जाइम रिवर्स ट्राँसकिप्टेज द्वारा एक रज्जुकी RNA टेम्पलेट पर DNA का संश्लेषण होता है । बाल्टीमोर नामक वैज्ञानिक ने इस एन्जाइम की उपस्थिति को वाइरस में प्रमाणित किया ।

प्रोटीन संश्लेषण की क्रियाविधि जटिल होती है । प्रोकैरियोट्स व यूकैरियोट्स में इस क्रियाविधि के आधारभूत चरण तो लगभग समान ही होते हैं, किन्तु यूकैरियोट्स में प्रोटीन संश्लेषण की क्रियाविधि के कुछ चरणों में प्रोकैरियोट्स से विभिन्नताएँ होती हैं जैसे (1) मिथियोनीन का फोर्मिलेशन नहीं होता है, (2) यूकैरियोट्स में छोटी राइबोसोम उपइकाई मेट $tRNA_f^{met}$ से बिना mRNA की सहायता से जुड़ जाती है, (3) 8OS राइबोसोम में IF_2 प्रारम्भन कारक को शा ५ की आवश्यकता नहीं होती है ।

जीनों द्वारा किसी उपापचयी परिपथ की अभिक्रियाओं के नियंत्रण को जीन नियमन (Gene regulation) कहते हैं । जीन नियमन भी जीन अभिव्यक्ति का एक उदाहरण ही है । प्रोकैरियोट्स व यूकैरियोट्स में जीन अभिव्यक्ति हेतु अलग - अलग क्रियाविधि अपनायी जाती है । प्रोकैरियोट्स में जीवाणु ई. कोलाई में जीन नियमन का अध्ययन सर्वप्रथम किया गया है । इसमें जीन नियमन हेतु अभिप्रेरित व दमित तंत्र पाये जाते हैं, जिनके द्वारा एन्जाइम उत्पत्ति नियंत्रित की जाती है । इसके अतिरिक्त जीन को निष्क्रिय करके प्रोटीन संश्लेषणों की अनुलेखन व अनुलिपिकरण क्रियाओं को अवरुद्ध किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त जीवाणु ई. कोलाई में जीन नियमन को ऑपेरान मॉडल द्वारा समझा जा सकता है । किन्तु यूकैरियोट्स में जीन नियमन की प्रक्रिया अत्यन्त जटिल होती है । यह प्रोकैरियोट्स की भाँति स्पष्ट नहीं होती है, फिर भी इस प्रक्रिया को समझने के लिए कई प्रारूप दिये गये हैं । इनमें से ब्रिटन -डेविडसन द्वारा प्रतिपादित प्रारूप सर्वाधिक मान्य है । इसके अनुसार यूकैरियोट्स में जीन नियमन हेतु DNA अनुक्रमों के चार वर्ग होते हैं, जिन्हें संवेदक, समाकलक, ग्राही तथा उत्पादक जीन कहते हैं । इनमें से कुछ जीनों का अन्य जीनों की सक्रियता पर नियंत्रण पाया जाता है ।

इसी प्रकार मेक्लिनटॉक (1941) द्वारा प्रतिपादित मक्का का सक्रिय कारक (activator) वियोजनकारक (dissociator) तंत्र एक जीन का दूसरे जीन की क्रिया पर प्रभाव का एक स्पष्ट उदाहरण है । जीन अभिव्यक्ति का नियंत्रण न केवल अनुलेखन स्तर पर ही होता है, बल्कि जीन नियमन की क्रिया अनुलिपिकरण स्तर पर भी हो सकती है ।

7.6 शब्दावली (Glossary)

1. **जीन** (Gene) : किसी सजीव कोशिका के जीवन -चक्र की प्रत्येक क्रिया को निर्देशित व नियंत्रित करने वाली आनुवंशिक सूचनात्मक इकाई जीन कहलाती है ।

2. **युग्मविकल्पी** (Alleomorphs) : किसी जीन के वैकल्पिक प्रारूप जो समजात गुणसूत्र जोड़े पर एक ही विस्थल (locus) पर स्थित होते हैं ।
3. **सिस्ट्रॉन** (Cistron) : DNA का सबसे बड़ा खण्ड जो क्रियात्मक इकाई के रूप में कार्य करता है ।
4. **रिकॉन** (Recon) : DNA का वह खण्ड जो पुनर्योजन की सूक्ष्मतम इकाई है ।
5. **म्यूटॉन** (Muton) : DNA का वह न्यूनतम खण्ड जिसमें उत्परिवर्तन की क्षमता हो ।
6. **रेप्लिकॉन** (Replicon) : DNA प्रतिकृतिकरण की सूक्ष्मतम इकाई ।
7. **ऑपेरान** (Operon) : एक विशिष्ट क्रियात्मक इकाई जो कि DNA द्वारा सम्प्रेषित आनुवंशिक सूचनाओं के प्रभाव को बदलने की क्षमता रखती हो ।
8. **अनुलेखन** (Transcription) : प्रोटीन संश्लेषण क्रिया का प्रथम सोपान जिसके द्वारा DNA के त्रिक क्षार क्रयों में निहित सूचना को mRNA के तीन क्षार अक्षरीय कोडोनो द्वारा ग्रहण कर किया जाता है (एन्जाइम ट्राँसक्रिप्टेज की उपस्थिति)
9. **अनुलिपिकरण** (Transcription) : mRNA कोडोन्स में निहित सूचना को प्रोटीन लिपि में रूपान्तरित करना ।
10. **केन्द्रीय डोग्मा** (Central dogma) : DNA,RNA व प्रोटीन अणुओं के मध्य आनुवंशिक सूचनाओं के सम्प्रेषण की व्याख्या ।
11. **टेमिनिज्म**(Teminism) : एन्जाइम रिवर्स ट्राँसक्रिप्टेज की उपस्थिति में आनुवंशिक सूचना का RNA से DNA में सम्प्रेषण टेमिनिज्म अथवा प्रतिलोमी अनुलेखन कहलाता है ।
12. **हॉलोएन्जाइम** (Holoenzyme) : एक से अधिक विभिन्न प्रकार की पॉलीपेप्टाइड श्रृंखलाओं द्वारा निर्मित एन्जाइम।
13. **RNA पॉलीमरेज** (RNA polymerase) : अनुलेखन की क्रिया हेतु आवश्यक एन्जाइम ।
14. **पेप्टिडाइल ट्राँसफरेज** (Peptidyl transferase) : वह एन्जाइम जो -COOH व $-NH_2$ समूहों के मध्य पेप्टाइड
    बंधो को उत्प्रेरित करता हो ।
15. **EF-व** EFTs Unstable व Stable दीर्घीकरण ।

7.8 संदर्भ ग्रन्ध (Further Reading)

1. पी. के. गुप्ता ‘Genetics’ (2007) रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ
2. पी. के .गुप्ता (1992) कोशिका विज्ञान, आनुवंशिकी विकास पादप, प्रजनन एवम् पारिस्थितिकी रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ
3. त्यागी, क्षेत्रपाल, त्यागी (1999) कोशिका आनुवंशिकी, पादप : प्रजनन एवम् विकास के मूल सिद्धान्त
4. पी. सी. त्रिवेदी, इन्दुरानी शर्मा, निरंजन शर्मा, व कोशिका विज्ञान, आनुवंशिकी एवम् पादप प्रजनन (2008) रमेश बुक डिपो, जयपुर ।

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बहु विकल्पात्मक प्रश्न :

1. (a)	2. (c)	3. (d)	4. (b)	5. (a)
6. (a)	7. (c)	8. (b)	9. (b)	10. (c)

रिक्त स्थान व अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न :

1. राइबोसोम
2. 80
3. टेमिन एवम् बाल्टीमोर
4. RNA
5. प्रोटीन
6. जीन - किसी सजीव कोशिका के जीवन - चक्र की प्रत्येक क्रिया को निर्देशित व नियंत्रित करने वाली आनुवंशिक सूचनात्मक इकाई जीन कहलाती है ।
7. AUG व UAA समापन कोडोन है ।
8. मिथियोनीन

7.9 अध्यासार्थ प्रश्न

लघुउत्तरात्मक प्रश्न (Short Answer Questions) :

1. ऑपेरान क्या होता है?
2. राइबोन्यूक्लिक अम्लों के प्रकार व उनके कार्य लिखिए ।
3. पॉलीराइबोसोम्स क्या होते हैं ।
4. टिप्पणी लिखिए ।

(a) RNA पॉलीमरेज

(b) सेन्ट्रल डोग्मा

(c) टेमिनिज्म

वृहत् उत्तर प्रश्न (Long Answer Questions)

1. जीन की आधुनिक अवधारणा का वर्णन कीजिए ।

2. ऑपेरान मॉडल का विस्तृत वर्णन कीजिए ।

3. प्रोकैरियोट्स में प्रोटीन संश्लेषण की क्रियाविधि का वर्णन कीजिए ।

4. प्रोकैरियोट्स व यूकैरियोट्स में जीन नियमन समझाइए ।

5. प्रोटीन संरचना का वर्णन कीजिए ।

इकाई 8 : आनुवाशिक कूट : ट्रिप्लेट कोड, कूट के लक्षण एवम् महत्त्व; श्रृंखला प्रारम्भन एवम् श्रृंखला समापन कोडोन, वॉबलपरिकल्पना, उत्परिवर्तन एवम् आनुवांशिक कूट (Genetic Code : Triplet Code, Properties And Important of Genetic Code; Chain Initiation and Termination Codons, Wobble Hypothesis, Mutations and Genetic Code)

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 आनुवांशिक कूट (Genetic code)

  8.2.1 परिचय (Introduction)

  8.2.2 आनुवांशिक कूट का त्रिक स्वभाव एवम् इसकी खोज (Triplet nature of genetic code and its discovery)

8.3 कूट के लक्षण एवम् महत्व (Properties and Importance of genetic code)

8.4 श्रृंखला प्रारम्भन एवम् श्रृंखला समापन कोडोन (Chain Initiation and Termination Codons)

8.5 वॉबल परिकल्पना (Wobble hypothesis)

8.6 उत्परिवर्तन एवम् आनुवांशिक कूट (Mutations and Genetic Code)

8.7 सारांश (Summary)

8.8 शब्दावली (Glossary)

8.9 संदर्भ ग्रन्थ (References)

8.10 बोध प्रश्न व उनके उत्तर (Question and Answers)

8.11 अध्यासार्थ प्रश्न

8.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का मुख्य उद्देश्य पाठकों को सजीव कोशिका में प्रोटीन निर्माण हेतु उपलब्ध होने वाली आनुवांशिक सूचना जो कि DNA की रासायनिक भाषा, अर्थात् चार प्रकार की न्यूक्लिओटाइड्स के विशिष्ट क्षारक क्रमों व उनकी संख्या में निहित होती है, जिसे आनुवांशिक कूट कहते हैं, उसके बारे में जानकारी उपलब्ध करवाना है । इस इकाई के अध्ययन से पाठक आनुवांशिक कूट की परिभाषा, प्रकृति, लक्षण एवम् उसके महत्व के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे । इसके अतिरिक्त प्रोटीन श्रृंखला संश्लेषण हेतु प्रारम्भन व समापन कोडोन्स के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे । साथ ही आनुवांशिक कूट में होने वाले उत्परिवर्तन व उनका प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसके बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।

8.1 प्रस्तावना

वर्तमान समय में यह पूर्णरूपेण ज्ञात है कि, सजीव कोशिकाओं के अभिन्न घटक प्रोटीन, विभिन्न प्रकार (20 अमीनो अम्ल) के अमीनो अम्लों की निश्चित संख्या व उनके विशिष्ट क्रम में व्यवस्थित होने से बनने वाली पॉलीपेप्टाइड श्रृंखलाओं द्वारा निर्मित होते हैं । इन पॉलीपेप्टाइड श्रृंखलाओं के संश्लेषण हेतु अमीनो अम्लों का प्रकार, संख्या व उनके निश्चित क्रम को निर्धारित करने के लिए आनुवांशिक सूचना DNA अणुओं को बनाने वाली न्यूक्लिओटाइड्स के क्षारक क्रम व उनकी निश्चित संख्या से बनने वाली इकाईयों में निहित होती है जिन्हें आनुवांशिक कूट कहते हैं । DNA से यह सूचना ट्राँसक्रिप्शन की क्रिया द्वारा mRNA में उपस्थित विशिष्ट अनुक्रमों द्वारा ग्रहण कर ली जाती है जिन्हें कोडोन्स कहते हैं । प्रत्येक कोडोन (इकाई) 3 क्षारक क्रमों से मिलकर बना होता है, अत : कोडोन की त्रिक प्रकृति होती है । अभी तक कोशिका में प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाले अमीनो अम्लों की संख्या 20 है । m-RNA द्वारा ग्रहण कर लिया गया अनुक्रम कोडोन के रूप में पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला में उपस्थित अमीनो अम्लों के क्रम को निर्धारित करता है, अर्थात टाँसलेशन की क्रिया द्वारा किसी विशिष्ट प्रोटीन का संश्लेषण होता है ।

DNA के चार क्षारक क्रमों से सम्भावित 64 कोडोन्स प्राप्त होते हैं, जो कि 20 प्रकार के अमीनो अम्लों को कोड करने के लिए पर्याप्त है । एक अमीनो अम्ल एक से अधिक कोडोन्स द्वारा कोडित हो सकता है । प्रत्येक कोडोन की त्रिक प्रकृति (Triplet nature) को कृत्रिम प्रोटीन संश्लेषण विधि द्वारा प्रमाणित किया जा चुका है । आनुवांशिक कूट के विभिन्न लक्षणों, जैसे त्रिक कूट, अपहासित, अनअतिव्यापित, असंदिग्ध व सार्वत्रिक प्रकृति का पूर्णरूपेण अध्ययन किया जा चुका है । किसी भी पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला के संश्लेषण को प्रारम्भ करने के लिए प्रथम अमीनो अम्ल मिथियोनीन होता है । 64 कोडोन्स में से m-RNA के 5 ' सिरे पर उपस्थित AUG अथवा कभी -कभी GUG कोडोन प्रारम्भिक कोडोन की तरह कार्य करते हैं तथा मिथियोनीन को कोडित करते हैं । इसी प्रकार m-RNA के 3 ' सिरे पर UGA,UAA अथवा UAG कोडोन्स में से कोई भी कोडोन समापन कोडोन की तरह कार्य करता है । त्रिककूट के तीन क्षारकों में से प्रथम दो क्षारकों का अधिक महत्व होता है, इसे वोबल परिकल्पना द्वारा समझाया जा सकता है ।

आनुवांशिक कूट में किसी भी प्रकार का उत्परिवर्तन प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया को प्रभावित करता है । इन सभी पहलूओं का विस्तृत अध्ययन आवश्यक है, जो कि निम्नानुसार वर्णित है ।

8.2 आनुवांशिक कूट (Genetic Code)

8.2.1 परिचय (Introduction)

प्रत्येक जीव की कोशिकीय संरचना के मुख्य घटक प्रोटीन होते हैं । इसके अतिरिक्त एक जाति विशेष में विशिष्ट प्रकार के प्रोटीन्स पाये जाते हैं । कोशिका को विभिन्न उपापचयी क्रियाओं को सम्पन्न करने हेतु एन्जाइम्स (प्रोटीन) की आवश्यकता होती है । इन सभी प्रकारों के प्रोटीन्स का निर्माण कोशिका में ही होता है । इसके लिए कोशिका में तीन विभिन्न प्रकार के आरएनए mRA,rRNA,प tRNA का निर्माण DNA से ट्राँसक्रिप्शन (Transription) की क्रिया द्वारा होता है । ये सभी मिलकर ट्रांसलेशन की क्रिया द्वारा विभिन्न प्रोटीन्स का संश्लेषण करते हैं । अत : हम कह सकते हैं कि प्रोटीन्स के निर्माण हेतु सन्देश DNA अणु में ही उपस्थित रहता है । विभिन्न स्रोतों से प्राप्त DNA अणुओं को बनाने वाले घटकों में शर्करा तथा फॉस्फोरिक अम्ल तो सभी में समान होते हैं, किन्तु अलग - अलग DNA(अणुओं में क्षारक युग्मों का अनुक्रम (sequence) बदलता रहता है । विभिन्न प्रयोगों द्वारा अब यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो चुका है कि किसी भी प्रकार के प्रोटीन निर्माण हेतु सूचना DNA में पाये जाने वाले क्षारकों के विशिष्ट क्रम में निहित होती है जिसे आनुवंशिक कूट (Gentic Code) कहते हैं ।DNA से यह सूचना ट्रांसक्रिप्शन (Transcription) की क्रिया द्वारा mRNA में उपस्थित क्षारको में विशिष्ट अनुक्रम द्वारा ग्रहण कर ली जाती है जिसे कोडेन (Codan) कहते हैं । यह अनुक्रम ही पॉलीपेप्टाइड श्रृंलखा में उपस्थित अमीनो अम्लों के क्रम को निर्धारित करता है, अथवा ट्राँसलेशन (Translation) की क्रिया द्वारा किसी विशिष्ट प्रोटीन का निर्माण करता है ।

इसी सन्दर्भ में सन् 1940 में बीडल तथा टेटम (Beadle & Tatum) ने एक जीन - एक एन्जाइम सिद्धान्त (One gene-One enzyme theory) प्रतिपादित किया था, जिसके अनुसार प्रत्येक एन्जाइम का निर्माण एक जीन द्वारा किया जाता है ।

8.2.2 आनुवांशिक कूट का त्रिक स्वभाव एवम् इसकी खोज

(Triplet Nature of Genetic Code and its Discovery)

वैसे तो प्रकृति में लगभग 150 अमीनो अम्ल पाये जाते हैं । किन्तु जीवित कोशिका में होने वाले प्रोटीन संश्लेषण में केवल 20 अमीनो अम्ल ही प्रयुक्त होते हैं । परन्तु कोशिका में उपस्थिति दोनों प्रकार के न्यूक्लिक अम्लों (DNA तथा RNA) में केवल चार प्रकार के ही घटक क्रम होते हैं । यदि यह माना जाये किं आनुवांशिक कूट एकक कूट (Single code) है अथवा एक क्षारक (A,G,C या T) से ही बनी है तो चार प्रकार के क्षारकों द्वारा केवल चार अमीनों अम्ल ही कोडित होंगे । अत : आनुवांशिक कूट एकक कूट नहीं हो सकती । इसी प्रकार यदि यह माना जाये कि आनुवांशिक कूट में प्रत्येक अमीनो अस्त को कोडित करने हेतु संकेत दो क्षारकों के

अनुक्रम (Double code). जैसे - AA, GA, CA TA आदि) में निहित है तो केवल 4×4=16 द्विक (Doublets) सम्भव हो सकेंगे । ये भी 16 अमीनों अम्लों को ही कोडित कर पायेंगे, अर्थात् 20 अमीनो अम्लो के लिए अपर्याप्त होंगे । अत : यदि आनुवांशिक कूट त्रिक कूट (triplet] code) जैसे : AAA, AAG,AAC,AAT माना जाए तो 4×4×4 = 64 त्रिक कोडोन्स प्राप्त होते हैं जो 20 अमीनों अम्लों को कोडित करने हेतु न केवल पर्याप्त है अथवा अधिक है । इसलिए एक अमीनों अम्ल एक से अधिक कोडोन्स द्वारा कोडित होता है (चित्र 8.1, सारणी 8.1)

A
G
C
T

एकक कूट

AA	AG	AC	AT
GA	GG	GC	GT
CA	CG	CC	CT
TA	TG	TC	TT

द्विक कूट

AAA	GAA	CAA	TAA
AAG	GAG	CAG	TAG
AAC	GAC	CAC	TAC
AAT	GAT	CAT	TAT
AGA	GGA	CGA	TGA
AGG	GGG	CGG	TGG
AGC	GGC	CGC	TGC
AGT	GGT	CGT	TGT
ACA	GCA	CCA	TCA
ACG	GCG	CCG	TCG
ACC	GCC	CCC	TCC
ACT	GCT	CCT	TCT
ATA	GTA	CTA	TTA
ATG	GTG	CTG	TTG
ATC	GTC	CTC	TTC
ATT	GTT	CTT	TTT

त्रिक कूट

चित्र 8.1 एक एकक कूट, एक द्विक कूट और एक त्रिक कूट|

सारणी 8.1 : विभिन्न अमीनो अम्ल तथा उन्हे कोडित करने वाले सम्भावित कोडोन्स

अमीनो अम्ल (Amino acids)	त्रिककूट सम्भावित (Possible triplet codons)
1. फिनाइल ऐलेनिन (Phenylalanine)	UUU

2. ल्युसिन (Leucine)	UUG,UUC,UUA
3. आइसोल्युसिन (Isoleusine)	UAU,UUA
4. मिथियोनिन (Methionine)	UGA
5. वेलिन (Valine)	UUG,UGA
6. सीरिन (Serine)	UCU,UCC,UCA
7. प्रोलिन (Proline)	CCA,CCC,CCU
8. थ्रियोनिन (threonine	CAG,CAC
9. ऐलेनिन (Alanine)	CCG,UCG
10. टाइरोसिन (Tyrosine)	UAU,UAC
11. हिस्टिडीन (Histidine)	ACC
12. ग्लूटामिन (Glutamine)	CAA,CAG-----(GAG,GAA)
13. ऐस्पेरेजिन (Asparagine)	AAC
14. लाइसिन (Lysine)	AAA,AAG
15. ऐस्पार्टिक अम्ल (Aspartic acid)	GAU,GAC
16. ग्लूटेमिक अम्ल (Glutamic acid)	GAA,GAU
17. ट्रिप्टोफान (Trytophan)	UGG
18. आजानिन (Arginine)	CGC,CGU
19. सिस्टीन (Cysteine)	UGU,UGC
20. ग्लाइसिन (Glycine)	GGU,GGC

आनुवाशिक कूट की खोज (Discovery of Genrtic code or Deciphering of code)

सर्वप्रथम सर 1954 में जार्ज गेमोव (George Gammov) ने त्रिक कूट (triplet code) के बारे में बताया । इसके बाद सन् 1961 में एफ.एच.सी. क्रिक (F.H.C. Crick) तथा **निरनबर्ग** एव **मैथाई** (Nirenberg & Mathaei) ने प्रयोगों द्वारा प्रमाणित किया कि आनुवंशिक कूट त्रिक होती है । इसके लिए उन्होंने कोशिका के बाहर (in vitro) रेडियो एक्टीव अमीनो अम्लों के लिए आवश्यक एन्जाइम्स तथा ऊर्जा उत्पन्न करने वाले यौगिकों के जीवाणु ई. कोलाई की कोशिका निचोड़ (Cell extract) से प्राप्त tRNA द्वारा संतृप्त किया । इस प्रकार उन्होंने परखनली में कृत्रिम रूप से प्रोटीन संश्लेषण के लिए संवर्धन माध्यम तैयार किया । इस माध्यम से उन्होंने परखनली में कृत्रिम रूप से संश्लेषित mRNA अणु जो केवल यूरेसिल क्षार द्वारा निर्मित था (Polyuridylic acid-Poly U) का उपयोग पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला निर्माण हेतु किया तो उन्होंने पाया कि बनने वाली पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला में केवल एक ही अमीनो अम्ल फिनाइल ऐलेनिन (Phenylalanine) उपस्थित था । इस प्रयोग द्वारा उन्होंने यह परिणाम निकाला कि Poly-U mRNA बहुलक (Polymer) में त्रिक कूट UUU फिनाइल एलेनिन को कोडित करती है जिससे फिनाइल एलेनिन का समबहुलक बनता है । इसी प्रकार कई अन्य वैज्ञानिकों ने Poly-A mRNA से पॉलीलायसिन (Polylysine), Poly-C से पॉली प्रोलीन (Polyproline) तथा

Poly-G से पॉली ग्लाइसीन (Poly glycine) पेप्टाइड श्रृंखलाएँ प्राप्त की । इससे यह ज्ञात हो गया कि त्रिक कूट AAA लायसिन का GGG तथा ग्लाइसीन को कोड करते हैं ।

सारणी 8.2 : आनुवंशिक कूट

(विभिन्न अमीनो अम्ल तथा उन्हें कोडित करने वाले कोडोन्स)

Second base

First base	U		C		A		G		Third bace
U	UUU	phe	UCU	ser	UAU	tyr	UGU	cys	U
	UUC		UCC		UAC		UGC		C
	UUA	leu	UCA		UGA	c.t.*	UAA	c.t.*	A
	UUG		UCG		UGG	c.t.*	UAG	trp	G
C	CUU	leu	CCU	pro	CAU	his	CGU	arg	U
	CUC		CCC		CAC		CGC		C
									A
	CUA		CCA		CCA	glu	CCA		G
	CUG		CCG		CAG		CGG		
A	AUU	leu	ACU ACC	pro	AAU	his	AGU	ser	U
	AUC				AAC		AGC		C
			ACA						
	AUA	met	ACG		AAA	lya	AGA	arg	A
	AUG				AAG		AGG		G
G	GUU	val	GCU	ala	GAU	asp	GGU	gly	U
	GUC		GCC		GAC		GGC		C
						glu			
	GUA		GCA		GAA		GCA		A
	GUG		GCG		GAG		GGG		G

इस प्रकार एक ही प्रकार के न्यूक्लिओटाइड से बनी MRNA समबहुलक श्रृंखलाओं का अर्थ निकालने के पश्चात् निरनबर्ग व उनके साथियों ने दो तथा दो से अधिक क्षारों द्वारा निर्मित कोडोनों की प्रकृति के अर्थ को निकालने का प्रयास किया इन्हें समबहुलक कहा गया, जैसे. ACA, AAC, CCA आदि । उनसे कोडित होने वाले अमीनों अम्लों का पता लगाया गया जिन्हें त्रिक कूट (triplet codon) सारणी में दिखाया गया है (सारणी 8.2) ।

8.3 आनुवंशिक कूट के लक्षण एवम् महत्व (Properties and Important of Genetic Code)

आनुवंशिक कूट के निम्नलिखित लक्षणों को प्रयोगों द्वारा प्रमाणित किया जा चुका है.

(1) **आनुवंशिक कूट त्रिक कूट होती है** (The Code is triplet) : जैसा कि पूर्व में भी बताया जा चुका है कि 20 अमीनो अम्लों को **कोडित** करने के लिए एकक (Singlet) व द्विक (doublet) कूट अपर्याप्त होते हैं, अत : त्रिक कूट ही 20 अमीनो अम्लों को कोडित कर सकता है जो mRNAके तीन नाइट्रोजन क्षारकों के विशिष्ट अनुक्रम (Codon) का बना होता है । इस प्रकार के क्षारकों के अलग - अलग अनुक्रमों द्वारा निर्मित त्रिक कूट से 64 कोडोन्स सम्भावित होते हैं । जिनमें से 44 कोडोन्स अतिरिक्त होते हैं । यदि आनुवंशिक कूट चतुष्ट कूट मानी जाये तो 4 × 4 × 4 × 4 = 256 कोडोन्स प्राप्त होंगे । यह संख्या बहुत अधिक अथवा अनावश्यक है।

(2) **कूट अपह्रासित होता है** (Code is degenerate) : यदि 64 कोडोन्स में से एक कोडोन द्वारा केवल एक ही अमीनो अम्ल कोडित होता है 44 कोडोन्स अनुपयोगी (useless or non sense codons) होते हैं तथा आनुवंशिक कूट अनअपह्रासित (non degenerate) कहलाती । किन्तु त्रिक कूट में एक विशेष अमीनो अम्ल को कोडित करने के लिए एक से आधिक कोडोन्स हैं । अत : कूट अपह्रासित (degenerate) होता है । इससे यह भी ज्ञात होता है कि प्रत्येक अमीनो अम्ल के लिए एक से अधिक tRNA होते हैं जिसमें भिन्न - भिन्न एन्टीकोडोन्स होते हैं । शुरू में कुछ कोडोन्स (UAA,UAG,UGA) को **नॉनसेन्स** कोडोन्स मान लिया गया था किन्तु ये प्रोटीन संश्लेषण को रोकने के लिए सूचक होते हैं ।

(3) **कूट अन अतिव्यापी होता है** (Code is non-overlapping) कूट अनअतिव्यापी होता है इसका अर्थ है कि दो अलग - अलग कोडोन्स में एक ही क्षारक (अक्षर) का प्रयोग नहीं किया जा सकता है । इसे निम्न चित्र द्वारा समझाया जा सकता है (चित्र 8.2) ।

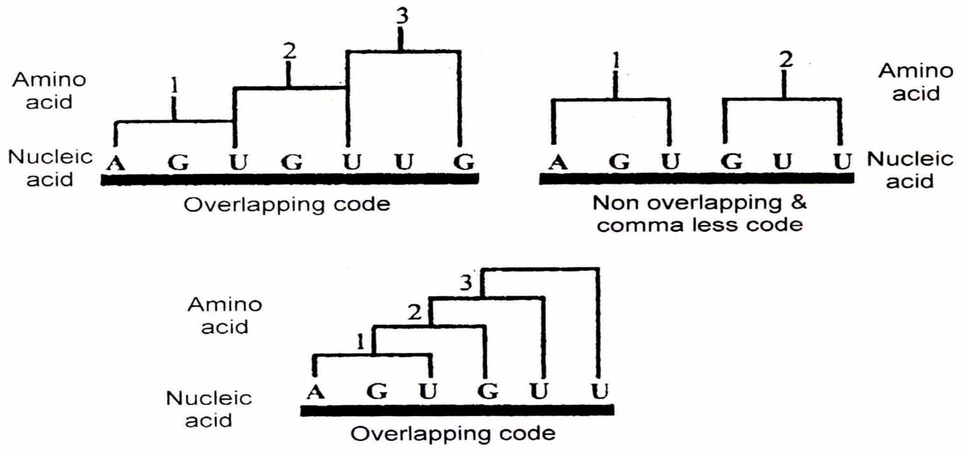

चित्र 8. 2 : कूट अतिव्यापन

चित्र में अतिव्यापी (Overlapping) कूट का अर्थ है कि यह छ : क्षारकों से चार प्रकार के अमीनो अम्ल AGC-serine, GUU-valine, UUG-leucine, UGC-cysteine को कोड कर सकती है । किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता है । छ : क्षारकों में से AGU द्वारा serine तथा UGU द्वारा Cysteine अमीनो अम्ल ही कोडित होते हैं ।

(4) **कूट असंदिग्ध होता है** (Code is non ambiguous) : असंदिग्ध कूट का अर्थ है कि एक विशिष्ट कोडोन हमेशा केवल एक ही अमीनो अम्ल को कोडित करेगा । इसके विपरीत संदिग्ध कूट का अर्थ है कि एक ही कोडोन दो या दो से अधिक अमीनो अम्लों को कोडित करता हो । ऐसा सामान्यत : नहीं होता है, किन्तु कुछ कोडोन, जैसे : GUG साधारणतया अमीनो अम्ल वेलीन (valine) को कोडित करता है, लेकिन समारम्भन (initiation) की स्थिति में यह मिथायोनीन (Methionine) अमीनो अम्ल कोड करता है । इसी प्रकार यीस्ट के माइटोकॉन्ड्रियल जीन्स में UGA कोडोन ट्रिप्टोफॉन (Tryptophan) अमीनो अम्ल को कोडित करता है किन्तु केन्द्रकीय जीन्स में UGA समापन कोडोन (termination codon) की तरह भी कार्य करता है।

(5) **कूट सार्वत्रिक होता है** (Code is universal) : कूट सार्वत्रिक (Universal) होता है, का अर्थ है कि, एक कोडोन समस्त जीवों में एक ही अमीनो अम्ल को कोडित करता है । इसे प्रयोगों द्वारा प्रमाणित भी किया जा चुका है, किन्तु माइटोकॉन्ड्रिया त था सीलिया (cilia) युक्त प्रोटोजोआ इसके लिए अपवाद हैं । उदाहरण : प्रोटोजोआ ।

माइकोप्लाज्मा केप्रीकोलम (Mycoplasma capricolum) में UAA तथा UAG कोडोन्स ग्लूटोमीन (glutamine) अमीनो अम्ल कोडित करते हैं, जबकि यूकैरियोट्रस में समापन कोडोन्स की तरह कार्य करते हैं ।

माइटोकॉन्ड्रिया में आनुवंशिक कूट (Genetic code in Mitochondria)

माइटोकॉन्ड्रिया में अर्धस्वायत्तता (semi autonomy) हेतु, विभिन्न प्रकार के प्रोटीन्स का निर्माण करना पड़ता है । जिनके लिए आनुवंशिक संकेत इस कोशिकांग में पाया जाने वाला DNA ही निर्धारित करता है । कुछ कोशिकी वैज्ञानिकों ने यीस्ट (yeast) व स्तनधारियों (mammals) की कोशिका में पाये जाने वाले माइटोकॉन्ड्रियल DNA का अध्ययन कर आनुवंशिक कूट का पता लगाया । उन्होंने ज्ञात किया कि यीस्ट माइटोकॉन्ड्रिया में UGA, ट्रिप्टोफान (tryptophan) अमीनो अम्ल को कोडित करता है, जबकि केन्द्रक DNA में यही कोडोन (UGA) समापन कोडोन के रूप में कार्य करता है । इसी प्रकार एक अन्य कोडोन AUA **यीस्ट** व **ड्रोसोफिला** माइटोकॉन्ड्रिया में मिथियोनीन (methionine) को कोडित करता है किन्तु केन्द्रक DNA में यही कोडोन आइसोल्यूसिन (isoleucine) अमीनो अम्ल को कोडित करता है । इनके अतिरिक्त माइटोकॉन्ड्रिया में और भी आनुवंशिक कोड पाए जाने की सम्भावना है । यह भी ज्ञात किया गया है कि सभी जीवों के माइटोकॉन्ड्रिया में एक समान कोडोन नहीं पाए जाते हैं । उदाहरणार्थ : UGA कोडोन माइटोकॉन्ड्रिया में सदैव ट्रिप्टोफान को कोडित नहीं करता है । मक्का में **साइटोक्रोम ऑक्सीडेज उपइकाई II** को कोडित करने वाले जीन में, UGA कोडोन अनुपस्थित

होता है, तथा वहाँ पर ट्रिप्टोफान अमीनो अम्ल CGG कोडोन द्वारा कोडित होता है, जबकि केन्द्रक जीन्स में CGG आर्जीनीन (arginine) को कोडित करता है ।

8.4 श्रृंखला समारम्भन तथा अन्तस्थ: कोडोन्स (Chain Initiation & Termination : codons)

जीवित कोशिकाओं में अधिकतर पॉलीपेप्टाइड श्रृंखलाओं के संश्लेषण की शुरूआत समारंभक अमीनो अम्ल मिथीयोनीन द्वारा होती है । इसके लिए हमेशा mRNA के 5 ' सिरे पर AUG कोडोन होता है । लेकिन कभी -कभी GUG कोडोन भी हो सकता है । GUG वैसे अमीनो अम्ल वेलीन (valine) को कोडित करता है किन्तु जब यह समारम्भक कोडोन की तरह कार्य करता है तब यह वेलीन की जगह मिथायोनिन को कोडित करता है । अत : यह संदिग्ध कोडोन है । यह स्पष्ट हो चुका है कि समारम्भन मिथायोनिन फोर्मिलीकृत होता है तथा इसे ले जाने के लिए $tRNA_f^{met}$ होता है । किन्तु जब मिथायोनिन की स्थिति पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला में आंतरिक होती है तब यह फोमिलीकृत नहीं होती है तथा इसके लिए अलग tRNA m^{met} होती है ।

इसी प्रकार तीन कोडोन्स UGA ओपल (opal), UAA ओर (ocher) व UAG को अम्बर (amber) कहते हैं, जब ये mRNA के 3 ' सिरे पर उपस्थित होते हैं, पॉलीपेप्टाइड श्रृखला के संश्लेषण का समापन कर देते हैं । जिससे श्रृंखला राइबोसोम से बाहर आ जाती है अत : ये नोन सेन्स (non-sense) कोडोन्स नहीं हैं ।

8.5 वॉबल परिकल्पना (Wobble Hypothesis)

एक एन्टीकोडोन एक से अधिक कोडोन्स के साथ क्षार युग्मन की क्षमता रखता है ।इसे अधिक स्पष्ट करने के लिए क्रिक ने सन् 1965 में एक परिकल्पना प्रतिपादित की जिसे **वॉबल** या डगमगाहट पीरकल्पना (Wobble hypothesis) कहा गया ।

इसके अनुसार किसी भी कोडोन में तीसरा क्षारक अधिक महत्व का नहीं होता है । किसी भी कोडोन की विशिष्टता उसके प्रथम दो क्षारकों द्वारा निर्धारित होती है । इसी कारण एक ही tRNA एक से अधिक कोडोन्स को जिनमें तीसरे क्षारक का अंतर होता है, पहचान पाता है । ऐसा माना जाता है कि इस प्रक्रिया में कोडोन के तीसरे स्थान पर क्षारकों के युग्मन में वॉबलिंग अथवा डगमगाहट होती है जिससे स्थायी युग्मन नहीं होता है ।

इसे स्पष्ट करने के लिए उन्होंने बताया कि यदि एन्टीकोडोन में U (यूरेसिल) प्रथम स्थान पर है तो यह उस कोडोन से युग्मन कर सकता है जिसमें A (एडिनीन) या G (ग्वानीन) तीसरे स्थान पर हों । इस प्रकार एन्टीकोडोन के प्रथम क्षारक तथा कोडोन के तीसरे क्षारक के बीच युग्मन का सम्बन्ध वॉबलिंग कहलाता है । इससे एक ही tRNA द्वारा, एक अमीनो अम्ल को कोडित करने वाले एक से अधिक कोडोन्स पहचान लिए जाते हैं, जैसे. एन्हीकोडोन IGC द्वारा अमीनो अम्ल ऐलेनीन (alanine) को कोडित करने वाले तीन कोडोन्स GCU, GCC तथा GCA को पहचाना जा सकता है । आइनोसीन (inosine) tRNA एन्टीकोडोन में पाया जाने वाला रूपान्तरित क्षारक है, जो G क्षारक से समानता रखता है ।

8.6 उत्परिवर्तन एवम् आनुवंशिक कूट(Mutations and Genetic Code)

जीवित कोशिकाओं में कई बार प्रोटीन संश्लेषण हेतु उत्तरदायी त्रिक कोडोन्स में उत्परिवर्तन हो जाता है जिससे प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया विभिन्न रूप से प्रभावित हो जाती है । इस प्रकार के उत्परिवर्तन निम्नलिखित प्रकार के हो सकते हैं ।

(1) **मूक उत्परिवर्तन** (Silent Mutation) : मूक उत्परिवर्तन में प्राय: एक कोडोन के तीसरे स्थान पर ऐसा उत्परिवर्तन होता है जो कि अमीनो अम्ल को कोडित करने की प्रक्रिया को प्रभावित नहीं करता है । इस प्रकार के उत्परिवर्तन से पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला संश्लेषण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है । इस प्रकार के उत्परिवर्तन को वॉबेल परिकल्पना द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है ।

(2) **अनार्थक उत्परिवर्तन** (Meaningless Mutation) : इस प्रकार के उत्पीरवर्तन में एक विशिष्ट अमीनो अम्ल को कोडित करने हेतु उत्तरदायी कोडोन, दूसरे अमीनो अम्ल को कोडित कर देता है, जिसकी पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला में आवश्यकता नहीं होती है । अत : इस उत्परिवर्तन से प्रोटीन प्रकार्य प्रभावित हो जाता है ।

(3) **निरर्थक उत्परिवर्तन** (Non-sense Mutation) : इस उत्परिवर्तन से समापन कोडोन की स्थिति में परिवर्तन आ जाता है, जिससे अनुलेखन की क्रिया के दौरान ही समय से पहले अमीनो अम्ल श्रृंखला को समाप्त कर दिया जाता है ।

(4) **उदासीन उत्परिवर्तन** (Neutral Mutation) : यह इस प्रकार का उत्परिवर्तन है जिसमें एक कोडोन में ऐसा परिवर्तन होता है जिससे दूसरा अमीनो अम्ल कोडित हो जाता है, परन्तु नया अमीनो अम्ल पहले वाले की तरह ही कार्य करता है । इस प्रकार प्रोटीन संश्लेषण का कार्य प्रभावित नहीं होता है ।

(5) **फ्रेम विस्थापन उत्परिवर्तन** (Frame Shift Mutation) : इस प्रकार के उत्परिवर्तन में त्रिक कोडोन में से एक या दो न्यूक्लिओटाइड्स की न्यूनता (deletion) अथवा निवेशन (insertion) हो जाता है, जिससे कोडोन रीडिंग फ्रेम में विस्थापन हो जाता है तथा अनार्थक कोडोन उत्पन्न हो जाते हैं । इससे प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया सम्पन्न नहीं हो पाती है ।

अत : उपर्युक्त उल्लेख से यह परिणाम प्राप्त होता है कि विशिष्ट प्रोटीन संश्लेषण हेतु त्रिक कोडोन में क्षारीय क्रम निश्चित होता है जो प्रोटीन संश्लेक्षण हेतु आनुवंशिक सूचना का सम्प्रेषण निश्चित, नियमित व सुचारू रूप से चलाता है । इन कोडोनों में किसी भी प्रकार का उत्परिवर्तन प्रोटीन संश्लेषण की प्रक्रिया को प्रभावित करता हैं ।

बोध प्रश्न

बहुविकल्पात्मक प्रश्न (Multiple Choice Type of Question)

1. सन् 1961 में आनुवंशिक कूट की खोज किसने की :
   (a) रेन्बर्ग एवम् खुराना ने
   (b) गमोव ने

(c) कॉनबर्ग ने

(d) खुराना एवम् कॉनबर्ग

2. कोडोन है ।

(a) t-RNA में उपस्थित दो क्षारक सूचना

(b) m-RNA में उपस्थित तीन क्षारक सूचना

(c) m-RNA में उपस्थित दो क्षारक सूचना

(d) t-RNA मे उपस्थित तीन क्षारक सूचना

(3) आनुवंशिक कूट मे तीन क्षारकों का विन्यास प्रदर्शित करता है :

(a) प्लाज्मिड को

(b) अमीनो अम्ल को

(c) प्रोटीन को

(d) न्यूक्लिक अम्ल को

(4) वॉबल परिकल्पना किससे सम्बन्धित है :

(a) डी.एन.ए. संरचना से

(b) डी.एन.ए. पुनरावृत्ति से

(c) डी.एन.ए. का स्थानान्तर से

(d) आनुवंशिक कूट से

(5) प्रोटीन संश्लेषण हेतु समारम्भक कोडोन है :

(a) UUU तथा GGG

(b) AAA तथा UAG

(c) AUG तथा GUA

(d) GUG तथा AUG

(6) प्रोटीन संश्लेषण हेतु समापन कोडोन है :

(A) AUU, AUG तथा GUU

(b) UGA, UAA तथा UAG

(c) UAU, UAG तथा UUA

(d) AAA, UUU तथा UGA

रिक्त स्थानों की पूर्ति व अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. .... ओकर (ochre) कोडोन कहलाता है ।

2. .... अम्बर (amber) कोडोन कहलाता है ।

3. 'एक जीन एक एन्जाइम' परिकल्पना .... वैज्ञानिकों द्वारा दी गयी ।

4. पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला में सर्वप्रथम कोडित होने वाले अमीनो अम्ल का नाम लिखो।

....

....

5. जीवित कोशिका मे प्राकृतिक रूप से कितने अमीनो अम्ल पाए जाते हैं ।

....

....

6. आनुवंशिक कूट की त्रिककूट प्रकृति को प्रमाणित करने वाले वैज्ञानिकों के नाम लिखा।

....

....

7. समबहुलक mRNA श्रृंखला क्या होती है?

....

....

8.7 सारांश (Summary)

इस इकाई के विस्तृत अध्ययन से ज्ञात होता है कि जीवित कोशिकाओं में होने वाली संरचनात्मक व प्रकार्यात्मक क्रियाओं हेतु एन्जाइम्स तथा प्रोटीन्स के संश्लेषण के लिए आनुवंशिक संदेश DNA क्षार अनुक्रमों में निहित होता है, जिसे mRNA के त्रिक कोडोन्स द्वारा अनुलेखित कर लिया जाता है, आनुवंशिक कूट कहलाता है । RNA से इन त्रिक कोडोन्स के रूप में सूचना का अनुवाद पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला में अमीनो अम्लों के प्रकार, संख्या व क्रम निर्धारण के रूप में कर लिया जाता है । आनुवंशिक कूट की त्रिक कूट (तीन क्षार क्रम) प्रकृति को प्रयोगों द्वारा प्रमाणित किया जा चुका है । DNA संरचना में 4 प्रकार की न्यूक्लिओटाइड्स से सम्भावित 64 त्रिक कोडोन्स प्राप्त होते हैं जो कि 20 अमीनो अम्लों को कोडित करने के लिए पर्याप्त होते हैं । विभिन्न प्रकार के अमीनो अम्ल हेतु आनुवंशिक कूट (कोडोन्स) की खोज निरनबर्ग व उनके साथियों ने कृत्रिम रूप से संश्लेषित ज्ञात समबहुलक (क्षार क्रमों) वाले mRNA की सहायता से संवर्धन माध्यम से पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला का संश्लेषण करवा कर की गयी तथा यह ज्ञात किया गया कि कौनसा कोडोन किस अमीनो अम्ल को कोडित करता है । एक अमीनो अम्ल हेतु एक से अधिक कोडोन्स पाए जाते हैं । mRNA के 5 ' सिरे पर स्थित AUG अथवा GUG कोडोन्स समारम्भक कोडोन्स होते हैं तथा 3 ' सिरे पर UGA,UAA व UAG कोडोन्स समापन कोडोन्स होते हैं । आनुवंशिक कूट के विभिन्न लक्षणों जैसे. त्रिक कूट प्रकृति, एक अमीनो अम्ल हेतु एक से अधिक कोडोन्स, एक कोडोन के क्षारक दूसरे कोडोन में प्रयुक्त न होना, समान्य अवस्था में कोडोन का असंदिग्ध होना तथा एक कोडोन का समस्त जीवों में एक ही अमीनो अम्ल को कोडित करना आदि को प्रमाणित किया जा चुका है । प्रोटोजोआ व माइटोक्रान्ड्रिया में आनुवंशिक कूट कुछ लक्षणों के लिए अपवाद के रूप में कार्य करती है । वॉबेल परिकल्पना से यह प्रमाणित होता है कि किसी भी कोडोन की विशिष्टता उसके प्रथम दो क्षारकों द्वारा निर्धारित होती है, तीसरा क्षारक स्थायी युग्मन प्रदर्शित नहीं करता है । आनुवंशिक कूट में अनार्थक निरर्थक व फ्रेम विस्थापन उत्परिवर्तन प्रोटीन संश्लेषण को प्रभावित करते हैं ।

8.8 शब्दावली (Glossary).

1. **आनुवंशिक कूट** (Genetic code) : प्रोटीन संश्लेषण हेतु DNA के न्यूक्लिओटाइड अनुक्रम में निहित सूचना।
2. **कोडोन** (Codon) : m-RNA ' में उपस्थित तीन क्षारक सूचना
3. **समबहुलक** (Homopolymer) m-RNA श्रृंखला : एक ही प्रकार की न्यूक्लिओटाइड्स (AAA,GGG,CCC etc) द्वारा निर्मित m-RNA श्रृंखला
4. **एन्टीकोडोन** (Anticodon) : t-RNA पर स्थित तीन क्षारक क्रम जो m-RNA पर कोडोन को चिन्हित करते हैं ।

8.9 संदर्भ ग्रन्थ (References)

1. पी.के. गुप्ता 'Genetics' (2007) रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ ।
2. एस.सी. रस्तोगी. 'Cell and molecular biology' न्यूएज इन्टरनेशनल पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
3. आर.एस. शुक्ला व पी.एस. चन्देल. 'Cytogenetics Evolution and Plant breeding' एस. चान्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली ।

8.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पात्मक प्रश्न :

1. (a) 2. (b) 3. (b) 4. (d) 5. (d)

रिक्त स्थान व अतिलधुत्तरात्मक प्रश्न :

1. UAA
2. UAG
3. बीडल व टेटम, 1940
4. मिथियोनीन
5. 20 अमीनो अम्ल
6. एफ.एच.सी. क्रिक, निरनबर्ग एवम् मैथाई

एक ही प्रकार की न्यूक्लिओटाइड्स से बनी mRNA श्रृंखला

8.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

लघुउत्तरात्मक प्रश्न :

1. आनुवंशिक कूट को परिभाषित कीजिए ।
2. आनुवंशिक कूट अनअतिव्यापी (Non-overlapping) होती है, समझाइए ।
3. वॉबल परिकल्पना (Wobble-hypothesis) से आप क्या समझते हैं, लिखिए ।
4. माइटोकॉन्ड्रिया में आनुवंशिक कूट पर टिप्पणी लिखिए ।

वृहत् उत्तर प्रश्न (Long Answer Questions)

1. आनुवंशिक कूट से आप क्या समझते हैं? इसके गुणों का वर्णन कीजिए व इसका महत्व लिखिए ।
2. आनुवंशिक कूट में होने वाले उत्परिवर्तनों व उनके प्रभाव का वर्णन कीजिए ।

इकाई 9 : अतिरिक्त केन्द्रीय जीनोम; माइटोकॉन्ड्रियल एवम् प्लास्टिड डी.एन.ए. की उपस्थिति एवम् कार्य; प्लाज्मिड्स ट्रान्सपोजन्स (Extra nuclear Genome; Mitochondrial and Plastid DNAs and their functions; Plasmids; Transposons)

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 अतिरिक्त केन्द्रकीय जीनोम (Extranuclear Genome)

- 9.2.1 परिचय (Introduction)
- 9.2.2 कोशिकाद्रव्यी वंशागति की इकाई (Unit of Cytoplasmic Inheritance)

9.3 माइटोकॉन्ड्रियल डी.एन.ए तथा इसके कार्य (Mitochondrial DNA and its functions)

9.4 प्लास्टिड (हरितलवक) डी.एन.ए. तथा इसके कार्य [Plastid (Chloroplast) DNA and its functions]

9.5 प्लाज्मिड्स (Plasmids)

- 9.5.1 परिचय (Introduction)
- 9.5.2 प्लाज्मिड्स के विशिष्ट लक्षण (Characteristic features of Plasmids)
- 9.5.3 जीन प्रतिरोपण अथवा क्लोनिंग में प्लाज्मिड की भूमिका (Role of plasmid in Gene Cloning)
- 9.5.4 जीवाणु कोशिका से प्लाज्मिड का पृथक्करण (Isolation of Plasmid from Host Bacteria Cell)
- 9.5.5 प्लाज्मिड्स का वर्गीकरण (Classification of Plasmids)
- 9.5.6 प्लाज्मिड वाहक के वांछित लक्षण (Desired Characters of Vectors)
- 9.5.7 प्लाज्मिड्स के कार्य (Functions of Plasmids)

9.6 स्थलान्तरणशील आनुवंशिक तत्व (Transposable Genetic Elements)

- 9.6.1 परिचय (Introduction)
- 9.6.2 स्थलान्तरणशील तत्वों की विशिष्टताएं (Characteristics of Transposable Genetic Elements)

9.6.3 स्थलान्तरणशील तत्वों के प्रकार (Types of Transposable Elements)
9.6.4 यूकैरियोट्स में स्थलान्तरणशील आनुवंशिक तत्व (Transposable Elements in Eukaryotes)
9.6.5 स्थलान्तरणशील तत्वों के उपयोग (Uses of Transposable Elements)
9.7 सारांश (Summary)
9.8 शब्दावली (Glossary)
9.9 संदर्भ ग्रन्थ (References)
9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर (Questions and Answers)
9.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का मुख्य उद्देश्य पाठकों को कोशिका में पाये जाने वाले **केन्द्रकीय आनुवंशिक पदार्थ DNA** (Nuclear genetic material DNA) के अलावा कोशिकाद्रव्य में (**प्रोकैरियोट्स में**) तथा कोशिकांगो (**यूकैरियोट्स में**) में पाये जाने वाले आनुवंशिक DNA व उसके कार्यों से अवगत कराना है । इस इकाई के अध्ययन से पाठक यह जानने में सक्षम होंगे कि, प्रोकैरियोटिक कोशिका द्रव्य में पाया जाने वाला **अतिरिक्त केन्द्रकीय जीनोम** जिसे प्लाज्मिड (plasmid) कहते हैं, वे क्या होते हैं? वे किस प्रकार लक्षणों की वंशागति को नियंत्रित करते हैं? पाठकों को उनके गुण, उपयोगिता आदि के बारे में जानकारी प्राप्त होगी । इसी प्रकार यूकैरियोट्स में माइटोकॉन्ड्रिया व प्लास्टिड में पाये जाने वाले आनुवंशिक DNA अर्थात् mt- DNA व Cp-DNA के कार्यों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे । कई बार कोशिका में गुणसूत्रीय आनुवंशिक उत्परिवर्तन (mutations) के कारण कुछ जीन्स स्थल परिवर्तन कर लेते हैं, उन्हें **स्थलान्तरणशील आनुवंशिक तत्व** (Transposable genetic elements) कहते हैं, उनके लक्षण, प्रकार व उपयोगिता के बारे में जानकारी उपलब्ध होगी ।

9.1 प्रस्तावना

वंशागति के गुणसूत्र सिद्धान्त के अनुसार यह पूर्णरूपेण ज्ञात है कि, सजीव कोशिकाओं में आनुवंशिक पदार्थ DNA मुख्य रूप से गुणसूत्रों में निहित होता है जो कि वंशागति के वाहक होते हैं तथा केन्द्रक में पाये जाते हैं । केन्द्रक विभाजन वंशागति की आधारीय प्रक्रिया है । इस प्रकार की वंशागति को गुणसूत्रीय अथवा **केन्द्रकीय वंशागति** (Nuclear inheritance) कहा जाता है । किन्तु कुछ वैज्ञानिकों द्वारा किये गये अध्ययनों से ज्ञात होता है कि DNA न केवल केन्द्रक में ही स्थित होता हे, बल्कि कोशिका द्रव्य अथवा कोशिकाद्रव्य में उपस्थित कोशिकांगों में भी पाया जाता है, तथा जीवों के कई लक्षणों व उनकी वंशागति को नियंत्रित करता है । इसे अतिरिक्त केन्द्रकीय जीनोम (Extra nuclear genome) कहते हैं । इसके द्वारा नियंत्रित लक्षणों की वंशागति कोशिकाद्रव्यी वंशागति (Cytoplasmic inheritance) कहलाती है । प्रोकैरियोट्स में अतिरिक्त केन्द्रकीय जीनोम **प्लाज्मिड्स** अथवा **अधिकाय** के रूप में पाया जाता है । इसमें स्वयं

प्रतिकृतिकरण व पुनर्योजन का गुण विद्‌यमान होता है । इसी के साथ - साथ यह कोशिकाओं के विशिष्ट लक्षणों व क्रियाओं जैसे प्रतिजैविक व विषैले पदार्थों का उत्पादन, भारी धातु प्रतिरोध आदि को नियंत्रित करता है । इन सभी का विस्तृत अध्ययन आवश्यक है । इसके अलावा जैव तकनीकी (Biotechnology) में प्लाज्मिड्स को वाहक (vector) के रूप में पुनर्योजन क्रिया हेतु प्रयोग में लिया जाता है । अत : प्लाज्मिड्स की बहुआयामी उपयोगिता व कार्यों के आधार पर इन्हें वर्गीकृत किया गया है जिसका विस्तृत अध्ययन इस इकाई में दिया गया है ।

इसी प्रकार यूकैरियोट्स में अतिरिक्त आनुवंशिक DNA माइटोकॉन्ड्रिया व हरितलवक कोशिकांगो में पाया जाता है । यह DNA इन कोशिकांगो में सम्पन्न होने वाली क्रियाओं व अन्य कोशिकीय क्रियाओं को नियंत्रित करता है । इसी के साथ - साथ इन कोशिकांगो का परिवर्धन मातृक वंशागति में भी सक्रिय योगदान करता है । कोशिकाद्रव्यी विभाजन (cytokinesis) इस वंशागति का आधार है । इन सभी के बारे में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है । इसी के साथ ही कई बार सजीव कोशिकाओं में DNA खण्डों में अवैध पुनर्योजन अथवा गुणसूत्रीय उत्परिवर्तन हो जाते हैं, जिसके कारण असमजात DNA खण्ड स्थल परिवर्तन कर आपस में जुड़ जाते हैं तथा आनुवंशिक सूचनाओं के संगठन व जीन अभिव्यक्ति के नियमन को प्रभावित करते हैं । ऐसे स्थलान्तरणशील DNA खण्ड स्थलान्तरणशील तत्व (Transposable element) कहलाते हैं । इन तत्वों की कोशिका में विशिष्ट भूमिका होती है, जिसका विस्तृत अध्ययन इस इकाई में प्रस्तुत है ।

9.2 अतिरिक्त केन्द्रकीय जीनोम (Extranuclear Genome)

9.2.1 परिचय (Introduction)

वंशागति के गुणसूत्र सिद्धान्त के अनुसार मेन्डेलियन कारक अथवा जीन गुणसूत्रों पर अवस्थित होते हैं । मेण्डल द्‌वारा वंशागति सम्बन्धी अनेक प्रयोगों के द्‌वारा इसे प्रमाणित किया गया है । इसके अनुसार क्योंकि एक सजीव में बनने वाले नर तथा मादा युग्मकों में गुणसूत्रों की संख्या समान होती है, अत : उनके व्युत्क्रम क्रास (Reciprocal cross A × B एवं A× B) के परिणाम भी एक जैसे ही होते हैं । इस प्रकार गुणसूत्रों द्‌वारा संचरित वंशागति को केन्द्रकीय या गुणसूत्रीय वंशागति (Nuclear or Chromosomal Inheritance) कहते हैं ।

लेकिन बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध मैं विभिन्न वैज्ञानिकों द्‌वारा किये गये अध्ययन के परिणामस्वरूप यह ज्ञात हुआ कि कोशिका द्रव्य में भी आनुवांशिक पदार्थ या DNA पाया जाता है। इस तथ्य से हम भली - भाँति परिचित हैं कि गुणसूत्रो में उपस्थित DNA एकमात्र ऐसा आनुवांशिक पदार्थ होता है, जिसमें अधिकांश आनुवांशिक सूचनाएँ संग्रहीत होती हैं, अत : इसे अनुवांशिक सूचनाओं का भण्डार गृह (Store House) भी कहा जा सकता है । केन्द्रक के बाहर पाये जाने वाले विभिन्न कोशिका उपांगों जैसे - क्लोरोप्लास्ट एव माइटोकोन्ड्रिया में DNA की उपस्थिति से यह स्वयंमेव सिद्ध हो जाता है कि कोशिका द्रव्य में भी आनुवांशिक सूचनाएँ मौजूद होती हैं । इन अनुवांशिक सूचनाओं या इनके द्‌वारा अभिव्यक्त लक्षणों की वंशागति को अतिरिक्त केन्द्रकीय वंशागति या कोशिका द्रव्यीय वंशागति (Cytoplasmic Inheritance)

कहते हैं । साथ ही केन्द्रक के बाहर कोशिका द्रव्य में कुछ विशेष कोशिका उपांगों में उपस्थित DNA सूत्र को अतिरिक्त केन्द्रकीय जीनोम (Extra nuclear Genome) कहा जाता है ।

इस जीनोम के द्वारा अभिव्यक्त लक्षणों का कोशिकाद्रव्यीय नियंत्रण या तो पूर्ण रूप से स्वायत्त हो अतिरिक्त केन्द्रीय जीनोम; सकता है अथवा कभी -कभी इनके लक्षण आशिक रूप से गुणसूत्रों पर उपस्थित कुछ जीनों के द्वारा नियंत्रित होते हैं । उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि सजीवों के अनेक लक्षणों का संचालन केन्द्रकीय जीन्स (Nuclear Genes) के द्वारा न होकर कोशिका द्रव्य या उपांगों में उपस्थित जीनों के द्वारा होता है । सर्वप्रथम **कार्ल कोरेन्स** (Carl Correns 1908) ने मेण्डल के वंशागति सिद्धान्तों से हट कर ऐसी जीन्स के बारे में परिकल्पना प्रस्तुत की थी, जो केन्द्रकीय गुणसूत्रों पर स्थित न होकर कोशिका द्रव्य मैं पाई जाती हैं ।

उपरोक्त विवरण से यह जानकारी उभर कर सामने आती है कि सजीवों में कुछ ल क्षण ऐसे पाये जाते हैं, जिनका निर्धारण कोशिका द्रव्य DNA के द्वारा होता है क्योंकि युग्मनज (Zygote 2n) कोशिका के निर्माण में मातृक द्रव्य अधिक मात्रा में प्रस्तुत होता है एवं गुणसूत्र नर तथा मादा दोनों जनकों के द्वारा होते हैं, अत : कोशिका द्रव्य द्वारा नियंत्रित लक्षणों की वंशागति को **मातृक वंशागति** (Maternal inheritance) भी कहते हैं ।

कोशिका द्रव्यीय वंशागति अथवा अतिरिक्त केन्द्रकीय जीनोम (Extra nuclear Genome) द्वारा संचरित लक्षणों की आगामी पीढ़ियों में वंशागति (Inheritance), गुणसूत्रीय या केन्द्रकीय वंशागति की तुलना में कुछ अलग प्रकार के संयोजन (Combination) परिलक्षित करती है । अत : दोनों प्रकार की वंशागतियो का तुलनात्मक विवरण निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत है.

कोशिका द्रव्यीय वंशागति एवं केन्द्रकीय वंशागति का तुलनात्मक विवरण

(Comparative account of Cytoplasmic Inheritance and Nuclear Inheritance)

यहाँ जीन्स का मानचित्रण (Mapping) हो सकता है ।	**संतति पर मातृक कोशिका द्रव्य का कोई भी प्रभाव नहीं होता**
1. इसमें एकल क्रास (Single Gross) एवं व्युत्क्रम क्रास (Reciprocal Cross) दोनों के परिणाम अलग-अलग होते हैं	यहाँ दोनों के परिणाम एक समान होते हैं ।
2. यहाँ लक्षणों की वंशागति में मातृक कोशिका की सक्रिय भूमिका होती है ।	मातृक कोशिका का कोई योगदान नहीं होता।
3. कोशिकाद्रव्यीय जीनों का मानचित्रण (Gene Mapping) नहीं किया जा सकता ।	यहाँ जीन्स का मानचित्रण (Mapping) हो सकता है ।
4. मातृक कोशिका द्रव्य (Maternal Cytoplasm) का प्रभाव संतति पर स्पष्टतया परिलक्षित होता है ।	संतति पर मातृक कोशिका द्रव्य का कोई भी प्रभाव नहीं होता
5. इसकी वंशागति इकाई को प्लाज्मा जीन (Plasma Gene) कहते हैं ।	इसकी वंशागति इकाई जीन (Gene)होती है ।

प्रसिद्ध कोशिकानुवांशिकी विज्ञानी **हेमरलिंग** (Hammerling) द्वारा एक समुद्री हरित शैवाल ऐसिटेबुलेरिया (Acetabularia) पर किये गये प्रयोगों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि प्लास्टिड सजीव कोशिका में उपस्थित केन्द्रक (Nucleus) इसके जीवन चक्र (Life Cycle) के संचालन हेतु अत्यावश्यक होता है । डार्लिंगटन (Darlington 1958) के अनुसार कोशिका द्रव्य में उपस्थित जीन्स या DNA खण्ड (Cytoplasmic Genes) प्राय : केन्द्रकीय जीन्स (Nuclear Genes) के द्वारा थोड़ी बहुत या आंशिक रूप से नियंत्रित होती है ।

9.2.2 कोशिकाद्रव्ययीय वंशागति की इकाई (Unit of Cytoplasmic Inheritance)

बीसवीं शताब्दी के पूर्वाध तक अर्थात् सन् 1950 से पूर्व वैज्ञानिकों की यह अवधारणा थी कि सजीवों में वंशागति की इकाईयाँ, जीन (Gene) होती हैं, जो कि केन्द्रक (Nucleus) में मौजूद गुणसूत्रों पर पाई जाती हैं, लेकिन वंशागति की कुछ विशेष अवस्थाओं में कोशिका द्रव्य के महत्व का सर्वप्रथम अध्ययन सन् 1950 में सेन्गर (Sanger) एवं उनके सहयोगियों के द्वारा किया गया । सेन्गर ने एककोशिकीय हरित शैवाल क्लेमाइडोमोनास (Chlamydomonas) में कुछ विशिष्ट लक्षणों की वंशागति के बारे में अपने प्रयोगों के माध्यम से जानकारी प्रदान की और बताया कि अनेक लक्षणों की वंशागति में गुणसूत्री जीन्स के अतिरिक्त कोशिका द्रव्य में उपस्थित DNA खण्डों या जीन्स का सक्रिय योगदान होता है । अत : इस प्रकार से सजीव कोशिका द्रव्य एव उपांगों में उपस्थित अनुवांशिक पदार्थ (प्राय: DNA) जो स्वत : प्रतिकृतिकरण (Self replication) करता है, उसे प्लाज्मोन (Plasmon) कहते हैं एवं कोशिका द्रव्य / उपांगों में उपस्थित वंशागति की उपरोक्त इकाईयों को **प्लाज्मा जीन्स** या **साइटोजीन्स** (Plasmagenes/Cytogenes) कहा जाता है ।

पिछले कुछ वर्षों में पादप कोशिकाओं के अन्तर्गत कोशिका द्रव्यीय वंशागति का अध्ययन क्लोरोप्लास्ट (Chloroplast) एव माइटोकोन्ड्रिया (Mitochondria) में उपस्थित DNA अथवा जीन्स द्वारा इनके विशिष्ट लक्षणों की वंशागति को ध्यान में रखकर किया जा रहा है । प्राणि कोशिकाओं में कोशिका द्रव्यीय वंशागति सम्बन्धी अध्ययन फाइलम प्रोटोजोआ में पेरामीसियम के कप्पा कणों एवं फाइलम मोलस्का में घोंघा प्रजाति लिम्निया के कवच कुण्डलन की वंशागति के बारे में किये गये हैं । यहाँ पौधों में क्लोरोप्लास्ट तथा माइटोकोन्ड्रिया के विशेष लक्षणों की कोशिका द्रव्यीय वंशागति के उदाहरणों की चर्चा की गई है ।

9.3 माइटोकोन्ड्रियल DNA तथा इसके कार्य(Mitochondrial DNA and its functions)

यूकैरियोटिक जीवधारियों की कोशिकाओं में श्वसन कार्य हेतु माइटोकोन्ड्रिया पाये जाते हैं । इनमें एक अथवा एक से अधिक डी.एन.ए. अणु विद्यमान होते हैं जो द्विरज्जुकी, वर्तुलाकार (Circular) एवं अत्यधिक कुण्डलित (Coiled) होते हैं (चित्र 9.1) । इनकी लम्बाई लगभग 5μ होती है एवं ये का DNA भी प्रतिकृतिकरण (Replication) करके अपनी अनेक प्रतियाँ तैयार

करने में सक्षम होते हैं, लेकिन कुछ विशेष लक्षणों के परिप्रेक्ष्य में यह केन्द्रकीय DNA (Nuclear DNA) से भिन्नता परिलक्षित करते हैं, जो कि निम्न प्रकार से हैं :

1. बेक्टीरियल डी. एन ए. की भाँति ही माइटोकोन्ड्रिया का डी .एन.ए. भी वर्तुलाकार होता है ।
2. गुआनीन एवं साइटोनीन (G एवं C) की मात्रा एवं घनत्व भी माइटोकोन्ड्रिया के डी.एन.ए. में अधिक है।
3. माइटोकोन्ड्रिया के DNA का अणुभार 9-12 × 10^6 होता है ।
4. माइटोकोन्ड्रिया का DNA उच्चताप पर ही विकृत (Denature) हो सकता है, क्योंकि इसका गलनांक (Melting Point) अधिक होता है ।
5. पूर्ववत सामान्य अवस्था (Renaturation) प्राप्त करने की इसमें अभूतपूर्व क्षमता होती है ।

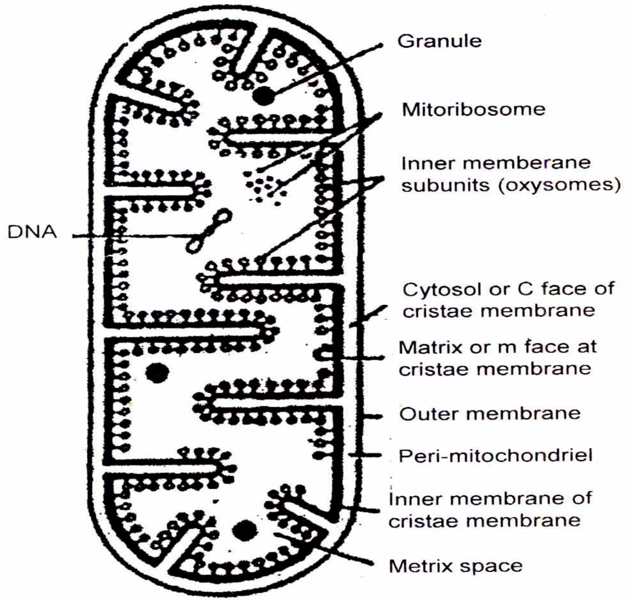

चित्र 9.1 : माइटोकोन्ड्रियल DNA

माइटोकोन्ड्रिया डी.एन.ए. के कार्य (Functions of Mitochondrial DNA)

माइटोकोन्ड्रिया में पाये जाने वाले DNA का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि यह भी RNA के द्वारा केन्द्रकीय गुणसूत्र की तरह ही संकेत या सूचनाओं का आदान - प्रदान कर सकता है, अत : यह कहा जा सकता है कि इसकी कार्यप्रणाली एक क्रोमोसोम के समान ही होती है । केन्द्रकीय RNA (Nuclear RNA) के समान ही माइटोकोन्ड्रिया में भी RNA का निर्माण होता है । कोशिका विभाजन चक्र (Cell Cycle) में G_2 अवस्था (G2 Phase) एवं साइटोकाइनेसिस के बीच माइटोकोन्ड्रियल DNA का संश्लेषण होता है । केन्द्रक के समान ही माइटोकोन्ड्रिया में भी डी.एन.ए पॉलीमेरेज उपस्थित होता है परन्तु यह केन्द्रकीय डी.एन.ए. पॉलीमेरेज की तुलना में अलग प्रकार का होता है, हालांकि यह भी DNA संश्लेषण (DNA synthesis) में भाग लेता है।

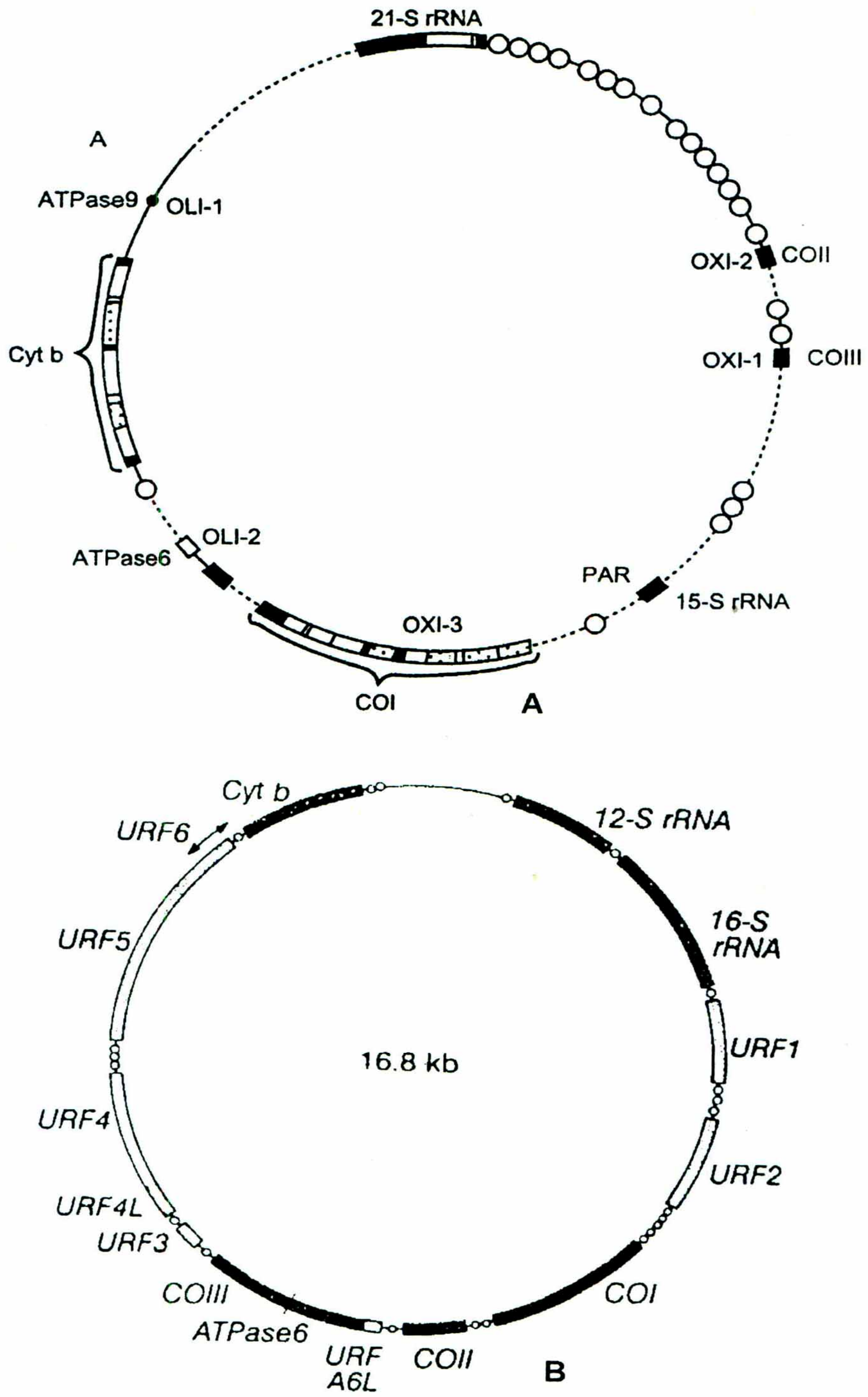

चित्र 9.2 : A. वर्तुलाकार यीस्ट DNA (सेकेरोमाइसिज सेरेवेसी) एवं मानव माइटोकोन्ड्रियन DNA के मानचित्र । इसमें जीन संकेत एवं जीन उत्पादों को प्रदर्शित किया गया है । काले बक्से mRNA या rRNA के संश्लेषण को दर्शाते हैं । छोटे गोले tRNA संश्लेषण प्रदर्शित करते हैं B. मानव mt-DNA का मानचित्रण

केन्द्रकीय DNA (Nuclear DNA) के समान ही माइटोकोन्ड्रिया का DNA भी m-RNA, r-RNA व t-RNA एवं प्रोटीन का संश्लेषण करने में सक्षम होता है लेकिन इसकी मात्रा कम होने के कारण इसमें सभी प्रकार के प्रोटीन एवं एन्जाइमों का संश्लेषण करने के पर्याप्त अवसर नहीं होते । फिर भी यह तो माना जा सकता है कि माइटोकोन्ड्रिया का DNA अपनी संरचनात्मक प्रोटीन का निर्माण तो कर ही लेता है । हालांकि अन्य दूसरे एन्जाइम्स एवं मुख्य रूप से नोन हीम प्रोटीन साइटोक्रोम (Cytochrome) का संश्लेषण केन्द्रकीय DNA के द्वारा नियंत्रित होता है ।

बी. इफ्रूसी (B.Ephrussi) नाम के वैज्ञानिक ने यीस्ट कोशिका में माइटोकॉन्ड्रियल DNA पर कार्य करते हुए यीस्ट के **पिटाइट उत्परिवर्ती** (Petite mutant) की खोज की । यीस्ट में इस उत्परिवर्ती का बनना माइटोकॉन्ड्रियल लक्षण है, जो mt-DNA द्वारा नियंत्रित होता है । ये उत्परिवर्ती (Mutants) संवर्धन माध्यम में यदि ग्लूकोज शर्करा (कार्बन स्रोत) उपस्थित हो तो, वृद्धि नहीं करते हैं अथवा बहुत छोटे संघ (colony) बनाते हैं । यह अन्तर केवल ऑक्सीजन की उपस्थिति में दृष्टिगोचर होता है । अत : पिटाइट उत्परिवर्ती में वायवीय श्वसन श्रृंखला में त्रुटि पायी जाती है । इन पिटाइट उत्पीरवर्तीयों को सामान्य प्रभेदों (Wild type strains), जिन्हें **ग्रान्डे** (Grande) कहते हैं, उनसे निम्न लक्षणों द्वारा विभेदित किया जा सकता है :

(1) ये उत्परिवर्ती प्रभेद श्वसन अवरोधक पदार्थों (जैसे: सायनाइड) के प्रति असंवेदनशील होते

(2) इनके माइटोकॉन्ड्रिया के श्वसन एन्जाइम्स में साइटोक्रोम a,a3 व b की अनुपस्थिति होती है, तथा उनमें अन्य परिवर्तन परिलक्षित होते हैं ।

(3) यीस्ट में पिटाइट लक्षण का आनुवांशिक आधार कोशिका द्रव्य में पाया जाने वाला p+(rho) कारक होता है, जो कि mt-DNA से सम्बन्धित होता है । इनके सम्बन्धों को प्रयोगों द्वारा प्रमाणित किया जा चुका है (चित्र 9.2A)।

इसी प्रकार मनुष्यों में mt-DNA परिमाप में छोटा (16.8 kb) होता है । इस DNA का न्यूक्लिओटाइड अनुक्रम पूर्णरूपेण ज्ञात किया जा चुका है । इस अनुक्रम में विभिन्न पॉलीपेप्टाइड श्रृंखलाओं हेतु 13 जीन, दो प्रकार के r-RNA तथा t-RNA अणु हेतु जीन्स की पहचान की जा चुकी है । इस प्रकार मनुष्यों में mt-DNA के आनुवांशिक मानचित्रण (Genetic map) को पूर्णरूप से ज्ञात किया जा चुका है (चित्र 9.2B) ।

9.4 प्लास्टिड (हरितलवक) डी.एन.ए. तथा इसके कार्य(Plastid (Chloroplast) DNA and its functions)

उच्चवर्गीय पौधों एवं अनेक शैवाल प्रजातियों में भी DNA अंणु, अनुवांशिक पदार्थ के रूप में पाये जाते हैं । सर्वप्रथम रुथ सेंगर (Ruth Sanger 1954) द्वारा क्लेमाइडोमोनास नामक एक कोशीय हरित शैवाल में विशिष्ट स्ट्रेप्टोमाइसिन प्रतिरोधी जीन का अध्ययन किया गया । तत्पश्चात् **रिस** एवं **प्लान्ट** (Ris and Plant 1962) के द्वारा किये गये अध्ययन से उपरोक्त विशेष जीन की उपस्थित हरितलवक (Chloroplat) में भी अंकित की गई । **किस्ले**, **स्विस्ट** एवं

बोगर्ड (Kisley, Swist And Bogard 1965), **गनिंग** (1965) एवं **विशालपुत्रा** (Bisalputra 1969) द्वारा इलेक्ट्रोन सूक्ष्मदर्शी के द्वारा हरित लवक संरचना का अध्ययन करने पर यह ज्ञात हुआ कि संरचनात्मक रूप से हरित लवक DNA (Chloroplast DNA), जीवाणु DNA (Bacterial DNA) से अत्यधिक समानता प्रदर्शित करता है । क्लोरोप्लास्ट DNA न केवल इसके अर्थात् लवक के विभाजन के लिये उत्तरदायी है, अपितु यह कोशिकाद्रव्यीय वंशागति में भी सक्रिय योगदान देता है (गिबोर 1962) ।

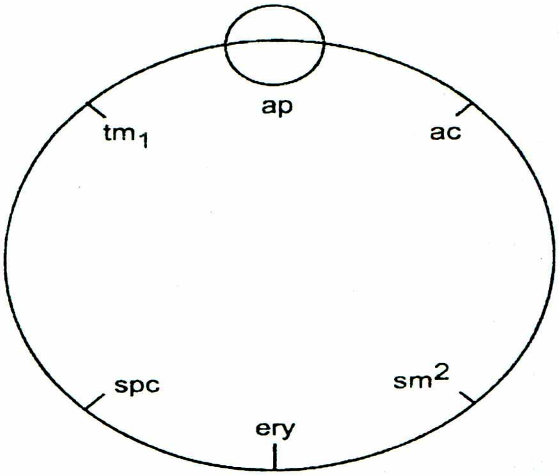

चित्र 9.3 : क्लेमाइडोमोनास में क्लोराप्लास्ट जीनोम का वर्तुलाकार जीन मानचित्र

क्लोरोप्लास्ट का DNA अणु वर्तुलाकार (Circular) एवं लगभग 40μ लम्बाई वाला होता है (चित्र 9.3) । उच्चवर्गीय पौधो एवं अधिकांश हरित शैवाल प्रजातियों में केवल एक DNA अणु ही लवक जीनोम (Genome) का गठन करता है परन्तु वर्ग **फियोफाइसी** (भूरी शैवाल) की अधिकांश प्रजातियों के लवक जीनोम में एक से अधिक वर्तुलाकार DNA अणु पाये जाते हैं । प्रत्येक लवक (Plasid) के5- 6 विशेष स्थानों में 10 से लेकर 100 तक **Cp** DNA (Chloroplast DNA) खण्ड व्यवस्थित हो सकते हैं । सामान्यतया एक क्लोरोप्लास्ट जीनोम का परिमाप (Size), 85 kb (kilobase) से 2000 kb तक होता है, लेकिन उच्चवर्गीय पौधों में लवक जीनोम का परिमाप तुलनात्मक रूप से बहुत छोटा अर्थात् केवल 120 से 160kb तक का ही होता है ।

हरितलवक DNA के कार्य (Functions of Chloroplast DNA)

सामान्यतया क्लोरोप्लास्ट के विभिन्न लक्षणों की अभिव्यक्ति कोशिका द्रव्यी एव केन्द्रकीय DNA के द्वारा होती है । केन्द्रकीय जीन एवं r-RNA इस हरितलवक DNA (Cp-DNA) के अनुलेखन एवं प्रतिकृतिकरण (Transcription and Replication) के लिये आवश्यक एन्जाइम उपलब्ध करवाने का कार्य करते हैं ।

हरित लवक के एक जीनोम में लगभग 126 प्रकार के प्रोटीनों के संश्लेषण हेतु आनुवांशिक सूचनाएँ निहित होती हैं । इसमें लगभग 25 प्रकार के जीन पाये जाते हैं, जो प्रोटीन्स के लिए कूट (Code) का गठन करते हैं । यही नहीं हरित लवकों (Chloroplasts) की स्वायत्ता (Autonomy) को परिलक्षित करने के लिये इसमें t-RNA एवं rRNA जीनों के पूरे सेट (Set)

व 70S शुद्ध राइबोसोम्स पाये जाते हैं । इसके अतिरिक्त हरित लवक में मौजूद राइबोसोम्स एक विशेष प्रकार के प्रोटीन संश्लेषण तंत्र से सम्बद्ध होते हैं जो m-RNA की सहायता से CO_2 की उपस्थिति में लवक अमीनो अम्ल द्वारा प्रोटीन (पोलीपेप्टाइड श्रृंखला) का संश्लेषण करने में समर्थ होते हैं (ब्रावरमेन एवं एसेन्सडट, 1968) । हरी पत्तियों में पाया जाने वाला एन्जाइम राइबुलोज बाइफोस्फेट कार्बोऑक्सीलेज ऑक्सीजिनेज (Rubisco) का प्रत्येक अणु 16 पॉलीपेप्टाइड श्रृंखलाओं द्वारा निर्मित होता है जिसमें 8 छोटी 100 अमीनों अम्लों मुक्त एवम् 8 लम्बी 450 अमीनों अम्लों से बनी श्रृंखलाएँ होती हैं । छोटी श्रृंखलाओं के संश्लेषण को हरितलवक DNA ही नियंत्रित करता है ।

9.5 प्लाज्मिड (Plasmid)

9.5.1 परिचय (Introduction)

अमरीकी वैज्ञानिक **जोशुआ लेडरबर्ग** (Joshua Lederberg) एवं ऑस्ट्रेलिया के विलियम हेस (William Hays) ने सर्वप्रथम सन् 1952 में यह देखा कि बेक्टीरिया की कोशिका में मुख्य गुणसूत्र के अलावा भी छोटी छोटी गोलाकार अनुवांशिक संरचनाएँ (Extra Chromosonal Structure) पाई जाती हैं । उन्होंने इनको प्लाज्मिड (Plasmid) का नाम दिया । मुख्यतया जीवाणु कोशिका में ये **प्लाज्मिड्स** (Plasmids) जीवाणु गुणसूत्र (Bacterial Chromosome) के अतिरिक्त कोशिका द्रव्य में वर्तुलाकार DNA (Circular DNA) के रूप में पाये जाते हैं (चित्र 9.4) ।

सभी जीवाणु कोशिकाओं में प्लाज्मिड नहीं पाये जाते और इनकी उपस्थिति कुछ जीवाणुओं के प्रभेदों (Strains) में पाई गई है । एक प्रारूपिक जीवाणु कोशिका में प्लाज्मिड की संख्या एक या एक से अधिक प्राय : 18 से 25 तक हो सकती है । जीवाणुओं की कोशिका में इसकी आकृति (Shape) एवं परिमाप (Size) अलग - अलग होती है । इसकी संरचना में तीन से लेकर कई हजार जीन्स होते हैं । इसी प्रकार हालांकि प्रारूपिक प्लाज्मिड की आकृति गोल या वर्तुलाकार पेर 4 के रूप में पाई जाती है, परन्तु अन्य प्रकार जैसे रैखिक (Linear) या खुले वलयाकार (Open ring) आकृति प्लाज्मिड भी पाये जाते हैं ।

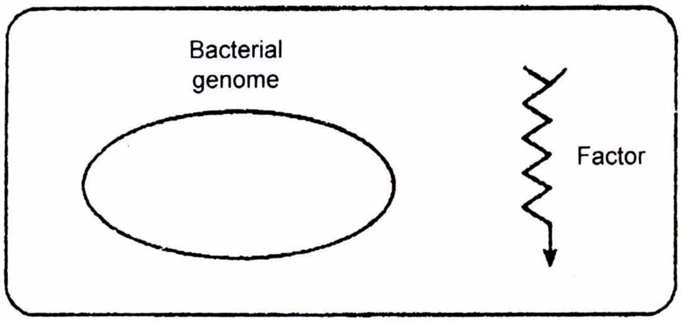

चित्र 9.4 : एक जीवाणु कोशिका में मुख्य गुणसूत्र एवं प्लाज्मिड

आधुनिक अवधारणा के अनुसार "कोशिका में मुख्य जीनोम के अतिरिक्त उपस्थित किसी भी अनुवांशिक संरचना या अंश को प्लाज्मिड (Plasmid) कहते हैं " । इसका प्रतिकृतिकरण या तो स्वतंत्र रूप से कोशिका द्रव्य में अथवा कोशिका के मुख्य गुणसूत्र (जिसे परपोषी गुणसूत्र, Host Chromosome भी कहते हैं) के साथ जुड़कर (integrated) इसके साथ ही होता है । इसके अतिरिक्त प्लाज्मिड का DNA भी द्विरज्जुकी, कुण्डिलत (Double stranded helix) की संरचना निरूपित करता है तथा जब यह मुख्य गुणसूत्र के साथ जुड़कर या समाकलित (integrated) होकर मुख्य या पोषी गुणसूत्र के साथ प्रतिकृतिकरण (Replication) करता है, तो इस प्रक्रिया के दौरान ये प्लाज्मिड परपोषी जीवाणु गुणसूत्र या जीनोम का कुछ हिस्सा, अपने भीतर पुनर्योजन (Recombination) द्वारा समाविष्ट कर लेते हैं । इसके बाद आगे के चरण में इस प्रकार पुनर्योजन द्वारा अपने भीतर निहित परपोषी जीनोम के अंश मूलपोषी जीवाणु कोशिका से अन्य कोशिका में स्थानान्तरित कर दिये जाते हैं । इस प्रक्रिया के द्वारा हम यह कह सकते हैं कि प्लाज्मिड पोषी जीवाणु DNA या जीन को एक कोशिका से दूसरी कोशिका में पहुँचाकर एक प्रकार **संवर्ध वाहक** (Clonal Vehicle) का कार्य करते हैं । अत : आधुनिक अनुवांशिकी अभियांत्रिकी (Genetic Engineering) में प्लाज्मिड्स एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं । एक सामान्य प्रारूपिक प्लाज्मिड के द्वारा लगभग 10,000 क्षारक - युग्म मुक्त DNA खण्ड को प्रतिरोपित या क्लोन किया जा सकता है ।

विभिन्न सजीव कोशिकाओं में प्राय : दो प्रकार के प्लाजिम्ड्स पाये जाते हैं

(A) **प्लाज्मिड्स** (Plasmids) : ये जीवाणु कोशिका द्रव्य में मुख्य जीनों से अलग उपस्थित DNA खण्ड होते हैं, जिनका अस्तित्व स्वतंत्र होता है एवं इनमें स्वप्रतिकृतिकरण (Self Replication) की क्षमता होती है ।

(B) **अधिकाय** (Episome) : जब जीवाणु कोशिका द्रव्य में उपस्थित अतिरिक्त गुणसूत्रीय DNA या प्लाज्मिड अपना स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त करके मुख्य जीवाणु गुणसूत्र या जीनोम से समाकलित (Incorporate) हो जाता है एवं इससे जुड़कर इसी का एक हिस्सा बन जाता है तो इसे अधिकाय या इपीसोम (Episome) कहते हैं । प्राय: इन संरचनाओं में स्थानान्तर या स्थलान्तरणशीलता का विशेष गुण पाया जाता है, अत : इस प्रकार के इपीसोम्स को ट्रॉन्सपोजन्स भी कहा जाता है ।

9.5.2 प्लाज्मिड्स के विशिष्ट लक्षण (Characteristics features of Plasmids)

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर प्लाज्मिड (Plasmid) के विशिष्ट लक्षणों को निम्न प्रकार से निरूपित किया जा सकता है

1. इनका संरचनात्मक संगठन वाइरस की तुलना में सरल होता है ।
2. ये अतिरिक्त गुणसूत्रीय (Extra Chromosomal), द्विरज्जुकी, सर्पिलाकार कुण्डलित (Helically Coiled), वर्तुलाकर (Circular) डी.एन.ए. खण्ड होते हैं, जिनमें स्वप्रतिकृतिकरण (Self Replication) की क्षमता होती है ।
3. इनका परिमाप (Size) जीवाणु के मुख्य गुणसूत्र की तुलना में कम होता है ।

4. इनमें प्रोटीन कवच अनुपस्थित होता है ।
5. क्योंकि ये मुख्य जीनोम से पृथक अतिरिक्त गुणसूत्रीय (Extra Chromosomal) डी.एन.ए. खण्ड होते हैं, अत: ये मातृक वंशागति (Maternal Inheritance) या कोशिका द्रव्यीय वंशागति (Cytoplasmic Inheritance) में सक्रिय योगदान देते हैं ।

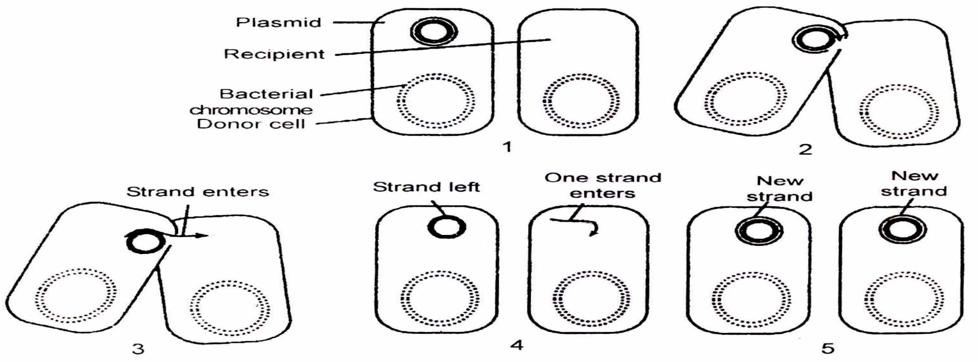

चित्र 9.5 : जीवाणु प्लाज्मिड द्‍वारा स्व - प्रतिकृतिकरण (Self Replication) का प्रदर्शन

6. इसका पुनर्योजन (Recombination), मुख्य जीवाणु गुणसूत्र (Genome) अथवा किसी अन्य प्लाज्मिड के साथ हो सकता है ।
7. परपोषी (Host) या मुख्य जीवाणु कोशिका के भीतर रहते हुये ही इनका स्वतंत्र रूप से प्रतिकृतिकरण (Replication) होता रहता है एवं जब इनकी पोषी (Host) जीवाणु कोशिका विभाजित होती है, तो इसके परिणामस्वरूप नई बनने वाली जीवाणु कोशिकाओं में ये प्लाज्मिड्स स्थानान्तरित हो जाते हैं (चित्र 9.5)।
8. इनकी उपस्थित जीवाणुओं के लक्षण प्ररूप (Phenotype) को प्रभावित करती है ।
9. प्लाज्मिड्स की उपस्थिति जीवाणु कोशिका के लिए जरूरी नहीं है । इसके बिना भी जीवाणु का काम चल सकता है क्योंकि यह जीवाणु कोशिका में किसी महत्वपूर्ण जैविक क्रिया को नियंत्रित नहीं करते, अपितु एक सहायक भूमिका निभाते हैं ।
10. प्लाज्मिड जीवाणु कोशिका में कुछ विशिष्ट क्रियाओं का नियंत्रण करते हैं, जैसे. प्रतिजैविक एवं भारी धातु प्रतिरोध (Antibiotic and heavy metal resistance), कुछ विषैले पदार्थों (Toxins) जैसे : कोलीसिन (Colicin) एवं बेक्टीरियोसिन (Bacteriocin) इत्यादि का उत्पादन, प्रदूषक विघट (Pollutant degradation) एवं नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Nitrogen Fixation) इत्यादि ।

9.5.3 जीन प्रतिरोपण अथवा क्लोनिंग में प्लाज्मिड की भूमिका (Role of Plasmid in Gene Cloning)

जीन क्लोनिंग की प्रक्रिया में प्लाज्मिड मुख्यत : वाहक (Vector) की भूमिका का निर्वहन करते हैं । इस प्रक्रिया के अन्तर्गत प्लाज्मिड पहले एक DNA खण्ड को अधिग्रहित करके, उसकी प्रतिकृति (Replication) अपने DNA के साथ, जीवाणु कोशिका में निर्मित करता है ।

प्रतिकृतिकरण के पश्चात विभोजी कणों (phage particles) के माध्यम से प्लाज्मिड को जीन प्रतिरोपण Gene Cloning) के लिए एक वाहक (Vehicle or vector) के रूप में प्रयुक्त किया जाता है । जीन प्रतिरोपण या क्लोनिंग को सम्पन्न करने वाले प्लाज्मिड DNA में निम्न विशेषताएँ होनी चाहिए :

1. इनको पोषी (Host) जीवाणु कोशिका से वियुक्त (isolate) करना आसान होना चाहिए ।
2. इनकी जीवाणु कोशिका में ही उपस्थिति आवश्यक है ।
3. इनको पोषी (Host) कोशिका में पुन : निवेशित (Reintroduce) करना संभव होना चाहिए।
4. प्लाज्मिड के सा व किसी रेखीय अणु (Linear molecule) को जोड़ने के बाद भी इनके प्रतिकृतिकरण (Replication) क्रम में कोई बदलाव नहीं होना चाहिये ।
5. प्लाज्मिड युक्त कोशिकाओं की पहचान एव चयन भी आसान होना चाहिए ।

प्लाज्मिड द्वारा जीन क्लोनिंग के लिए, पहले चयनित एवं संकुचित DNA खण्डों (Restricted Fragments) को प्लाज्मिड वाहक (Plasmid Vector) के साथ जोड़ा जाता है या निवेशित (Insert) किया जाता । इसके बाद प्रतिकृतिकरण

(Replication) के द्वारा इच्छित व निवेशित DNA खण्ड की प्लाज्मिड के साथ ही संख्या में वृद्धि होती है, इस

प्रक्रिया को **विवर्धन** (Amplification) कहते हैं । सामान्यतया : 10,000 क्षारक युग्म मुक्त DNA खण्ड को इस प्रक्रिया के अन्तर्गत प्लाज्मिड के द्वारा क्लोन करवाया जा सकता है ।

9.5.4 जीवाणु कोशिका से प्लाज्मिड का पृथक्करण

(Isolation of Plasmids from Host Bacterial Cell)

पोषी जीवाणु कोशिका से प्लाज्मिड खण्ड को विमुक्त (Isolate) करने का कार्य निम्न प्रकार से सम्पन्न करवाया जाता है

1. सर्वप्रथम जीवाणु कोशिका को अपमार्जक या डिटरजेंट (Detergent) पाउडर द्वारा उपचारित (Tratment) करवा कर कोशिका झिल्ली को विलीन करवा देते हैं । इस मिश्रण कौ लाइसेट (Lysate) कहते हैं ।
2. पोटेशियम एसिटेट या ऐसिटिक अम्ल के विलयन से जब लाइसेट की क्रिया करवाई जाती है तो जौवाणु को गुणसूत्रीय DNA एवं कुछ प्रोटीन अवक्षेपित (Precipitate) हो जाता है ।
3. सेन्ट्रीफ्यूज मशीन के द्वारा अवक्षेपित विलयन को तेजी से सेन्ट्रीफ्यूज करवाने पर, लाइसेट से गुणसूत्रीय DNA पृथक हो जाते हैं एवं अवसाद (Sediment) के रूप में तली में बैठ जाते हैं । प्लाज्मिड DNA कुछ RNA के साथ साफ लाइसेट ऊपर रह जाते हैं ।
4. एन्जाइम RNAse के साथ लाइसेट की क्रिया करवाने पर इसमें उपस्थित RNA पाचन (Digestion) या विघटन हो जाता है ।

5. अब लाइसेट को फीनोल (Phenol) से उपचारित करवाया जाता है तो कुछ समय बाद फिनोल एवं जल दोनों अलग - अलग सतहों में व्यवस्थित हो जाते हैं । प्रोटीन एवं RNAase फिनोल की सतह में एवं जल की सतह में प्लाज्मिड DNA प्राप्त होता है ।
6. पृथक्करण कपि (Separation Funnel) द्वारा फिनोल सतह को अलग कर लेते हैं । बची हुई जलीय सतह में एल्कोहल को मिलाने पर प्लाज्मिड DNA प्राप्त होता है ।

कुछ प्लाज्मिडों में विशिष्ट लक्षण जैसे लिंग कारक (Sex Factor), एवं जीवाणु गुणसूत्र में प्रतिलोमी निवेशन (Reserve insertion) इत्यादि भी पाये जाते हैं ।

9.5.5 प्लाज्मिड्स का वर्गीकरण (Classification of Plasmids)

उपरोक्त विशेषताओं तथा जीवाणुओं में इनके लक्षण प्ररूपी प्रभाव (Phenotypic effect) को ध्यान में रखकर वैज्ञानिकों के द्वारा प्लाज्मिड्स के वर्गीकरण विभिन्न प्रकार से किये गये हैं । सामान्यतया प्लाज्मिड्स का वर्गीकरण दो आधारभूत विशेषताओं के सन्दर्भ में किया गया है, ये हैं :

I. संक्रमणशीलता के आधार पर (On the basis of Infectiousness)
II. विशिष्ट कार्य के आधार पर (On the basis of specific function)

1. **संक्रमणशीलता के आधार पर प्लाज्मिड्स का वर्गीकरण**
(Classification of Plasmids on the basis of infectiousness)

प्लाज्मिड्स की संक्रामक क्षमता के आ धार पर इनको दो भागों में बाँटा गया है

(A) **संक्रमणशीलता या स्वसंचरणीय प्लाज्मिड** (Infectious or Self transmissible plasmids) : इस प्रकार के जीवाणुओं में F कारक तथा I कारक युक्त दो प्रकार के लिंग रोगों का निर्माण संक्रमणशील प्लाज्मिंड्स द्वारा नियंत्रित होता है । इन प्लाज्मिड्स में **स्थानान्तरण** (Transfertra) जीन उपस्थित होते हैं, जिसके कारण ये **जीवाणु संयुग्मन** (Conjugation) में विशेष भूमिका निभाते हैं । पोषी जीवाणु कोशिका में ऐसे संक्रामक प्लाज्मिड्स की संख्या 1 से लेकर 3 हो सकती है एवं इनका अणुभार ज्यादा होता है ।

लिंग रोमों (Sex pili) की जीवाणु कोशिका पर उपस्थिति के आधार पर इनको पुन : दो उपवर्गों में विभक्त किया जा सकता है

I. F-समान (F-like) : इनमें F+ कारक या लिंग कारक मौजूद होता है, जिसकी वजह से ये जीवाणु कोशिका में F-रोम या लिंग रोम के निर्माण को नियंत्रित करते हैं । ये लिंग रोम विशेष प्रकार के प्रोटीन पाइलिन (Pilin) के बने होते हैं । इस प्रोटीन में अनेक फॉस्फोग्लाइको प्रोटीन उप - इकाईयाँ व्यवस्थित होती हैं, जिनका अणु भार 11800 डाल्टन होता है ।
II. समान (I-Like) : इनमें एक विशेष कारक कोलीसिनोजिनक I कारक पाया जाता है, यह भी लिंग रोमों (Sex pili) के निर्माण को नियंत्रित करता है ।

(B) **असंक्रमणशील प्लाज्मिड्स (**Non-Infectious plasmids) : क्योंकि ये प्लाज्डिस लिंग रोमों के निर्माण को नियंत्रित नहीं करते, अत : संकमणशील प्लाज्मिड्स के समान इनमें एक

जीवाणु कोशिका से दूसरी कोशिका में स्थानान्तरित होने की क्षमता नहीं होती । इसके साथ ही ये अपनी उपस्थिति के द्वारा पोषी जीवाणु कोशिका को दाता प्रारूप (Donar state) प्रदान करने में अक्षम होते हैं । इसीलिये ये जीवाणु संयुग्मन में भी सक्रिय नहीं होते एवं इनका अणुभार भी कम होता है ।पोषी जीवाणु कोशिका में इनकी संख्या 20 से 25 तक होती है । इनके स्थानान्तरण के लिये वांछित लक्षण निम्न प्रकार से हैं :

(a) जीवाणु कोशिका में असंक्रमणशील प्लाज्मिड के साथ -साथ F^+ कारक या लिंग कारक संकमणशील प्लाज्मिड की उपस्थिति ।

(b) असंक्रमणशील प्लाज्मिड को जीवाणुभोजी (Bacteriophage) द्वारा स्थानान्तरित कर सकने के लिये पोषी जीवाणु में जीनवहन प्रक्रम (Tranduction device) का पाया जाना ।

2. विशिष्ट कार्य के आधार पर प्लाज्मिड्स का वर्गीकरण (Classification of Plasmids on the basis of Specific functions)

प्लाज्मिड्स द्वारा जीवाणु कोशिका में सम्पादित कुछ विशेष कार्यों के आधार पर इनको निम्न उपवर्गों में विभेदित किया जा सकता है :

(A) **लिंगकारक या स्थानान्तरण कारक** : F -प्लाज्मिड (Sex Factor or Fertility factor or F-Plasmid) : इस प्रकार की प्लाज्मिड युक्त जीवाणु कोशिकाओं का सर्वाधिक उपयोग अनुवांशिकी के क्षेत्र में अध्ययन के लिये किया जाता है (चित्र 9.6) । जिस पोषी जीवाणु कोशिका में प्लाज्मिड एक DNA खण्ड के रूप में पाया जाता है, उसे F^+ या दाता (Donor) कोशिका कहते हैं एव जिसमें F कारक अनुपस्थित होता है, उसे ग्राही या **अदाता** (Recipient) कोशिका कहते हैं । इसी प्रकार F^+ कारक जब **अतिरिक्त गुणसूत्रीय संरचना** (Extra Chromosomal Component) के रूप में जीवाणु कोशिका द्रव्य में पाया जावे तो ऐसी पोषी जीवाणु कोशिका (Hot cell) को F^+ कोशिका कहते हैं । इसके विपरीत जब F^+ कारक जीवाणु केन्द्रकाभ (Nucleoid) के

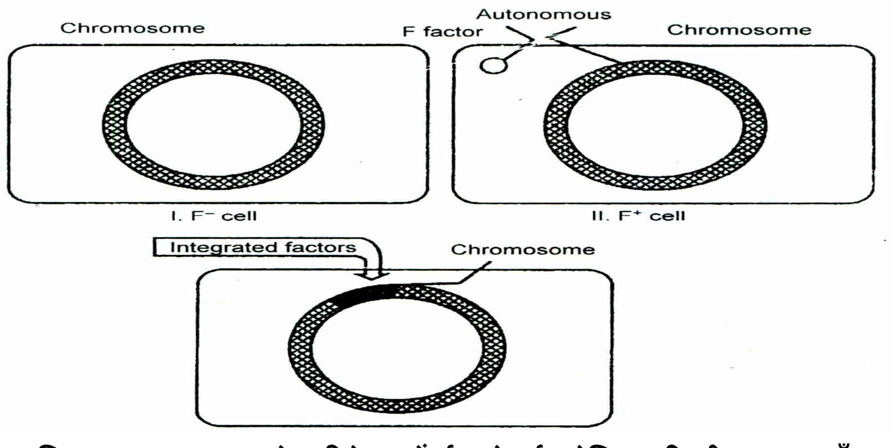

चित्र 9.6 : F कारक के परिप्रेक्ष्य में ई. कोलाई कोशिका की तीन अवस्थाएँ

साथ समावेशित हो जाता है या जुड़ (Incorporate) जाता है तो ऐसी दाता जीवाणु कोशिका को Hfr कोशिका (Hfr-Highfrequency recombinant) कहते है । इस प्रकार की पोषी जीवाणु कोशिकाओं में F^+ कारक अत्यन्त छोटे, एक या केवल दो प्रतिलिपियों में उपस्थित होते हैं (चित्र 9.7) । इसके अन्तर्गत F^+ कारक प्लाज्मिड **कोशिका द्रव्यीय वंशागति** (Cytoplasm Inheritance) में सक्रिय भूमिका निभाता है । क्योंकि इस उपवर्ग को प्लाज्मिड्स जीवाणु संयुग्मन (Bacterial Conjugation) के द्वारा (Donor) से **अदाता** या ग्राही (Recipient) जीवाणु कोशिका में स्थानान्तरण के दौरान गुणसूत्रीय जीन के ग्राही में अभिगमन को प्रेरित करते हैं, अत: इनको लैंगिक व स्थानान्तरण प्लाज्मिड भी कहा जाता है ।

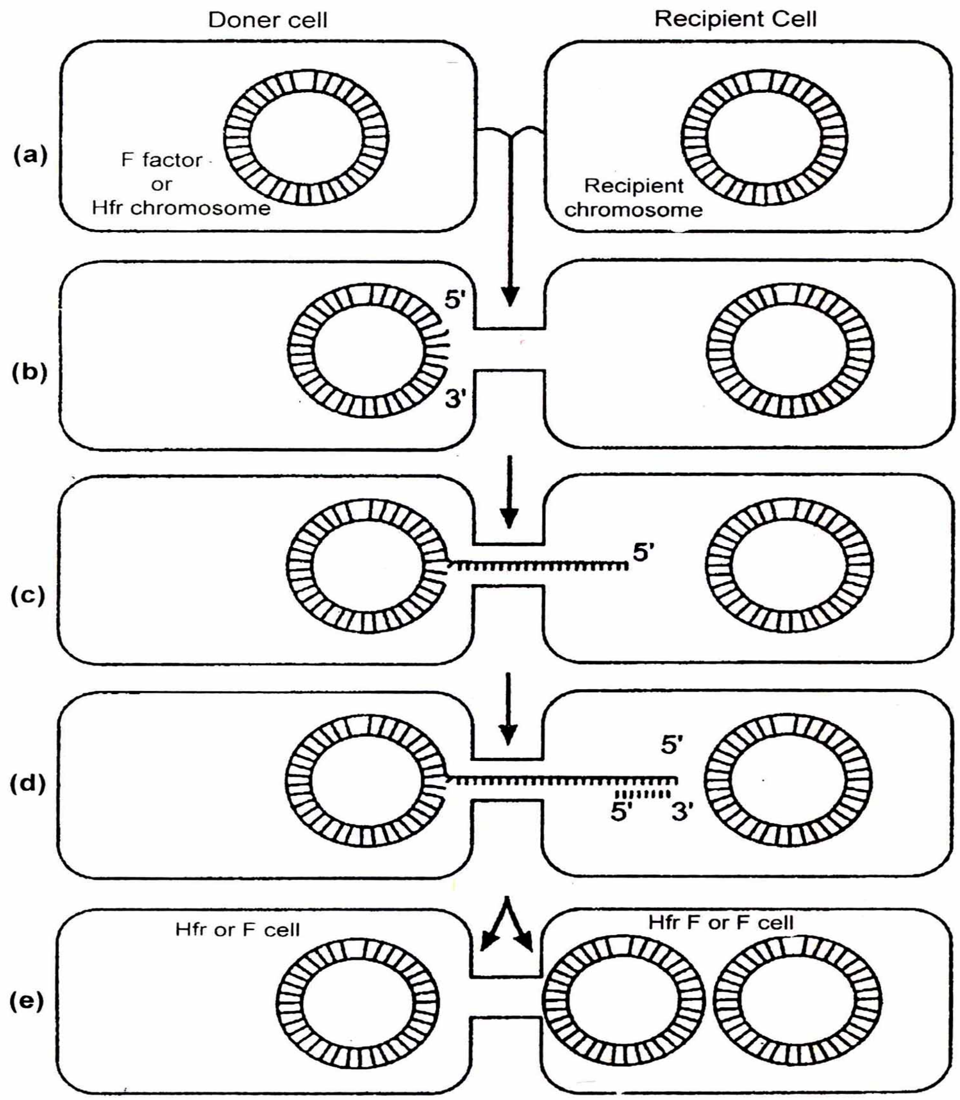

चित्र 9.7 : संयुग्मन के दौरान DNA स्थानान्तरण की क्रियाविधि (Conjugation)

(B) **रोगकारी प्लाज्मिड्स** (Pathogenic or Duisease Causing Plasmids) : विभिन्न प्रकार के स्तनपायी (Mammals) जन्तुओं में इस प्रकार के प्लाज्मिड्स पाये जाते हैं । इनमें कुछ **विषालु पदार्थो** (Toxins) का निर्माण करने में सहायक होते हैं इनको आंत्रिक प्लाज्मिड (Entric Plamid) कहते हैं I इसके अतिरिक्त कुछ अन्य रोगकारी प्लाज़्मिड्स एक विशेष पदार्थ α-**हीमोलायसिंस** का निर्माण कर रोगी की लाल रक्त कणिकाओं (RBC) को नष्ट करते हैं, इनको **Hly प्लाज़्मिड** कहते हैं I

(C) **कोल कारक या Col प्लाज्मिड** (Colinogenic factor or Col-Plasmid) : इनका सर्वप्रथम अध्ययन फ्रेडरिक (Fredric 1953) द्वारा किया गया था । यह एक असंक्रमणशील प्लाज्मिड है, जिसका एक से दूसरी कोशिका में स्थानान्तरण F^+ कारक की पोषी कोशिका में उपस्थिति पर निर्भर करता है । इस प्लाज्मिड् के द्वारा एक **विषालु** (Toxic) प्रोटीन **कोलीसिन** (Colicin) का उत्पादन किया जाता है । (कोलीसिन अनेक विषालु प्रोटीन्स का सम्मिलित समूह है) । ये **कोलीसिन** (Colicins) प्रोटीन्स उन निकट सम्बन्धी संवेदी (Sensitive) जीवाणु कोशिकाओं के लिये मारक या घातक (Lethal effect) सिद्ध होते हैं, जिनमें Col कारक अनुपस्थित होता है । इसके अतिरिक्त **कोलीसिन्स** के द्वारा संवेदी जीवाणुओं की विभिन्न महत्वपूर्ण जैव रासायनिक क्रियाओं पर भी जैसे - ATP संश्लेषण, प्रोटीन संश्लेषण, DNA संश्लेषण एवं अपघटन आदि पर भी मारक प्रभाव परिलक्षित होते हैं, जिससे संवेदी या Col कारक रहित जीवाणु मर जाते हैं ।

(D) **R-कारक प्रतिरोधी कारक या ड्रग प्रतिरोधी कारक** (Resistance factor-R or Drug Resistance Factor) : यह प्लाज्मिड आइसेकी एवं साकाई (Iseki and Sakai 1953) द्वारा खोजा गया था । ये प्रतिरोधक जीनयुक्त प्लाज्मिड होते हैं (R कारक युक्त), जो अनेक ऐन्टीबायोटिक दवाओं जैसे पेनिसिलिन, स्ट्रेप्टोमाइसिन एवं ट्रेटासाइक्लिन के विरुद्ध प्रतिरोधी क्षमता प्रदर्शित करते हैं । DNA युक्त R कारक की ड्रग प्रतिरोधिता का गुण संयुग्मन द्वारा R-रहित कोशिकाओं में भी स्थानान्तरित हो सकता है, अत: यह संक्रमणशील प्लाज्मिड है । पोषी जीवाणु कोशिका में इनकी संख्या एक से लेकर चार तक हो सकती है । इनका अणु भार बहुत अधिक 26 x 76 x 106 होता है एवं ये सुदीर्घित संरचनाएँ होती हैं, जो दो अवयवों से मिलकर बनती हैं ।

प्रथम घटक को RTF कारक या प्रतिरोध स्थानान्तरण कारक (Resistance Transfer Factor) कहते हैं जो (I) प्लाज्मिड में प्रतिकृतिकारक (Replication) का नियमन (II) प्रौढ़ जीवाणु कोशिका में प्लाज्मिड का रख-रखाव (Maintenance) रख कोशिका विभाजन के समय इसके विभाजन का नियंत्रण तथा (III) ज़ीवाणु संयुग्मन के लिए आवश्यक जीनों का नियमन एवं DNA के स्थानान्तरण, जैसे कार्यों को सम्पादित करता है ।

दूसरे घटक को **R निर्धारक या ड्रग प्रतिरोध निर्धारक** (Drug Resistance determinant) कहते हैं, यह RTF कारक के साथ रेखीय क्रम में संलग्न होकर ऐन्टीबायोटिक प्रतिरोधकता की

विशिष्टता को निर्धारित करते हैं, अर्थात् किस ऐन्टीबायोटिक को निष्प्रभावी किया जाना है । R निर्धारक घटक RTF के अभाव में असंक्रामक एवं असंचरणशील होता है ।

(E) **अपघटनकारी प्लाज्मिड** (Degradative Plasmid) : ये प्लाज्मिड्स विभिन्न जीवाणु प्रजातियों जैसे - स्यूडोमोनास (Pseudomonas) के विभिन्न प्रभेदों (Strains) में पाये जाते हैं तथा मृत कार्बनिक पदार्थों के अपघटन (Decomposition) में सहायक होते हैं ।

(F) **भारी धातु प्रतिरोधी प्लाज्मिड** (Heavy Metal Resistant Plasmids) : परपोषी जन्तुओं की आंत में उपस्थित जीवाणुओं (Entric Bacteria) में ये प्लाज्मिड पाये जाते हैं तथा इन जीवाणु कोशिकाओं को पारे (Mercury) जैसी भारी धातुओं (Heavy Metals) के विरुद्ध प्रतिरोध प्रदान करते हैं । दूसरे शब्दों में पारे के आयनों द्वारा उत्पन्न **विषालु पदार्थों** (Toxins) को सहन करने की क्षमता प्रदान करते हैं । उदाहरणार्थ, **स्यूडोमोनास** (Pseudomonas) में उपस्थित प्लाज्मिड पारे (Mercury) के विरुद्ध प्रतिरोधी क्षमता उत्पन्न करते हैं । **साल्मोनैला** (Salmonella) के प्लाज्मिड पारद, निकल, कोबाल्ट एवं आर्सनेट के विरुद्ध प्रतिरोधी क्षमता को विकसित करते हैं ।

(G) **अर्बुद प्रेरक प्लाज्मिड्स** (Tumor Inducing Plasmids) : ऐसे प्लाज्मिड्स कुछ विशेष जीवाणु प्रजातियों जैसे - **एग्रोबेक्टीरियम** (Agrobacterium) में पाये जाते हैं तथा अपने प्रति संवेदी (Sensitive) द्विबीजपत्री पौधों के शरीर में गांठे (Tumors) उत्पन्न करते हैं । अत: इनको Ti- प्लाज्मिड (Ti-Plasmids) भी कहते हैं । आधुनिक अनुवांशिक अभियांत्रिकी (Genetic Engineering) के अध्ययन में इनका विशेष महत्व है ।

फ्लोचार्ट-प्लाज्मिड वर्गीकरण

(Flow-Chart of Plasmid Classification)

(A) संक्रमणशील के आधार पर :

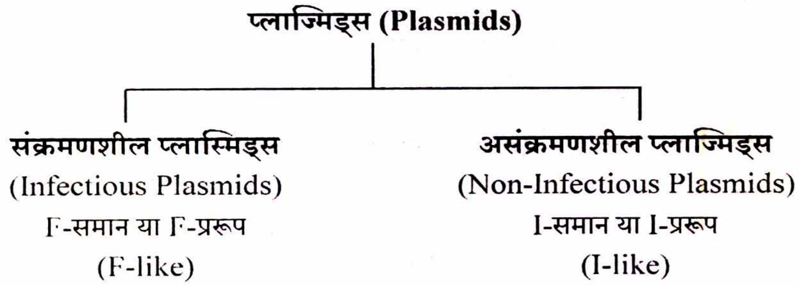

(B) विशिष्ट कार्यों के आधार पर :

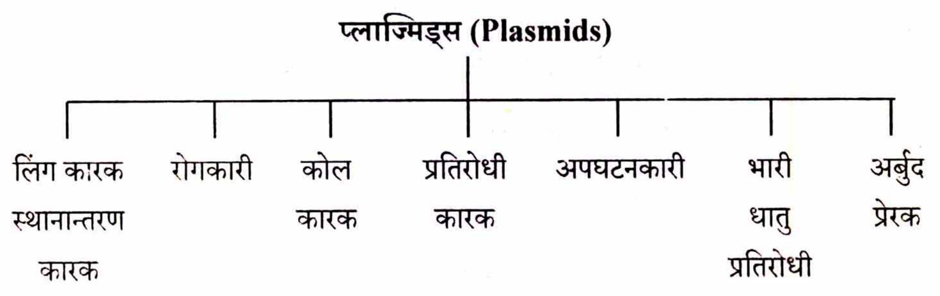

9.5.6प्लाज्मिड वाहक के वांछित लक्षण (Desired Characters of Vectors):

1. यह प्लाज्मिड स्वायत्त प्रतिकृतिकरण (Autonomous) में सक्षम होना चाहिये ।
2. वाहक प्लाज्मिड अणु में संकुचन स्थल (Restriction site) मौजूद होने चाहिये, इन संकुचन स्थलों को विशेष रेस्ट्रिक्शन एन्जाइम्स की सहायता से आसानी से अलग किया जा सकता है एवं इनको बाहरी DNA (Foreign DNA) से समाकलित कर सकते हैं ।

प्लाज्मिड की पोषी जीवाणु कोशिका के लिए वांछनीय लक्षण

(Desired Characters for Host Bacterial Cell)

1. इस प्रकार की जीवाणु कोशिका में पुनर्योजी DNA का प्रतिकृतिकरण (Replication) आसानी से हो जाना चाहिये । इसके साथ ही पुनर्योजी DNA प्रतिकृति को नष्ट करने वाले रेस्ट्रिक्शन एन्जाइमों की उपस्थिति पोषी कोशिका हेतु पूर्णतया अवांछनीय है ।
2. पोषी जीवाणु कोशिका का रूपान्तरण सरल होना चाहिये ।
3. इनमें स्वयं की पुनर्योजन क्षमता नहीं होनी चाहिये ।
4. पोषी कोशिका में मिथाइलेज अनुपस्थित होना चाहिये, क्योंकि यदि पोषी कोशिका में यह एन्जाइम मौजूद होगा, तो इसकी वजह से रेस्ट्रिक्शन एन्जाइम्स के पहचान स्थलों का मिथाइलेशन सम्भव है ।

आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी (Biotechnology) के क्षेत्र में उपरोक्त विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए, ऐस्केरेशिया कोलाई (Escherichia Coli) नामक जीवाणु प्रजाति की कोशिकाओं को एक आदर्श पोषी (Ideal host) के रूप में प्रयुक्त किया जाता है ।

9.5.7 प्लाज्मिड्स के कार्य (Functions of Plasmids)

1. प्लाज्मिड्स में कुछ महत्वपूर्ण ऐन्टीबायोटिक प्रतिरोधी जीन पाई जाती हैं, जिनका अनुप्रयोग औषधि निर्माण उद्योग एवं अन्य अनुसंधान कार्यों में किया जा सकता है ।
2. प्लाज्मिड्स पुनर्योजी DNA (Recombinant DNA) के विकास में सक्रिय योगदान करते हैं ।
3. जीवाणु संयुग्मन द्वारा प्लाज्मिड्स महत्वपूर्ण जीनों को स्थानान्तरित कर सकते हैं ।
4. कुछ प्लाज्मिड DNA खण्ड पोषी कोशिकाओं में रोग प्रतिरोधी गुण, भारी धातु प्रतिरोधक इत्यादि क्षमताएँ विकसित करते हैं ।
5. जीन प्रतिरोपण या क्लोनिंग में प्लाज्मिड महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं ।

9.6 स्थलान्तरणशील आनुवांशिक तत्व (Transposable Genetic Elements)

9.6.1 परिचय (Introduction)

सजीवों की कोशिकाओं में अनेक प्रकार की अवैध पुनर्योजन (Illegitmate Recombination) क्रियाएँ विशिष्ट DNA खण्डों में पाई जाती है, जिनमें न्यूकिलओटाइड अनुक्रमों की समजात

प्रवृत्ति या तो बहुत कम होती है या नहीं पाई जाती । उपरोक्त पुनर्योजन के परिणामस्वरूप ये DNA खण्ड (असमजात) आपस में जुड़ जाते हैं । ऐसी पुनर्योजन कियाएँ आनुवांशिक सूचनाओं के संगठन एवं जीन अभिव्यक्ति के नियमन में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है । अत : स्थलान्तरणशील आनुवांशिक तत्व (TGE) अर्थात् विजातीय (DNA) खण्ड अवैध पुनर्योजन का सबसे बड़ा कारण है ।

ऐसे विजातीय DNA खण्ड जो संरचना एवं आनुवांशिकी में एक-दूसरे से पूर्णतया भिन्न हो एवं एक गुणसूत्र के एक विस्थल से दूसरे विस्थल में या एक गुणसूत्र से दूसरे असमजात गुणसूत्र में गति कर सकते हों, उनको स्थलान्तरणशील आनुवांशिक तत्व (Transposable Genetic Elements) कहते हैं । ये प्रकृति में विभिन्न उत्परिवर्तनों का मुख्य कारण होते हैं ।

इस प्रकार के DNA खण्डों को जीनोम में एक से अधिक या कई स्थानों पर जोड़ा (Insert) जा सकता है । ये DNA खण्ड (TGE) गुणसूत्र के जिस स्थान पर निवेशित होते हैं अथवा जुड़ते हैं, वहाँ की जीन्स को भी प्रभावित कर उनको निष्क्रिय कर देते हैं । इनके द्वारा गुणसूत्रों में विसंगतियां (Chromosomal aberrations) भी उत्पन्न होती हुई देखी जा सकती है ।

स्थलान्तरणशील विजातीय DNA खण्डों (TGE) को प्रोकैरियोट्स में जीवाणुभोजी (Phage) एवं जीवाणुओं, निम्न वर्गीय यूकेरियोट्स में कवक तथा जन्तुओं में कीटों खोजा गया है ।

9.6.2 स्थलान्तरणशील तत्वों की विशिष्टताएँ

(Characteristics of Transposable Genetic Elements)

1. इनका निवेशन एक गुणसूत्र में एक स्थिति से दूसरी स्थिति पर हो सकता है ।
2. ये दूसरे असमजात गुणसूत्र पर भी DNA खण्ड के रूप में जुड़ते हैं ।
3. इनके स्थलान्तरण के समय एक DNA खण्ड (Gene) या गुणसूत्र खण्ड के रूप में स्थानान्तरित होते हैं तथा दूसरे विस्थल पर जुड़ते या निवेशित होते हैं ।
4. जुड़ने (insertion) के पश्चात् ये DNA खण्ड उस स्थान के जीनों को प्रभावित करते हैं एवं इस प्रकार के गुणसूत्रों पर संरचनात्मक परिवर्तन उत्पन्न कर सकते हैं ।
5. स्थलान्तरणशील तत्वों (TGE) से उत्पन्न परिवर्तन स्थायी नहीं होते, अपितु ये वापस पूर्वावस्था के लक्षण भी प्रकट कर सकते है ।
6. DNA खण्डों में स्थलान्तरणशील, एक विशेष एन्जाइम **ट्रान्सपोसेज** (Transposase) द्वारा अभिप्रेरित होता है ।
7. **ट्रान्सपोजेबल तत्व** (TGE) केवल सजीव की कायिक कोशिकाओं में ही निवेशित होकर उत्परिवर्तन (Mutation) उत्पन्न करते हैं, अन्य किसी कोशिका में नहीं ।
8. किसी ग्राही गुणसूत्र खण्ड पर निवेशित होने से पहले **ट्रांसपोजेबल DNA खण्ड** का पहले प्रतिकृतिकरण (Replication) होता है ।
9. विभिन्न पादप प्रजातियों में ट्रान्सपोजेबल आनुवांशिक तत्वों या ट्रान्सपोजन्स की उपस्थिति को लक्षण प्ररूप (Phenotype) के द्वारा पहचाना जा सकता है, जैसे मक्का के भुट्टे में चितकबरे धब्बे ।

क्योंकि स्थानान्तरणशील आनुवांशिक DNA खण्डों या ट्रांसपोसोन्स (Transposons) में एक ही गुणसूत्र पर दूसरी स्थिति में या एक गुणसूत्र से दूसरे असमजात गुणसूत्र में गतिशील (Mobile) होंने का अनूठा लक्षण पाया जाता है, अत: इन्हें जम्पिंग जीन्स (Jumping Genes) भी कहते हैं ।

9.6.3 स्थलान्तरणशील तत्वों के प्रकार (Type of Transposable Elements)

प्राय : स्थलान्तरणशील तत्व दो प्रकार के पाये जाते हैं

(1) निवेशन अनुक्रम (Insertion Sequences)

(2) ट्रान्सपोजन्स (Transposons)

(1) **निवेशन अनुक्रम (Insertion Sequences) या प्रोकेरियोट्स के ट्रान्सपोजेबल तत्व (चित्र 9.8, 9.9 व 9.10) :** ये स्थलान्तरणशील तत्व DNA के छोटे खण्ड होते हैं, जो 800 से 1400 धारक युग्मों (Basic Pairs) द्वारा बने होते हैं, एवं प्रोकेरियोट्स जैसे जीवाणुओं तथा वाइरसों में पाये जाते हैं । इन DNA खण्डों को IS तत्व या निवेशन अनुक्रम तत्व (Insertion Sequences Elements) भी कहते हैं । ये निवेशन अनुक्रम जीवाणुओं जैसे - ई. कोलाई (E. coli) में संरचनात्मक जीन या नियामक जीन के साथ निवेशित होकर अवैध पुनर्योजन (Illegitimate recombination) अथवा उत्परिवर्तन (Mutation) को प्रोत्साहित करते हैं । इनके निवेशन के परिणामस्वरूप ई. कोलाई कोशिका में गुणसूत्र के क्षारक युग्मों में परिवर्तन आ जाता है । ऐसा समझा जाता है कि ये जीवाणु गुणसूत्र में अधिकाय (Episome) अर्थात् मुख्य वर्तुलाकार जीवाणु DNA से जुड़ा हुआ दूसरा DNA खण्ड के समाकलन में भाग लेते हैं । इस प्रकार के IS तत्व जीवाणु कोशिकाओं के F, Ft एवं इपीसोम्स में पाये जाते हैं ।

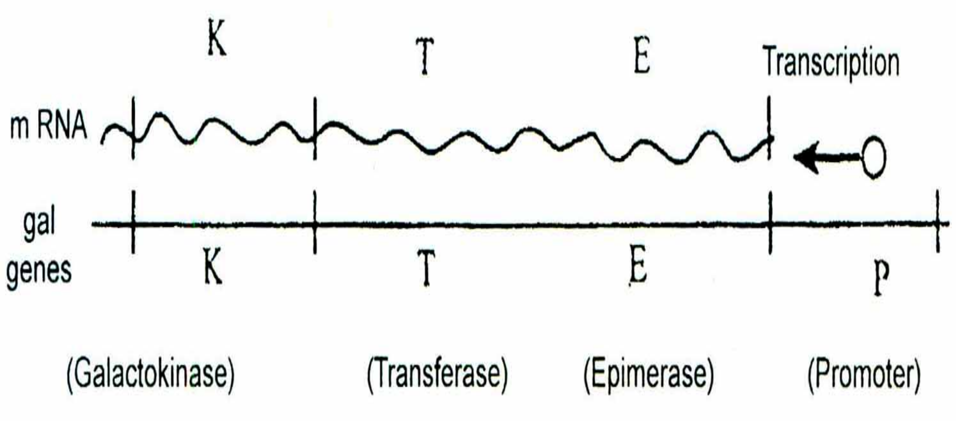

चित्र 9.8 : ई. कोलाई का गेल ओपेरान, जिसमें तीन संरचनात्मक (Structural) जीन्स एवं प्रवर्धक (Promotor) प्रदर्शित किये गये हैं ।

(a) Transposition of an element can a mutation

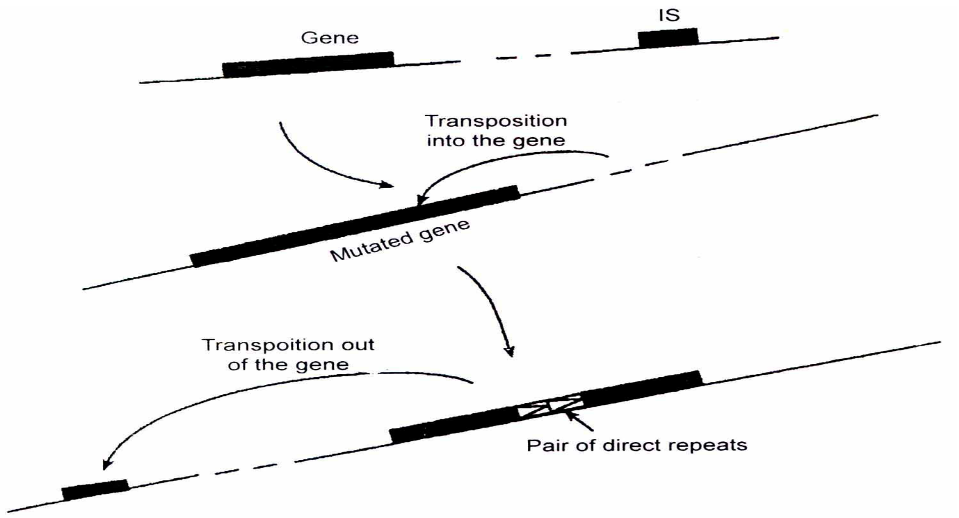

(b) The structure of an is

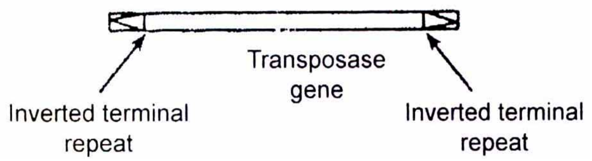

चित्र 9. 9 : निवेशन अनुक्रम

प्लाज्मिड को पोषक कोशिका के गुणसूत्र के साथ समाकलित करने में IS तत्वों की विशेष भूमिका होती है । जब ये प्लाज्मिड पोषक कोशिका के गुणसूत्र के साथ जुड़ जाते हैं अथवा समाकलित हो जाते हैं (इपीसोम) तो समाकलन के बाद ये गुणसूत्र से जुड़ाव के स्थान पर द्विगुणन को दोषपूर्ण व अनियमित कर देते हैं । अभी तक ई. कोलाई (E. Coli) में चार प्रकार के Is तत्वों की खोज की गई है । ये निम्न प्रकार से हैं:

(1) Is_1 - 768 क्षारक युग्म, 8 प्रतियाँ प्रत्येक जीनोम में ।

(2) Is_2 - 1327 क्षारक युग्म, 5 प्रतियाँ प्रत्येक जीनोम में ।

(3) Is_3 - 1300 क्षारक युग्म, एक या अधिक प्रतियाँ ।

(4) Is_4 - 1400 क्षारक युग्म, एक या अधिक प्रतियाँ ।

इसके अतिरिक्त एक अन्य जीवाणु प्रजाति सालमोनैला टाइफीम्यूरियम (Salmonella typhimurium) में Is_1 तो मिलता है, परन्तु Is_2 नहीं पाया जाता ।

9.6.4 यूकेरियोट्स में स्थलान्तरणशील आनुवांशिक तत्व

(Transposable elements in eukaryotes)

यूकैरियोट्स जैसे- ड्रोसोफिला, चूहों तथा यीस्ट में पाये जाने वाले ट्रांसपोसोन्स वैसे तो अपनी संरचना में प्रोकैरियोट्स में पाये जाने वाले ट्रॉसपोजन्स से समानता प्रदर्शित करते हैं, लेकिन फिर

भी इनके समाकलन एवं अभिव्यक्ति में कुछ भिन्नताएँ दृष्टिगोचर होती हैं । अत: यूकैरियोट्स में उपस्थित स्थलान्तरणशील तत्व निम्न प्रकार के पाये जाते हैं :

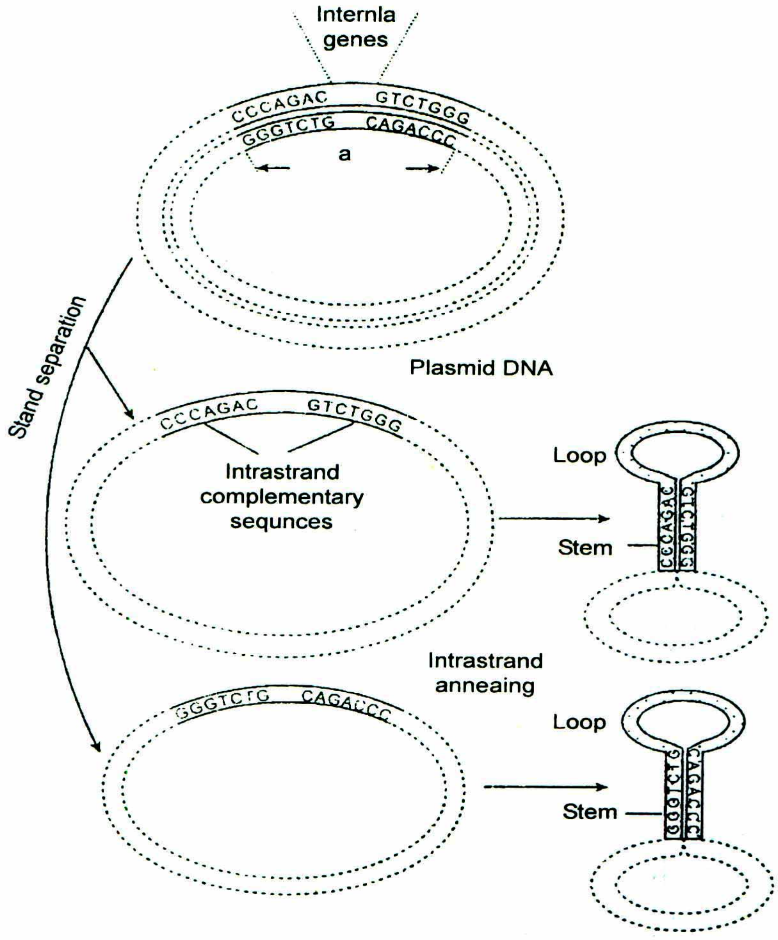

चित्र 9.10 : प्रोकैरियोट प्लाज्मिड में उपस्थित स्थलान्तरणशील तत्व जिसमें Inverted repeats, stem व Loop का निर्माण कर रही है ।

(a) चूहों, ड्रोसोफिला (Drosophila) एवं यीस्ट (Yeast) की कोशिकाओं में मिलने वाले सीधे लम्बे अन्तस्थ तत्व (Transposon having direct long terminal repeats) यीस्ट में इनको Ty स्थलान्तरणशील तत्व (Ty elements) भी कहते हैं ।

(b) ड्रोसोफिला मेलेनोगास्टर (Drosophila melanogaster) में मिलने वाले सिरे पर स्थित विपरीत लम्बे अन्तस्थल स्थलान्तरणशील तत्व या ट्रांसपोसोन ड्रोसोफिला में विशेष प्रकार के TC एवं FB ट्रान्सपोसोन पाये जाते हैं (Transposons having Inverted long Terminal Repeats) I

(c) सिरे पर अवस्थित विपरीत एवं छोटे अन्तस्थ स्थलान्तरणशील तत्व या ट्रांसपोसोन (Transposons having Inverted, Short terminal Repeats), **ड्रोसोफिला मेलेनोगास्टर** के p व 1 खण्ड, मक्का के Ac/Ds खण्ड तथा **सीनोरहेब्डाइटिस एलीगेन्स**

नामक कृमि (Nematode) के Tc तत्व इसी प्रकार के स्थलान्तरणशील तत्वों (Transposons) की श्रेणी में आते हैं ।

(d) वे स्थलान्तरणशील तत्व जिनमें अन्तस्थ सिरे नहीं पाये जाते या **अन्त:स्थ सिरों विहीन ट्रासपोसोन** (Transposon without terminal repeats) : इस प्रकार के ट्रासपोसोन प्राय: स्तन धारी प्राणियों (Mammals) में पाये जाते हैं एवं इनको आलू (Alu) तत्व भी कहते हैं ।

(e) यीस्ट के Ty तत्व जो ट्रांसपोसोन्स के सिरो पर सीधे जुड़ते हैं अथवा निवेशित होते हैं । इनका जुड़ाव पोषक कोशिका के गुणसूत्र पर 5 क्षारक युग्मों के ट्रासपोसोन के निवेशन के रूप में होता है एवं परिणामस्वरूप कोशिका के पोषक गुणसूत्र में उत्परिवर्तन उत्पन्न हो जाते हैं । उपरोक्त सीधे निवेशन अनुक्रमों (Direct Sequence) को डेल्टा अनुक्रम भी कहते हैं । एक Ty तत्व में डेल्टा () की संख्या लगभग 100 तक हो सकती है एवं एक यीस्ट कोशिका में लगभग 35 की संख्या तक Ty तत्व पाये जाते हैं ।

मक्का के Ac/Ds नियन्त्रक तत्व (Ac/Ds Controlling elements of Corn) (चित्र 9.11, 9.12 व 9.13):

ये मक्का में एक विशेष Ac कारक की उपस्थिति में मक्का के गुणसूत्रों पर Ds तत्वों का निवेशन करते हैं । Ac तत्व के द्‌वारा स्थलान्तरण (Transposition) के लिए उत्तरदायी एक विशेष एन्जाइम **ट्रान्सपोसेस** (Transposase) का निर्माण होता है । इस एन्जाइम में प्रतिलोमी पुनरावृत्त अनुक्रम (Inverted repeated sequence) को पहचानने की क्षमता होती है एवं ये गुणसूत्र पर उलटे क्रमों (Repeated reverse sequence) पर स्थित होते हैं । गुणसूत्र पर निवेशित स्थान पर Ds तत्व का निवेश करने से रुकावट (Break) आ जाती है । इस रुकावट की वजह से पुनर्योजन के दौरान गुणसूत्र की संरचना में परिवर्तन आ जाता है एवं वर्णकों का उत्पादन करने वाले कुछ जीन विलुप्त हो जाते हैं । यह प्रक्रिया नितान्त एवं पूर्णतया अस्थायी होती हैं, उसका उल्टा होने अर्थात् रुकावट के हटने से फिर से, वर्णकों के उत्पादन करने की क्षमता लौट आती है । इसके परिणामस्वरूप मक्का में भुट्टों (Kernels) की रंजकता या भुट्टों के दानों के रंगों में भिन्नताएँ उत्पन्न होती है व भुट्टे चितकबरे (Variegated) दिखाई पड़ते हैं ।

बारबरा मेक्लिन्टोक द्‌वारा मक्का पर नियन्त्रण तत्वों का अध्ययन

(Barbara Mc Clintock's experiments)

आजकल यद्‌यपि ट्रान्सपोसोनों के बारे में अधिकांश अध्ययन, प्रोकैरियोट जीवों में ही किया जा रहा है, परन्तु फिर भी उच्चवर्गीय पौधों में सर्वप्रथम बारबरा मेक्लिन्टोक (Barbara Mc Clintok) नामक महिला वैज्ञानिक द्‌वारा सन् 1950 में नियंत्रक या स्थलान्तरणशील तत्वों को मक्का में प्रदर्शित किया गया मेक्लिन्टोक के अनुसार कुछ उत्परिवर्तनीय जीन (Mutable genes) अपने मूल प्रारूप एवं प्रकृति से हट कर असामान्य व्यवहार करते है, ऐसा उनमें कुछ विशेष प्रकार के आनुवांशिक तत्वों द्‌वारा प्रभावित होने के कारण होता हैं । इस प्रकार

उत्परिवर्तनीय जीनों को प्रभावित करने वाले अनुवांशिक तत्वों को नियंत्रक तत्व या स्थलान्तरणशील तत्व (Transposable elements) कहते हैं ।

मैक्लिन्टोक ने मक्का (Indian Corn) पर किये गये अपने अध्ययनों के आधार पर यह बताया, कि एक गुणसूत्र पर उपस्थित नियंत्रण तत्व सदैव स्थिर नहीं होते तथा जीन एक गुणसूत्र से दूसरे गुणसूत्र में गति कर सकते हैं । उनके द्‌वारा मक्के के दानों में रंग परिवर्तन को नियन्त्रित करने के लिए वर्णक जीन उत्तरदायी होते हैं । ये जीन रंग परिवर्तन को विलोपित (Switch off) या प्रकट (On) कर सकते हैं । मेक्लिन्टोक ने यह भी बताया कि मक्का में पाये जाने वाले नियंत्रक तंत्र वस्तुत: दो तत्वों से मिलकर नियंत्रक यंत्र (Controlling system) का गठन करते हैं, जिसे Ac-Ds तंत्र (Ac-Ds System) या सक्रियक वियोजक तन्त्र (Activator-dissosiator system) कहते हैं । दूसरे शब्दों में इस तन्त्र में उपस्थित जीनों को हम सक्रियक एवं वियोजक जीन कह सकते हैं । इनमें से सक्रियक जीन (Ac), एक वियोजक जीन (Ds) के मक्का के नवें गुणसूत्र की भुजाओं पर गतिशील होने या उछलने के या जम्प (Jump) करने के लिए निर्देशित करता है, इस विस्थल पर वर्णक परिवर्तन का नियमन होता है । इस उछलने वाले जीन अथवा ट्रान्सपोसोन को जम्पिंग जीन (Jumping Gene) कहा जाता है ।

मक्का के Ac-Ds तन्त्र में वियोजक जीन (Ds) नवें गुणसूत्र पर संरचनात्मक जीन C_1 के पास अवस्थित होता है । यह संरचनात्मक जीन C1 रंग उत्पन्न करने के लिए जिम्मेदार होता है, जिससे रंगीन भुट्टे (Kernels) उत्पन्न होते हैं । परन्तु वियोजक तन्त्र Ds की उपस्थिति में C_1 का कार्य अपभासित (Suppress) हो जाता है, जिसके कारण रंगहीन भुट्टे (Colourless kernels) उत्पन्न होते हैं, जिनके दाने सफेद रंग के होते हैं । जैसे ही इस विस्थल पर सक्रियक जीन Ac उपस्थित होता है जो जीन Ac की उपस्थिति में Ds अन्य स्थान पर चला जाता है अर्थात् इसका स्थलान्तरण (Transposition) हो जाता है । इस प्रकार सक्रियक जीन Ac के द्‌वारा Ds को प्रतिस्थापित करके C_1 के दबाव को हटा दिया जाता है एवं C_1 पुन : सक्रिय या कार्यशील होता है तो भुट्टे के रंग में रंगहीन पृष्ठभूमि पर रंगीन धब्बा पाया जाता है लेकिन यदि भुट्टे के विकास की उत्तरवर्ती या बाद की अवस्थाओं में Ds का स्थलान्तरण होता है तो भुट्टे में एक छोटा सा धब्बा पैदा होता है । इसी कारण मक्का के भुट्टे (kernel) में दानों के रंग की विविधताएँ देखी जाती हैं ।

यहीं नहीं अन्य जीवों में भी , Ac-Ds (सक्रियक -वियोजक) स्थलान्तरणशील तत्वों के द्‌वारा इनकी कार्यप्रणाली का नियमन किया जाता है । इस प्रकार के स्थलान्तरणशील तत्वों की जानकारी मक्का के अतिरिक्त, चूहों, ड्रोसोफिला, मनुष्यों एवं अन्य यूकैरियोटिक जीवों में भी मिली है मक्का में किये गये ट्रान्सपोजन्स के अध्ययन कार्य के आधार पर मेक्लिन्टोक को सन् 1963 में नोबल पुरस्कार द्‌वारा सम्मानित किया गया था । मक्का (Zea mays) में Ac-Ds स्थलान्तरणशील तत्वों (Transposable elements) की कार्य प्रणाली को चित्रों के माध्यम से निम्न प्रकार समझा जा सकता है :

Ac व Ds दोनों ही स्थलान्तरणशील तत्व (Transosable elements) संरचनात्मक रूप से लगभग समान होते हैं एवं इनकी उपस्थिति गुणसूत्र के किसी भी विस्थल पर देखी जा सकती है लेकिन मक्का के गुणसूत्र में ये एक से अधिक पाये जाते हैं । ये दोनों तत्व अर्थात् Ac या Ds गुणसूत्र के किसी भी विस्थल पर जोड़े या निवेशित (Insert) किये जा सकते हैं । ये विलोमित एवं छोटे पुनरावृति अनुक्रमों (Reverse small repeated sequence) द्वारा निवेशित होते हैं ।

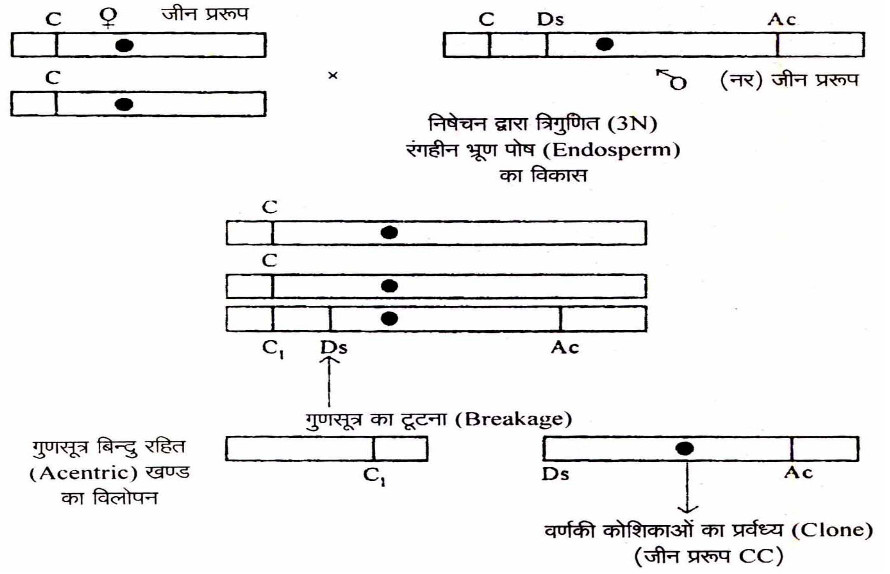

चित्र 9.11 : अस्थलान्तरणशील (Non transposable) Ds तत्व Ac सक्रियक द्वारा प्रभावित

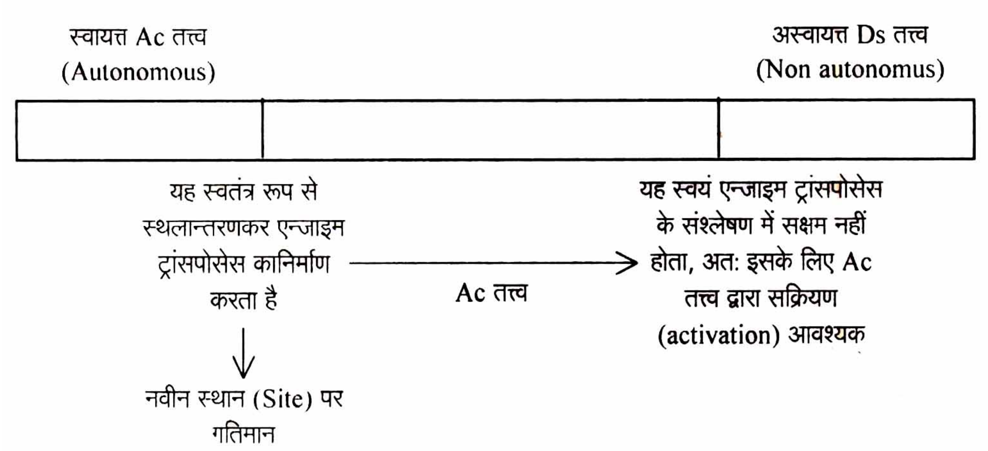

चित्र 9.12 : Ds तत्वों के सक्रियण (Activation) में Ac तत्वों का योगदान

निवेशित हो जाने के पश्चात् ये उस विस्थल (Locus) के जीन की कार्य प्रणाली को पूर्णतया निष्क्रिय कर देते हैं । सम्भवत: इसीलिए मेक्लिन्टोक द्वारा इनको अनुशासक या नियंत्रक तत्व (Controlling elements) कहा गया ।

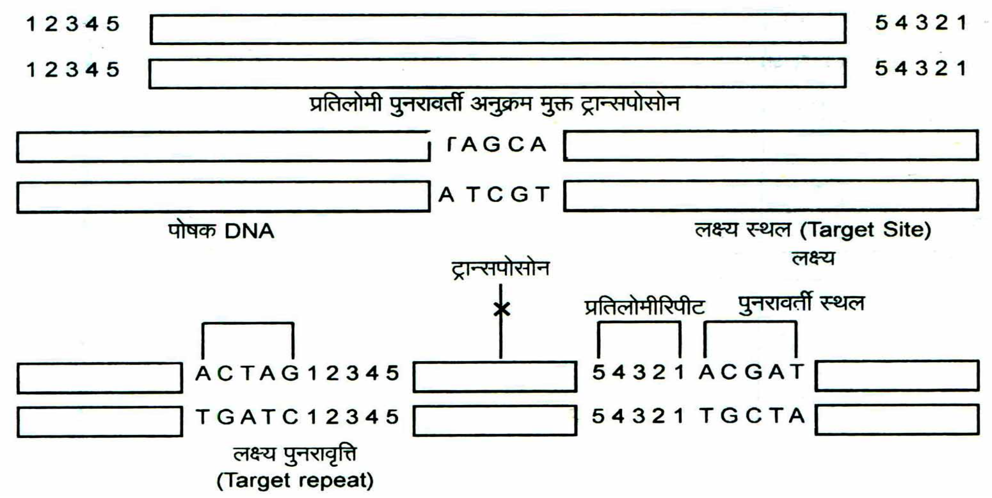

चित्र 9.13 : ट्रान्सपोसोन्स में उपस्थित प्रतिलोमी अन्तस्थ पुनरावृत्ति अनुक्रम (Repeats) गुणसूत्रों के लक्ष्य विस्थल (Target site) पर लगाकर सीधे रिपीट्स का निर्माण

मेक्लिनटोक द्वारा खोजे गये मक्का के Ac-Ds स्थलान्तरणशील तत्व ऐसे DNA खण्ड होते हैं, जिनमें प्रतिलोमी (Reverse) अन्तस्थ अनुक्रम (Reverse sequence) पाये जाते हैं एवं प्रत्येक सिरे पर ये प्रतिलोमी अनुक्रम (Reverse sequence) उपस्थित होते हैं । यूकैरियोट जीवों में उपस्थित Ac-Dc तत्व जीनोम के दस प्रतिशत हिस्से में मौजूद रहते हैं । मुख्य रूप से ये तत्व कायिक कोशिकाओं (Somatic cells) को ही प्रभावित करते हैं, इसके साथ ही जिस जीन में ये निवेशित (Insert) होते हैं, उसकी कार्य प्रणाली पर भी अच्छा प्रभाव डालते हैं इनके द्वारा उत्पन्न उत्परिवर्तन वैसे तो अधिकांशतया अस्थाई प्रकार के होते हैं, लेकिन अक्सर स्थायी उत्परिवर्तन भी विकसित हो सकते हैं ।

नीना फेडरॉफ के मक्का के Ac - तत्व पर प्रयोग

(Experiments Conducted by Neena Federoff on Maize Ac-elements)

नीना फेडरोफ द्वारा मक्का में Ac तत्व के अध्ययन के आधार पर यह तथ्य उभर कर सामने आया कि इस प्रकार के ट्रान्सपोसोन तत्वों का गठन दो घटकों क्रमशः A एवं C तत्वों द्वारा सम्मिलित रूप से मिलकर होता है । A तत्व एक m-RNA के रूप में होता है, जिसमें 807 कोडोन अनुक्रम पाये जाते हैं एवं इस एकमात्र जीन में 5 एक्सोन होते हैं जबकि C तत्व 4563 क्षारको युग्मों द्वारा निर्मित DNA खण्ड है ।

9.6.5 स्थलान्तरणशील तत्वों के उपयोग (Use of Transposable elements)

इसके प्रमुख उपयोग निम्न प्रकार से हैं

(1) स्थलान्तरणशील तत्व के रूप में प्लाज्मिड का जीन प्राकृतिक रूप से एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थान्तरित किया जा सकता है । यह प्रक्रिया कृषि आनुवांशिकी के क्षेत्र में अत्यन्त उपयोगी एवं महत्वपूर्ण साबित हुई है । इसके द्वारा जीवाणु एग्रोबेक्टीरियम ट्यूमिफेसियेन्स (Agrobacterium tumefaciens) में मौजूद Ti प्लाज्मिड का सभी प्रकार के आवृतबीजी

पौधों में रूपान्तरण (Transformation) के लिए उपयोग कृषि के क्षेत्र में इनकी महत्ता (Significance) का अच्छा उदाहरण है ।

(2) इनको विभिन्न जीवाणु प्रभेदों (Strains) की पहचान के लिए आनुवांशिक चिन्हक (Genetic Markers) के रूप में प्रयुक्त किया जाता है । इस प्रकार ट्रान्सपोसोन्स की सहायता से वैज्ञानिकों ने मलेरिया रोगकारी सूक्ष्म जीव की पहचान करने में सफलता प्राप्त की है ।

(3) ट्रान्सपेसोन्स का उपयोग सहलग्न मानचित्र (Linkage map) को तैयार करने में भी मार्कर (Marker) के तौर पर किया जाता है ।

(4) स्थलान्तरणशील तत्वों का उपयोग प्राकृतिक स्वतः उत्परिवर्तनों (Spontaneous Mutations) को उत्पन्न करने में भी किया जा सकता है क्योंकि इनको जिस विस्थल पर निवेशित (Insert) किया जाता है, ये वहाँ की जीन को निष्क्रिय कर देते हैं ।

बोध प्रश्न

बहुविकल्पी प्रश्न (Multiplication Choice type Questions)

1. कोशिका द्रव्य द्वारा प्रेषित अनुवांशिक सूचनाएँ कहलाती है.
   (A) कोशिका द्रव्यीय वंशागति
   (B) पैतृक वंशागति
   (C) केन्द्रकयि वंशागति
   (D) गुणसूत्रीय वंशागति
2. वह DNA खण्ड जो मुख्य गुणसूत्र से जुड़ा होता है :
   (A) प्लाज्मिड
   (B) अधिकाय
   (C) कोस्मिड
   (D) अधिकाय
3. मुख्य गुणसूत्र से अलग DNA खण्ड कहलाते हैं :
   (A) कोस्मिड
   (B) ऐपीसोम
   (C) प्लाज्मिड
   (D) अधिकाय
4. ये प्लाज्मिड जो लिंग रोमों के निर्माण को नियंत्रित नहीं करते, कहलाते हैं :
   (A) संचरणीय
   (B) संक्रमणशील
   (C) असंक्रमणशील
   (D) इपीसोम
5. कोल प्लाज्मिड की खोज की थी :

(A) कोरेन्स ने

(B) सटन ने

(C) सकाई ने

(D) फ्रेडरिक ने

6. प्लाज्मिड की सर्वप्रथम खोज की थी :

(A) हेस ने

(B) सकाई ने

(C) फ्रेडरिक ने

(D) इसेकी ने

7. विजातीय DNA खण्ड जो एक गुणसूत्र से दूसरे गुणसूत्र में गति करते हैं, कहलाते हैं :

(A) प्लाज्मिड

(B) कॉस्मिड

(C) ट्राँसपोसोन

(D) निवेशन क्रम

रिक्त स्थानों की पूर्ति (Fill in the Blanks) :

1. यूकैरियोट्स में स्थलान्तरणशील तत्व.........पादप में खोजे गये ।
2. मक्का में स्थलान्तरणशील तत्व को खोजने हेतु....................को नोबल पुरस्कार मिला ।
3. R कारक.........,.......... प्रकार का प्लाज्मिड है ।
4. सेंगर ने.................... में कुछ लक्षणों की वंशागति का अध्ययन किया ।

9.7 सारांश (Summary)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से ज्ञात होता है कि सजीव कोशिकाओं में आनुवांशिक पदार्थ DNA की अधिकतम मात्रा केन्द्रक में निहित होती है अर्थात् अधिकांश आनुवांशिक सूचनाएं केन्द्रक में ही संग्रहित होती है । किन्तु केन्द्रक के बाहर कोशिका द्रव्य अथवा कोशिकांगो में भी DNA पाया जाता है, जिसे अतिरिक्त केन्द्रकीय जीनोम कहते हैं । यह भी कोशिकाओं की विभिन्न क्रियाएँ तथा लक्षणों को नियंत्रित करता है । इसकी इकाई प्लाज्मा जीन (Plasma gene) कहलाती है । केन्द्रकीय DNA के समान ही mt-DNA विभिन्न प्रकार के RNAs तथा संरचनात्मक प्रोटीन्स को संश्लेषित करने की क्षमता रखता है । लेकिन अन्य एन्जाइम्स अथवा प्रोटीन संश्लेषण हेतु केन्द्रकीय जीन की आवश्यकता होती है । यीस्ट में mt-DNA पिटाइट उत्परिवर्ती का कारक होता है, जिससे इनमें वायवीय श्वसन क्रिया पूर्णरूप से सम्पादित नहीं हो पाती है । इसी प्रकार मानव का mt DNA भी कुछ प्रोटीन्स, rRNA व t-RNA के संश्लेषण को नियंत्रित करता है । माइटोकॉन्ड्रियल DNA के समान ही हरितलवक DNA (CpDNA) भी कोशिका द्रव्यी वंशागति

में सक्रिय योगदान देता है । यह DNA लवक विभाजन क्रिया, विभिन्न प्रकार के RNAs का संश्लेषण तथा CO_2 की उपस्थिति में विशिष्ट प्रोटीन्स के संश्लेषण को नियंत्रित करता है ।

जीवाणु कोशिका में मुख्य जीनोम के अतिरिक्त कोशिका द्रव्यी जीनोम प्लाज्मिड्स व अधिकाय (Episome) के रूप में पाया जाता है । इसमें प्रतिकृतिकरण व पुनर्योजन की अद्भुत क्षमता होती है । इसीलिए इन्हें जैव तकनीकी के क्षैत्र में जीन क्लोनिंग हेतु जीन वाहक के रूप में उपयोग में लिया जाता है । प्लाज्मिड DNA मातृकवंशागति (Maternal Inheritance) के साथ-साथ जीवाणु कोशिकाओं की विशिष्ट क्रियाओं, जैसे - N_2 स्थरीकरण, प्रदूषक विघटन, विषैले व प्रातेजैविक पदार्थों का उत्पादन आदि क्रियाओं को नियंत्रित करते हैं । इन्हें संक्रमणशीलता व विशिष्ट कार्यों के आधार पर विभिन्न प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है । प्लाज्मिड्स की पोषी कोशिकाओं में रोग प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न करने, औषधि निर्माण, अनुसंधान कार्यों आदि में महत्वपूर्ण भूमिका होती है ।

इसी क्रम में स्थलान्तरणशील तन्त्र भी अवैध पुनर्योजनों व विभिन्न प्रकार के उत्परिवर्तनों के प्रमुख कारक हैं । ये निवेशन अनुक्रमों व जम्पिंग जीन्स के रूप में पाये जाते हैं । निवेशन अनुक्रम DNA के जिस स्थान पर समाकलित होते हैं उसे निष्क्रिय कर देते हैं । जीवाणु कोशिका में ये अधिकाय बनाने में भाग लेते हैं अथवा स्वयं भी समाकलित होकर DNA द्विगुणन को अनियमित कर देते हैं । जीवाणु कोशिका में चार प्रकार के निवेशन अनुक्रम ज्ञात किये जा चुके हैं । यूकैरियोट्स में बारबरा मेक्लिन्टॉक द्वारा मक्का (Maize) में खोजे गये नियंत्रक तत्व स्थलान्तरणशील तत्वों के ही उदाहरण है । ये मक्का के दानों में रंग परिवर्तन करने वाले जीनों को नियंत्रित करते हैं । ये जीनो की क्रियाशीलता को विलोपित (switch off) या प्रकट (on) करने की क्षमता रखते हैं । इनको जीवाणु प्रभेदों को पहचानने व रोगकारी सूक्ष्मजीवों को पहचानने के लिए आनुवांशिक चिन्ह को (Genetic markers) के रूप में प्रयुक्त किया जाता है । इनमें स्वत: उत्परिवर्तन को उत्पन्न करने की क्षमता होती है ।

9.8 शब्दावली (Glossary)

1. **प्लाज्मा जीन्स** (Plasma ganes) : कोशिका द्रव्य / कोशिकांगो में उपस्थित वंशागति की इकाइयाँ ।
2. **मातृक वंशागति** (Maternal Inheritance) : मादा युग्मक के कोशिका द्रव्य द्वारा नियंत्रित लक्षणों की वंशागति।
3. **पिटाइट उत्परिवर्ती** (Petite mutant) : यीस्ट के mt-DNA द्वारा उत्परिवर्तित प्रभेद ।
4. **प्लाज्मिड** (Plasmid) जीवाणु कोशिका में मुख्य जीनोम के अतिरिक्त DNA Helix जिसमें स्वप्रतिकृतिकरण की क्षमता हो ।
5. **अधिकाय** (Episome) : जीवाणु कोशिका में प्लाज्मिड DNA का मुख्य जीवाणु गुणसूत्र में समाकलन हो जाने के बाद बनने वाली संरचनाओं जो कि ट्रान्सपोसोन भी कहलाती है ।
6. **विवर्धन** (Amplification) : प्रतिकृतिकरण की क्रिया द्वारा प्लाज्मिड DNA की संख्या में वृद्धि विवर्धन कहलाती है ।

7. **स्थलान्तरणशील आनुवांशिक तत्व** (Transposable Genetic Elements) : वे न्यूक्लिओटाइड अनुक्रम जो विजातीय गुणसूत्र से जुड़ जाते हैं तथा अवैध पुनर्योजन क्रियाएँ करते हैं तथा उत्परिवर्तन का कारण बनते हैं ।
8. **निवेशन अनुक्रम** (Insertion sequence) : जीवाणु व वाइरसों में पाये जाने वाले छोटे DNA खण्ड जो कि संरचनात्मक या नियामक जीनों के साथ निवेशित होकर अवैध पुनर्योजन अथवा उत्परिवर्तन करते हैं ।
9. **जम्पिंग जीन्स** (Jumping Genes) : वे स्थलान्तरणशील तत्व जो एक गुणसूत्र पर दूसरी स्थिति पर या एक गुणसूत्र से दूसरे असमजात गुणसूत्र में गतिशील हो सकते हैं ।

9.3 संदर्भ ग्रन्थ (Refrences)

1. पी.के.गुप्ता "Genetics" (2007) रस्तोगी पब्लिकेशन्स मेरठ ।
2. पी.सी. त्रिवेदी, इन्दु रानी शर्मा "Cell biology,cytogenetics and Plant Breeding"
3. एस.सी. रस्तोगी "Cell and Molecular Biology” न्यूएज इन्टरनेशनल पब्लिकेशन्स, नयी दिल्ली ।

9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बहु विकल्पी प्रश्न :

1. (A) 2. (B) 3. (C) 4. (C) 5. (D)
6. (A) 7. (C)

रिक्त स्थानों की पूति :

(1) मक्का (Maize) में
(2) बारबरा मेक्लिन्टॉक
(3) संक्रमणशील अथवा स्थानान्तरणशील
(4) क्लेमाइडोमोनास

9.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न अथवा रिक्त स्थानों की पूर्ति

(Very short answer questions/Fill in the blanks):

1. अधिकाय या इपीसोम क्या होते हैं?
2. प्लाज्मिड की परिभाषा दीजिए ।
3. प्लाज्मिड के दो कार्य लिखिए ।
4. हरित लवक DNA की विशेषता बताइये ।
5. प्लांज्मिड वाहक के वांछनीय गुणों को बताइये ।
6. ट्रान्सपोसोन को परिभाषित कीजिए ।

लघुत्तरात्मक प्रश्न (Short answer Questions) :

1. हरित लवक DNA पर टिप्पणी लिखिए ।
2. प्लाज्मिड्स के कार्य लिखिए ।
3. F कारक एवं JHfr स्थानान्तरण को समझाइए ।

4. रोग प्रतिरोधी कारक को समझाइए ।
5. स्थलान्तरणशील तत्वों के कार्य लिखिए ।

निबंधात्मक प्रश्न (Essay type Questions) :

1. प्लाज्मिड क्या होते हैं? उनका विस्तृत विवरण देते हुए महत्व पर प्रकाश डालिए ।
2. कोशिकाद्रव्यीय वंशागति या अतिरिक्त केन्द्रकीय जीनोम का वर्णन कीजिए ।
3. हरित लवक DNA एवं माइटोकोन्ड्रियल DNA का वर्णन कीजिए ।
4. प्लाज्मिड्स के वर्गीकरण का वर्णन कीजिए ।
5. स्थलान्तरणशील तत्वों की विशेषता का उल्लेख कीजिए ।

इकाई 10 : आनुवांशिक वंशागति(Genetic Inheritance)

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 मेण्डल के जीवन का संक्षिप्त परिचय

10.3 मेण्डल के वंशागति के नियम

10.4 मेण्डल नियमों के अपवाद

10.5 सारांश

10.6 शब्दावली

10.7 संदर्भ ग्रन्थ

10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.0 उद्देश्य

- संतति में पैतृक गुणों के संचरण के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करना ।
- मेण्डल द्वारा किये गये प्रयोगों, परिणामों व वंशागति के नियमों की जानकारी प्राप्त होना ।
- मेण्डल के द्वारा दिये वंशागति के नियमों के अपवाद (सह प्रभाविता, अपूर्ण प्रभाविता व घातक जीन्स) की विस्तृत जानकारी प्राप्त होगी ।

10.1 प्रस्तावना

अनुवंशिकी जीव विज्ञान की वह शाखा है जिसमें अनुवंशिकता (redity) व विभिन्नताओं (variation) का अध्ययन किया जाता है मेण्डल ने मटर के पौधों का अध्ययन कर अनुवंशिकता के नियम प्रतिपादित किये । मेण्डल ने मटर के पौधों के सात विपर्यासी लक्षणों को लेकर प्रयोग किये तथा उनके परिणामों के आधार पर अनुवंशिकता के नियम बनाये । मेण्डल के नियमों की पुन: खोज से कुछ ऐसे निष्कर्ष अपवाद स्वरूप प्राप्त हुये जो मेण्डल के अनुवंशिकता नियमों से भिन्न सिद्ध हुये जैसे सहप्रभाविता अपूर्ण प्रभाविता व घातक जीन्स इत्यादि ।

10.2 मेण्डल के जीवन का संक्षिप्त परिचय

अनुवंशिकी (genetics) शब्द सर्वप्रथम 1905 में विलियम बेटसन ने प्रस्तावित किया था जिसके अन्तर्गत अनुवांशिकता, विभिन्नताओं तथा संतति में पैतृक गुणों के स्थानान्तरण का अध्ययन किया जाता है ।

ग्रेगर जॉन मेण्डल (Gregor john mendel) को 'अनुवंशिकी का पिता' (Father of genetics) कहते हैं । उनका जन्म 22 जुलाई सन् 1822 को हेन्जनडोर्फ के सीलेसिया (silesia) ग्राम में एक साधारण माली परिवार में हुआ था । मेण्डल ने प्रारंभिक शिक्षा गाँव के स्कूल में पूरी करने के बाद सन् 1842 में दर्शन शास्त्र (Philosophy) में दो वर्षीय पाठ्यक्रम उत्तीर्ण किया ।

सन् 1843 में मेण्डल ने ऑस्ट्रिया (Austria) के ब्रून (Brunn) शहर में पादरी का पद ग्रहण किया और उन्हें ग्रेगर की उपाधि से सम्मानित किया गया । मेण्डल ने सन् 1849 में एक स्कूल में अस्थाई पद पर शिक्षक के रूप में कार्य करने के बाद वियाना विश्वविद्यालय में तीन वर्ष तक गणित एवं प्राकृतिक विज्ञान विषयों का अध्ययन किया जो कि बाद में उनके द्वारा किये गये अनुवंशिकी प्रयोगों व उनके परिणामों के निष्कर्षों के लिये उपयोगी सिद्ध हुआ । सन् 1854 से 1864 तक पुन: ब्रून के मार्डन स्कूल में अध्यापन का कार्य किया । मेण्डल ने अध्यापन के दौरान 1857 से 1865 अर्थात् 8 वर्षो तक मठ के उद्यान में मटर के पौधों पर महत्वपूर्ण प्रयोग किये । इन्होंने अपने प्रयोगों से प्राप्त पीरणामों को 8 फरवरी व 8 मार्च 1865 में ब्रून सोसायटी नेचुरल हिस्ट्री के समक्ष प्रस्तुत किये तथा अपने शोध कार्य को 1866 सोसायटी की वार्षिक पत्रिका में "पादपों में संकरण के प्रयोग" (experiments in plant hybridisation) नामक शीर्षक से शोध पत्र प्रकाशित किया । उनका मूल शोध पत्र जर्मन भाषा में "Versuche user pflanzen hyloriden" नामक शीर्षक से प्रकाशित हुआ था । मेण्डल ने अपने प्रयोगों के परिणामों के आधार पर अनुवंशिकता के नियम बनाये जिन्हें मेण्डलवाद (Mandalism) के नाम से जाना जाता है ।

तत्कालिक वैज्ञानिकों ने मेण्डल के कार्य के महत्व की ओर कोई ध्यान नहीं दिया क्योंकि सभी वैज्ञानिकों का रुझान चार्ल्स डार्विन की पुस्तक "दी ऑरिजन ऑफ स्पीशीज बाई नेचुरल सैलेक्शन" पर केन्द्रित था जिसमें उद्विकास के सिद्धान्तों के बारे में उल्लेख किया गया था व चूँकि मेण्डल ने अपने प्रयोगों के परिणामों का निष्कर्ष सांख्यकी व गणित के आधार पर किया था इसके अतिरिक्त उनका कार्य प्रतिष्ठित शोध पत्रिका में प्रकाशित नहीं हुआ था परिणामस्वरूप दूसरे वैज्ञानिकों की उपेक्षा का प्रमुख कारण बना । मेण्डल के शोधकार्य को विशिष्ट महत्व न मिलने के सदमे के कारण 6 जनवरी 1884 को उनका स्वर्गवास हो गया ।

10.2.1 मेण्डल के कार्य की पुन: खोज (Rediscovery of Mendalism)

मेण्डल के महत्वपूर्ण सिद्धान्त 34 वर्ष तक वैज्ञानिक जगत में उपेक्षित रहे जो कि बाद में सन् 1900 में हॉलेण्ड के ह्यूगो डि - व्रीस (Hugo de Vries) जर्मनी के कार्ल कोरेन्स (Karl Correns) तथा ऑस्ट्रिया के इरिक वॉन शेमार्क (Erick von Tschermak) द्वार अलग - अलग प्रयोगों द्वारा उनकी पुन: खोज की गई । इन तीनों वैज्ञानिकों के शोधकार्य के परिणाम मेण्डल के निष्कर्षों के समान ही थे जिसके कारण मेण्डल के कार्यों को मरणोपरान्त विश्वस्तरीय महत्व प्राप्त हुआ ।

10.3 मेण्डल द्वारा अध्ययन के लिये मटर के पौधों का चयन

मेण्डल ने प्रयोग के लिये मटर (Pisum sativum) के पौधे का चयन किया क्योंकि

(1) इसे सरलता से उद्यान में उगाया जा सकता है ।

(2) यह पौधा वार्षिक होता है अत: इनका जीवन-चक्र अल्प समय में पूरा होता है फलस्वरूप कई पीढ़ियों का अध्ययन आसानी से किया जा सकता है ।

(3) पुष्प द्विलिंगी (Bisexual) होते हैं व इनमें स्वपरागन पाया जाता है, जिससे पौधों में गुणों की शुद्धता कई पीढ़ियों तक बनी रहती है ।

(4) पर-परागन (Cross pollination) भी संभव होता है ।

(5) मटर के पादपों में अनेक विभेदात्मक / विप्रर्यासी लक्षण (Contrasting Characters) पाये जाते हैं ।

लक्षणों का चयन : मेण्डल ने मटर में पाये जाने वाले 34 विपर्यासी लक्षणों में से सात जोड़ी विपरीत

लक्षणों का चयन किया जो कि निम्न सारणी में उल्लेखित है

विपर्यासी लक्षण (Contrasting Characters)	प्रभावी लक्षण (Dominent Characters)	अप्रभावी लक्षण (Recessive Characters)
(1) पादप की ऊँचाई (Plant height)	लम्बे (Tall)	बौने (Dwarf)
(2) पुष्पों की स्थिति (Position of Flower)	कक्षीय (Axillary)	शीर्षस्थ (Terminal)
(3) फली का आकार (Form of pod)	फूली हुई (Inflated)	संकुचित (Conctricted)
(4) फली का रंग (Colour of pod)	हरा (Green)	पीला (Yellow)
(5) बीजका आकार (Shape of seed)	गोल (Round)	झुर्रीदार (Wrinkled)
(6) बीज कवच का रंग (Coulor of seed coat)	भूरा (Grey)	सफेद (White)
(7) बीज पत्र का रंग (Colour of cotyledons)	पीला (Yellow)	हरा (Green)

मेण्डल ने अध्ययन हेतु मटर के पौधों में सात प्रकार के युग्मविकल्पी जोड़ों (allelomorphic allel) का चयन किया । इन सात जोड़ी लक्षणों को प्रयोग कर पाया कि यह लक्षण या विशेषक (trait) शुद्ध (pure) थे । शुद्ध लक्षण से तात्पर्य है कि इस लक्षण की पीढ़ी दर पीढ़ी अपरिवर्तित पुनरावृत्ति होती है, अर्थात यदि लाल रंग के पुष्प वाले पौधों को निरन्तर उगाया जाये तो इनमें सदैव लाल रंग के पुष्प ही प्राप्त होंगे ।

10.3.1 संकरण तकनीक (hybridization Technique)

मेण्डल ने अपने प्रयोगों के लिये निम्न संकरण तकनीक का प्रयोग किया

(1) मटर एक स्वपरागित (self-pollinated) पादप है । स्वपरागन को रोकने के लिये मेण्डल ने वर्तिकाग्र (stigma) के परिपक्व होने से पूर्व ही पुंकेसरों को हटा दिया था । इस प्रक्रिया को विपुंसन (emasculation) कहते हैं ।

(2) वर्तिकाग्रके परिपक्व होने पर दूसरे पौधे के पुष्प परागकणों को छिड़ककर पर - परागन कराया गया ।

(3) पर-परागित पुष्पों को अन्य परागकणों से बचाने के लिये उन पर थैलियाँ बाँध दी गयी ।

(4) इस प्रकार प्राप्त बीजों से बने पौधो के तने,पुष्प,फली व बीजों का अध्ययन किया ।

प्रयोग में लिये पादपों को जनकीय पीढ़ी (parental generation) कहा गया जिसे P (parent) से प्रदर्शित किया गया। जनक पौंधो से प्राप्त प्रथम संतति पीढ़ी को प्रथम संकरण संतति (first filial generation) कहते हें, जिसे F_1 से प्रदर्शित किया जाता है । प्रथम पीढ़ी (F_1) में स्वनिषेचन (self fertilization) से उत्पन्न पादपों को द्वितीय संकरण संतति (second filial generation) कहते हैं जिसे F_2 शब्द से व्यक्त करते हैं ।

मेण्डल ने अपने प्रयोगों में कारक (factor) शब्द का प्रयोग किया । वर्तमान मे ये कारक ही जीन कहलाते हैं । मेण्डल ने उपरोक्त संकरण विधि द्वारा मटर के 7 गुणों को एक या अधिक लक्षणों को साथ लेकर निम्न प्रयोग किये :

(1) एक संकर संकरण (Monohybrid cross)

(2) द्वि संकर संकरण (Dihybrid cross)

(3) बहु संकर संकरण (Polyhybrid cross)

10.3.2 एक संकर संकरण (Monohybrid cross)

मेण्डल ने विपरीत लक्षणों के एक युग्म (trait) की वंशागति के अध्ययन हेतु निम्न प्रयोग किया एक संकर संकरण के लिये मेण्डल ने शुद्ध लम्बे (Pure tall) व शुद्ध बौने (pure dwarf) पौधो के बीच संकरण कराया । उन्होंने प्रभावी लक्षणों (लम्बे) को (T) से व अप्रभावी लक्षणों (बौने) को (t) से प्रदर्शित किया ।

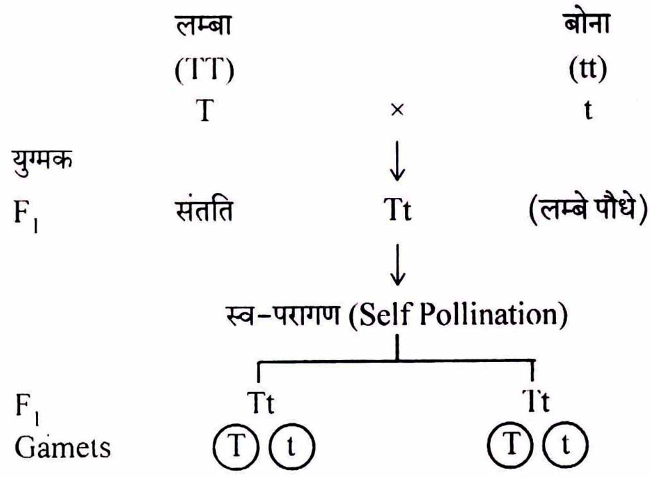

चेकर बोर्ड विधि :

♀ \ ♂	T	t
T	TT	Tt
t	Tt	tt

3:1

समलक्षणी अनुपात (Phenotypic ratio)	3 लम्बे पोधे			1 बौना पौधा	
समजीनी अनुपात (Genotypic ratio)	TT		Tt		tt
	1	:	2	:	1
	शुद्ध लम्बा	:	संकर लम्बा	:	शुद्ध बोना

मेण्डल ने लम्बे पौधों का बौने पोधों से संकरण करवाकर बीज प्राप्त किया तथा उन्हें इन बीजों से प्राप्त F_1 पीढ़ी के सभी पौधे लम्बे प्राप्त हुये । उन्होंने F_1 पीढ़ी के पौधों में स्वपरागण द्वारा उत्पन्न बीजों को उगाने से प्राप्त पीढ़ी को F_2 कहा । F_2 पीढ़ी में लम्बे व बौने दोनों प्रकार के पौधे 3 : 1 के अनुपात में प्राप्त हुये । इस 3 : 1 अनुपात को एक संकरण अनुपात (monohybrid ratio) कहा गया । F_2 पीढ़ी से प्राप्त बौने पौधों के बीजों को उगाने से बौने पौधे ही प्राप्त हुये जबकि लम्बे पौघों के बीजों को उगाने से केवल 1/3 पौघे लम्बे प्राप्त हुये तथा शेष 2/3 पौधों से 3 : 1 के अनुपात में लम्बे व बौने पौघे प्राप्त हुये । F_2 पीढ़ी के पौधे समलक्षणी (phenotype) लम्बे व बौने होते हैं जिनका अनुपात 3 : 1 का होता है । यदि समजीनी (genotype) अनुपात देखें तो यह 1 : 2 : 1 का होता है अर्थात् लम्बे पौधे में समयुग्मी TT तथा विषमयुग्मी Tt जीन है जबकि बौने पौधे में tt समयुग्मी जीन है । इस प्रकार दो पौधे (TT व tt) शुद्ध व दो विषमयुग्मी (Tt) जीन वाले हैं ।

मेण्डल द्वारा किये गये प्रयोगों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है :

(1) पौधों में लम्बे व बौनेपन का गुण एक जोड़ी कारकों (factors) द्वारा नियंत्रित किया जाता है । यह कारक अब जीन (gene) कहलाते हैं ।

(2) युग्म का एक कारक पैतृक (Paternal) का दूसरा कारक मातृक (material) होता है किन्तु निषेचन के समय दोनों कारक साथ आ जाते हैं ।

(3) संतति में एक कारक अपने गुण को प्रकट करता है जिसे प्रभावी कारक (dominant factor) कहते हैं तथा दूसरे के गुण छुपे रहते हैं जिसे अप्रभावी (recessive) कारक कहा जाता है ।

मेण्डल के द्वारा चुने गये मटर के पौधों के सात विप्र्यासी गुणों में प्रभाविता व अप्रभाविता लक्षण 3:1 के अनुपात में प्रकट होते हैं जिन्हें निम्न सारणी में दर्शाया गया है :

लक्षण		प्रभावी	अप्रभावी	कुल	अनुपात
1	बीज का आकार	गोल (5474)	झुर्रीदार (1850)	7324	2.96:1
2	बीजपत्ररंग	पीला (6022)	हरा (2001)	8023	3.01:1
3	बीज कवच रंग	भूरा (705)	श्वेत (224)	929	3.15:1
4	फली आकार	फूली (882)	संकुचित (229)	1181	2.95:1
5	फल रंग	हरा (428)	पीला (152)	580	2.82:1
6	फूलों की स्थिति	कक्षीय (651)	शीर्षस्थ (207)	858	3.14:1
7	पौधों की ऊँचाई	लम्बा (787)	बौना (277)	1064	2.84:1
	Total	15,949	5010	19, 959	2.98:1

10.3.3 मेण्डल का द्विसंकर संकरण (Mendal Dihybrid Cross)

मेण्डल ने एक संकरण प्रयोगों के पश्चात् दो जोड़ी विपर्यासी लक्षणों वाले पौधो के बीच संकरण कराया जिसे द्विसंकर संकरण (Dihybrid Cross) कहते हैं ।

मेण्डल को पीले व गोल समयुग्मी बीज (yellow and round, YYRR) तथा हरे व झुर्रीदार समयुग्मी (green and wrinkle yyrr) वाले पौधो में संकरण कराने पर F1 पीढ़ी में सिर्फ गोल व पीले बीज वाले पौधे प्राप्त हुए अर्थात F1 पीढ़ी के पौधो में स्वपरागन करवाने पर F2 पीढ़ी में चार प्रकार के पौंधे प्राप्त हुये जिनका समलक्षणी अनुपात

9 : 3 : 3 : 1 का था । इसे बेटसन व पुनेट द्वारा बताये गये शतरंज पट के द्वारा दर्शाया जाता है

9 पीले वे गोल बीज

3 पीले झुर्रीदार बीज

3 हरे व गोल बीज

हरे व झुर्रीदार बीज

द्विसंकर संकरण को विस्तृत रूप से नीचे समझाया गया है

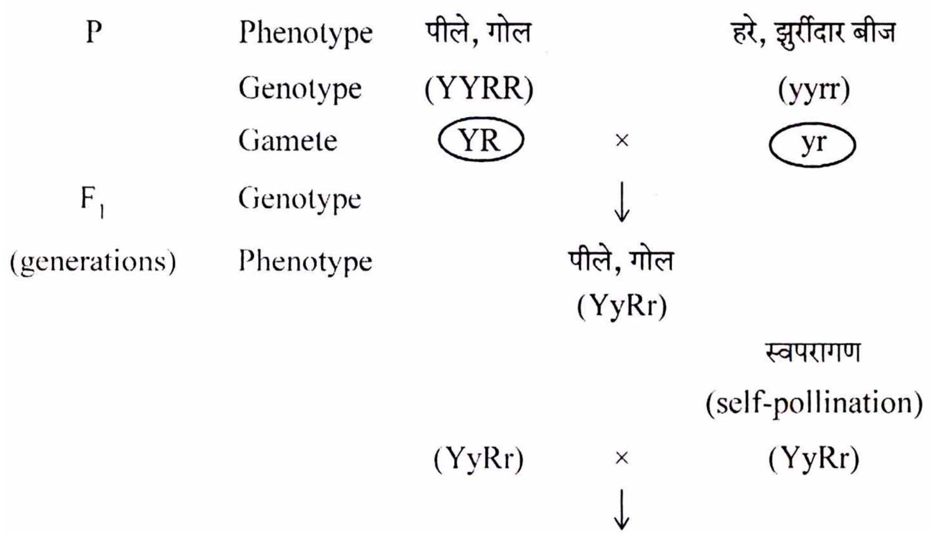

Gamete युग्मक F_2 (Generations) पीढ़ी	♀ \ ♂	YR	yR	Yr	yr
	YR	YY RR@ पीले गोल	Yy RR@ पीले गोल	YY Rr@ पीले गोल	Yy Rr@ पीले गोल
	yR	Yy Rr@ पीले गोल	yy RR# हरे गोल	Yy Rr@ पीले, गोल	yy Rr# हरे गोल
	Yr	YY Rr@ पीले गोल	Yy Rr@ पीले गोल	YY rr$ पीले झुर्रीदार	Yy rr$ पीले झुर्रीदार
	yr	YyRr@ पीले गोल	yyRr# हरे गोल	Yyrr$ पीले झुर्रीदार	yyrr% हरे झुर्रीदार

Phenotypic ratio : 9 : 3 :3 : 1

@ पीले व गोल = 9 $ पीले व झुर्रीदार = 3

हरे व गोल = 3 % हरे व झुर्रीदार = 1

Genetypic ratio : 1:2:2:4:1:2:1:2:1

द्वि-संकर संकरण के F2 पीढ़ी में प्राप्त पौधों का समजीनी अनुपात (Genotypic Ratio) तथा समलक्षणी अनुपात (Phenotypic ratio)

जीन प्रारूप (Genotype)	जीन प्रारूप अनुपात (Genotypic ratio)	लक्षण प्रारूप (Phenotype)	लक्षण प्रारूप अनुपात (Phenotypic ratio)
YYRR YYRr YyRR YyRr	1 2 2 4	पीले व गोल बीज	9
YYrr Yyrr	1 2	पीले व झुर्रीदार बीज	3
yyRR yyRr	1 2	हरे वे गोल बीज	3
yyrr	1	हरे वे झुर्रीदार बीज	1

उपरोक्त द्विसंकरण सारणी से स्पष्ट होता है कि :

(1) गोल व पीले बीज वाले लक्षण हरे वे झुर्रीदार बीज वाले लक्षणों पर पूर्ण प्रभावी है ।

(2) F_1 पीढ़ी के पौधों में चार प्रकार के युग्मक Yr,Yr,yR,yr बनते हैं ।

(3) F_1 पीढ़ी के पौधों में स्वपरागण करवाने पर F2 पीढ़ी के 16 पौधों से निम्न चार प्रकार के बीज प्राप्त हुये :

9 गोल व पीले

3 पीले व झुर्रीदार

3 हरे व गोल

1 हरे व झुर्रीदार

अत : समलक्षणी (Phenotype) अनुपात 9 : 3 : 3 : 1 का है । जब मेण्डल ने द्विसंकर संकरण की F_2 पीढ़ी का अध्ययन बेटसन व पुनेट द्वारा दिये गये चेकरबोर्ड से किया तो उसे 3 : 3 पौधे नवीन संयोजन वाले प्राप्त हुये अर्थात झुर्रीदार के साथ पीले रंग के बीज, गोल व हरे रग के बीज प्राप्त हुये । F_2 पीढ़ी का समजीनी अनुपात

1 : 2 : 2 : 4 : 1 : 2 : 1 : 2 : 1 है ।

इन प्रयोगों के आधार पर मेण्डल ने " स्वतंत्र (अपव्यूहन) का नियम " (Law of Independent assortment) प्रतिपादित किया ।

10.3.4 मेण्डल के वंशागति के नियम (Mendel Laws of Inheritance)

मेण्डल ने अपने प्रयोगों एवं उनके परिणामों के आधार पर महत्वपूर्ण नियमों का प्रतिपादन किया जिन्हें मेण्डल के वंशागति के नियम या अनुवांशिकता के नियम कहा जाता है ।

(i) **प्रभाविता का नियम** (Law of Dominance) : मेण्डल को मटर के एक संकरण प्रयोगों से प्राप्त F_1 पीढ़ी में केवल एक ही प्रकार के लक्षण प्राप्त हुये । इसमें सारे पौधे लम्बे थे । लम्बाई वाले लक्षण को प्रभावी लक्षण (dominant character) तथा जो लक्षण जैसे - बौनापन प्रकट नहीं हुये उन्हें अप्रभावी (recessive) लक्षण कहा ।

मेण्डल के कार्यों के पश्चात् कोरेन्स (Correns) ने मटर व मक्का के पौधों पर शैरमेक (Tschermak) ने मटर व डीव्रीज (de vries) ने मक्का पर क्रमश : प्रयोग किये ।

यह नियम जीवों के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है । मनुष्यों में मन्दबुद्धि, मधुमेह, वणर्न्धता आदि रोगों के जीन अप्रभावी होते हैं । प्रभावी जीन की उपस्थिति में यह प्रकट नहीं हो पाते हैं फलस्वरूप मनुष्य पूर्णतया सामान्य होता है ।

(ii) **प्रथक्करण का नियम या युग्मकों की शुद्धता का नियम** (Law of Segregation or Law of Purity of Gametes): मेण्डल ने अपने एक संकर संकरण के परिणामों के आधार पर प्रथक्करण व युग्मकों की शुद्धता का नियम प्रतिपादित किया ।

उन्होंने पाया कि शुद्ध बौने पौधों से प्राप्त F_1 पीढ़ी के पादपों में प्रभावी - अप्रभावी विपर्यासी कारक (contrasting genes) होते हुये भी F_1 पीढ़ी में स्वनिषेचन के परिणामस्वरूप प्राप्त F_2 पीढ़ी में 75% प्रभावी लम्बे 25% बौने पादप (3 : 1 अनुपात में) प्राप्त होते हैं । इससे यह स्पष्ट होता है कि I । पीढ़ी में विषम युग्मकी (heterozygous) पादप में विपर्यासी कारक एक साथ रहकर (Tt) भी मिश्रित नहीं होते हैं अर्थात् एक का प्रभाव दूसरे पर नहीं पड़ता है । इस प्रकार युग्मक अपनी शुद्धता बनाये रखते हैं व युग्मक निर्माण के समय दोनों युग्म विकल्पी (Tt) एक दूसरे से पृथक होकर अलग - अलग युग्मकों में पहुँच जाते हैं व F2 पीढ़ी में अप्रभावी लक्षण

बौनेपन का (tt) संयुग्मी अवस्था में प्रकट हो जाता है । इसे मेण्डल का पृथक्करण का नियम अथवा युग्मकों की शुद्धता का नियम कहते है ।

10.3.5 पृथक्करण नियम का भौतिक आधार

(Physical Basis of Law of Segregation)

मेण्डल के मतानुसार हर एक लक्षण आनुवंशिक रूप से एक कारक द्वारा नियंत्रित होता है जो कि आनुवंशिक इकाई के रूप में माना जाता है । इन कारकों का एक कोशिका से दूसरी कोशिका में व पीढ़ी दर पीढ़ी संचरण होता है । मेण्डल चूँकि संचरण प्रक्रिया के दौरान इन कारकों के व्यवहार के बारे में अनिभिज्ञ थे अत : पृथक्करण के नियम की भौतिक आधार पर व्याख्या नहीं कर पाये थे, परन्तु अब कारकों की कार्य -शैली को अर्धसूत्री विभाजन के दौरान गुणसूत्रों के व्यवहार के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है । युग्म विकल्पी (Allels) एक जोड़े में होते हैं तथा समजात गुणसूत्रों के एक ही विस्थल (locus) पर पाये जाते हैं । युग्मक बनने के समय यह समजात गुणसूत्र अलग होकर दो अलग - अलग युग्मकों में पहुँच जाते हैं फलस्वरूप संतति में विपर्यासी लक्षण भी अलग हो जाते हैं अर्थात अर्धसूत्री विभाजन के समय बनने वाली चार कोशिकाओं में से दो कोशिकाएँ एक समजात गुणसूत्र की दो क्रोमेटिड एवं शेष दो अन्य समजात गुणसूत्र की पुत्री क्रोमेटिड को ग्रहण करती है । अत : स्वाभाविकतया चार में से दो कोशिकाएँ प्रभावी ऐलील (T) एवं शेष दो अप्रभावी ऐलील (tt) को लेती है परिणामस्वरूप इस जीव जगत में अभी तक ऐसा कोई भी युग्मक नहीं पाया गया है जिसमें दोनों एलील प्रभावी व अप्रभावी एक साथ उपस्थित हों।

पृथक्करण के नियम का महत्व (Imporatnace of Law of Segregation) :

(i) मेण्डल के पृथक्करण के नियम से जीन संकल्पना (Gene concept) की पुष्टि होती है ।

(ii) प्रत्येक लक्षण एक जीन के द्वारा नियंत्रित होता है ।

(iii) प्रत्येक जीन के दो युग्म विकल्पी होते हैं जो एक जोड़ी विपर्यासी लक्षणों का नियंत्रण करते हैं।

(iv) जीन के युग्म विकल्पी एक ही कोशिका में रहते हुये भी सम्मिश्रित नहीं होते हैं ।

(v) युग्मक निर्माण के दौरान युग्मक विकल्पी पृथक होकर संकर पादप के अलग - अलग युग्मकों में जाते हैं ।

(vi) जीन वंशागति की इकाई है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में गमन करती है ।

10.3.6 स्वतंत्र अपव्यूहन का नियम (Law of Independent Assortment)

यह नियम मेण्डल के द्विसंकर संकरण के परिणामों पर आधारित है । इसके अनुसार "जब दो या दो से अधिक विपर्यासी लक्षणों के बीच संकरण करवाया जाता है तो समस्त लक्षणों की वंशागति या आने वाली पीढ़ियों में संचरण पूर्णतया स्वतंत्र रूप से होती है अर्थात् एक लक्षण वंशागति पर दूसरे लक्षण की उपस्थिति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है । इसी को स्वतंत्र अपव्यूहन का नियम कहते हैं ।

इस नियम के अनुसार युग्मविकल्पियों के प्रत्येक युग्म के सदस्य न केवल पृथक होते हैं परन्तु विभिन्न लक्षणों के युग्मविकल्पी एक दूसरे के प्रति स्वतत्र रूप से व्यवहार करते हैं अर्थात् एक से

अधिक विपर्यासी लक्षणों के जीन पर दूसरे से प्रभावित हुये बिना स्वतंत्र रूप से व्यवहार करते हैं । अर्थात् एक से अधिक विपर्यासी लक्षणों के जीन पर दूसरे से प्रभावित हुये बिना स्वतंत्र रूप से व्यवहार करते हैं

निम्न उदाहरण मे द्विसकरण में दो जोड़ी विपर्यासी लक्षणों की वंशागति का अध्ययन किया गया है :

मेण्डल ने शुद्ध समयुग्मनजी पीले व गोल बीज (YYRR) पौधों का हरे व झुर्रीछार (Yyrr) बीज वाले समयुग्मजी पौधों के मध्य संकरण किया तो F_1 पीढ़ी में पीले व गोल बीजवाले विषमयुग्मजी (Heterozygous YyRr) पादप प्राप्त हुये। F_1 पीढी के पौधों में स्वपरागण (self pollenation) करवाने पर चार प्रकार के पौधे निम्न अनुपात में प्राप्त हुये ।

पीले वे गोल बीज = 9
पीले व झुर्रीदार बीज = 3
हरे वे गोल बीज = 3
हरे वे झुर्रीदार बीज = 1

9 : 3 : 3 : 1

उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट होता है कि जब एक से अधिक विपर्यासी कारक को लेकर प्रयोग किया जाये तो ये कारक एक दूसरे को प्रभावित किये बिना युग्मकों के निर्माण में विसंयोजित हो जाते हैं अर्थात् अलग-अलग लक्षणों के कारकों का व्यवहार एक दूसरे से पूर्णतया स्वतंत्र होता है । यही मेण्डल के स्वतंत्र अपव्यूहन के नियम का सार है ।

10.3.7 त्रीसंकर संकरण (Trihybrid Cross)

वंशागति के मूलभूत सिद्धान्तों को समझने के लिए सामान्यतया एक अथवा दो लक्षणों की आनुवांशिकी का अध्ययन किया जाता है लेकिन वास्तविक रूप में कई जीनों की अत्यधिक संख्या में वंशागति होती है व ये स्वतंत्र रूप से व्यवहार करते हैं तथा इनके परिणामों को भी द्विसंकर संकरण के परिणामों के आधार पर ही समझा जा सकता है ।

तीन लक्षणों की वंशागति अथवा त्रीसंकर संकरण का अध्ययन पर यह देखा जा सकता है कि F2 पीढ़ी में प्राप्त लक्षण प्ररूपी अनुपात पर (3 : 1) व द्विसंकर संकरण (9 : 3 : 3 : 1) का ही परिवर्धित रूप है जैसा कि निम्न संकरण के उदाहरण से स्पष्ट होता है

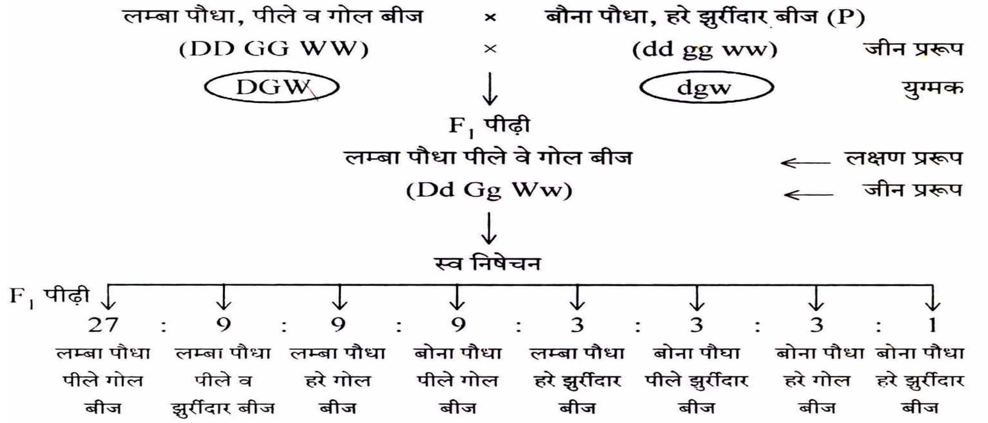

इसी प्रकार चर्तुसंकर व पंचसंकर संकरण भी करवाया जाता है । जब दो से धिक विर्पयासी लक्षणों को ध्यान में रखकर पादपों में संकरण करवाया जाता है, तो इसे बहुसंकर संकरण (polyhybrid cross) कहते हैं ।

मेण्डल के नियमों का महत्व :

(i) इन नियमों की जानकारी से विभिन्न संजीवों में प्रभावी एवं अप्रभावी लक्षणों का पता लगा सकते हैं ।

(ii) संकरण विधि द्वारा विभिन्न वंशों के अच्छे लक्षणों को साथ -साथ एक ही वंश में लाया जा सकता है तथा अनुपयोगी लक्षणों को हटाया जा सकता है ।

(iii) रोग प्रतिरोधक (disease resistant) तथा उच्च उत्पादन वाली फसलों तथा फलदार वृक्षों को विकसित किया जा सकता है । इसी प्रकार संकरण के द्वारा गाय, भैंस, बकरी तथा मुर्गी की भी अच्छी नस्लें प्राप्त की जा सकती है ।

(iv) इन नियमों के द्वारा संकर संतति (hybrid) में उत्पन्न होने वाले नये संयोगों तथा उनकी आवृत्ति (frequency) के बारे में पहले से ही ज्ञात हो जाता है ।

मेण्डल की सफलता के कारण :

(i) मेण्डल ने एक समय में केवल एक ही लक्षण की वंशागति का अध्ययन किया ।

(ii) मेण्डल ने अपने प्रयोगों का अध्ययन F2,F3 पीढ़ियों तक किये ।

(iii) पूर्णरूप से शुद्ध पौंधे प्रयोग में लिये ।

(iv) स्पष्ट रूप से दिखाई देने वाले विपर्यासी लक्षणों (contrasting characters) वाले पौधों को संकरण के लिये चुना ।

10.3.8 संकर पूर्वज संकरण व परीक्षण संकरण (Back Cross and Test Cross):

संकर पूर्वज संकरण : F1 पीढ़ी में प्राप्त पौधों का किसी एक जनक पादप के साथ संकरण कराया जाता है तो वह संकरण संकर पूर्वज संकरण (back cross) कहलाता है ।

परीक्षण संकरण (Test cross) : यदि F1 संतति को शुद्ध अप्रभावी जनक (Recessive parent) के साथ संकरण कराया जाता है तो यह संकरण परीक्षण संकरण (test cross) कहलाता है । इसके क्रास के द्वारा पृथक्करण नियम (Law of segregation) की जाँच की जा सकती है । इस संकरण से प्राप्त संतति में प्रभावी व अप्रभावी 1 : 1 के अनुपात में होते हैं ।

एक संकर संकर पूर्वज संकरण (Monohybrid Back Cross)

P_1 लक्षण	लम्बा पौधा		बौना पौधा	
	(TT)	×	(tt)	
युग्मक	T	×	T	
F1 सम लक्षणी		लम्बे पौंधे		
(Phenotype)		Tt	TT	
	Tt	×		प्रभावी जनक (dominant parent)

	T	t
T	TT	Tt

शुद्ध लम्बे : संकर लम्बे

(TT) (Tt)

1 : 1 अनुपात

समलक्षणी अनुपात (Phenotypic ratio) सभी लम्बे पौधे

एक संकर परीक्षण संकरण (Monohybrid Test Cross)

जनक	लम्बे पौधे		बौने पौधे	
	TT	×	tt	
F_1 जीन प्रारूप	Tt		लम्बे पौधे	
परीक्षण संकरण युग्मक	Tt		tt	अप्रभावी जनक

युग्मक (T) (t) (t)

	T	T
t	Tt	tt

समजीनी अनुपात संकर लम्बे शुद्ध लम्बे

(Genotypic ratio) Tt : tt

समलक्षणी अनुपात

(Phenotypic ratio) 1 : 1

परीक्षण संकरण से प्राप्त पौधों में 50% विषमयुग्मजी लम्बे व 50% समयुग्मजी बौने होते हैं तथा प्रभावी व अप्रभावी लक्षण 1 : 1 के अनुपात में होते हैं ।

प्रभावी जनक YYRR × yyrr अप्रभावी जनक

F_1 संतति YyRr (संकर hybrid)

पीले गोल बीज

YyRr × yy rr परीक्षण संकर

पीले व गोलबीज ↓ हरा व झुर्रीदार जनक

YR Yr yR yr yr

	Yr	Yr	yr	yr
yr	YyRr	Yyrr	yyrr	yyrr

समजीनी प्रारूप	YyRr	Yyrr	yyRr	yyrr
समलक्षणी प्रारूप	पीला व गोल	पीला व झुर्रीदार	हरा व गोल	हरा व झुर्रीदार
समलक्षणी अनुपात	1 :	1 :	1 :	1

परीक्षण संकरण का महत्व (Signication of Test Cross) :

प्रभावी लक्षण बाहय रूप से दो अलग - अलग समजीनियों के कारण दिखाई देते हैं । (1) विषमयुग्मनजी (Tt) (2) समकुमनजी (TT) इन लक्षणों को बाहयरूप से पहचाना नहीं जा सकता है अत : इन दोनों स्थितियों का पता लगाने के लिये परीक्षण संकरण का प्रयोग किया जाता है ।

मेण्डल के वंशागति के नियमों के अपवाद

(Exception of Mendals' Law of Inheritence)

सन् 1900 में मेण्डल के नियमों की पुन : खोज के बाद कुछ ऐसे परिणाम प्राप्त हुये जो मेण्डल के अनुवाशिकता के नियमों पर खरे नहीं उतरते । इनमें समजीनी व समलक्षणी अनुपात सामान्य मेण्डेलियन अनुपात से विचलित रूप में प्राप्त होता है ।

बोध प्रश्न :

1. कारक से मेण्डल का क्या आशय है?

   ....

   ....

2. युग्मविकल्पी लक्षण क्या होते हैं?

   ....

   ....

3. प्रभावी व अप्रभावी लक्षणों से क्या आशय है?

   ....

   ....

4. समलक्षणी व समजीनी क्या होते हैं?

   ....

   ....

रिक्त स्थान भरिए :

1. ''आनुवंशिकी'' शब्द का प्रथम उपयोग करने वाले........................... थे ।
2. दो जोड़ी लक्षण लेकर किये गये संकरण की F_2 पीढ़ी से समलक्षणी .... प्राप्त होंगे ।
3. मेण्डल का जन्म स्थल .... था ।
4. मेण्डल के कार्य की पुन: खोज .... वर्ष में हुई ।

10.4.1 अपूर्ण प्रभाविता (Incomlete Dominance)

मेण्डल द्वारा प्रयुक्त किये गये सात जोड़ी लक्षणों में से एक लक्षण प्रभावी व दूसरा अप्रभावी था परिणामस्वरूप F_1 संकर में प्रभावी जनक के लक्षण ही उत्पन्न हुये । वैज्ञानिकों द्वारा किये गये कुछ प्रयोगों जैसे - Mirabilis jalapa (4 0' clock plant) में F_1 पीढ़ी में प्रभावी तथा अप्रभावी लक्षण प्ररूप बीच का (Intermidate) अर्थात् मध्यवर्ती प्राप्त होता है । मिराबिलिस जलापा (Mirabilis jalapa) में जब लाल पुष्प वाले व सफेद पुष्प वाले पौंधो के मध्य संकरण करवाया जाता है तब F1 पीढ़ी में बजाय लाल पुष्प वाले (मेण्डल के अनुसार) पौंधों के गुलाबी (Rr) रंग के पुष्प वाले पौधे प्राप्त हुये । इन F1 पीढ़ी के पौधों में स्वनिषेचन करवाने पर F2 पीढ़ी में लाल, गुलाबी व सफेद रंग के पुष्प वाले पौधे क्रमश : 1 : 2 : 1 के अनुपात में प्राप्त होते हैं ।

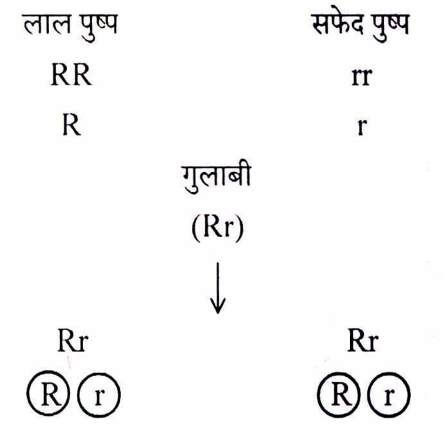

लक्षण प्ररूप (Phenotype)
जीन प्ररूप (Genotype)
युग्मनज
F_1पीढ़ी लक्षण प्ररूप
जीन प्ररूप
स्वनिषेचन (self fertilization)

♀ \ ♂	R	r
R	RR	Rr
r	Rr	rr

समलक्षणी अनुपात (Phenotypic ratio)	लाल	:	गुलाबी	:	सफेद
समजीनी अनुपात (Genotypic ratio)	RR	:	Rr	:	rr
	1	:	2	:	1

उपरोक्त उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि शुद्ध समयुग्मनजी (Homozygous) पादपों में प्रभावी लक्षण (RR) लाल पुष्प वाले पादप तथा अप्रभावी लक्षण (rr) सफेद पुष्प पादपों प्राप्त F1

पीढ़ी में विषमयुग्मजी (Heterozygous) (Rr) में गुलाबी रंग के पौधे प्राप्त हुये । इससे यह स्पष्ट होता है कि लाल रंग (R) का कारक सफेद रंग (r) वाले कारकों पर पूरी तरह प्रभावी नहीं है अर्थात् F1 पीढ़ी के लाल रंग (R) कारक सफेद (r) रंग वाले कारक पर पूर्णतया प्रभावी नहीं हैं । इसे अपूर्ण प्रभाविता (incomplete dominance) कहा गया है ।

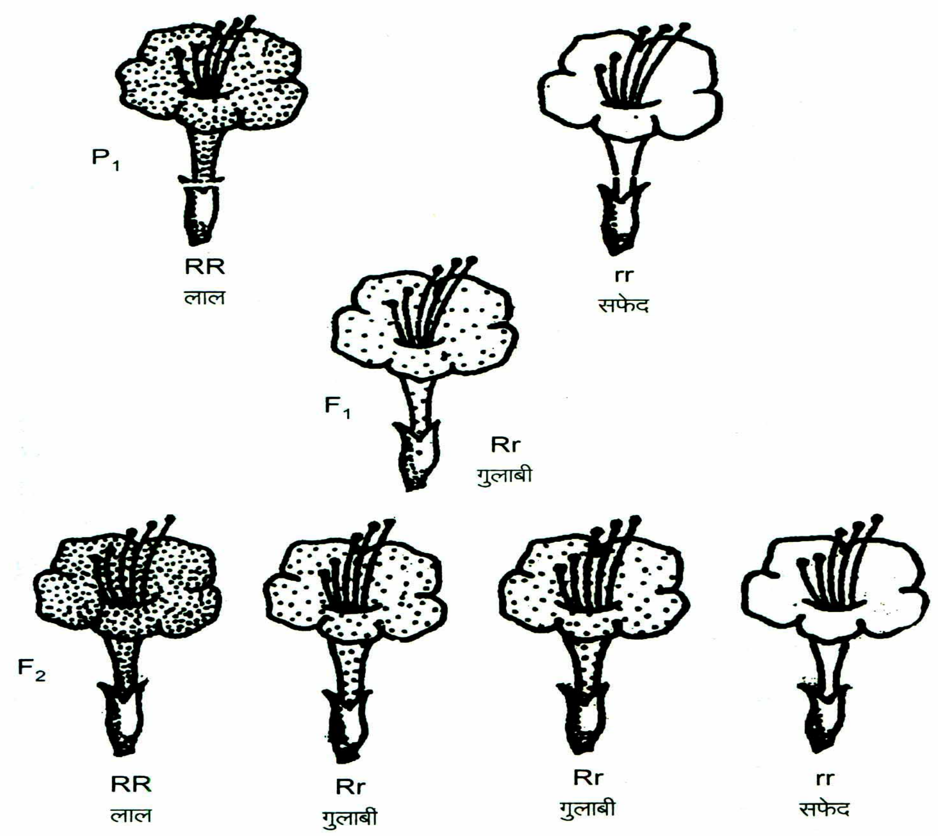

चित्र : मिराबिलिस जलापा (Mirabilis jalapa) में अपूर्ण प्रभाविता

10.4.2 सह -प्रभाविता (Co-dominance)

सह -प्रभाविता में युग्म -विकल्पी जोड़ों में उपस्थित प्रभावी व अप्रभावी कारक F_1 पीढ़ी में समान रूप से लक्षण प्रकट करने में योगदान करते हैं । इस प्रक्रिया को सह -प्रभाविता कहते हैं ।

F_2 पीढ़ी में समजीनी व समलक्षणी दोनों का अनुपात क्रमश: 1: 2: 1 होता है ।

उदाहरण : मवेशियों की त्वचा का रंग (skin Colour in cattles) : मवेशियों में त्वचा रंग लाल (RR) व सफेद (rr) होता है । इनमें संकरण करवाने पर F_1 पीढ़ी में प्राप्त मवेशियों की त्वचा चितकबरी (Roan) (Rr) होती है । इस प्रकार F_1 पीढ़ी में संकर पशु में उपस्थित दोनों कारक अपने लक्षणों को दर्शाते हैं । F_1 पीढ़ी के पशुओं में आपस में संकरण करवाने पर लाल, चितकबरे व सफेद पशुओं का अनुपात क्रमश : 1 : 2 : 1 होता है अत : सह प्रभाविता में भी अपूर्ण प्रभाविता के समान ही मेण्डेलियन अनुपात (3 : 1) का अनुसरण नहीं होता है ।

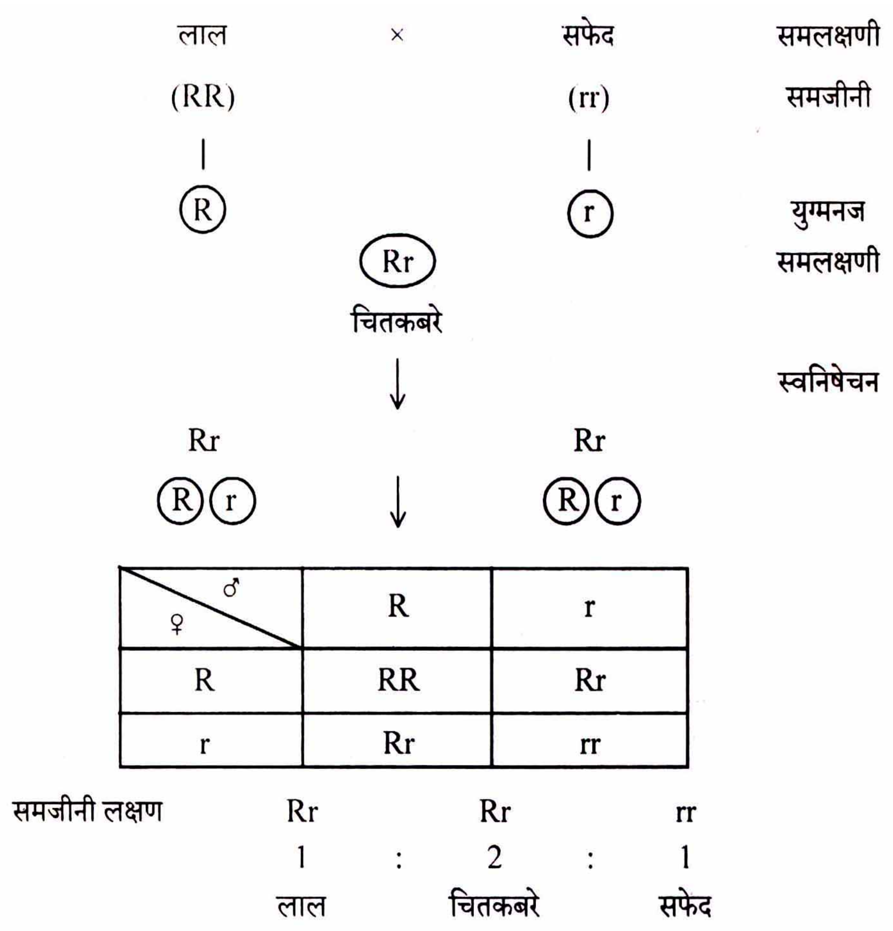

समजीनी लक्षण

Rr		Rr		rr
1	:	2	:	1
लाल		चितकबरे		सफेद

अपूर्ण प्रभाविता व सहप्रभाविता में अन्तर

(Difference Between Incomlete Dominance and Co-dominance)

अपूर्ण प्रभाविता व सहप्रभाविता के F_2 में समलक्षणी अनुपात समान होते हुये भी इनके कारकों के सहसम्बन्धों में अन्तर होता है । अपूर्ण प्रभाविता में दो जोड़ी कारकों के मध्य अन्त :क्रिया से मध्यवर्ती लक्षण प्ररूप प्राप्त होता है, जबकि अनुवशिकी -वैज्ञानिकों के अनुसार सहप्रभाविता के अन्तर्गत F_1 के संकर (विषय युग्मजी) प्रारूप के विकसित होने में दोनों कारकों की समान भागीदारी होती है ।

10.4.3 घातक जीन्स (Lethal Genes)

सजीवों में कुछ ऐसे जीन्स होते हैं जो सजीवों के लिए हानिकारक या उनकी जीवन क्षमता (viability) को प्रभावित करते हैं जिन्हें घातक जीन्स की संज्ञा दी जाती है । उदाहरण के लिए जैसे सफेद आंखों व अवशेषी पंखो (white eyed vestigial wings) वाली ड्रोसोफिला मक्खी

की जीवन क्षमता सामान्य या वाइल्ड प्रकार की मक्खी से कम होता है । इस प्रकार ये जीन सजीवों के लिए मृत्यु कारक होते हैं । घातक जीन्स अगर प्रभावी समयुग्मजी अवस्था में ही अभिव्यक्त होते हैं तो इसके परिणाम स्वरूप सजीव की मृत्यु हो जाती है त था यह जीन्स अगली पीढ़ी में प्रविष्ट नहीं हो पाते और उसी पीढ़ी के साथ नष्ट हो जाते हैं परन्तु ये घातक जीन्स अगर अप्रभावी होते हैं तब पीढ़ी दर पीढ़ी जीवों में विषमयुग्मजी अवस्था में उपस्थित रहता है तथा सजीवों के लिए घातक या मृत्यु कारक नहीं बनते हैं । घातक जीन्स की प्रक्रिया को निम्न उदाहरण से समझाया जा सकता है ।

ल्यूसीन क्यूनोट (Lucin Cuenot 1905) के अनुसार चूहों की त्वचा के रंग के लक्षण की वंशागति मेण्डेलियन के संकर अनुपात 3 : 1 के अनुसार नहीं थे । उनके अनुसार चूहों की त्वचा का पीला रग भूरे रंग पर प्रभावी होता है । यह भी देखा गया है कि प्रभावी समयुग्मजी (YY) अवस्था में पीले रग वाले चूहों के लिए घातक सिद्ध होता है व चूहों की मृत्यु हो जाती है अर्थात् पीले रग की त्वचा वाले चूहे प्रभावी समयुग्मजी (YY) अवस्था में ही पीले त्वचा वाले चूहे प्राप्त होते हैं । जब पीले रंग के विषमयुग्मजी (Yy) वाले चूहों में संकरण करवाया गया तो F_2 पीढ़ी में पीले व भूरे रंग वाले चूहों का समलक्षणी अनुपात 2 : 1 था क्योंकि समयुग्मजी प्रभावी लक्षण वाले चूहे (YY) में घातक जीन्स की उपस्थिति मृत्यु का कारण बनते हैं । इसे निम्न संकरण (cross) द्वारा दर्शाया गया है '

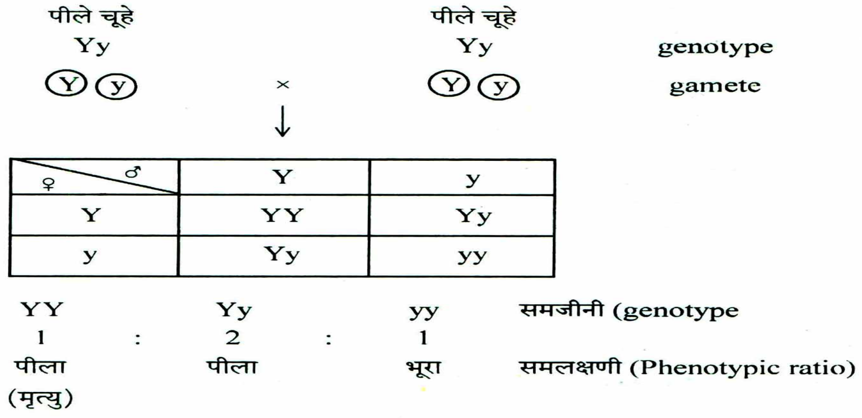

YY	Yy	yy	समजीनी (genotype
1 :	2 :	1	
पीला	पीला	भूरा	समलक्षणी (Phenotypic ratio)
(मृत्यु)			

ल्यूसीन खूनोट (1905) ने उपरोक्त परिणामों के आधार पर निम्न निष्कर्ष प्रस्तुत किये.

(1) चूहे (mouse) में त्वचा का पीला रंग सामान्य भूरे रंग पर प्रभावी होता है ।

(2) विषय युग्मजी अवस्था (Yy) में ही पीले रंग वाले चूहे जीवित रह सकते हैं, समयुग्मजी प्रभावी (YY) अवस्था में इनकी मृत्यु हो जाती है ।

(3) अत : विषमयुग्मजी पीले रंग (Yy) वाले चूहों का आपस में क्रॉस करवाने पर आगे वाली पीढ़ी में पीले व भूरे रंग के चूहों का समलक्षणी अनुपात 2 : 1 में निरूपित होता है, क्योंकि प्रभावी समयुग्मजी (YY) पीला चूहा भ्रूण अवस्था में ही मर जाता है ।

अत : इस क्रॉस के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि Y जीन समयुग्मजी अवस्था (YY) में चूहे के लिए घातक होती है, और ऐसे में चूहे मर जाते हैं फलस्वरूप ये जीन अगली पीढ़ी में संचरित नहीं हो पाते ।

10.5 सारांश

"अनुवंशिकी" शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग बेटसन ने किया जिनके अनुसार जीवों में लक्षणों का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संचरण होना तथा विविधताओं का अध्ययन किया जाता है । जीवों में अनुवंशिकी विभिन्नताएँ या विविधताएँ लैंगिक प्रजनन व उत्परिवर्तनों के फलस्वरूप उत्पन्न होती है ।

ग्रेगर मेण्डल को आनुवांशिकी के ' 'पिता ' ' की संज्ञा दी गई है । मेण्डल के सन् 1857 - 1865 की अवधि में मठ के उद्यान में मटर के पौधों पर सात विपरीत गुणों वाले लक्षणों पर अनुसंधान कार्य किया ।

मेण्डल ने एक संकर संकरण के परिणामों के आधार पर प्रभाविता युग्मकों की शुद्धता का नियम (Law of dominance) प्रतिपादित किया व द्विसंकर संकरण के आधार पर स्वतंत्र अपव्यूहन का नियम (law of independent assortment) दिया ।

मेण्डल के प्रयोगों व निष्कर्षों को तत्कालीन वैज्ञानिकों ने कोई महत्व नहीं दिया व उनकी 6 जनवरी 1884 में मृत्यु हो गई ।

सन् 1900 में तीन अलग - अलग देशों के वैज्ञानिकों (1) ह्यूगो डी व्रीज (Hugo de vries) (2) कार्ल कारेन्स (Carl coorens) (3) एरिक वोन शेमार्क (Erich von Tshermark) ने मेण्डलवाद की पुन : खोज की थी ।

मेण्डल की मान्यता थी कि एक लक्षण दूसरे पर प्रभावी रहता है जिससे F_1 संतति में प्रभावी लक्षण प्रकट होते हैं, परन्तु बाद में परीक्षणों से पाया कि कभी कभी F_1 संतति में माता व पिता के बीच का लक्षण प्ररूप प्राप्त होता है । उदाहरण : मिराबिलिस जलापा, व पशुओं में त्वचा का रंग ।

मेण्डल ने मुख्य रूप से मटर का चयन संकरण के लिए किया था जो अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ क्योंकि ये पादप एक वर्षीय शाक है तथा इनका जीवन -चक्र 3 - 4 माह का होता है । यह स्वपरागित पादप है अत : इनकी शुद्धता बनाये रख सकते हैं ।

इनमें विपरीत लक्षणों की उपस्थिति है व पर -परागण भी संभव है ।

10.6 शब्दावली

1. **कारक** (Factor) मेण्डल ने किसी लक्षण को पीढी दर पीढ़ी संचरण करने वाली रचना को कारक का नाम दिया।

2. **प्रभावी व अप्रभावी लक्षण** (Dominant and Recessive Character) : जो लक्षण F_1 पीढ़ी (प्रथम जनकीय पीढ़ी) में प्रदर्शित होता है वह प्रभावी लक्षण कहलाता है तथा जो लक्षण F_1 पीढ़ी में सुप्त बने रहते हैं अर्थात् प्रकट नहीं होते अप्रभावी लक्षण कहलाते हैं ।
3. **विषमयुग्मजी** (Heterozygous) : द्विगुणित अवस्था में जब दोनों युग्म विकल्पी जीन असमान लक्षणों वाली हो उसे विषमयुग्मजी कहते हैं ।
4. **समयुग्मजी** (Homozygous) : द्विगुणित अवस्था में जब दोनों युग्मविकल्पी जीन एक ही समान लक्षण रखती हो उसे समयुग्मजी कहते हैं ।
5. **समलक्षणी** (Phenotype) : एक जैसे बाह्य लक्षणों वाले जीव
6. **युग्मविकल्पी** (Allele) : यह जीन युग्म है जो विभेदात्मक / विपर्या; लक्षणों को नियंत्रित करता है ।
7. **संकर** (Hybrid) : संकरण क्रिया से उत्पन्न संतति को संकर कहते हैं ।
8. **संकरण** (Hybridization) : यह वह विधि जिसमें दो या दो से अधिक वंशागत रूप से भिन्न पौधों में क्रॉस कराया जाता है ।

10.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. प्रो. पीसी. त्रिवेदी, डॉ. निरन्जन शर्मा, डॉ. इन्दु रानी शर्मा कोशिका विज्ञान, आनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन, रमेशबुक डिपो जयपुर ।
2. P.S. Verma and V.K. Agarwal, Cell Biology, Genetics, Evolution and Ecology. S. Chand & Company (Pvt.) Ltd. Delhi
3. एस.के. शर्मा व अर्चना जैन कोशिका विज्ञान एवं आनुवांशिकी CBH, Jaipur
4. P.K.Gupta Cytology, Genetics, Evolution And Ecology Restage Publication, Meerut.

10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. मेण्डल ने पीढ़ी संचरण करने वाली रचना को कारक का नाम दिया ।
2. वह लक्षण जो कि युग्म विकल्पी जीन युग्म के द्वारा नियंत्रित होते हैं ।
3. ऐसे लक्षण जो कि F_1 पीढी में प्रदर्शित होते हैं प्रभावी व ऐसे लक्षण जो कि F_1 पीढी में सुप्त रहते हैं को क्रमश: प्रभावी व अप्रभावी लक्षण कहते हैं ।
4. समलक्षणी जीव वो होते हैं जो एक जैसे बाह्य लक्षण दर्शाते हैं । समजीनी जीव की जीन की किस्म का उल्लेख करने हेतु इसका उपयोग करते हैं जैसे TT व Tt दोनों लम्बे पौधे हैं जिनमें यह जीन युग्म का संकेत है ।

रिक्त स्थान भरिए :

(1) बेटसन **(2)** 9 : 3 : 3 : 1

(3) सीलेसिया **(4)** 1900

10.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. आनुवंशिकी के जनक/पिता का संक्षिप्त परिचय दीजिए?
2. मेण्डल ने अपने प्रयोगों हेतु उद्यान मटर के पौधों को ही क्यों चुना?
3. मेण्डल के कार्य की पुन: खोज कैसे हुई, तथा उन्हे उनके कार्य के लिए कितने वर्षों बाद सम्मान मिला?
4. मेण्डल के वंशागति के नियमों का विस्तृत उल्लेख कीजिये ।
5. संकर पूर्वज संकरण व परीक्षण संकरण से आप क्या समझते हो?
6. मेण्डल की सफलता के मुख्य कारक लिखिये ?
7. मेण्डल के नियमो के महत्व पर टिप्पणी कीजिये?
8. मेण्डल के अपवाद स्वरूप प्रमाण दीजिये ।
9. मेण्डल के नियमों की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालिये ।

इकाई 11 : जीन अर्न्तक्रियाएँ (Gene Interactions)

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 जीन अर्न्तक्रियाएँ

11.3 बेटसन-पुन्नेट का कारक सिद्वान्त

11.4 प्रबलता

11.5 द्विकजीन, सम्पूरक जीन

11.6 सहलग्नता एवं क्रॉसिंग ओवर

11.7 गुणसूत्र मैपिंग

11.8 सारांश

11.9 शब्दावली

11.10 संदर्भ ग्रन्थ

11.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.0 उद्देश्य

(1) जीन की अर्न्तक्रियाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करना ।

(2) जीन अर्न्तक्रियाओं के द्वारा प्राप्त विभिन्न अनुपातों का अध्ययन करना ।

(3) सहलग्नता व क्रासिंग ओवर के बारे में जानकारी प्राप्त करना ।

11.1 प्रस्तावना

प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि एक लक्षण के लिए एक से अधिक कारक उत्तरदायी होते हैं । यह कारक अर्न्तक्रियाओं द्वारा लक्षण के रूपान्तरण (modification) निषेध (inhibition) प्रतिकार (opposition) या सम्पूर्ण (supplementation) में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं । इन अर्न्तक्रियाओं द्वारा अलग - अलग अनुपात प्राप्त होते हैं ।

गुणसूत्रों पर जीन्स पाये जाते हैं । एक गुणसूत्र पर उपस्थित जीन समूह एक साथ ही संतति में स्थानान्तरित होते हैं। इन जीन समूहों में स्वतंत्र अपव्यूहन नहीं होता है। गुणसूत्रों पर पाये जाने वाले सहलग्न जीन्स के रेखीय अनुक्रम व उनके मध्य दूरी को दर्शाने वाले चित्र को सहलग्नता मानचित्र या गुणसूत्र मानचित्र कहते हैं ।

11.2 जीन अर्न्तक्रियाएँ

सम्पूरक जीन, प्रबलता, द्विकजीन, सहलग्नता एवं क्रॉसिंग ओवर, गुणसूत्र मैपिंग ।

मेण्डल के द्वारा एक संकर संकरण एवं द्विसंकर संकरण किये गये प्रयोगों के आधार पर निष्कर्ष निकाला गया कि प्रत्येक लक्षण केवल एक कारक या जीन द्वारा नियंत्रित होता है परन्तु बाद में

कुछ वैज्ञानिकों के द्वारा किये गये प्रयोगों के आधार पर यह तथ्य दृष्टिगोचर हुआ कि लक्षण विशेष को नियंत्रित करने में दो या दो से ज्यादा कारकों की सक्रिय भूमिका होती है अर्थात् यह भी कहा जा सकता है कि गुणसूत्र पर पाये जाने वाले अनेक कारकों के युग्मविकल्पी केवल एक विशिष्ट लक्षण के लिए उत्तरदायी होते हैं । इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पुर्नसंयोजन (recombination) में कतई आवश्यक नहीं कि सभी कारक किसी एक विशिष्ट परिणाम के लिए जिम्मेदार हों वरन् कारक कई अन्तर्क्रियाओं (interaction) द्वारा एक लक्षण विशेष की अभिव्यक्ति को प्रभावित करते हैं । इनका मुख्य कार्य लक्षण विशेष के रूपान्तरण (modification), निरोध या निषेध (inhibition), प्रतिकार (opposition) या सम्पूरण (supplementation) में योगदान करने का होता है ।

जीन्स की अर्न्तक्रियाओं को प्रकृति व संख्या के आधार निम्न दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है ।

1. युग्मविकल्पी अर्न्तक्रियाएँ (Allelic agene Interaction)
2. अयुग्मविकल्पी अर्न्तक्रियाएँ (Non-allelic Gene Interactions)

1. **युग्मविकल्पी अर्न्तक्रियाएँ (Allelic Gene Interactions)** : यह अर्न्तक्रियाएँ केवल अन्तराजीनी (intragenic) होती है । इसमें एक जीन के दो युग्मविकल्पियो में असामान्य व्यवहार होता है परिणामस्वरूप वंशागति के परिणामों से स्पष्ट विचलन (deviation) होता है । जीवों में इसके सर्वश्रेष्ठ उदाहरण के रूप में अपूर्ण प्रभाविता, सहप्रभाविता अथवा घातक जीन्स का पाया जाना है ।
2. **अयुग्मविकल्पी अर्न्तक्रियाएँ (Non-allelic Gene Interactions)** : यह दो या दो से अधिक जीन्स के मध्य होती है । इसमें दो या अधिक भिन्न - भिन्न जीन्स असामान्य व्यवहार दर्शाते हैं फलस्वरूप मेण्डल के सामान्य द्विसंकर संकरण (9 : 3 : 3 : 1) के समलक्षणी एवं समजीनी अनुपात से विचलन दिखाई पड़ता है । किसी एक जीन का युग्मविकल्पी दूसरे जीन के युग्मविकल्पी के साथ सहयोग अथवा निरोध या निषेध कर सकता है ।

इनके कुछ उदाहरण निम्न है

(i) एक लक्षण को प्रभावित करने वाले दो जीन युग्म
(Same Character Effected By Two Gene Pairs)

मेण्डल के नियमानुसार प्रत्येक लक्षण का निर्धारण एक जोड़ी कारकों द्वारा होता है । अनेक प्रयोगों के परिणामों से बाद में स्पष्ट हुआ कि एक लक्षण अनेक जीन्स की सामूहिक क्रिया का परिणाम है जिसे जीन की अर्न्तक्रियाएँ कहते हैं । इसे कारक सिद्धान्त का नाम भी दिया गया जिसका प्रतिपादन बेटसन व पुन्नेट (Batson & Punnet1955) द्वारा किया गया । उनके मतानुसार मुर्गों में पाये जाने वाली कलगी (comb) की संरचना व आकृति की वंशागति के लिए दो जीन उत्तरदायी होते हैं ।

मुर्गों में चार प्रकार की कलगी गायी जाती है ।

(1) रोज कलगी (Rose comb) जो कि R gene द्वारा नियंत्रित होती है ।

(2) पी (Pea) कलगी जिसके लिए P gene उत्तरदायी है ।

(3) सिंगल कलगी जो कि अप्रभावी जीन्स rp की संयुग्मता के कारण विकसित होती है ।

(4) वालनट आकृति वाली कलगी जो कि दो प्रभावी R व P जीन्स के विषमयुग्मजी अवस्था में साथ होने के कारण बनती है ।

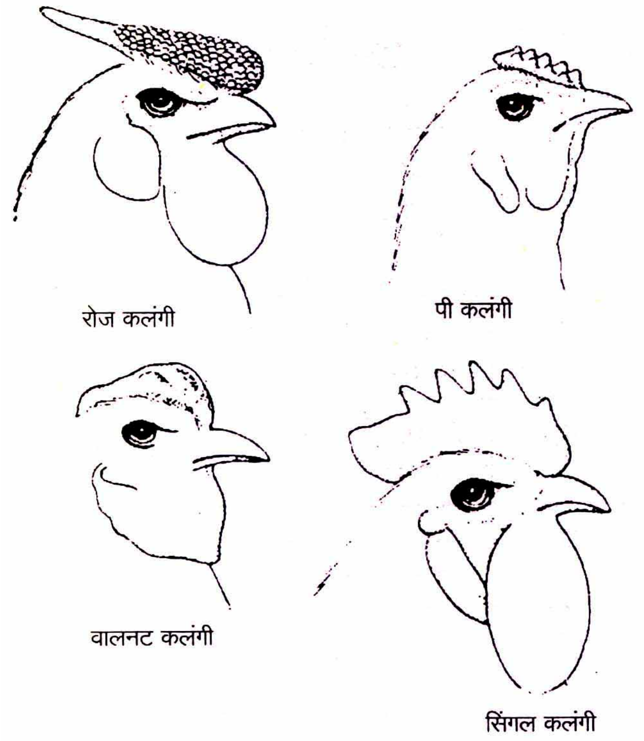

चित्र 11. 1 : मुर्गों में विभिन्न प्रकार की कलगी

रोज व पी दोनों ही सिंगल कलगी पर प्रभावी होते हैं लेकिन किसी मुर्गे में दोनों जीन 'R' व 'P' पाये जाते हैं (RRPP) या (Rr Pp) तो उसके वालनट कलगी बनती है । इसके विपरीत जिस मुर्गे में अप्रभावी जीन्स 'r' व 'p' पाये जाते हैं । (rrpp) तो उसमें सिंगल कलगी पायी जाती है । बेटसन व पुन्नेट के अनुसार जब दौनों प्रभावी समयुग्मनजी जीन (RRPP) पाये जाते हैं तो वालनट व जब अप्रभावी समयुग्मजी (rrpp) जीन मौजूद हों तो सिंगल कलगी का लक्षण प्रकट होता है । इसके विपरीत रोज एवं पी कलगी वाले तब प्रकट होते हैं जब केवल एक प्रभावी युग्मविकल्पी समयुग्मजी या विषमयुग्मजी अवस्था में मौजूद होता है (Rrpp या RRpp) रोज के लिए व (rrpp या rrPp) पी कलगी के लिए ।

उपरोक्त तथ्यों को निम्न संकरण द्वारा समझाया जा सकता है :

रोज कलगी	×	पी कलगी	समलक्षणी P
(RRpp)	×	(rrPP)	समजीनी
Rp		rp	युग्मक

↓

F$_1$ पीढ़ी

(Rr Pp) — समजीनी

वालनट प्रकार — समलक्षणी

↓

स्वनिषेचन

(Rr Pp) × (RrPp)

(RP) (rP) (Rp) (rp)   (RP) (rP) (Rp) (rp)   युग्मक

	♀ \ ♂	RP	rP	Rp	rp
	RP	RRPP वालनट	RrPP वालनट	RRPp वालनट	RrPp वालनट
F$_2$ (चेकर बोर्ड)	rP	RrPP वालनट	rrPP पी	RrPp वालनट	rrPp पी
	Rp	RRPp वालनट	RrPp वालनट	RRpp रोज	Rrpp रोज
F$_2$ (चेकर बोर्ड)	rp	RrPp वालनट	rrPp पी	Rrpp रोज	rrpp सिंगल

समलक्षणी अनुपात	वालनट	:	रोज	:	पी	:	सिंगल
(Phenotypic ratio)	9/16	:	3/16	:	3/16	:	1/16

समजीन अनुपात	RRPP-1,RRPp-2	वालनट
(Genotypic ratio),	Rrpp-1,RrPp-5	9/16
		रोज
	RRpp-1,Rrpp-2	3/16
	rrPp-1,rrPp-2	पी
		3/16
	Rrpp-1	सिंगल
		1/16

कुल समजीनी अनुपात	1 : 2 : 1 : 5	1 : 2	1 : 2	1
(Total Genotypic ratio)	वालनट	रोज	पी	सिंगल

उपरोक्त संकरण से यह स्पष्ट होता है कि :

(1.) मुर्गो में R जीन प्रभावी हो तो रोज व P जीन प्रभावी होने पर पी कलगी का लक्षण प्रकट होता

(2.) रोज व पी कलगी वाले जीव सिंगल कलगी पर प्रभावी है । जब r व p अप्रभावी जीन विषमयुग्मजी अवस्था में हो तो सिंगल कलगी बनती है ।

(3.) जब R व P प्रभावी जीन साथ -साथ (विषमयुग्मजी) हो तो "वालनट" आकार की कलगी का लक्षण प्रकट होता है ।

11.4 प्रबलता (Epistasis)

Epistasis (act of stoping)

एक ग्रीक भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है "निरोध क्रिया" जब अलग - अलग युग्मविकल्पियों के सदस्य दो भिन्न जीन्स या युग्मविकल्पियों में एक जीन दूसरे जीन की अभिव्यक्ति या प्रभाव को छिपा देता है अर्थात् दूसरे शब्दों में एक विस्थल (Locus) का जीन, किसी दूसरे विस्थल के जीन द्वारा नियंत्रित लक्षण को प्रकट होने से रोक देता है, को प्रजनन जीन (epistatic gene) कहते हैं व जीन के इस विशिष्ट लक्षण को प्रबलता (epistasis) कहा जाता है । जिस जीन की अभिव्यक्ति अवरुद्ध अथवा छुप जाती है उसे अबल जीन (hypostatic) व इस गुण को अबलता (hypostasis) कहा जाता है ।

मेण्डल के द्विसंकर संकरण में एक युग्मविकल्पी जोड़े के एक युग्मविकल्पी द्वारा दूसरे की अभिव्यक्ति को रोकने के लक्षण को प्रभाविता कहा जाता है । अत: प्रभाविता एक अन्तराजीनी प्रक्रिया है जबकि प्रबलता अन्तरजीनी प्रक्रिया है जिसमें दोनों जीन स्वतंत्र रूप से अलग-अलग विस्थलों पर पाये जाते हैं |

प्रबलता दो प्रकार की होती हे :

(a) प्रभावी प्रबलता (Dominant epistasis)

(b) अप्रभावी प्रबलता (Recessive epistasis)

(a) **प्रभावी प्रबलता** (Dominant epistasis). प्रभावी प्रबलता की प्रक्रिया को कद्दू में फलों के रंग की वंशागति के उदाहरण से समझा जा सकता है ।

अगर सफेद फल कद्दू (WWYYY) का संकरण हरे रंग के फल वाले कद्दू (WWYY) से करवाया जाये तो F1 पीढ़ी के सभी पौधों के फलों का रंग सफेद (WwYy) होगा । F1 पीढ़ी में स्वनिषेचन करवाने के बाद F2 पीढ़ी में प्राप्त सफेद, पीले व हरे रंग वाले पौधों का समलक्षणी अनुपात 12: 3 : 1 होगा ।

सफेद × हरा — लक्षण प्ररूप (P)

(WWYY) — (wwyy) — जीन प्ररूप

WY × wy — युग्मक

↓

सफेद — F_1 पीढ़ी लक्षण प्ररूप

(WwYy) — जीन प्ररूप

↓ स्वनिषेचन

(WwYy) × (WwYy)

(WY) (Wy) (wY) (wy)   (WY) (Wy) (wY) (wy)

♀ \ ♂	WY	Wy	wY	wy
WY	WWYY सफेद	WWYy सफेद	WwYY सफेद	WwYy सफेद
Wy	WWYy सफेद	WWyy सफेद	WwYy सफेद	Wwyy सफेद
wY	WwYY सफेद	WwYy सफेद	wwYY पीला	wwYy पीला
wy	WwYy सफेद	Wwyy सफेद	wwYy पीला	wwyy हरा

F_2 लक्षणप्ररूपी अनुपात	सफेद (WY)	:	पीला (wY)	:	हरा (wy)
	12	:	3	:	1
सामान्य लक्षण–प्ररूपी द्विसंकर अनुपात	9 : 1	:	3	:	1
	↓				
रूपान्तरित लक्षण प्ररूपी अनुपात	12	:	3	:	1

उपरोक्त संकरण से यह स्पष्ट होता है कि

(1) प्रभावी Y जीन फलों के पीले रंग के लिए जिम्मेदार है ।

(2) अप्रभावी Y जीन फलों के हरे रग के लिए जिम्मेदार है ।

(3) प्रभावी प्रबलता जीन W फलों के सफेद रंग के लिए जिम्मेदार होता है ।

(4) इस संकरण परिणाम से यह स्पष्ट होता है कि W प्रभावी जीन की उपस्थिति के कारण दूसरा प्रभावी जीन Y की अभिव्यक्ति नहीं हो पाती है फलस्वरूप W जीन के साथ Y जीन

उपस्थित होने पर भी फलों का रग सफेद होता है क्योंकि W जीन Y के प्रभाव को दबा देता है ।

(5) अप्रभावी Y जीन के साथ अगर Y प्रभावी जीन उपस्थित हो तो पीले रंग के फल प्राप्त होते हैं |

(6) समयुग्मी अप्रभावी जीन wwyy की उपस्थिति के कारण फल हरे रंग का प्राप्त होता है ।

(7) F_2 पीढ़ी के 16 पौधों में कम से कम 12 में एक प्रभावी W जीन है अत: इनमें फलों का रंग सफेद है । तीन में कम से कम एक प्रभावी जीन Y तो उपस्थित है परन्तु प्रबल जीन W नहीं है फलस्वरूप इनमें फल पीले रंग के होते हैं, जबकि एक पौधे में न तो प्रभावी एवं प्रबल जीव W और न ही दूसरा प्रभावी जीन Y पाया जाता है फलस्वरूप इनमें अप्रभावी समयुग्मजी अवस्था wwyy में फलों का रंग हरा है । इस प्रकार कद्दू में फलों का रंग दो अयुग्म विकल्पी जीनों W और Y द्वारा नियंत्रित होता है ।

11.4.1 अप्रभावी प्रबलता (Recessive Epistasis / Supplementary Gene Action)

इस प्रकार की जीन अभिक्रिया में किसी एक जीव का प्रभावी युग्म विकल्पी, जो एक लक्षण को नियंत्रित करता है उसकी अभिव्यक्ति के द्वारा सजीव में विशेष लक्षण की अभिव्यक्ति होती है तथा दूसरे जीन का प्रभावी युग्मविकल्पी स्वंय किसी लक्षण कीअभिव्यक्ति के लिए जिम्मेदार नहीं होता परन्तु यह जीन जब पहिले जीन के प्रभावी युग्मविकल्पी के साथ होता है तो यह इस प्रभावी जीन द्वारा नियंत्रित लक्षण की अभिव्यक्ति या उससे उत्पन्न लक्षण प्ररूप को परिवर्तित कर देता है ।

चूहों में जंगली रग को अगोटी (agouit) कहते हैं तथा इसे बालों की पदटरचना द्वारा पहचाना जाता है । इनके बाल पीले तथा इनके आधार काले होते हैं । एक जीन A पर अप्रभावी वैकल्पिक सदस्य C प्रबल होता है । जीन A की अनुपस्थिति में प्रभावी एलील C से रंगीन चूहे प्राप्त होते हैं । अत: CCaa रंगीन और ccAA रंगहीन होगा, जब रंगीन चूहों (ccaa) रंगहीन (ccAA) चूहे से संकरण किया जाता है तो F1 में संतति में अगोटी चूहे (CcAa) प्राप्त होते हैं ।

काला (Black) (CCaa)	×	सफेद (Albuno) (ccAA)	समलक्षणी (P)
			समजीनी युग्मक
Ca	×	cA	युग्मक

↓

अगोटी	F_1 समलक्षणी
(CcAa)	समजीनी
(CA) (ca) (cA) (ca)	युग्मक

↓

♀ \ ♂	CA	Ca	cA	ca
CA	CCAA अगोटी	CCAa अगोटी	CcAA अगोटी	CcAa अगोटी
Ca	CCAa अगोटी	CCaa काला	CcAa अगोटी	Ccaa काला
cA	CcAA अगोटी	CcAa अगोटी	ccAA सफेद	ccAa सफेद
ca	CcAa अगोटी	Ccaa काला	ccAa सफेद	ccaa सफेद

समलक्षणी अनुपात	अगोटी	:	काला	:	सफेद
	9	:	3	:	4
सामान्य समलक्षणी द्विसंकर अनुपात	(CA)	:	(Ca)	:	(cA/ca)
	9	:	3	:	3:1
रूपान्तरित समलक्षणी अनुपात	9	:	3	:	4

11.5 द्विक जीन अभिक्रिया 15.1 अनुपात (Duplicate Gene Action 15:1 Ratio)

इस प्रकार की जीन अन्योन्य क्रिया में दो पूर्ण प्रभावी जीन में से किसी एक या दोनों जीन्स की उपस्थिति से समान लक्षण प्ररूप अनुपात (phenotypic ratio) प्रकट होता है जिसके कारण द्विसंकर संकरण का 9 : 3 : 3 : 1 का अनुपात परिवर्तित होकर 15 : 1 अनुपात प्राप्त होता है । इस प्रकार के अनुपात को अभिव्यक्त करने वाले जीन्स को द्विक जीन्स (duplicate genes) कहते हैं । द्विक जीन्स की अभिक्रिया को shepherd purse,(Capesella bursa-pastoris)नामक पौधे में फलों के आकार की वंशागति के अध्ययन के द्वारा समझा जा सकता है । capsella में दो प्रकार के फल पाये जाते हैं : (1) त्रिभुजाकार (triangular) और (2) लड्डूनुमा (top shape) शल नाम के वैज्ञानिक ने जब त्रिभुजाकार फल वाले पौधे संकरण लड्डू फल वाले पौधों से कराया तो F1 पीढ़ी में सभी पौधों में त्रिभुजाकार फल मिले । इन पौधों का आपस में संकरण कराने पर F2 पीढ़ी में त्रिभुजाकार फल वाले और लड्डू फल वाले पौधों का समलक्षणी अनुपात 15 : 1 प्राप्त हुआ ।

त्रिभुजाकार		लट्टूनुमा फल	लक्षण प्ररूप
(AABB)	×	(aabb)	जीन प्ररूप
(AB)	↓	(ab)	युग्मक
	(AaBb)		जीन प्ररूप
	त्रिभुजाकार फल		लक्षण प्ररूप

↓

स्वनिषेचन

(AaBb) × (AaBb) त्रिभुजाकार F_1

AB Ab aB ab   AB Ab aB ab   युग्मक

♂ / ♀	AB	Ab	aB	ab
AB	AABB त्रिभुजाकार	AABb त्रिभुजाकार	AaBB त्रिभुजाकार	AaBb त्रिभुजाकार
Ab	AABb त्रिभुजाकार	AAbb त्रिभुजाकार	AaBb त्रिभुजाकार	Aabb त्रिभुजाकार
aB	AaBB त्रिभुजाकार	AaBb त्रिभुजाकार	aaBB त्रिभुजाकार	aaBb त्रिभुजाकार
ab	AaBb त्रिभुजाकार	Aabb त्रिभुजाकार	aaBb त्रिभुजाकार	aabb लट्टूनुमा

समलक्षणी अनुपात त्रिभुजाकार : लट्टूनुमा

समजीनी (AB) : (ab)

15 : 1

सामान्य द्विसंकर अनुपात (AB) : (Ab) : (ab) : (ab)

9 : 3 : 3 : 1

15 : 1

शल ने अपने प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकाला कि त्रिभुजाकार फलों वाला गुण लड्डूनुमा फल वाले गुण पर प्रभावी है और त्रिभुजाकार फलों की उपस्थिति के लिए जीन A व जीन B के दोनों सदस्यों का साथ - साथ प्रभावी होना जरूरी है, जबकि लड्डू फल वाले लक्षण के लिए दोनों जीन्स के सुप्त (अप्रभावी) सदस्य (aabb) ही जिम्मेदार होते हैं ।

11.5.1 सम्पूरक जीन (Complementary)

जब दो या दो से अधिकक स्वतंत्र जीन आपसी सहयोग द्वारा एक ही लक्षण को विकसित करते हैं परन्तु दोनों में से कोई भी जीन अकेले उस लक्षण को विकसित नहीं कर पाता ऐसे दोनों जीन्स सम्पूरक जीन्स कहलाते हैं । न केवल प्रभावी लक्षण की अभिव्यक्ति हेतु इन दोनों में से प्रत्येक जीन का एक प्रभावी युग्मविकल्पी अवस्था में होना भी आवश्यक है । सम्पूरक जीन अभिक्रिया को निम्न उदाहरण से समझा जा सकता है

मीठी मटर में पुष्पों का रंग (Flower colour in Sweet pea. Lathyrus odoratus): बेटसन व पुन्नेट ने अपने प्रयोगों में पाया कि जब श्वेत पुष्पवाली मटर की दो किस्मों में कृत्रिम संकरण करवाया तब F1 संतति में लाल पुअ प्राप्त हुये । जब F1 पौधों में स्वनिषेचन करवाया गया तो F_2 संतति में लाल व श्वेत पुष्प का समलक्षणी अनुपात क्रमश: 9: 7 का प्राप्त हुआ । उनके अनुसार यह 9: 7 का अनुपात भी सामान्य द्विसकर संकरण के समलक्षणी अनुपात के 9: 3: 3:1 का ही रूपान्तर है ।

श्वेत पुष्प		श्वेत पुष्प	समलक्षणी (P)
(CCpp)	×	(ccPP)	समजीनी
Cp	↓	cP	युग्मक
	लाल पुष्प (CcPp)		F1 पीढ़ी

स्वनिषेचन

रंगीन पुष्प		रंगीन पुष्प	
(CcPp)	×	(CcPp)	
CP cp cP cp		CP Cp cP cp	युग्मक

F_2 (चेकर बोर्ड)

♀ \ ♂	CP	Cp	cP	cp
CP	CCPP लाल	CCPp लाल	CcPP लाल	CcPp लाल
cp	CcPp लाल	CCpp श्वेत	CcPp लाल	ccpp श्वेत
cP	CcPp लाल	CcPp लाल	ccPP श्वेत	ccPp श्वेत
cp	CcPp लाल	Ccpp श्वेत	ccPp श्वेत	ccpp श्वेत

समलक्षणी अनुपात	लाल	:	श्वेत पुष्प
	(c व P)	:	(cP, Cp, cp)
	9	:	7
सामान्य द्विसंकर समलक्षणी अनुपात	9	:	3 : 3 : 1 ↓
रूपान्तरित द्विसंकर संकरज समलक्षणी अनुपात	9	:	7

उपर्युक्त उदाहरण में पुष्पों का लाल (रंगीन) वर्णक एन्थोसाइनिन के कारण होता है यह वर्णक पूर्ववर्ती पदार्थ क्रोमोजन से उत्पन्न होता है । एक जीन C रंगीन पदार्थ क्रोमोजन के लिए जिम्मेदार होता है । इसका जीन P एन्जाइम को सक्रिय करने के लिए जिम्मेदार है जो कि क्रोमोजन को वर्णक एन्थोलाइनिन में बदलता है । जब यह दोनों (एन्जाइम + क्रोमोजन कारक)

पाये जाते हैं तभी पुष्प लाल रंग के होंगे । दूसरे शब्दों में C व P दोनों जीन का प्रभावी होना आवश्यक है किसी एक की अनुपस्थिति पुष्प रंगीन न होकर श्वेत होगा ।

बोध प्रश्न - 1

1. अप्रभावी प्रबलता (recessive epistasis) में F_1 पीढ़ी का जीनी अनुपात होता है :
   (a) 15.1
   (b) 9 : 3 : 4
   (c) 9 : 3 : 1
   (d) 9.7
2. द्विगुण अप्रभावी प्रबलता (duplicate recessive epistasis) के अन्तर्गत F_2 पीढ़ी में जीनी अनुपात होता है:
   (a) 3.1
   (B) 9: 3: 3: 1
   (c) 9: 3: 4
   (d) 9: 7
3. जब एक जीन अन्य अयुग्म विकल्पी जीन के प्रभाव को दबाकर इसे व्यक्त नहीं होने देती तो इसे कहते हैं:
   (a) प्रबलता
   (b) अप्रभाविता
   (c) प्रभाविता
   (d) सह - प्रभाविता
4. घातक जीन्स से आप क्या समझते हैं?
   ....
   ....
   ....
5. एक ही लक्षण को दो या अधिक जीन्स के युग्म विकल्पी जीन स्वतंत्रता से वंशागति का नियंत्रण करते हैं,तो.............................. कहलाते हैं ।
6. एक जीन जो दूसरे की अभिव्यक्ति को रोकता है........................... जीन कहलाता है ।
7. जब दो प्रभावी एवं अप्रभावी जीन स्वतंत्र होकर अपना अपना प्रभाव उत्पन्न करते हैं तो इसे.............................. कहते हैं?
8. जीनों की पारस्परिक क्रिया से क्या अभिप्राय: है?
   ....
   ....

9. बेटसन एवं पुन्नेट ने जब दो भिन्न जातियों के श्वेत रंग वाले पुष्प के पौधों (CCa व ccAA) के मध्य संकरण करवाया तो F_2 पीढ़ी में किस रग के पुष्प प्राप्त हु ये?

....

....

....

10. द्विगुण अप्रभावी प्रबलता में सामान्य सुनने व बोलने वाले (AABB) एवं बहरे व गूंगे (aabb) के मध्य संकरण करवाने पर F_2 पीढ़ी में क्या अनुपात प्राप्त होगा?

....

....

....

11.6 सहलग्नता एवं क्रॉसिंग ओवर (Linking and Crossing Over)

जीव के प्रत्येक गुणसूत्र पर विभिन्न संख्या में जीन पाये जाते हैं । मेण्डल के अनुसार प्रत्येक गुण केवल एक जीन द्वारा नियंत्रित होता है जिसे उन्होंने कारक की संज्ञा दी । जर्मन वैज्ञानिक सटन (Sutton) ने सर्वप्रथम कारकों व गुणसूत्रों के मध्य सह संबंधों को बताते हुए सहलग्नता (linkage) की खोज की । जब एक गुणसूत्र पर पाये जाने वाले जीन की वंशागति (inhentance) एक साथ होती है तो सहलग्न जीन (linked gene) कहलाते हैं, एवं इनके द्वारा नियंत्रित लक्षणों को सहलग्न लक्षण (linkage character) कहते हैं व एक गुणसूत्र पर उपस्थित समस्त जीन समूह एक साथ ही संतति में स्थानांतरित होते हैं । इसमें गुणसूत्रों का अपव्यूहन (assortment) स्वतंत्र रूप से नहीं होता है अत: सहलग्न सह भी स्वतंत्र रूप से अपव्यूहित नहीं होते हैं ।

आनुवंशिकी सहलग्नता का विश्लेषण एवं सांख्यिकी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा गुणसूत्रों पर पाये जाने वाले जीन्स का एक निश्चित स्थान सुनिश्चित करती है तथा यह प्रक्रिया आनुवंशिक विश्लेषण के लिए प्रयुक्त की जाती है । आनुवांशिकी अध्ययन में सहलग्नता का विश्लेषण प्रमुख रूप से दो या दो से अधिक विस्थलों (loci) के साथ संतति पीढ़ी में सह -पृथक्करण (Co-seggreation)) तथा मेण्डल के स्वतंत्र अपव्यूहन के विचलन (deviation) पर आधारित है ।

सर्वप्रथम बेटसन व पुन्नेट (1905 - 06) ने स्वतंत्र अपव्यूहन में विचलन पाया जो कि मेण्डल के द्वारा प्रतिपादित स्वतंत्र अपव्यूहन के सिद्धान्त का अपवाद सिद्ध हुआ ।

इसके आधार पर उनके द्वारा "युग्मन एवं प्रतिकर्षण परिकल्पना" (coupling & repulsion hypothesis) प्रस्तुत की । मेण्डल का स्वतंत्र अपव्यूहन का नियम (low of independent assortment) उसी स्थिति में खरा उतरता है जब ही लक्षण के जीन भिन्न -भिन्न गुणसूत्रों पर स्थित होते हैं ।

1.6.1 युग्मन एवं प्रतिकर्षण परिकल्पना (Coupling Repulsion Hypothsis)

बेटसन तथा पुन्नेट (1905) ने मीठी मटर (Lathyrus odoratus) में बैंगनी पुष्प (B) तथा लम्बे परागकण (L) वाले पादपों का संकरण लाल पुष्प (b) व गोल (1) वाले पौधों से करवाया तो F पीढ़ी में सभी पौधे बैंगनी पुष्प व लम्बे परागकण वाले प्राप्त हुये परन्तु जब F1 पीढ़ी के विषमयुग्मजी (heterozyqous) का परीक्षण क्रॉस (test cross) लाल पुष्प व गोल परागकण वाले अप्रभावी गुणों वाले पौधों से करवाया तो स्वतंत्र अपव्यूहन के नियमानुसार 1 : 1 : 1 : 1 अनुपात के स्थान पर निम्न अनुपात प्राप्त हुआ

7	:	1	:	1	:	7
(BbLl)		(Bbll)		(Bbll)		(Bbll)
बैंगनी पुष्प व लम्बे पराग कण		बैंगनी पुष्प गोल परागकण		बैंगनी पुष्प व लम्बे परागकण		लाल पुष्प गोल परागकण

उपरोक्त क्रॉस से यह स्पष्ट है कि F_2 पीढ़ी में जनकों के संयोगों (नीले, लम्बे, लाल, गोल) की संख्या नये संयोगों (नीले गोल व लाल लम्बे) से बहुत अधिक है तदानुसार यह निष्कर्ष निकाला गया कि प्रभावी युग्मविकल्पियों के साथ -साथ रहने की प्रवृत्ति थी इसी प्रकार अप्रभावी युग्मविकल्पियों के साथ भी देखा गया । जनक के युग्मविकल्पियो में एक ही युग्मक में इकट्ठा रहने तथा साथ -साथ वंशागत होने की प्रवृत्ति होती है जिसे उन्होंने आनुवंशिक युग्मन (Genetic coupling) कहा । इसी प्रकार अलग - अलग जनक पौधों से संतति में आधे जीन स्वतंत्र रूप से प्रवाहित होने की प्रवृत्ति को आनुवांशिकी प्रतिकर्षण (genetic repulsion) कहा गया । परन्तु बेटसन व पुन्नेट इन परिणामों की स्पष्ट व्याख्या नहीं प्रस्तुत कर सके थे फलस्वरूप इस परिकल्पना को वैज्ञानिक मान्यता नहीं मिल पायी ।

11.6.2 मार्गन की सहलग्नता परिकल्पना (Morgan’s Concept Linkage)

मार्गन ने ड्रोसोफिला मक्खी पर वंशागति का अध्ययन करके "सहलग्नता का गुणसूत्र सिद्धान्त" प्रस्तुत किया । मार्गन के मतानुसार बेटसन व पुन्नेट द्वारा प्रतिपादित युग्मन व प्रतिकर्षण एक ही परिघटना के दो पहलू है । यह इस कारण है क्योंकि युग्मन की दशा में दो प्रभावी युग्मविकल्पी एक ही गुणसूत्र पर पाये जाते हैं जबकि प्रतिकर्षण की अवस्था में यह विभिन्न समजात गुण होते हैं । ऐसे जीन्स को सहलग्न जीन तथा इस परिघटना को सहलग्नता कहते हुए मार्गन ने सहलग्नता का गुणसूत्र सिद्धान्त प्रतिपादित किया ।

सहलग्नता का गुणसूत्र सिद्धान्त (Theroy of Chromosome Linkage)

मॉर्गन व कैसल (Morgan & Castele,1911) के अनुसार :

(i) गुणसूत्र में जीन पास -पास या थोड़ी दूरी पर रहते हैं ।

(ii) जीन गुणसूत्र पर रेखिक क्रम में व्यवस्थित रहते हैं तथा जीन्स की सहलग्नता भी रेखिक क्रम में होती है ।

(iii) वंशागति के अन्तर्गत एक गुणसूत्र पर पाये जाने वाले जीन्स में एक साथ रहने की प्रवृत्ति पायी जाती है । इस प्रकार सहलग्नता दर्शाने वाले जीन एक ही गुणसूत्र पर अवस्थित होते हैं ।

(iv) एक ही गुणसूत्र पर अवस्थित जीन्स में वंशागति के परिणामस्वरूप एक साथ संचरण होता है जिसे सहलग्नता कहते हैं ।

(v) सहलग्न जीन्स के बीच की दूरी सहलग्नता की क्षमता के प्रतिलोमानुपाती (inversely proportional) होती है ।

(vi) सहलग्नता की आवृत्ति जीनों के बीच की दूरी पर निर्भर करती है ।

(vii) दो जीन्स के बीच की दूरी को विनिमय प्रतिशतता (cross over percentage) द्वारा ज्ञात किया जा सकता है ।

(viii) युग्मन व प्रतिकर्षण प्रतिक्रियाएँ वास्तव में एक ही प्रक्रिया के दो पहलू हैं । युग्मन की अवस्था में प्रभावी युग्म विकल्प एक ही गुणसूत्र पर मिलते हैं जबकि प्रतिकर्षण (repulsion) की अवस्था में पृथक किन्तु समजात गुणसूत्रों पर पाये जाते हैं ।

(ix) विभिन्न जीन्स की सहलग्नता को ज्ञात कर गुणसूत्र का सहलग्नता मानचित्र (linkage map of chromosome) बनाया जा सकता है ।

(x) ऐसे जीन्स जो सहलग्नता प्रदर्शित करते हैं हमेशा एक ही गुणसूत्र पर पाये जाते हैं ।

उपरोक्त परिणामों के आधार पर सहलग्नता को निम्न रूप से परिभाषित किया जा सकता है

"जब एक गुणसूत्र के अयुग्म विकल्पिय जीन एक सहलग्नता समूह बनाकर युग्मकों में एक साथ प्रवेश करने की प्रवृत्ति रखते हैं तो इसे सहलग्नता कहते हैं" अर्थात् जीन्स द्वारा एक साथ वंशागत होने तथा संतति में अपने पैतृक संयोग को बनाये रखने के प्रक्रम को सहलग्नता कहते हैं।

प्रत्येक सजीव में सहलग्न समूहों की संख्या उसके अगुणित गुणसूत्रों (genome) की संख्या के बराबर होती है जैसे मनुष्य में 23, मटर में 7, ड्रोसोफिला मेलानोगेस्टर में 4 सहलग्न समूह पाये जाते हैं ।

ड्रोसोफिला, मक्का, न्यूरोस्यपोरा में सहलग्नता पर अत्याधिक कार्य किया जाता है परन्तु टमाटर, आलू रोडेन्ट्स तथा मनुष्य में आंशिक रूप से प्रस्तुत किया गया है ।

11.6.4 मक्का में सहलग्नता (Linkage in maize)

हचिन्सन (Hutchinson 1922) ने मक्के के नौवें (ninth) गुणसूत्र पर स्थित दो जीन्स का उपयोग परीक्षण संकरण (test cross) में किया । इनमें से एक जीन मक्के के बीज के ऐल्यूरोन (aleurone) के रंग को और दूसरा भ्रूणपोष (endosperm)) के आकार को निर्धारित करता है । बीज में एल्यूरोन रंगीन अथवा रंगहीन व भ्रूणपोष भरा अथवा सिकुड़ा हुआ पाया जाता है । परीक्षण संकरण के अन्तर्गत हचिन्सन ने, मक्का के रंगीन व भरे हुए बीजों वाले पौधों का रंगहीन व सिकुड़े भ्रूणपोष के साथ संकरण करवाया । फलस्वरूप F_1 पीढ़ी में प्राप्त सभी पौधे रंगीन एव भ्रूणकोष युक्त बीज वाले थे । जब F_1 पीढ़ी के पौधों का परीक्षण संकरण अप्रभावी

जनक अर्थात् रंगहीन ऐल्यूरोन व सिकुड़े भ्रूणपोष युक्त बीज वालों से कराया (CcSs x CcSs) तो जो परिणाम प्राप्त हुये वह निम्न प्रकार से थे :

कुल बीज	8368	%		
रंगीन, भरे हुये	4032	48.2	8067	जनकीय संयोग
रंगहीन, सिंकुड़े	4035	48.3	96.5%	
रंगीन सिकुड़े	149	1.7	301	पुर्नसंयोजन प्रकार
रंगहीन भरे हुये	152	1.8	3.5.%	

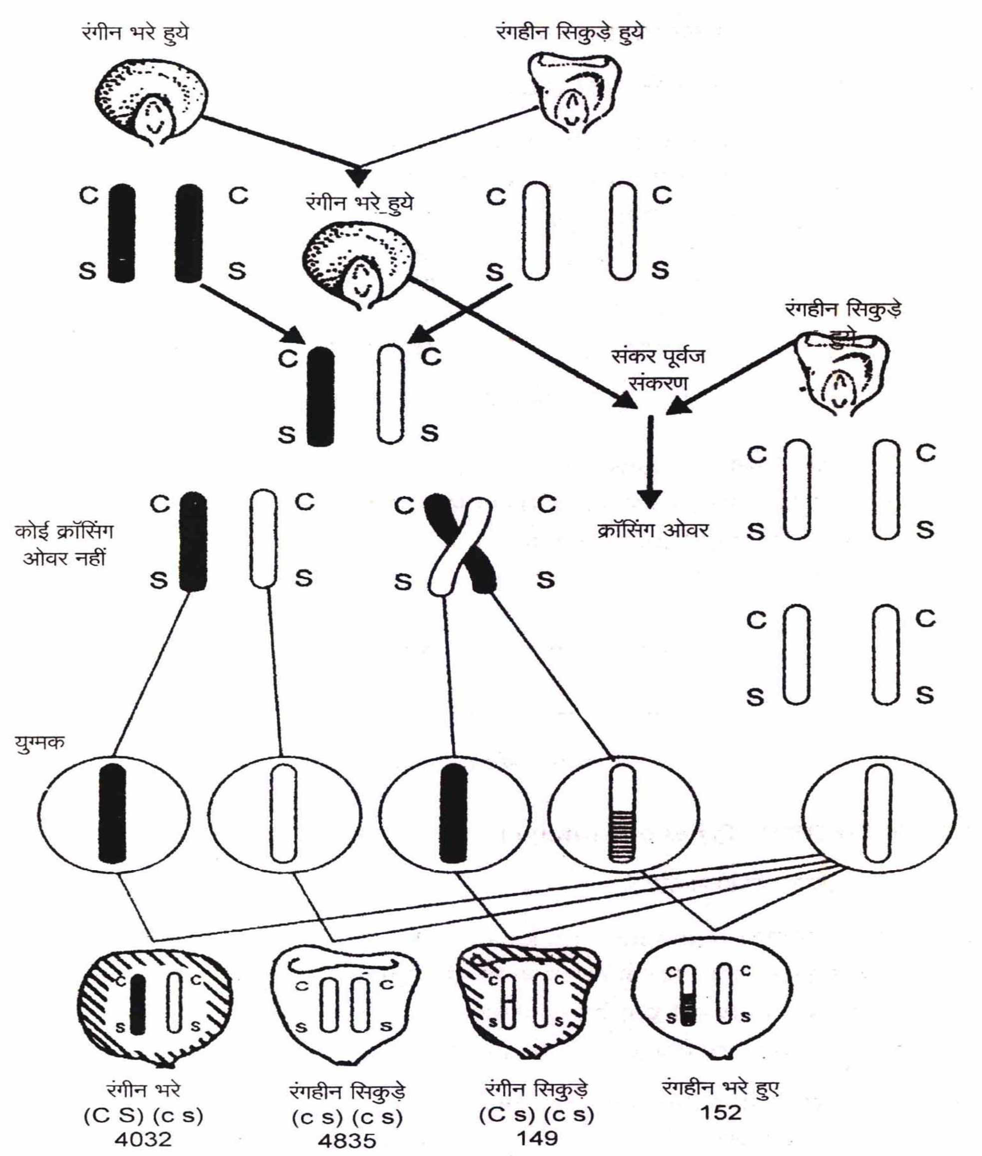

चित्र 11.2 : मक्का में सहलग्नता

इस प्रकार परीक्षण संकरण द्वारा प्राप्त जनकवि संयोजनों की पुनरावृत्ति, सामान्य परीक्षण संकरण प्रत्याशित अनुपात सामान्य 1 : 1 : 1 : 1 के अनुरूप नहीं हैं, इनमें से कुछ 25% से बहुत अधिक हैं । उपरोक्त संकरण में जनकीय, समलक्षणी अधिक व पुनर्योजित लक्षण प्ररूप या नये संयोजन कम हैं । इससे स्पष्ट है कि दो जीन 'CS' व cs साथ रहकर संलग्न रूप से अगली पीढ़ी में संचरित होते हैं जिसे युग्मन प्रावस्था (coupling phase) कहते हैं ।

11.6.5 सहलग्न जीन्स का व्यवस्था-क्रम (Arrangement ofLinked gene)

सहलग्न जीन्स का व्यवस्था क्रम विषमजत (heterogeneous) में निम्न दो प्रकार का होता है:

(i) **समपक्षिकी विन्यास** (Cis-arrangement): इस प्रकार के विन्यास में दो प्रभावी सहलग्नी जीन एक गुणसूत्र पर तथा इनके अप्रभावी सहलग्नी जीन दूसरे गुणसूत्र पर अवस्थित रहते हैं जैसा कि निम्न चित्र में दर्शाया गया है :

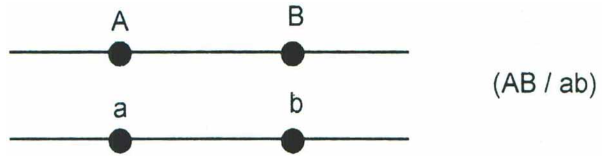

समपक्षिकी विन्यास

(ii) **विपक्षिकी विन्यास** (Trans-arrangement): इसमें एक प्रभावी सहलग्नी जीन के साथ दूसरे अप्रभावी सहलग्नी जीन एक गुणसूत्र पर पाये जाते हैं व इनके युग्मविकल्पी क्रमशः पहले अप्रभावी जीन व दूसरे प्रभावी जीन इसके समजात गुणसूत्र पर पाये जाते हैं जैसा कि निम्न चित्र में दर्शाया गया है

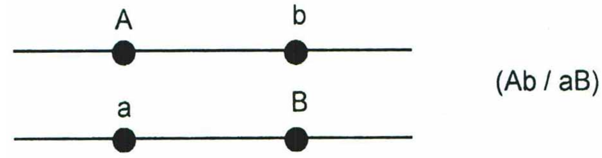

विपक्षिकी विन्यास

सहलग्नता के प्रकार (Types of Linkage)

सहलग्नता दो प्रकार की हो सकती है :

(i) **पूर्ण सहलग्नता** (Complete Linkage) : इसमें सहलग्नी जीन समान गुणसूत्र पर एक दूसरे के निकट स्थित रहते हैं तथा पीढ़ी दर पीढ़ी इसी तरह स्थानान्तरित होते रहते हैं । इस अवस्था में विनिमय नहीं होता व नवीन संयोजन नहीं बनते । पूर्ण सहलग्नता एक विरल अवस्था है जो कि ड्रासोफिला में कुछ लक्षणों में पायी जाती है ।

(ii) **अपूर्ण सहलग्नता** (Incomplete Linkage) इसमें सहलग्नी जीन समजाती गुणसूत्र पर एक दूसरे से निश्चित दूरी पर स्थित होते हैं व इनमें जीन विनिमय की सम्भावनाएँ प्रबल होती है जैसे मीठी मटर में प्रतिकर्षण या युग्मन ।

सहलग्नता की सामर्थ्य (Strength of Linkage) : मॉर्गन के अनुसार किन्हीं दो जोड़ी सहलग्न जीन्स के मध्य पाई जाने वाली दूरी पर सहलग्नता सामर्थ्य निर्भर करती है । अर्थात् सहलग्न

जीन्स के मध्य की दूरी एवं उनमें होने वाली जीन विनिमय की प्रतिशतता के व्युत्क्रमानुपात (inversely proportion) को सहलग्नता सामर्थ्य कहते हैं ।

सहलग्नता का महत्व : जीवधारियों में इसका विशेष महत्व होता है क्योंकि यह युग्मक निर्माण प्रक्रिया के समय होने वाली विविधताओं की सम्भावना को कम करता है ।

सहलग्न जीन्स के कारण चयन में विशिष्ट महत्व होता है क्योंकि कभी -कभी गुणात्मक लक्षण (Qualitive character) जैसे पर्णाकार, तने का रंग इत्यादि व मात्राम्मक लक्षणों (quantitative character) उदाहरण के लिए फल परिमाण, बीजभार, अधिक उत्पादकता (crop yield) आदि सहलग्न रहते हैं । इन पौधों में जब संकरण किया जाता है तो संतति में मात्रात्मक लक्षणों को आसानी से चिन्हित किया जा सकता है क्योंकि यह सहलग्नता के कारण एक साथ वंशागत होते हैं अत: चयन प्रक्रिया में इनका महत्व होता है ।

इसी प्रकार कपास, चावल इत्यादि के प्रजनन (breeding) में भी इनका महत्वपूर्ण योगदान है ।

11.6.6 जीन विनिमय (Crossing Over)

मॉर्गन तथा **केसल** (Morgan & Castle 1912) के अनुसार "एक जोड़ी सजातीय गुणसूत्रों के अर्ध गुणसूत्रों (chromatid) के संगत खण्डों (homologous segments) में जीन विनिमय के परिणाम स्वरूप सहलग्न जीन्स में पुनर्योजन की क्रिया को जीन विनिमय कहते हैं"

जीन विनिमय हमेशा समजात गुणसूत्रों की अप-भगिनी अर्ध गुणसूत्रों (non sister chromatids) के मध्य होता है । यह कभी भी एक ही गुणसूत्र की दो अर्ध गुणसूत्रों जो भगिनी अर्ध गुणसूत्र होती है के बीच में नहीं होता है ।

जीन विनिमय सहलग्नता के विपरीत क्रिया है । इसमें अयुग्मविकल्पिय जीन जनकीय संयोजन से भिन्न अनुपात में युग्मकों में प्रवेश करते हैं जिन्हें रिकॉम्बिनेन्टस की संज्ञा दी गई है । समजातीय गुणसूत्रों के अंश जब अपना स्थान एक दूसरे से बदल लेते हैं तब जीन्स में विनिमय होता है ।

अर्धसूत्री विभाजन के समय गुणसूत्र विनिमय अर्थात पुनर्योजन प्रक्रिया होती है । अर्धसूत्री विभाजन की पूर्वावस्था प्रथम की युग्म सूत्रावस्था (Zygotene) में समजात गुणसूत्र परस्पर एक दूसरे के निकट आ जाते हैं । युग्मसूत्रावस्था से पूर्व ही प्रत्येक गुणसूत्र एक लम्बाई में दो अर्धगुणसूत्रों में विभक्त हो जाता है । स्थूलसूत्रावस्था (Pachytene) में अर्धगुणसूत्रों में खण्ड विनिमय होता है, तत्पश्चात द्विसूत्रावस्था (diplotene) के समय समजात गुणसूत्र अलग होकर एक दूसरे से अलग होने लगते हैं । जीन विनिमय के फलस्वरूप दो क्रॉस ओवर व दो नॉन क्रॉस ओवर युग्मकों का निर्माण होता है । इस प्रक्रिया में जिन अर्धगुणसूत्रों में विनिमय क्रिया होती है उन्हें क्रॉस ओवर अर्धगुणसूत्र तथा दो मूल अर्धगुणसूत्रों को नॉन क्रॉस ओवर अर्धगुणसूत्र कहते हैं । क्रॉसओवर अर्धगुणसूत्रों द्वारा परीक्षण संकरण में उत्पन्न लक्षण प्ररूपों को क्रॉसओवर टाइप तथा जनकीय संयोग के जीन्स वाले अर्धगुणसूत्रों द्वारा उत्पन्न लक्षण प्ररूपों को नॉन क्रॉसओवर टाइप कहा जाता है ।

मक्का के पौधों में रंगीन बीज का जीन रंगहीन जीन पर तथा भरे हुये साधारण बीज का जीन सिकुड़े हुये बीजों के जीन पर प्रभावी है । F_1 तथा परीक्षण संकरण के परिणाम चित्र व सारणी में

प्रदर्शित किया गया है । परीक्षण संकरण संतति में प्राप्त जनकीय अनुपात (96.4%) तथा पुनर्योजन अनुपात (3.6%) से स्पष्ट होता है कि केवल 3.6% जीन्स में ही जीन विनिमय होता है फलस्वरूप यह एक दूसरे से अलग होकर नये संयोग बनाते हैं ।

ड्रोसोफिला में जीन विनिमय : नर ड्रोलोफिला में जीन विनिमय नहीं होता परन्तु इसके अन्य विभेदों में यह क्रिया होती है । धूसर शरीर व अवशेषी पंख वाली मक्सी (gray body & vestigial wings) [BBvv] का काले शरीर व लम्बे पंखें वाली मक्खी (black body long wing fly (bbVV) से संकरण द्वारा F_1 पीढ़ी की सभी मक्खियाँ घूसर शरीर व लम्बे पंखों वाली [BbVv] होती है F_1 पीढ़ी की मक्सियों [BbVv] का काले शरीर व अवशेषी पंखों वाली अप्रभावी मक्खियों से [bbbvv] संकरण करने पर (परीक्षण संकरण) चार प्रकार की संतति मक्खियाँ प्राप्त होती है :

1. धूसर शरीर, अवशेषी पंख - 41.5% } 83% जनकीय संयोग
2. काला शरीर, लम्बे पंख - 41.5%
3. काला शरीर, अवशेषी पख - 8.5% } 17% नये संयोग
4. धूसर शरीर, लम्बे पंख - 8.5%

उपरोक्त उदाहरण में जनकीय संयोग(parental combination) पुनर्योजन संयोगों (recombinant) से कही अधिक है । इससे स्पष्ट है कि 83% जनकीय जीन एक दूसरे से सहलग्न है । यह जीन्स एक ही गुणसूत्र पर स्थित है । केवल 17% जीन जीन विनिमय द्वारा एक दूसरे से अलग होते हैं तथा पुनर्योजन संयोगों का निर्माण करते हैं दूसरे शब्दों में अप-भगिनी अर्धगुणसूत्रीय (non sister chromatids) के जीन जनकीय संयोगों से भिन्न अनुपात में युग्मकों में प्रवेश करते हैं ।

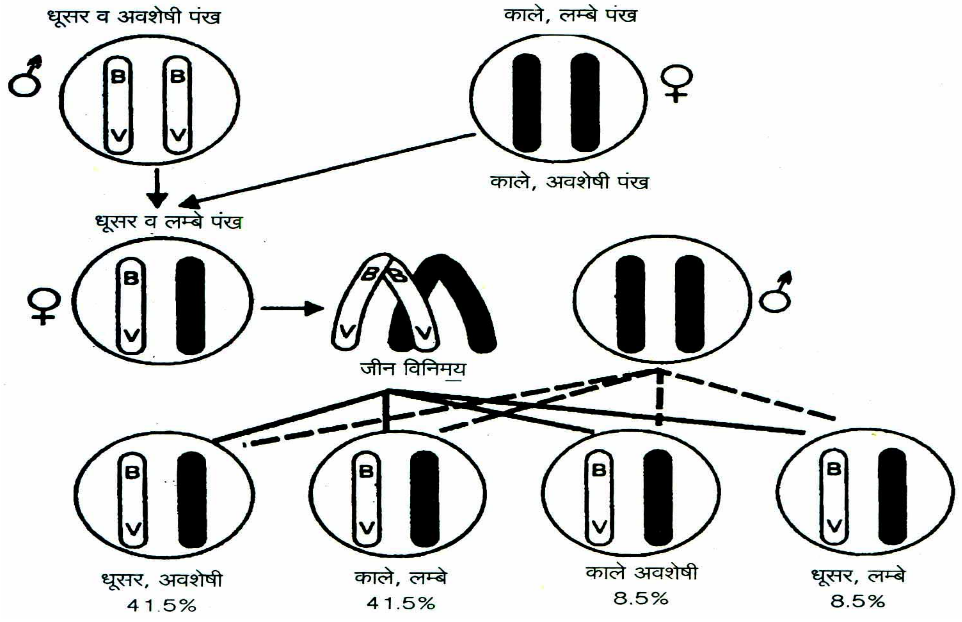

चित्र 11.3 : ड्रोसोफिला में जीन विनिमय

सहलग्नता मानचित्र (Linkage Map) : जीवों के गुणसूत्र पर पाये जाने वाले विभिन्न सहलग्न जीन्स के रेखीय अनुक्रम व उनके मध्य स्थित दूरी को दर्शाने वाले चित्र को सहलग्नता मानचित्र कहते हैं । सहलग्नता मानचित्र को गुणसूत्र मानचित्र भी कहा जाता है ।

सहलग्नता मानचित्र सर्वप्रथम स्टर्टवेन्ट त्रे 1911 सहलग्नता मानचित्र सर्वप्रथम में ड्रोसोफिला के लिए दो गुणसूत्र के लिए तैयार किया था । मक्का में सहलग्नता मानचित्र मेकक्लिन्टोक व इमरसन ने तैयार किया था ।

सहलग्नता मानचित्र बनाते समय दो सहलग्नी जीन के मध्य स्थित दूरी पर काल्पनिक दूरी होती है जिसे मानचित्र इकाई (Map unit) या मार्गन इकाई (morgan unit) अथवा सेन्टी मार्गन (Centimorgan) कहते हैं । सहलग्नता मानचित्र तैयार करते समय जीन विनिमय द्वारा उत्पन्न पुन:निर्योगज की आवृत्तियाँ (frequency of recombinants) को प्रयोग में लाते हैं क्योंकि ये आवृत्तियाँ जीनों के मध्य स्थित दूरी के समानुपाती होती हैं ।

बोध प्रश्न - 2

1. जब गुणसूत्र पर जीन्स का एक समूह समजात गुणसूत्र पर उपस्थित जीन्स के समान समूह के साथ स्थान बदलता है तो उसे..................... कहते हैं ।
2. जीन्स की गुणसूत्र पर रेखीय विन्यास पर ही विनिमय सम्भव हो पाता है इसे...का नियम कहते हैं ।
3. गुणसूत्र पर स्थित जीन्स एक दूसरे से सम्बद्ध रहते हैं अत: ………………………………………………………....................... जीन्स कहलाते हैं ।
4. प्रभारी या अप्रभावी विशेषकों के युग्मविकल्पी जब अलग - अलग जनकों से आते हैं तो ये पृथक -पृथक रहने का प्रयास करते हैं इसे.......................... कहते है ।
5. गुणसूत्र पर उपस्थित जीन्स की वास्तविक स्थिति को दर्शाने वाले चित्र को………………………………………………………………………………………............ कहते हैं ।
6. जीन विनिमय के समय कौनसी घटना सम्पन्न होती है ।
   ....
   ....
   ....
7. सहलग्नता का क्या महत्व है?
   ....
   ....
   ....
8. गुणसूत्र मानचित्र क्या होते हैं?
   ………………………………………………………………………………………………………
   ………………………………………………………………………………………………………
   ………………………………………………………………………………………………

11.8 सारांश

गुणसूत्र पर पाये जाने वाले दो या दो से अधिक जीन्स एक लक्षण के लिए उत्तरदायी हो सकते हैं जो कि पारस्परिक

क्रियाओं द्वारा एक ही लक्षण की अभिव्यक्ति को प्रभावित करते हैं । जीन्स मुख्य रूप से रूपान्तरक (modification) निषेध (inhibition), प्रतिकार (opposition) या सम्पूरक (supplementation) में योगदान करते हैं ।

जीन अर्न्तक्रियाएँ दो प्रकार की होती है :

(1) युग्मविकल्पी व

(2) अयुग्म विकल्पी ।

युग्मविकल्पी (allels) की कार्य प्रणाली या व्यवहार के कारण मेण्डल के संकरण परिणामों से स्पष्ट विचलन होता है । जीवों में अपूर्ण प्रभाविता (incomplete) सह -प्रभाविता (codominance) या घातक जीन्स (lethal) इनके उदाहरण है ।

अयुग्म विकल्पी अर्न्तक्रियाओं में दो या दो से अधिक जीन्स के मध्य अर्न्तक्रियाएँ होती है जिसके परिणामस्वरूप इनकी कार्यप्रणाली में असामान्यता दिखाई देती है व मेण्डल के द्विसंकर संकरण (9 : 3 : 3 : 1) के लक्षण प्ररूपी व जीन प्ररूपी अनुपात में स्पष्ट विचलन दृष्टिगोचर होता है । बेटसन व पुन्नेट ने कुक्कटों पर पाई जाने वाली कलगी के अध्ययन से यह ज्ञात किया कि कलगी के लिए दो प्रभावी जीन्स (R) रोज कलगी के लिए तथा (P) 'Pea' प्रकार की कलगी के लिए जिम्मेदार है । जब दो प्रभावी (R,P) जीन्स साथ -साथ हों तो वालनट (walnut) प्रकार की कलगी का लक्षण प्रकट होता है, परन्तु जब अप्रभावी जीन्स (r,p) विषमयुग्मी अवस्था में हो तो सिंगल कलगी बनती हैं |

प्रबलता (Epistasis) इसमें 12 : 3 : 1 का अनुपात पाया जाता है जिसमें एक जीन दूसरे जीन के प्रभाव को छिपा देता है जिसे प्रभावी प्रबलता कहते हैं जबकि अप्रभावी प्रबलता में अप्रभावी प्रभावी जीन की क्रिया को आच्छादित कर देती है फलस्वरूप प्रभावी जीन द्वारा नियंत्रित लक्षण की अभिव्यक्ति परिवर्तित हो जाती है । ऐसे स्वतंत्र जीन्स जब परस्पर सहयोग कर किसी लक्षण को विकसित करते हैं तो उन्हें सम्पूरक जीन्स कहते हैं । वर्णित पुष्प के उदाहरण से स्पष्ट होता है कि दोनों प्रभावी जीन अगर सहयोग करते हैं तो रंगीन पुष्प प्राप्त होते हैं तथा किसी एक प्रभावी युग्मविकल्पी की अनुपस्थिति में सफेद पुष्प प्राप्त होते हैं । इस प्रकार के द्विसंकर संकरण में लक्षण प्ररूपी (phenotype) अनुपात 9 : 7 का होता है । इसी प्रकार कैप्सला में शल नामक वैज्ञानिक ने दो अलग-अलग प्रकार के फलों के आकार वाले पौधों के बीच संकरण कराया तब F_2 पीढ़ी के पौधों में द्विसंकर संकरण का 9 : 3 : 3 : 1 अनुपात परिवर्तित होकर 15 : 1 का अनुपात प्राप्त हुआ ।

इस जीन अन्योन्यक्रिया के कारण द्विसंकर संकरण के विभिन्न अनुपात प्राप्त होते हैं ।

मेण्डल के मतानुसार एक लक्षण एक कारक के द्वारा नियंत्रित होता है परन्तु सर्वप्रथम जर्मन वैज्ञानिकों ने कारकों व गुणसूत्रों के मध्य सहसंबंध बताते हुये सहलग्नता की खोज की । गुणसूत्रों पर स्थित जीन्स में स्वतंत्र अपव्यूहन नहीं होते हैं व संतति में एक साथ स्थानान्तरित होते हैं ।

गुणसूत्रों पर स्थित समस्त जीन्स को सहलग्नी जीन (linked gene) कहते हैं तथा जीन्स के एक साथ संतति में स्थानान्तरण की प्रक्रिया को सहलग्नता कहा जाता है ।

बेटसन व पुन्नेट द्वारा मीठी मटर पर किये परीक्षणों के आधारपर युग्मन व "प्रतिकर्षण परिकल्पना" प्रस्तुत की तथा मार्गन ने ड्रोसोफिला मक्खी पर किये परीक्षणों के आधार पर "सहलग्नता परिकल्पना" प्रतिपादित की ।

गुणसूत्रों पर सहलग्न जीन्स की व्यवस्था समपक्षिकी विन्यास (Co-arrangement) व विपक्षिकी विन्यास (trans-arrangement) दो प्रकार की होती है ।

अनेक वैज्ञानिकों ने आनुवांशिकी द्वारा पौधों (मक्का, कवक) व जन्तुओं (ड्रोसोफिला व न्यूरोस्पोरा) में सहलग्नता का अध्ययन किया । हचिन्सन (1922) ने मक्का के 9वें गुणसूत्र पर पाये जाने वाले दो जीन्स को परीक्षण हेतु क्रॉस किया । यह जीन्स दानों के ऐल्यूरोन के रंग व भ्रूणपोष की आकृति को सुनिश्चित करते हैं ।

11.9 शब्दावली

जीन अर्न्तक्रियाएँ : जब किसी जीव की लक्षण प्ररूपी अभिव्यक्ति दो या दो से अधिक जीन्स की सामूहिक क्रिया पर निर्भर रहती है तो उसे जीन अर्न्तक्रियाएँ कहते हैं ।

युग्मविकल्पी अर्न्तक्रियाएँ : जीन्स की पारस्परिक क्रिया जब एक जीन के दो युग्मविकल्पियों के बीच होने तक सीमित रहती है इसे युग्मविकल्पी अर्न्तक्रिया कहते हैं ।

अयुग्मविकल्पी अर्न्तक्रिया : जब जीन्स की पारस्परिक क्रिया एक ही गुणसूत्र में दूर -दूर अवस्थित विभिन्न जीन्स अथवा भिन्न -भिन्न गुणसूत्रों में अवस्थित विभिन्न जीन्स के मध्य होती है उसे अयुग्म विकल्पी अर्न्तक्रिया कहते हैं ।

प्रबलता : जब एक विस्थल (locus) पर स्थित जीन दूसरे विस्थल पर स्थित जीन की अभिव्यक्ति को संदमित करती है तो इसे प्रबलता कहते हैं ।

सम्पूरक जीन्स : जब दो या दो से अधिक स्वतंत्र जीन आपसी सहयोग द्वारा एक ही लक्षण को विकसित करते हैं परन्तु दोनों में से कोई भी एक अकेले उस लक्षण को विकसित नहीं कर पाता ऐसे दोनों जीन्स सम्पूरक जीन्स कहलाते हैं ।

11.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. प्रो. पी सी. त्रिवेदी, डॉ.निरंजन शर्मा, डॉ. इन्दु रानी शर्मा, 2006-2007, कोशिका विज्ञान, आनुवंशिकी एवं पादप प्रजन, रमेश बुक डिपो, जयपुर ।
2. डॉ. आर के. रघुवंशी डॉ. मन्जुला सक्सेना, डॉ. अनुजा त्यागी, डॉ. तनुजा वैघ - 2002, कोशिका विज्ञान, आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन, सी. बी. एच. जयपुर
3. Dr. Veer Bala Rastogi - 2004. A Text book of genetics Kedar Nath Ram Nath, Delhi.
4. Dr. P.K. Gupta - 2004 Cytology, Genetics Evoution and Plant Breading, Rastogi Publication, Meerut.

11.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

1. (b) 2. (d) 3. (a)

4. ऐसे जीन्स जो जीनधारक की मृत्यु का कारण बनते हैं घातक जीन्स कहलाते हैं । यह सदैव अप्रभावी होते हैं तथा प्रकृति में अप्रभावी घातक के रूप में ही पाये जाते हैं ।
5. द्विक जीन्स 6. प्रबल जीन
7. सह प्रभाविता
8. जब कोई विशिष्ट जीन अन्य जीन युग्मों के द्वारा प्रभावित होकर अपना लक्षण प्रकट करता है तो इसे जीनों की पारस्परिक क्रिया कहते हैं ।
9. बेटसन एव पुनेट ने जब CCaa व ccAA के श्वेत पुष्प वाली किस्मों के पौधों के मध्य संकरण करवाया तो F_1 पीढ़ी में लाल रंग (CcAa) के पुष्प प्राप्त हुये ।
10. द्विगुण अप्रभावी प्रबलता में AABB एवं aabb के मध्य संकरण करवाने पर 9 : 7 का अनुपात प्राप्त होगा अर्थात् 9 सन्तानें सामान्य सुनने व बोलने व 7 संताने गूंगी व बहरी होंगी ।

बोध प्रश्न - 2

1. क्रॉसिंग ओवर 2. क्रमबद्ध विन्यास
3. सहलग्न 4. प्रतिकर्षण
5. गुणसूत्र मानचित्र
6. जीन विनिमय के समय गुणसूत्र खण्डों का आदान प्रदान होता है ।
7. सहलग्नता के फलस्वरूप अनेकानेक नवीन लक्षण प्रकट होते हैं जो कि लाभकारी भी होते हैं । उदाहरण के लिए फल का मीठापन, अधिक रसीला होना या भारी होना, संख्यात्मक रूप से अधिक उपज का होना इत्यादि लाभकारी लक्षण ही है ।
8. गुणसूत्र मानचित्र एक ऐसा दस्तावेज है जिस पर जीन्स बिन्दुओं के रूप में रेखीय एव क्रमबद्ध तरीके से अंकित होते हैं । इन बिन्दुओं के मध्य दूरी विनिमय के समानुपात में होती है ।

11.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जीन अर्न्तक्रियाओं को बेटसन व पुन्नेट द्वारा कुक्कटों पर किये गये प्रयोगों द्वारा समझाइये ।
2. द्विक जीन्स क्या है? सविस्तार वर्णन कीजिये ।
3. बेटसन व पुन्नेट द्वारा मटर पर किये गये प्रयोगों की सहायता से सहलग्नता को उदाहरण सहित समझाइये
4. क्रॉसिंग ओवर का सचित्र वर्णन कीजिये ।

इकाई 12 : कोशिकाद्रव्यी वंशागति (Cytoplasmic Inheritance)

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 कोशिका द्रव्यी वंशागति
1.2.1 घोंघों में कवच कुण्डलन
1.2.2 पैरामीशियम में कप्पा कणों की वंशागति
12.3 मनुष्य में रक्त समूह व वंशागति
12.4 बहुजीनी वंशागति या मात्रात्मक वंशागति
12.5 सारांश
12.6 शब्दावली
12.7 सन्दर्भ ग्रन्थ
12.8 `बोध प्रश्नों के उत्तर
12.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप कोशिकाद्रव्यी वंशागति के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे । कोशिका द्रव्यी वंशागति प्लाज्मा जीन्स के द्‌वारा किस प्रकार प्रभावित होती है, के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे ।

घोंघे में कवच कुण्डलन व कप्पा कणों के पैरामीशियम में वंशागति के द्‌वारा कोशिका द्रव्यी वंशागति की स्पष्ट जानकारी हासिल होगी ।

इसके अतिरिक्त मनुष्य के रक्त समूह के विभेदीकरण व वंशागति को अध्ययन के पश्चात् समझ सकेंगे ।

बहु जीनी अर्थात् मात्रात्मक वंशागति की भी विस्तृत जानकारी प्राप्त हो सकेगी ।

12.1 प्रस्तावना

जीवों के आनुवंशिक गुणों के अध्ययन में, मेण्डल ने अपने आनुवंशिक प्रयोगों द्‌वारा कारकों (जीन्स) का महत्व बतलाया । हम सब जानते हैं कि जीन्स गुणसूत्रों पर स्थित होते हैं तथा गुणसूत्र केन्द्रक में पाये जाते हैं, अत: इन कारकों को गुणसूत्र जीन्स अथवा केन्द्रक जीन्स की संज्ञा दी जाती है । इस प्रकार की आनुवांशिकी को मेण्डेलियन आनुवांशिकी या केन्द्रक वंशागति आनुवांशिकी कहते हैं, क्योंकि यह सामान्यतया मेण्डल के नियमों के अनुरूप आचरण करते हैं । कुछ गुण ऐसे भी होते हैं, जो कि केन्द्रक जीन्स द्‌वारा संचालित नहीं होते हैं । कोरेन्स (1908)

ने सर्वप्रथम ऐसे जीन्स की कल्पना की जो कि गुणसूत्रों में स्थित न होकर कोशिकाद्रव्य में पाये जाते हैं ।

कोशिकाद्रव्यी आनुवांशिकी में मातृत्व प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है अर्थात् जो गुण माता में पाया जाता है वही संतति में भी पाया जाता है, चाहे वह गुण प्रभावी हो या अप्रभावी क्योंकि मातृ कोशिका में कोशिका द्रव्य पितृ कोशिका की अपेक्षा अधिक होता है ।

कोशिका द्रव्य में स्थित समस्त स्वद्विगुणन वाले आनुवंशिक पदार्थ को प्लाज्मोन तथा वंशागति की इन कोशिकाद्रव्यी इकाइयों को प्लाज्माजीन्स या साइटोजीन्स कहते हैं ।

12.2 कोशिकाद्रव्यी वंशागति (Cytoplasmic Inheritance)

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा किये गये अध्ययन के परिणामस्वरूप यह मालूम हुआ कि कोशिका द्रव्य में भी आनुवांशिक पदार्थ पाया जाता है । केन्द्रक के बाहर पाये जाने वाले विभिन्न उपांगों, जैसे क्लोरोप्लास्ट व माइटोकॉन्ड्रिया में डी. एन. ए. की उपस्थिति से यह सिद्ध होता है कि कोशिका द्रव्य में भी आनुवांशिक सूचनायें पायी जाती हैं । इन आनुवांशिक सूचनाओं या इनके द्वारा अभिव्यक्त लक्षणों की वंशागति को कोशिका द्रव्यी वंशागति कहते हैं ।

कार्ल कोरेन्स (1908) ने सर्वप्रथम मेण्डल के वंशागति सिद्धान्तों से हटकर ऐसे जीन्स के बारे में परिकल्पना प्रस्तुत की थी, जो केन्द्रकीय गुणसूत्रों पर स्थित न होकर कोशिका द्रव्य में पायी जाती हैं ।

सजीवों में कुछ लक्षणों का निर्धारण कोशिकाद्रव्य डी. एन. ए. के द्वारा होता है । युग्मनज कोशिका निर्माण में मातृक द्रव्य का अधिक योगदान होता है, जबकि गुणसूत्र नर व मादा दोनों जनकों से प्राप्त होते हैं, इसलिए कोशिका द्रव्य द्वारा नियंत्रित लक्षणों की वंशागति को मातृक वंशागति भी कहते हैं ।

कोशिका द्रव्यी वंशागति इसमें पाये जाने वाले गुण निर्धारकों, जिन्हें प्लाज्मा जीन्स की संज्ञा दी जाती है, के द्वारा नियंत्रित होती है ।

कोशिका द्रव्यीय वंशागति के विशिष्ट लक्षण :

1. इसमें एकल व व्युत्क्रम संकरणों, दोनों के परिणाम भिन्न -भिन्न होते हैं ।
2. मातृत्व कोशिका द्रव्य की सक्रिय भूमिका होती है ।
3. सामान्यतया F_2,F_3 व उत्तरोत्तर पीढ़ियों में कोशिका द्रव्यी वंशागत गुणों का पृथक्करण नहीं होता, क्योंकि F_1 संतति केवल एक ही जनक से प्लाज्मा जीन प्राप्त करती है ।
4. प्लाज्मा जीन प्राय: समसूत्री विभाजन के समय कायिक पृथक्करण दर्शाते हैं, जो कि केन्द्रकीय जीन्स में दुर्लभ होता है ।
5. कोशिका द्रव्यीय जीन्स का मानचित्रण नहीं किया जा सकता ।
6. मातृक कोशिका द्रव्य का प्रभाव संतति पर स्पष्टतया परिलक्षित होता है ।
7. इसकी वंशागति इकाई को प्लाज्मा जीन कहते हैं ।
8. कई प्लाज्मा जीन क्लोरोप्लास्ट डी.एन .ए. या माइटोकॉन्ड्रिया डी. एन .ए. से सम्बन्ध रखते हैं, फलस्वरूप इनसे उत्पन्न गुणों का कोशिका द्रव्यी वशागमन होता है ।

9. प्लाज्मा जीन्स में सहलग्नता का अभाव होता है ।

इस अध्याय में कोशिका द्रव्यीय वंशागति को निम्न उदाहरण द्वारा समझाया गया है

12.2.1 घोंघों में कवच कुण्डलन

मातृत्व प्रभाव का सर्वोत्तम उदाहरण घोंघों (Limnaea peregra) में कवच कुण्डलन के द्वारा देखा जा सकता है । जलीय घोंघों (Limnaea) की देह पर जो कैल्शियम कार्बोनेट से बना कवच अर्थात् खोल पाया जाता है इस पर कुण्डलन की दिशा दाँयी अर्थात् दक्षिणावर्त (dextral) या बाँयी अर्थात् वामावर्त (sinistral) हो सकती है । कुण्डलन की दिशा आनुवांशिक रूप से निर्धारित होती है । दक्षिणावर्त युग्मविकल्पी 'D' तथा वामावर्त अप्रभावी युग्मविकल्पी ' d ' पर कुण्डलन निर्भर करता है । इस तरह ' DD ' दक्षिणावर्त का dd' वामावर्त जीन प्ररूप होता है । शिशु घोंघों में कवच खोल कुण्डलन नर जनक की जीनी संरचना के द्वारा प्रभावित नहीं होती वरन् उसके मादा जनक की जीनी संरचना द्वारा नियंत्रित होती है ।

(i) दक्षिणावर्त मादा व वामावर्त नर घोंघों में संकरण कराने पर I F^1 संतति दक्षिणावर्त कुण्डलन वाली उत्पन्न होती है । F^2 पीढ़ी में भी सभी घोंघों में दक्षिणावर्त कुण्डलन विकसित होता है, जबकि उनमें से कुछ घोंघों में वामावर्त कुण्डलन के अप्रभावी जीन होने के कारण खोल वामावर्त होना चाहिए था ।

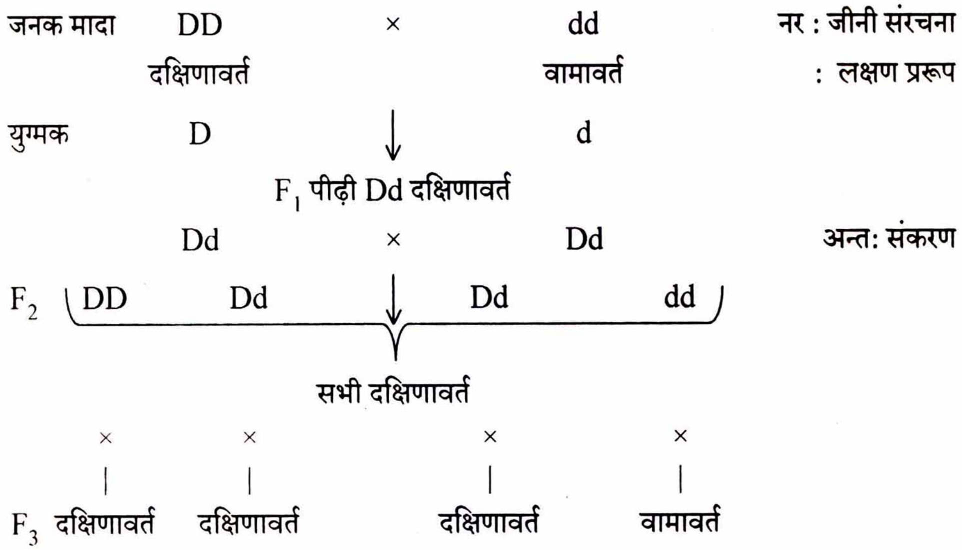

घोंघों में कवच कुण्डलन दिशा पर माता जीनी का प्रभाव । दक्षिणावर्त मादा व वामावर्त नर के संकरण से F_1,F_2, F_3, पीढ़ियों में प्राप्त परिणाम ।

(ii) वामावर्त मादा एव दक्षिणावर्त नर घोंघों में व्यूत्क्रम संकरण कराने पर I । पीढ़ी के उन सभी घोंघों में जिनकी जीन संरचना के अनुसार कवच कुण्डलन दक्षिणावर्त होना चाहिये था, वामावर्त विकसित होता है तथा F_2पीढ़ी में समस्त घोंघों में दक्षिणावर्त कवच बनता है ।

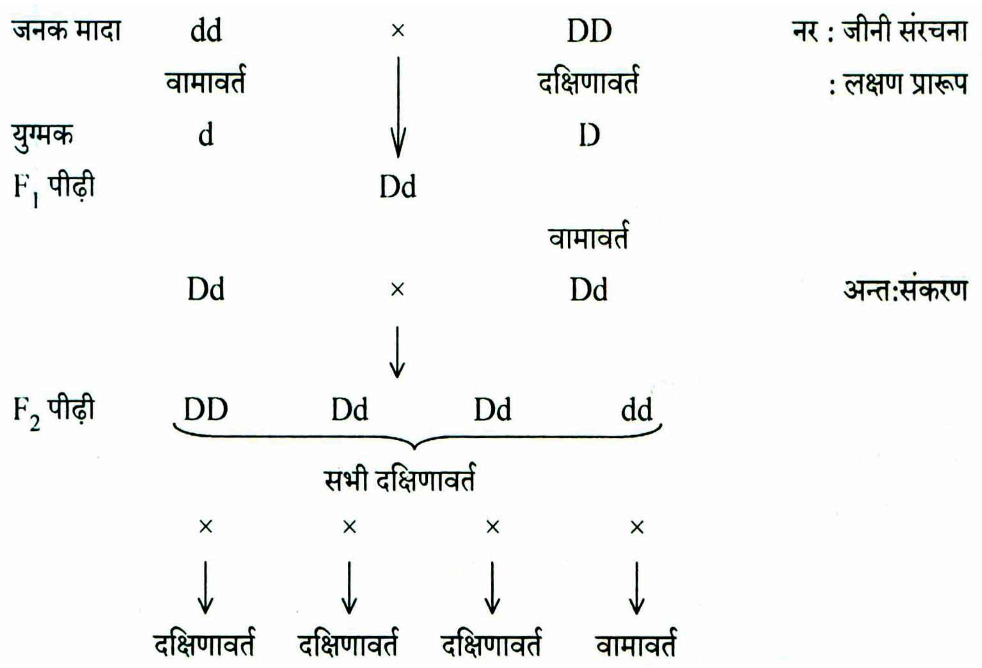

चित्र : घोंघों में वामावर्त मादा व दक्षिणावर्त नर के संकरण से F_1,F_2 व F_3 पीढ़ियों में प्राप्त परिणाम

व्युत्क्रम संकरणों (DDxमादाddनर;dd madax DD नर) से प्राप्त सन्तान में लक्षण प्ररूप का निर्धारण मादा के जीनी प्ररूप द्वारा होता है, न की मादा जनक के लक्षण प्ररूप द्वारा ।

घोंघों में कवच कुण्डलन की वंशागति को निम्नलिखित व्याख्या द्वारा संक्षेप में समझा सकते हैं।

(i) व्युत्क्रम संकरणों से प्राप्त F^1 संतति कुण्डलन प्रारूप में अन्तर बताती है ।

(ii) F^2 में समरूप कुण्डलन उत्पन्न होता है क्योंकि F^2 में पृथक्करण नहीं होता ।

(iii) लाक्षणिक 3: 1 का अनुपात F^3 में प्रकट होता है क्योंकि जीन, जो कि कुण्डलन के लिये उत्तरदायी होता है, का पृथक्करण एक पीढ़ी के विलम्ब से होता है । घोंघों में कुण्डलन दिशा युग्मनज के अर्धसूत्री विभाजन - प्रथम की दिशा द्वारा सुनिश्चित होता है तथा प्रथम विभाजन के तत्व का निर्धारण अण्ड कोशिका में पहले से ही पाये जाने वाले कुछ पदार्थों द्वारा होता है । यह पदार्थ मादा जनक द्वारा उत्पन्न होता है, जिसके परिणामस्वरूप यह मातृक जीन प्रारूपों के लिये विभिन्न लक्षण प्ररूप उत्पन्न करते हैं ।

कुण्डलन की दिशा का नियंत्रण उसके मादा जनक की जीनी संरचना द्वारा होता है, इसलिये सम्बन्धित जीन प्ररूपों के प्रकट होने से लक्षण प्ररूपों की उत्पत्ति एवं पीढ़ी बाद अर्थात् F^3 में विलम्बित पृथक्करण से होती है ।

12.2.2 पैरामीशियम में कप्पा कणों या मारक लक्षण की वंशागति

(Inheritance of kappa Particles or Killer in paramaecium)

सोनेबॉर्न एव उनके साथियों ने बताया कि पैरामीशियम अरिलिया (Paramecium Aurelia) जो कि संघ प्रोटोजोआ वर्ग सीलिएटा का सदस्य है, के कुछ विभेदों (strains) के कोशिका द्रव्य में

कुछ विशिष्ट कोशिकाद्रव्यी कण पाये जाते हैं, जिन्हें कप्पा कण (Kappa Particles) की संज्ञा दी जाती है । इन कणों से विशेष प्रकार का रसायनिक पदार्थ स्रावित होता है, जिसे पेरामिसिन (Paramecin) कहते हैं । यह एक प्रकार का प्रतिजैविक पदार्थ होता है । जिन विभेदों में यह कप्पा कण पाये जाते हैं, उन्हें मारक (Killer)विभेद कहते हैं तथा जिनमें इनका अभाव होता है तथा जिनकी मारक विभेदों के सम्पर्क में आने पर मृत्यु हो जाती है, को संवेदी विभेद कहते हैं । कप्पा कण डी. एन .ए. से बने होते हैं, जो एक केन्द्रित जीन K पर निर्भर करते हैं kk जीन प्ररूप वाले पैरामीशियम संवेदी प्रकार के होते हैं तथा इनमें कप्पा कण नहीं पाये जाते हैं । कप्पा कण कोशिका द्रव्य एक पैरामीशियम से दूसरे पैरामीशियम में संचरित होते हैं ।

पैरामीशियम में प्रजनन निम्न दो विधियों के द्‌वारा होता है :

(i) द्‌विखण्डन (Binary fission). इस विधि में जनक पैरामीशियम की देह अनुप्रस्थ काट के द्‌वारा दो समान हिस्सों में बँट जाती है, फलस्वरूप कोशिका द्रव्य व केन्द्रक संतति पैरामीशियम में बँट जाता है, अत : कप्पा कण युक्त मारक विभेदों की पूरी संतति मारक प्रकार की ही बनती

(ii) संयुग्मन (Conjugation): इस प्रकार की प्रजनन विधि में एक ही जाति के दो विभेद निकट आते हैं तथा उनके मध्य संयुग्मन नलिका (conjugation) बनती है व अगुणित नर प्राकेन्द्रक एक संयुग्मक से दूसरे संयुग्मय में इस नलिका से आदान -प्रदान होते हैं । तत्पश्चात् दोनों पैरामीशियम अलग होकर द्‌विखण्डन के द्‌वारा प्रजनन करते हैं सभी मारक सभी संवेदी सभी मारक प्रभेद

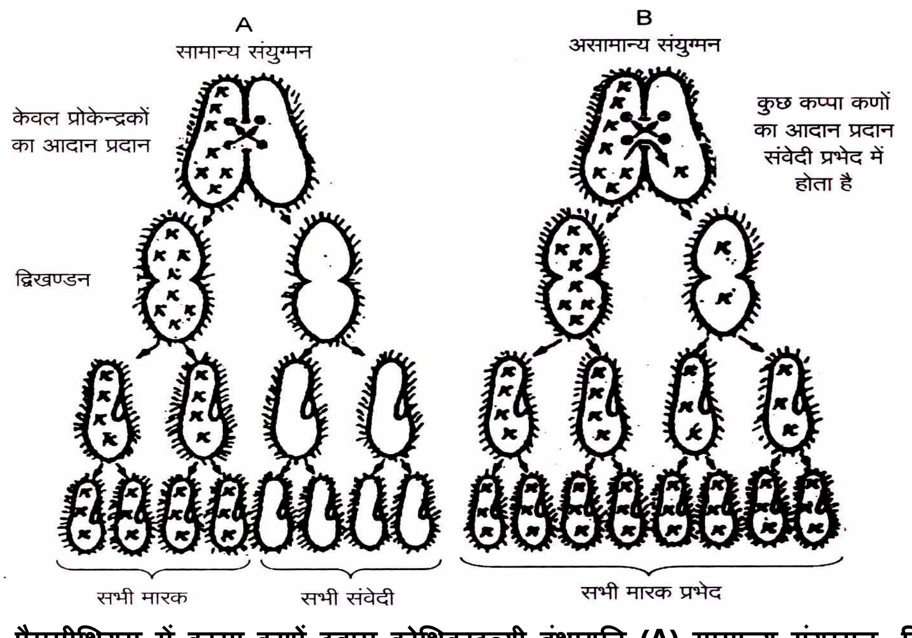

चित्र : पैरामीशियम में कप्पा कणों द्‌वारा कोशिकाद्रव्यी वंशागति (A) सामान्य संयुग्मन, जिसमें केवल प्राकेन्द्रकों का आदान -प्रदान होता है । (B) असामान्य संयुग्मन, जिसमें कोशिका द्रव्य का भी आदान -प्रदान होता है ।

इस संयुग्मन विधि में दो अवस्थायें हो सकती हैं : (1) यदि संयुग्मन नलिका कुछ ही देर तक बनी रहती हैं तो केवल प्राकेन्द्रकों का ही आदान-प्रदान होता है व संतति जनक की तरह ही होती है । (2) परन्तु संयुग्मन नलिका अधिक देर तक बनी रहती है तो उस अवस्था में प्राकेन्द्रको के साथ - साथ कोशिका द्रव्य व उसमें निहित कप्पा कणों का भी संरचरण हो जाता है । यह एक असामान्य अवस्था होती है । ऐसा होने पर संवेदी प्रभेद भी मारक प्रभेद में परिवर्तित हो जाता है (चित्र A.B) ।

जब मारक (KK) व संवेदी (kk) प्रभेद के मध्य संयुग्मन होता है तो पृथक् होने वाले संयुग्मी(exconjugant) Kk जीन होते हैं तथा एक मारक व एक संवेदी प्रकार के पैरामीशियम पृथक् होकर अपने - अपने प्रकार की संतति उत्पन्न करते हैं । यह Kk जीन प्ररूप पैरामीशियम मारक या संवेदी प्रकार का हो सकता है । संयुग्मन नलिका यदि कुछ ही समय तक बनी रहती है व केवल अगुणित प्राकेन्द्रकों का स्थानान्तरण हुआ है तो एक संवेदी व दूसरा मारक प्रभेद प्रकार का होगा, परन्तु यदि अधिक देर तक संयुग्मन नलिका बनी रहती है तो प्राकेन्द्रक के साथ -साथ कोशिका द्रव्य का भी स्थानान्तरण होता है, उस अवस्था में सभी मारक प्रभेद प्रकार के उत्पन्न होते हैं ।

बोध प्रश्न

बहुविकल्पी प्रश्न :

1. कोशिकाद्रव्यी वंशागति हेतु उत्तरदायी होते हैं:
   - (a) कारक
   - (b) जीन्स
   - (c) प्लाज्माजीन्स
   - (d) गुणसूत्र
2. बाह्य गुणसूत्रीय वंशागति को सर्वप्रथम वर्णन करने वाले वैज्ञानिक थे:
   - (a) कोरेन्स
   - (b) मेण्डल
   - (c) डार्विन
   - (d) बायकाट
3. घोंघे में कुण्डलन के प्रयोग द्वारा कोशिकाद्रव्यी वंशागति का अध्ययन किया:
   - (a) कोरेन्स
   - (b) बायकाट
   - (c) सोनेबर्न
   - (d) डार्विन

सही या गलत चिह्नित कीजिये :

1. कोशिकाद्रव्यी वंशागति के व्युत्क्रम संकरण के परिणाम मेण्डलीय अनुपात ही प्रकट करते है|

....

2. कोशिकाद्रव्यी वंशागति को मात्रात्मक वंशागति भी कहा जाता है ।

....

3. पैरामीशियम में कप्पा कण की उपस्थिति के आधार पर इन्हें संवेदी मारक प्रभेद में विभेदित सोनेबर्न वैज्ञानिक ने किया ।

....

12.3 मनुष्य में ABO रक्त समूह

मनुष्य में रक्ताधान (blood transfusion) के दौरान ऐसा देखा जाता है कि बिना परीक्षण किये जाने पर परिणाम सफल या सामान्य रहते हैं, परन्तु कुछ रक्ताधान में रक्त ग्रहण करने वाले व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है । कार्ल लेण्डस्टेनर (1900) ने इसके कारणों की सर्वप्रथम खोज की ओर देखा कि मनुष्य के रक्त में उपस्थित रक्त कणिकाओं में विशिष्ट प्रतिजन (antigen)पाये जाते हैं, जो कि रक्त सीरम में उपस्थित विशिष्ट प्रतिरक्षियों (antibodis)के साथ अभिक्रिया करते हैं, परिणामस्वरूप समूहन अथवा गुच्छन (agglutination or clumping) की क्रिया हो सकती है । यह समूहन या गुच्छन रक्त कोशिकाओं में होने के कारण रक्त परिवहन में अवरोध उत्पन्न होता है, फलस्वरूप रक्त प्राप्त करने वाले की मृत्यु हो जाती है । मनुष्यों में रक्त के चार O,A,B एवं AB समूह पाये जाते हैं ।

(i) **रक्त समूह A(Blood group)** इस समूह के मनुष्य के रक्त की रक्त कणिकाओं में प्रतिजन (antigen)A पाया जाता है एवं इसके सीरम में प्रतिरक्षी - b (antibody-b) पाया जाता है । इस समूह वाले मनुष्य को यदि रक्त समूहB का रक्त दिया जाता है तो A रक्त समूह वाले मनुष्य के सीरम में पाये जाने वाले प्रतिरक्षी b के कारण समूहन क्रिया होती है।

(ii) **रक्त समूहB (Blood group B).** मनुष्य के रक्त की रक्त कणिकाओं में प्रतिजन B व रक्त सीरम में प्रतिरक्षी a पाया जाता है, अत : ऐसे मनुष्य को रक्त समूह A प्रकार का रक्त देने पर प्रतिरक्षी a के कारण समूहन की क्रिया होती है ।

(iii) **रक्त समूह AB (Blood group AB):** कुछ मनुष्यों के रक्त की रक्त कणिकाओं में A व B दोनों प्रतिजन पाये जाते हैं, परन्तु सीरम में कोई प्रतिरक्षी नहीं पायी जाती, अत : इनमें किसी भी रक्त समूह के रक्ताधान पर समूहन नहीं होता है ।

(iv) **रक्त समूह O (Blood group O)** इस रक्त समूह वाले मनुष्य के रक्त की कणिकाओं में प्रतिजन A व B दोनों नहीं पाये जाते, परन्तु सीरम में दोनों प्रकार की प्रतिरक्षी a व b पायी जाती है, इसलिये इस समूह को ओ (O) कहते हैं ।

रक्त समूह की वंशागति (Inheritance of blood group): A रक्त समूह वाले व्यक्ति में प्रतिजन - A पाया जाता है तथा यह प्रतिरक्षी b के साथ उपस्थित रहता है । प्रतिजन - A का संश्लेषण एक प्रभावी युग्मविकल्पी L^A या I^A के द्वारा नियंत्रित होता है । L का प्रयोग लैण्डस्टीनर खोजकर्ता के नाम के रूप में किया जाता है, जबकि I आइसो हिमेग्लूटिनोजन इस

विस्थल पर स्थित जीन हेतु किया जाता है । इसी प्रकार अन्य प्रभावी युग्मविकल्पी L^B ya I^B, के द्वारा प्रतिजन B का संश्लेषण होता है व प्रतिरक्षी a के साथ पाया जाता है । दो विषम युग्मजी जीन्स की उपस्थिति होने पर मनुष्य के रक्त में दोनों प्रकार के प्रतिजन Aव B पाये जाते हैं । जिसे रक्त समूह AB कहते हैं । किसी प्रतिजन की उपस्थिति अप्रभावी युग्मविकल्पी को L^0 या I^0 द्वारा निरूपित करते हैं । विषमयुग्मजी अवस्थाA व O होने पर मनुष्य का A रक्त samuh विषम युग्मनज अवस्थाB व O होने पर व्यक्ति का रक्त समूह B होगा ।
रक्त समूह की वंशागति सामान्य मेण्डल के नियमों के अनुरूप होती है

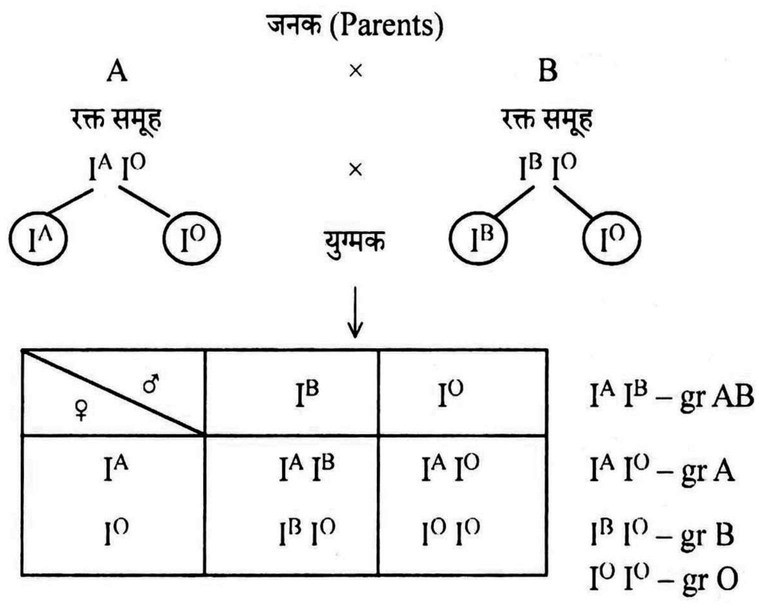

12.4 बहु जीनी वंशागति या मात्रात्मक वंशागति (Inheritance or Polygenic or quantitative Inheritance)

विभिन्न विस्थलों पर पाये जाने वाले जीन्स के समूह जो एक ही लक्षण को नियंत्रण करने हेतु क्रियाशील होते हैं, बहु जीन्स कहलाते हैं तथा इनके द्वारा होने वाली वंशागति बहु जीनी वंशागति कहलाती है ।
अनेकों जीन्स द्वारा एक ही लक्षण प्रदर्शित किया जाता है तथा इनमें से प्रत्येक जीन लक्षण का कुछ अंश प्रभावित व प्रदर्शित करता है । इस लक्षण की तीव्रता इस पर निर्भर करती है कि इस जीन समूह में पाये जाने वाले कितने जीन लक्षण प्रदर्शित करने की क्रिया को प्रभावित करते हैं । इन्हें संचयी जीन्स (cumulative) भी कहते हैं । लक्षण की गुणवत्ता में भाग लेने वाली प्रत्येक जीन की मात्रा महत्वपूर्ण हो जाती है । मात्रा के आधार पर लक्षण की गुणवत्ता में परिवर्तन अर्थात् उत्तरोत्तर अन्तर देखा जा सकता है, अत : इसे मात्रात्मक वंशागति भी कहते हैं । अनेक जीन्स मात्रात्मक न्यूनतम व अधिकतम लक्षण स्वरूप के मध्य विभिन्नतायें लिये हुए होते हैं । मात्रात्मक या बहु जीनी वंशागति के अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं, जैसे गेहूँ की अष्टि का रंग (colour of wheat kernal), मनुष्य में त्वचा का रंग (colour of skinin man),

मनुष्य में लम्बाई (hight इन man), मवेशियों में त्वचा का रंग (coat colour इन cattle) मुर्गियों में देह परिमाण (प्body size in chick) ड्रोसोफिला मक्खियों में नेत्रों का रग (Colour of Wheat kernel), इत्यादि ।

गेहूँ की अष्टिका रंग (Colour of Wheat kernel)

नीलसन - एहले (Nilsson-Ehle)ने 1908 में गेहूँ की विभिन्न प्रजातियों में सकरण कराकर अष्टि के रग के परिणाम प्राप्त किये । इन्होंने अष्टि के दो रंग लाल व श्वेत में संकरण कराकर F^1 प्रथम संतान पीढ़ी में अनेक मध्यवर्ती रंग वाली गेहूँ की अष्टि के पौधे प्राप्त किये । इन पौधो में पुन : परस्पर संकरण करवाने पर 1 श्वेत व 15 लाल रंग की अष्टि वाले मध्यवर्ती रंग के पौधे प्राप्त हुए । इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि F^2 द्वितीय संतान पीढ़ी में 1: 15 का अनुपात श्वेत व लाल रग की अष्टियों के मध्यवर्ती रंगों के बीच रहा ।

उपरोक्त परिणाम यह दर्शाते हैं कि रंगों के लक्षण के नियंत्रण हेतु तो दो युग्म जीन (4) भाग लेते हैं । गहरे लाल रग वाली अष्टि का यदि जीन प्ररूप AABB हो तो श्वेत का aabb होगा । F^1 पीढ़ी में प्राप्त संतान का जीन प्ररूपAaBb होगा, क्योंकि इनका लक्षण प्ररूप लाल व श्वेत रंग के मध्य अष्टि रंग वाला है । इनमें आपस में संकरण करवाने पर 1:15 का अनुपात मिलता है । श्वेत अष्टि का aabb रहा तथा शेष 15 विभिन्न लाल रग की अष्टि वाले पौधों में एक गहरे लाल रग का (AABB), जिसमें चारों प्र भावी जीन्स उपस्थित थे । हल्के लाल रंग अष्टि वाले 4 पौधों में 3 प्रभावी व 1 अप्रभावी जीन था, जो कि गहरे लाल रग की तुलना में कम लाल रग की अष्टि का गुण रखते थे ।

इस प्रयोग को निम्न सारणी द्वारा समझा जा सकता है -

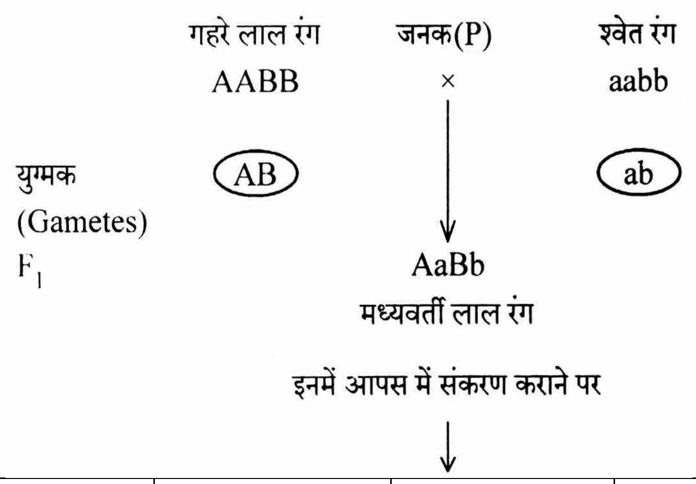

युग्मम (gameate)	AB	aB	Ab	ab
AB	AA BB गहरा लाल	Aa BB लाल	AA Bb लाल	Aa Bb मध्यवर्ती लाल
aB	Aa BB लाल	aa BB मध्यवर्ती लाल	Aa Bbमध्यवर्ती लाल	aa Bb हल्का लाल

Ab	AA Bb लाल	a BB मध्यवर्ती लाल	Aa bb मध्यवर्ती लाल	Aa bb लाल
ab	Aa Bbमध्यवर्ती लाल	aa Bb हल्का लाल	Aa bb हल्का लाल	aa bb हल्का लाल

F_2 संलान पीढ़ी का अनुपात	गहरा लाल	= 1
	मध्यवर्ती लाल	= 6
	लाल	= 4
	हल्का लाल	= 4
	श्वेत	= 1

चित्र : गेहूँ की दो प्रजातियों में संकरण के परिणाम

गेहूँ की कुछ अन्य प्रजातियों में इस लक्षण हेतु तीन युग्म जीनस भाग लेते हैं जिन्हें AA BB CC एवं aa bb cc द्वारा दर्शाया जाता है तथा उनमें भी उपरोक्त परिणाम ही प्राप्त होते हैं ।

12.5 सारांश

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विभिन्न अध्ययनों से ज्ञात हुआ कि कोशिका द्रव्य में भी आनुवांशिक पदार्थ पाया जाता है, जो कि आनुवांशिक सूचनाओं व इनके द्वारा अभिव्यक्त लक्षणों की वंशागति में सहायक होते हैं ।

कार्ल कोरेन्स (1908) ने इन गुण निर्धारकों को प्लाज्मा जीन्स की संज्ञा दी, जिनके द्वारा कोशिकाद्रव्यी वंशागति नियंत्रित होती है । इस वंशागति को घोंघों में कवच कुण्डलन व पेरामीशियम में कप्पा कणों की वंशागति के द्वारा स्पष्ट दर्शाया जाता है ।

इस अध्याय में मनुष्य में ABO रक्त समूह के विभेदीकरण व उनकी वंशागति के बारे में विस्तृत जानकारी मिलती है । ABO रक्त समूह का वर्गीकरण मनुष्य के रक्त में पाये जाने वाले प्रतिरक्षी व प्रतिजन की अभिक्रिया के आधार पर किया जाता है ।

बहुजीनी वंशागति या मात्रात्मक वंशागति बहुजीन्स के द्वारा होती है, जो कि विभिन्न विस्थलों पर पाये जाने वाले जीन्स के समूह के रूप में उपस्थित होते हैं । अनेकों जीन्स के द्वारा एक ही लक्षण प्रदर्शित किया जाता है । इनमें से प्रत्येक जीन लक्षण का कुछ अंश प्रभावित करता है । इस लक्षण की तीव्रता इस पर निर्भर करती है कि इस जीन समूह, जिन्हें संचयी जीन्स भी कहते हैं, में पाये जाने वाले कितने जीन्स लक्षण प्रदर्शन क्रिया को प्रभावित करते हैं । मात्रात्मक या बहुजीनी वंशागति गेहूँ की अष्टि का रंग, मनुष्य में त्वचा का रंग, लम्बाई, के द्वारा स्पष्ट रूप से दर्शाया जाता है ।

12.6 शब्दावली

(1) कोशिकाद्रव्यी वंशागति : कोशिकाद्रव्य में पाये जाने वाली अनुवांशिक सूचनाओं अथवा इनके द्वारा अभिव्यक्त लक्षणों की वंशागति को कोशिकाद्रव्यी वंशागति कहते हैं ।

(2) प्लाज्मा जीन्स : ऐसे गुण निर्धारक, जो कि गुणसूत्र पर न स्थित होकर कोशिकाद्रव्य में पाये जाते हैं ।

(3) घोंघा (Limnaea peregra). घोंघों की जाति, जिनमें कवच कुण्डलन का अध्ययन किया गया।

(4) कप्पा कण : पैरामीशियम ऑरेलिया के कोशिकाद्रव्य में पाये जाने वाले विशिष्ट कण, जो कि पेरामीसिन स्रावित करते हैं ।

(5) द्विखण्डन : इस विधि के द्वारा जनक की देह का दो बराबर भागों विभाजन होता है ।

(6) प्रतिजन (antigen) : रक्त में पाये जाने वाली कणिकायें, जो कि प्रतिरक्षि कणिकाओं के साथ अभिक्रिया कर समूहन (agglutination)करती हैं ।

(7) बहुजीन्स : विभिन्न विस्थलों पर पाये जाने वाले जीन्स के समूह, जो कि एक ही लक्षण को नियंत्रण करने हेतु क्रियाशील होते हैं ।

12.7 सन्दर्भ ग्रंथ

1. पी.सी. त्रिवेदी, निरंजन शर्मा, डॉ. इन्दुरानी शर्मा; कोशिका विज्ञान, आनुवांशिकी एव पादप प्रजनन; रमेश बुक डिपो, जयपुर ।
2. P.K Gupta, Genetics, Rastogi Publications Meerut.
3. वीरबाला रस्तोगी, केदाननाथ, नई दिल्ली ।

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बहु विकल्पीप्रश्न :

1. (c) 2. (a) 3. (b)

सही या गलत चिहित कीजिये :

1. असत्य 2. सत्य 3. सत्य

12.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कोशिकाद्रव्यी वंशागति को घोंघे के कवच कुण्डलन का उदाहरण देकर समझाइये ।
2. पैरामीशियम में कोशिकाद्रव्यी वंशागति को उदाहरण देते हुए समझाइये।
3. मानव में रक्त समूह पर लेख लिखिये ।
4. बहुजीन वंशागति को उदाहरण देते हुए समझाइये ।
5. मान लीजिए कि एक घोंघे में दक्षिणावर्ती कुण्डलन (dextral cocling) था । स्वनिषेचन होने पर इससे जो संतान उत्पन्न हुई वह सब वामावर्त (sinistral coiling) वाली थीं । इन परिणामों की व्याख्या कारण सहित कीजिये ।

इकाई 13 : पादप प्रजनन :परिचय एवं उद्देश्य, पादप प्रजनन कि विधियाँ (Plant Breeding : Introduction and objective, Methods of plant Breeding)

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 पादप प्रजनन

13.3 पादप प्रजनन की विधियाँ (Methods of Pllant Breeding)

13.3.1 पुरुस्थापन एवं दशानुकूलन (Introducation and Acclimatzation)

13.3.1.1 पुरुस्थापन के प्रकार (Types of Introduction)

13.3.1.2 पुरुस्थापन की क्रियाविधि (Methods of Introduction)

13.3.1.3 पादप पुरुस्थापन के गुण व दोष (Merits and Demerits of Introducation)

13.3.2 पादप चयन अथवा वरण (Plant Selection)

13.3.2.1 पादप चयन के प्रकार (Types of plant Selection)

13.3.2.2 पादप चयन की विधियाँ (Methods of plant Selection)

133.2.2 A संहति चयन (Mass Selection)

13.3.2.2 A-1 चयन की क्रियाविधि (Procedure of Selection)

13.3.2.2 A-2 संहति चयन के गुण (Merits of Mass Selection)

13.3.2.2 B-3 संहति चयन के दोष (demerits of Mass Selection)

13.3.2.2 B शुद्ध वंश क्रम चयन (Pure Line Selection)

13.3.2.2 B- 1 शुद्ध वंश क्रम की क्रियाविधि (Procedure of pure line Selection)

13.3.2.2 B-2 शुद्ध वंश क्रम चयन के गुण (Merits of pure line selection)

13.3.2.2 B-3 शुद्ध वश क्रम चयन के अवगुण (Demerits of pure line Selection)

13.3.2.2 B-4 शुद्ध वंश क्रम चयन की उपलब्धियाँ (Achiements of pure line Selection)

13.3.2.2 C क्लोनिंग चयन (Clonal Selection)
133.2.2 C-1 क्लोनीय चयन की क्रियाविधि (Procedure of conal Selection)
133.2.2 C-2 क्लोनीय चयन के लाभ (Merits of clonal Selection)
13.3.2.2 C-3 क्लोनीय चयन के अवगुण (Demerits of clonal Selection)
13.3.2.2 C-4 क्लोनीय चयन की उपलब्धियाँ (Achievements o clonal Selectio)
13.3.2.3 संहति चयन तथा शुद्ध वंश क्रम चयन में तुलना (Difference between mass Selection and line Selection)
13.3.3 संकरण (Hybridization)
13.3.3.1 संकरण के उद्देश्य (Objectives of Hybridization)
13.3.3.2 संकरण के प्रकार (Types of Hybridization)
13.3.3.3 संकरण की क्रियाविधि (Procedure of Hybridization)
13.4 सारांश (Summary)
13.5 शब्दावली
13.6 सन्दर्भ ग्रन्थ
13.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
13.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.0 उद्देश्य

इकाई के इस भाग में हम पादप प्रजनन के उद्देश्यों व महत्व का अध्ययन करेंगे । पादप प्रजनन की विभिन्न विधियाँ जैसे पादप पुरुस्थापन एवं दशानुकूलन, पादप चयन अथवा वरण तथा संकरण आदि को वर्णित करेंगे ।

13.1 प्रस्तावना

पादप प्रजनन वनस्पति शास्त्र की सबसे पुरानी शाखाओं में से एक है । प्राचीन काल में जब से मानव ने महत्वपूर्ण पौधों की खेती प्रारम्भ की तभी से उसका परिचय पादप प्रजनन से हुआ होगा तथा तभी से बहुत से उपयोगी पौधों में गुणवत्ता सुधारने के प्रयास किए जाते रहे हैं । प्रारम्भ में केवल चयन अथवा वरण द्वारा ही फसल सुधार के प्रयास किए गए परन्तु इन विधियों की कुछ कमियों को देखते हुये पादप प्रजनन वैज्ञानिकों ने अन्य वैकल्पिक विधियों की खोज की ।

13.2 पादप प्रजनन

पादप प्रजनन (Plant- breeding) वनस्पति शास्त्र की एक परिष्कृत (An applied branch) शाखा है । आज अनेक पौधे प्राकृतिक तथा कृत्रिम पादप प्रजनन की परिणिति (resultant) है । अर्थात् पादप प्रजनन मुख्य रूप से आर्थिक महत्व व मानव उपयोगी पौधों के उत्पादन में वृद्धि व उनकी नई किस्मों के विकास से सम्बन्धित हैं तथा इसके अध्ययन का आधार भी इन पौधों के उत्पादन में अपेक्षानुसार वृद्धि एव गुणवत्ता में सुधार लाना ही है ।

कृषि उत्पादन के संदर्भ में एक पादप प्रजनन विज्ञानी (plant breeder) के सामने कुछ उद्देश्य होते हैं जैसे :

(1) अन्नोत्पादक (Cereals)में दानों की अधिक संख्या प्राप्त करना, चारे के लिए प्रयुक्त फसलों में तृण (straw) की मात्रा अधिक प्राप्त करना ।

(2) पोषण गुणवत्ता (Nutrient value) विशेष रूप से दलहनी पौधों में प्रोटीन्स की मात्रा अधिक प्राप्त करना ।

(3) आकृति, परिमाण, पकाने में उत्तम गुणवत्ता प्राप्त करना ।

(4) ऐसी किस्म विकसित करना जो रोग, कीट, सूखा, मृदा में लवणीयता, अम्लीयता, एव क्षारीयता के विरुद्ध प्रतिरोधी हो अर्थात् रोग प्रतिरोधी किस्मों की प्राप्ति ।

(5) आवश्यकतानुसार पौधों के प्रजनन के या पुष्पन के समय में परिवर्तन करना ।

(6) अन्नोत्पादक (Cereals) में बालियों (spikes) की गुणवत्ता में सुधार ।

पादप प्रजनन के कार्य क्षेत्र को देखते हुये इसे परिभाषित करना कठिन है परन्तु फिर भी कुछ वैज्ञानिकों द्वारा इसे निम्न प्रकार से परिभाषित किया गया है ।

" विभिन्न आर्थिक महत्व के पौधों के आनुवांशिक प्रारूप को उन्नत करने, उनकी गुणवत्ता एव उत्पादन में सुधार लाने की प्रक्रिया को पादप प्रजनन (plant breeding) कहते हैं ' ' ।

अर्थात्

" पादप प्रजनन कला एव विज्ञान का एक कैसा अनूठा संगम है जिसकी आधारभूत इकाई के रूप में पौधों की कोशिकानुवांशिकी एव विभिन्नताओं (variations)को निरुपित किया जा सकता है Frankel, 1969 के अनुसार पादप प्रजनन के अन्तर्गत पर्यावरण के भौतिक, जैविक तकनीकी एव आर्थिक तथा सामाजिक घटकों (components) से पौधों के आनुवांशिक समायोजन का अध्ययन किया जाता है ।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि पादप प्रजनन एक प्रगतिशील, उपयोगी एव महत्वपूर्ण शाखा है तथा इसके द्वारा प्राप्त नवीन किस्में अपने जनक पौधो से वांछित गुणों में अच्छी होती है । अत : पादप प्रजनन वैज्ञानिकों का मुख्य उद्देश्य अधिक से अधिक उपयोगी एव महत्वपूर्ण गुणों का समावेश कर बेहतर पादप किस्म बनाना है ।

13.3 पादप प्रजनन की विधियाँ

पादप प्रजनन का मुख्य उद्देश्य उपयोगी एव महत्वपूर्ण पौधों की गुणवत्ता एव उत्पादन में वैज्ञानिक तरीके से सुधार लाना है । पादप प्रजनन की निम्न विधियाँ है

(1) पादप पुरुस्थापन एव दशानुकूलन (plant Introduction and Acclimatization)

(2) पादप चयन अथवा वरण (Selection)

(3) संकरण (Hybridization)

(4) बहु गुणिता (Polypoidy)

(5) उत्परिवर्तन (Mutation)

पादप प्रजनन की किसी भी सामान्य विधि को पादप किस्म बेहतर बनाने हेतु प्रयोग करने से पहले यह ध्यान रखना आवश्यक है कि चयनित विधि फसली पादप किस्म के लिए पूरी तरह से अनुकूल हो । इसके अतिरिक्त एक अच्छे पादप प्रजनन विज्ञानी को फसल उत्पादक पौधों के उद्भव केन्द्र (centres of origin of cultivated crops) के बारे में ज्ञान होना भी जरूरी है ।

13.3.1 पुरुस्थापन एव दशानुकूलन (Introduction and Acclimatization)

किसी भी पादप के मानव कल्याण के लिए उपयोग की विवेचना व फसली पौधो के उद्भव केन्द्र के ज्ञान के साथ -साथ यह भी ज्ञान होना चाहिए कि जनक पीढ़ियाँ प्राकृतिक रूप से कौन से आवासीय स्थलों में मिलती थी व मानव ने अपने लिए किस प्रकार से इन्हें उगाया तथा इन पौधो का ग्राम्यन (Domestication) कैसे हु आ । ग्राम्यन से अर्थ है कि ' 'उपयोगी पौधों को प्राकृतिक या जंगली आवासों से चयनित कर आसपास के सुविधाजनक स्थलों पर उगाना व उनकी देखभाला करना " ।जंगली पौधों के मानव द्वारा हजारों वर्षों से किए जा रहे ग्राम्यन के परिणामस्वरूप यह देखने में आया है कि बहु त से कृष्य पौधो के लक्षणों में विभिन्नताएँ स्वत: ही पैदा हो गई है जैसे कुकुरबिटेसी (cucurbitaceae) के पौधों में विषैले पदार्थों (Toxic substances) की कमी होना या पौधों की आकारिकी में काफी बदलाव आया जैसे आलू एव गन्ना में कायिक जनन अधिक विकसित हो गया साथ ही ग्राम्यन से आनुवांशिक लक्षणों की विभिन्नताएँ भी कम होती गई । कई पौधों की कृष्य किस्मों (cultivated varieties)में वन्य किस्में की तुलना में रोग प्रतिरोधक क्षमता भी कम होती है ।

पादप पुरुस्थापन की प्रक्रिया में किसी भी कृष्य पौधे के नये जीन प्रारूप (genotype) का स्थानान्तरण अपने पूवर्जीय स्थान से बिल्कुल नये प्राकृतिक आवास में उगाने के लिए किया जाता है । अर्थात् इस विधि में फसल उत्पादक पौधो की नई किस्म को किसी नये स्थान पर उगाया जाता है । नये वातावरण में स्थानान्तरित किस्म को बाहय किस्म (Exotic variety) कहा जाता है अत : पुरुस्थापन प्रक्रिया में कृष्य पौधे (Cultivated plant) के विशेष जीनोटाइप के समूह को अपने पूर्वज स्थल से नये स्थान पर उगाया जाता है जहाँ इसका प्रयोग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि के लिए किया जाता है । किसी भी प्रकार का पुरुस्थापन देश के भीतर दो राज्यों के बीच या दो देशों के मध्य भी हो सकता है । यदि पुरुस्थापन हेतु कृष्य पौधे को दूसरे देश से लाकर उगाया जाता है तो उसे विदेशज पादप (Exotic plant) कहेंगे । यदि देश के किसी भाग से दूसरे भाग में पुरुस्थापित किया जाये तो उसे देशज पादप (Indigenous collection)

कहते हैं व इनके सग्रह को देशज संग्रह (Indigenous collection) कहा जाता है । पुरुस्थापन के लिए उपयुक्त नई किस्मों को ज्यादातर विदेशों से मंगाया जाता है तथा अपने नये वातावरण के अनुसार उगाया जाता है इस प्रकार पुरुस्थापन में नई पादप किस्म का प्रवेश हमेशा नई जलवायु में होता है ।

13.3.1.1 पुरुस्थापन के प्रकार

(1.) **प्राथमिक पुरुस्थापन** (Primary Introducation): इस प्रक्रिया में नवीन पुरुस्थापित पादप किस्म को नये वातावरण में सामंजस्य (Adjustment) स्थापित कर लेने के बाद सीधे ही नई फसल उगाने के लिए उपयोग में लिया जाता है । अर्थात् इसके जीनोटाइप में कोई परिवर्तन नहीं किया जाता । उदाहरण के लिए मैक्सिकन गेहूँ ' 'लारमा रोजो ' ' एवं ' 'सोनारा 64 '

(2.) **द्वितीयक पुरुस्थापन** (Secondary Introduction). इस प्रक्रिया में नई विदेशज किस्म (Introduced Exotic Variety) का चयन कर किसी देशज किस्म (Indigenous Variety) से करण करवा कर नई सर्वोत्तम कृष्य पादप किस्म उत्पन्न की जाती है परिणामस्वरूप विदेशज किस्मों की वांछित उपयोगी गुण देशज किस्म के उत्तम गुणों की सकर संतति बनती है ।

उदाहरण : कल्याण सोना (SK-227) गेहूँ एवं चावल IRB इस विधि को कृषि उत्पादन में वृद्धि व गुणवत्ता के लिए सर्वथा उपयुक्त माना जाता है क्योंकि सामान्यतया प्राथमिक पुरुस्थापन से नई किस्म नये वातावरण में मुश्किल से ही सफल होती है । ज्यादातर उदाहरणों में विदेशज पौधे नये वातावरण में सामंजस्य नहीं बैठा पाते और नष्ट हो जाते हैं । भारत में कई वर्षों से नई किस्मों का पुरुस्थापन होता रहा है जैसे पुर्तगालियों द्वारा मक्का, मूंगफली, आलू, मिर्च व कालू ,अंग्रेजों द्वारा चाय व लीची जैसे महत्वपूर्ण पौधों को पुरुस्थापित किया गया । परन्तु सुव्यवस्थित ढंग से इस प्रक्रिया का कार्य 1964 में प्रारम्भ हुआ था भारतीय कृषि अनुसंधान (IARI) नई दिल्ली में एक शाखा वनस्पति पादप पुरुस्थापन प्रभाग (Botany plant Introduction Division) की स्थापना की गई । 1976 में राष्ट्रीय पादप आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो (NBPGR)की स्थापना हुई और इस दिशा में नये प्रयास किये गये । NBPGR का मुख्यालय IARI नई दिल्ली में है तथा शिमला, जोधपुर, कन्याकुमारी तथा अकोला में इसके चार उपकेन्द्र हैं ।

13.3.1.2 पादप पुरुस्थापन की क्रियाविधि

कृष्य पौधे के पादप प्रजनन की आवश्यकता के अनुसार किसी भी प्रारूप में पादप या इसके भाग को पुरुस्थापित किया जा सकता है जैसे जड़ें, कलिकाएँ, कलम, बीज, कद या परागकण आदि । किसी अन्य संस्था से पादप सामग्री को प्राप्त करके उसे पुरुस्थापित करने की क्रिया को निम्न सोपानों में अध्ययन किया जा सकता है ।

1 **पादप सामग्री की प्राप्ति :** जब कृष्य या उपयोगी पौधे की कोई किस्म विशेष अपने देश में उपलब्ध नहीं है अथवा इसमें वांछित गुणों का अभाव हो गया हो या आनुवांशिक रूप से विभिन्नताएँ समाप्त हो गई हो तब किसी बाहरी देश से या संस्था से उस पादप विशेष को मंगवाया जाता है । वांछित पादप सामग्री को खरीदे कर या विनिमय द्वारा या खोजकर्ताओं

के द्वारा प्राप्त की जा सकती । पादप सामग्री बीज के रूप में अपेक्षाकृत अधिक आसानी से लाये जा सकते हैं । जनन युक्त पादप भाग जिन्हें प्रवर्ध (Propagules) कहा जाता है की प्रकृति भिन्न - भिन्न हो सकती है जैसे गेहूँ , मक्का या मटर आदि में बीजों का, आलू गन्ना आदि में कलम व रनर जैसे कायिक प्रवर्धो का उपयोग किया जाता है ।

हमारे देश में राष्ट्रीय पादप आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो (National Board Plant Genetic Resource NBPGR) दूसरे देशों से पादप सामग्री उपलब्ध कराने का माध्यम है । इसके अतिरिक्त शोधकर्ताओं द्वारा भी पादप सामग्री मंगवाई जा सकती है । परन्तु इनके रोग मुक्त होने का प्रमाण पत्र (Phytosanitary certicate) का होना भी आवश्यक है ।

(2) **क्यारेन्टीन** (Quarantine) : विदेशों से पादप सामग्री के आगमन के साथ - साथ इनको अवांछित जैसे कटि, कवक, बीजाणु, जीवाणु या हानिकारक वायरसों के आगमन का खतरा भी रहता है । इसके लिए पादप सामग्री को क्वारेन्टीन के एकान्त तथा निर्जम वातावरण में रख कर रोग मुक्त कर इसका प्रमाण पत्र संलग्न किया जाता है । विदेशों से आने वाली स भी पादप सामग्री की अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डों (International Airports). सीमा सडक (Borders) एव बंदरगाहों पर कड़ी जाँच की जाती है । इस समय रोग मुक्त प्रमाण पत्र (Phylosanitary certificate) भी संलग्न होना चाहिए । उपयुक्त मानक स्तर के अनुरूप न होने पर पादप सामग्री को वापस भी भेजा जा सकता है या उसे नष्ट भी किया जा सकता है । कुछ कृष्य पादप किस्म जैसे रबर व गन्ने के हमारे देश में आयात पर प्रतिबन्ध है ।

(3) **सूचीबद्ध करना** (Catsloging) : क्वारेन्टीन पादप सामग्री का पुरुस्थापन से पहले पंजीकरण होता है व इसे सूचीकरण संख्या (Acession number) दिया जाता है । नम्बर के साथ प्रत्यय (perfix) के रूप में EC (Exotic Collection), IC (INdigenous Collection) या IW (Indigenous wild) लिखा जाता है । इसके साथ ही पादप सामग्री की वास्तविक सूचना (Botanical Infomation) भी दी जाती है जैसै प्रजाति का नाम, उत्पत्ति स्थान, अनुकूलन शीलता इन सभी सूचनाओं का अभिरक्षणMaintenance) भी किया जाता है ।

(4) **मूल्यांकन** (Evaluation) : प्राप्त प्रमाणित सूचीबद्ध पादप सामग्री का इसकी उपयोगिता को ध्यान में रखकर विभिन्न केन्द्रों द्वारा मूल्यांकन किया जाता है । यदि सामग्री वातावरण के अनुकूल नहीं है तो फसल का जीवन चक्र, उत्परिवर्तन या आनुवांशिक भिन्नताओं को प्रयुक्त कर इसका दशानुकूलन किया जाता है ।

(5) **पादप सामग्री का गुणन व वितरण** (Multiplication and Distribution). मूल्यांकन के बाद पुरुस्थापित एव दशानुकूलित (Introducation and Accimatized) पादप किस्म का गुणन (multiplication) किया जाता है । तत्पश्चात् कृष्य पादप किस्म का वितरण प्रमुख संसाधन केन्द्रों या कृषि शोध संसाधनों द्वारा प्रजनन कार्यों के लिए किया जाता है ।

13.3.1.3 पादप पुरुस्थापन के गुण व दोष

(Merites and Demerits of plant Introduction)

गुण (Meritts) :

(1) पादप पुरुस्थापन के द्वारा तुरन्त ही एक नई किस्म उत्पन्न होती है ।

(2) पुरुस्थापित किस्म को संकरण के बिना सीधे ही उन्नत किस्म की तरह काम में लिया जा सकता है|

(3) फसल सुधार की आर्थिक रूप से उपयोगी एव सरल विधि है ।

(4) इससे जर्मप्लास्म संरक्षण को प्रोत्साहन मिलता है ।

हानि (Demerits) :

(1) पुरुस्थापित पौधों द्वारा कई बार बाहरी पादप रोग का संक्रमण तेजी से फैलता है जैसे आलू की पद्दति अंगमारी (Late blight of potato) नामक रोग यूरोप से 1887 में भारत आया था ।

(2) अत्यन्त सावधानी के बावजूद आयतित पादप किस्म के साथ अनेक हानिकारक कीट (Insects and pests) भी देश में फैल गये ।

(3) अनेक विदेशी खरपतवार (Exotic weeds) जैसे गजरघास (parthenium -hystero phorus) एवं पीली कटेली (argemmone) भी आयतित फसलों के साथ देश में तेजी से फैल गये ।

बोध प्रश्न - 1

1. पादप प्रजनन हेतु किसी पादप के बीज को अन्य देशों (आवास) से नये आवाज में स्थापित करने को क्या कहते हें?

………

………

………

2. NBPGR का पूरा नाम क्या है?

………

………

………

13.3.2 पादप चयन अथवा वरण (plant Selection)

पादप चयन पादप प्रजनन की एक पुरानी विधि है एव समस्त कृष्य पौधों को बेहतर करने की प्रक्रिया का आधार है । पादप चयन का उपयोग भी उसकी जनन प्रकृति (reproductive nature) पर निर्भर करता है । इस प्रक्रिया द्वारा पादप किस्मों को उन्नत करने तथा नई किस्मों को विकसित करने हेतु किया जाता है ।

पादप चयन की आधारभूत इकाई पादपों में पाई जाने वाली आनुवांशिक भिन्नता है जो स्वतंत्र रूप से आनुवांशिक भिन्नता है जो स्वतंत्र रूप से उत्परिवर्तनों द्वारा उत्पन्न होती है और आगे संतति में प्राकृतिक संकरण एव पुनर्योजन द्वारा ये भिन्नताएँ जुड़ती जाती है । चयन प्रक्रिया को दो वर्गों बाँटा गया है:

प्राकृतिक चयन (Natural Selection) स्वनियंत्रित प्रक्रिया प्राकृतिक कारकों से प्रभावित होती है । लगातार व धीमी गति से होने के कारण समय अधिक लगता है एव गुणों में भी परिवर्तन होता है।

13.3.2. 1 पादप चयन के प्रकार

कृत्रिम चयन (Artificial Selection): मनुष्य द्वारा संचालित इस प्रक्रिया में स्वयं की आवश्यकतानुसार पादप प्रजनन विज्ञानी एक बड़े पादप समूह (Population) से इच्छित गुणों युक्त पादपों का चयन करता है । चयनित पादपों में भिन्नता आती है । इस प्रक्रिया में लक्षणों का सुधार वांछित या आपेक्षित दिशा में होता है साथ ही प्रक्रिया तीव्र भी होती है ।

13.3.2.2 पादप चयन की विधियाँ

कृत्रिम पादप चयन की प्रमुख विधियाँ निम्न प्रकार से हैं

(A) संहति चयन (Mass selection)

(B) शुद्ध वंशक्रम चयन (Pure line selection)

(C) क्लोनीय चयन (Clonal selection)

13.3.2.2 (A) संहति चयन (Mass selection): यह एक सामान्य विधि है इसे व्यापक चयन या सपुंज चयन भी कहा जाता है । इस प्रक्रिया में वांछित गुणों वाले उत्तम पौधों को चुना जाता है । इससे मिश्रित बीज प्राप्त किये जाते हैं । इसका संतति परीक्षण नहीं किया जाता इसलिये ये संहति, सपुंज (Mass selection) कहलाता है ।

इस प्रक्रिया में समान लक्षणों वाले पौधे के बीजों का चयन किया जाता है बीजों की संहति से अगली पीढ़ी प्राप्त करते हैं । अगली पीढ़ी के पौधों का फिर वांछित लक्षणों के आधार पर चयन किया जाता है । उनसे बीज प्राप्त कर नई पीढ़ी लगाई जाती है । संहति चयन की यह प्रक्रिया निरन्तर तब तक जारी रहती है जब तक कि चयनित पौधों के वांछित लक्षणों में समरूपता (Uniformity) नहीं आ जाती ।इस प्रकार संहति चयन प्रक्रिया में केवल पौधे के लक्षण प्ररुप को आधार बनाया जाता है संतति परीक्षण (Progeny test) होते । परन्तु एलार्ड (Allard 1956) के अनुसार संतति परीक्षण की प्रक्रिया को अपनाकर इससे कम गुणवत्ता वाले, निर्वल पौधों को हटाया जा सकता है ।

13.3.2.2 A- 1 संहति चयन की क्रियाविधि (Procedure of Mass selection) : संहति चयन में सर्वप्रथम विभिन्न तथ्यों तथा गुणों पर ध्यान दिया जाता है जैसे आधारभूत पादप समूह (Base population) से पौधों का चयन, पौधे के लक्षण प्ररुप (Phenotype) जैसे जीवनीशक्ति (vigour)रोग प्रतिरोधक क्षमता (Disease resistance), पौधों की ऊँचाई, वृद्धि आदि । इस चयन प्रक्रिया में लगभग 8 वर्षों का समय लगता है । कार्य प्रणाली तथा अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इस कार्य विधि को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है ।

प्रथम वर्ष. : प्रथम वर्ष में फसल कटाई के दौरान इच्छित लक्षणों वाले पौधों के बीजों का चयन कर लिया जाता है । इन बीजों का एक पुंज तैयार कर लिया जाता है । इस मिश्रित पुंज को अगले वर्ष फसल उगाने के लिए संग्रहित किया जाता है । विभिन्न लक्षण प्ररुपों के आधार पर

बीजों के अनेक पुज बनाए जाते हैं । भूमि कारक के कारण विविधता को दूर करने के लिए पुंजवरण हेतु चयनित खेत को 10 वर्ग फीट के टुकड़ों में बाँटा जा सकता है इसलिए पुंज वरण (mass selection)को प्रकोष्ठीय वरण (compartmental selection) भी कहते हैं ।

द्वितीय वर्ष : प्रत्येक पुंज के बीजों को अलग -अलग भू -भागों में उगाकर नये पौधे बनाये जाते हैं । इन पौधों में स्वपरागण या परपरागण दोनों प्रक्रियाओं को बिना किसी बाधा के होने दिया जाता है । जनक किस्म या पुरानी किस्म के पौधों को मानक किस्म के रूप में प्रयुक्त कर तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है । फिर इच्छित या वांछित लक्षणों वाले पौधों से बीजों का चयन किया जाता है ।

तृतीय, चतुर्थ व पंचम वर्ष : विभिन्न केन्द्रों पर चुने हुए पुंज बीजों से प्राप्त पौधे के गुणों का मूल्यांकन किया जाता है । यदि इच्छित या वांछित लक्षणों वाले पौधे मिलते हैं तो 2 या अधिक वर्षों तक पौधों में गुणों का परीक्षण किया जाता है ।

छठा, सातवाँ व आठवां वर्ष : बार -बार उगाये गये पौधों में इच्छित गुणों का सावधानी पूर्वक निरीक्षण के बाद संहति के रूप में चयनित किस्मों को विभिन्न क्षेत्रीय कृषि अनुसधान केन्द्रों (Regional agriculture Research Centres)पर भेजा जाता है । वहाँ इन बीजों को दशानुकूलन अनुकूलनशीलता (Adopatability) तथा उत्पादन क्षमता की जाँच के लिए उगाया जाता है । अंत में यदि जाँची गई किस्म, वर्तमान श्रेष्ठ किस्मों की तुलना में बेहतर साबित होती है तो इस नई किस्म के पौधे को ज्यादा संख्या में लगा कर इनका गुणन किया जाता है ताकि अधिक से अधिक संख्या में बीज किसानों को उपगध कराये जा सकें ।

संहति चयन के लिए दो विधियाँ अपनाई जाती है ।

1. **हैलेट विधि (Hallet's method 1869)** : इसमें प्रमाणित किस्म को अनुकूल परिस्थितियों में उगाकर संहति चयन किया जाता है ।
2. **रिमपाऊ विधि (Rimpau's Method)** : इसमें प्रमाणित किस्म को प्रतिकूल (adverse) परिस्थितियों में उगाकर संहति चयन किया जाता है ।

13.2 .2 A- 2 संहति चयन के गुण (Merits of Mass selection)

(1) समय व लागत कम लगने के साथ यह एक उपयोगी एवं सरल विधि है ।

(2) प्राप्त उन्नत किस्म स्थानीय वातावरण के अनुकूल रहती है ।

(3) गुणवत्ता के साथ -साथ व फसलों में लक्षणों की शुद्धता भी होती है ।

13.3.2.2 A -3 संहति चयन के दोष (Demerites of Mass selection)

(1) संतति परीक्षण नहीं होने से इच्छित गुणों में समानता नहीं पाई जाती ।

(2) गुणवत्ता सुधार (Quality Improvement) कम मात्रा में होता है ।

(3) यह प्राय : स्वपरागित फसलों में ही अपनाई जाती है क्योंकि वे शुद्ध लक्षणों वाले व समांगी होते हैं ।

13.2.2 B शुद्ध वंश क्रम चयन (Pure- line selection)

शुद्ध वंश क्रम (pure- line selection) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम जोहनसन (Johanson 1903) के द्वारा किया गया । बाद में पादप प्रजनन विज्ञानियों ने अलग - अलग प्रकार से इसकी व्याख्या की ।

" एक स्वपरागित पौधे की आनुवांशिक रूप से समान संतति के लक्षणों के आधार पर शुद्ध वंशक्रम कहते हैं । स्मिथ व उसके सहयोगियों (Smith et. al 1955) के अनुसार किसी सजीव इकाई का वह प्रभेद जो अन्त:प्रजनन (inbreeding) या किसी अन्य कारण से आनुवांशिक रूप से शुद्ध होता है उसे शुद्ध वंशक्रम (pureline) कहते हैं ।

सघन एव मिश्रित पादप समूह में से एकल पौधे का चयन शुद्ध वंशक्रम चयन कहलाता है । जोहनसन (Johanson 1930) द्वारा सेम (beans) की एक किस्म पर शुद्ध वंशक्रम चयन सम्बन्धी प्रयोग किये गये थे।

13.3.2. 2 B- 1 शुद्ध वंशक्रम चयन की क्रियाविधि (Procedure of pureline selection)

यह प्रक्रिया तीन सोपानों में सम्पन्न होती है :

(1) विभिन्न लक्षणों वाले पादप समूह से 100 से 3000 पौधों का उनके लाक्षणिक गुणों के आधार पर चयन

(2) वांछित लक्षणों के आधार पर पौधे के बीजों को अलग - अलग कतार में बोना ।

(3) चयनित पादप संततियों का प्रतिकृति उत्पादकता परीक्षणों (Replicated yield Test) द्वारा 2 से 3 वर्ष तक लगातार मूल्यांकन करना । इस प्रक्रिया से नई उन्नत किस्म तैयार करने में लगभग 8 - 1० वर्ष का समय लगता है । अध्ययन की दृष्टि से करने विभिन्न भागों में बाँटा जा सकता है ।

प्रथम वर्ष : एक मिश्रित पादप समूह से, इच्छित गुणों वाले 100 से 3000 पौधे छांटे जाते हैं । प्रत्येक पौधे से प्राप्त बीजों को अलग - अलग एकत्र कर उनके ऊपर कोई पहचान चिन्ह अंकित करके उनका संग्रह किया जाता है । चुने गये पौधों में इच्छित गुण शुद्ध समयुग्मजी होते हैं ।

द्वितीय वर्ष : प्रत्येक पौधे से प्राप्त 25 से 50 बीजों को अलग - अलग कतारों में बोया जाता है । प्रत्येक 10वीं पंक्ति में एक मानक किस्म के बीजों को बोया जाता है ताकि तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके । चुनते समय अवांछित लक्षणों वाले या रोगग्रस्त पौधों को पंक्तियों से हटा दिया जाता है । प्रत्येक पंक्ति के चयनित पौधों से प्राप्त बीजों को अलग - अलग रखा जाता है । प्रत्येक पंक्ति के बीजों को तृतीय वर्ष में प्रायोगिक प्रभेद के रूप में प्रयुक्त किया जाता है ।

तृतीय वर्ष : प्रत्येक प्रायोगिक प्रभेद या चयनित बीजों को तीसरे साल में 4 से 5 पंक्तियों में बोया जाता है । प्राप्त सततियो (progeny) में श्रेष्ठ लक्षणों वाले पौधों को छाँट लिया जाता है । दुर्बल व अवांछित लक्षणों वाले पौधों को हटा दिया जाता है । उत्पादकता परीक्षण के लिये प्रत्येक प्रायोगिक प्रभेद के बीजों को अलग - अलग एकत्रित किया जाता है ।

चौथे से छठे वर्ष : चयनित पौधों का उत्पादकता परीक्षण विभिन्न केन्द्रों पर किया जाता है । इनमें प्रत्येक प्रायोगिक प्रभेद के बीजों को अलग - अलग कतारों में तथा तुलनात्मक अध्ययन के

लिए प्रत्येक पाँचवी पंक्ति में मानक किस्म के बीज लगाये जाते हैं । फिर इच्छित व उत्तम गुणों वाले पौधों का चयन कर अन्य को अलग हटा दिया जाता है ।

सातवाँ वर्ष :चयनित प्रभेदों से प्राप्त बीजों को आकार व उनका गुणन कर अलग अलग स्थानों पर भेजा जाता हैं|

आठवाँ से दसवाँ वर्ष : सर्वश्रेष्ठ चयनित संतति को नई किस्म (New variety) का नाम दिया जाता है । इसका निर्धारण अनुकूलन क्षमता, तथा तुलनात्मक उत्पादकता के आ धार पर होता है । इस नई किस्म को किसानों को उपयोग के लिए दे दिया जाता है ।

13.3.2.2 B- 2 शुद्ध वंशक्रम चयन के गुण (Merits of Pureline selection)

(1) इस प्रक्रिया से चयनित पादप किस्म में वांछित लक्षण सभी पौधों में एक समान एव समयुग्मजी (homozygous) होते हैं अर्थात् लक्षणों की शुद्धता प्रदर्शित करते हैं ।

(2) इस प्रक्रिया से प्राप्त किस्मों को अन्तरप्रजनन (interbreeding) प्रकिया में जनक पीढ़ी पादप के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है ।

(3) शुद्ध वंशक्रम बीजों की पहचान करना आसान होता है ।

13.3.2.2 B -3 शुद्ध वंशक्रम चयन के अवगुण (Demerits of Pureline selection)

(1) इस प्रक्रिया में परिश्रम व समय अधिक लगते है ।

(2) इस विधि से प्राप्त किस्मों के गुणों में विविधताएँ कम होती है अत : चयन का आधार भी सीमित होता है ।

(3) इस प्रक्रिया को अपनाते हु ये कोई नया लक्षण उत्पन्न नहीं किया जा सकता ।

(4) यह प्रक्रिया सिर्फ स्वपरागित किस्मों के लिए ही स्थाई है । परपरागित किस्मों में प्रथम पीढ़ी में युक्त लक्षण समय बीतने के साथ -साथ ही लुप्त होते जाते हैं ।

13.3.2.2 B -4 शुद्ध वंशक्रम चयन कीं उपलब्धियाँ

(Achivements of pureline selection)

पादप प्रजनन वैज्ञानिकों (Plant breeders) ने इस प्रक्रिया को अपनाकर मानव उपयोग के लिए बहु त सी बेहतर किस्में तैयार की है । जैसे. गेहूँ में NP-4,NP 522 व Pb-11, मूँग में ' T व शाइनिंग मूँग, कपास में Co-2, MCU -1 व Co-4 चावल में Mtu -1, तम्बाकू में NP - 28 व NP- 63 इत्यादि ।

13.3.2.2 C क्लोनीय चयन (Clonal selection)

बहु त सी फसलें जिनमें लैंगिक जनन सामान्यतया नहीं पाया जाता जैसे आलू गन्ना, चाय, शकरकन्द, केला तथा अनेक प्रकार की घास आदि में कायिक जनन ही पाया जाता है । इसके अतिरिक्त कुछ फल उत्पन्न करने वाले पौधे जैसे संतरा, सेब, में अत्यधिक बहु गुणिता (high level of polyploidy) पाई जाती है ऐसे पौधों में गुणों को सरीक्षत तथा बेहतर बनाये रखने के

लिए कायिक प्रवर्धन की प्रक्रिया ही अपनाई जाती है । क्लोन ऐसे पौधों के समूह को कहते हैं जो एक पौधे से कायिक जनन द्वारा उत्पन्न होते हैं ये जनक पौधे (parents) से पूर्णतया समान होते हैं । एक क्लोन के मुख्य गुण इस प्रकार होते हैं ।

(1) एक क्लोन के पौधे जीन प्रारूप (genotype) में समान होते हैं क्योंकि यहाँ पृथक्करण एवं पुन: संयोजन नहीं पाया जाता, केवल समसूत्री विभाजन होता है ।
(2) एक क्लोन के पौधे एक रूपी (uniform) होते हैं ।
(3) इनके बाहरी गुणों में भिन्नताएँ वातावरण के कारण उत्पन्न होती है ।
(4) आनुवांशिक भिन्नताएँ केवल मात्र कायिक उत्परिवर्तनों (somatic mutations) के कारण होती है ।

अत: कायिक जनन द्वारा एक पौधे से संतति प्राप्त करने की विधि को क्लोनीय चयन कहते हैं ।

13.3.2.2 C-1 क्लोनीय चयन की क्रियाविधि (Procedure of Clonal Selection)

अध्ययन की दृष्टि से क्रियाविधि को निम्न में बाँटा गया है:

प्रथम वर्ष: कायिक जनित पौधों की मिश्रित भिन्नता वाली जनसंख्या से वांछित लक्षणों के आधार पर 100 - 500 श्रेष्ठ पौधों का चयन किया जाता है । दुर्बल व रोगग्रस्त पौधों को निष्कासित कर दिया जाता है ।

द्वितीय वर्ष: चयनित पौधों से कायिक जनन द्वारा क्लोन्स बनाकर उगाया जाता है । इन क्लोन्स से श्रेष्ठ गुणों वाले पौधों का दोबारा चयन किया जात्रा है । इस प्रकार 50-100 क्लोन्स का चयन किया जाता है ।

तृतीय वर्ष: इन श्रेष्ठ क्लोन्स का पुरानी किस्म (stand and check) के साथ प्राथमिक परीक्षण (preliminary trial) किया जाता है । इनमें से भी चयनित श्रेष्ठ क्लोन्स (superior clones) का परीक्षण विभिन्न परीक्षण केन्द्रों पर किया जाता है ।

चौथे से आठवाँ वर्ष: विभिन्न परीक्षण केन्द्रों पर श्रेष्ठ क्लोन्स का पुरानी किस्मों (standard check) के साथ दोबारा तुलनात्मक परीक्षण किया जाता है । इनमें विभिन्न गुणों जैसे पैदावार, प्रतिरोधकता (रोग, सूखा आदि) का भी ध्यान दिया जाता है । तब इनमें से श्रेष्ठ क्लोन्स (वांछित गुणों के आधार पर) की पहचान की जाती है ।

नवम वर्ष: इसमें नई किस्म की श्रेष्ठ क्लोन्स का गुणन किया जाता है तथा नई किस्म का नाम दिया जाता है ।

13.3.2.2. C-2 क्लोनीय चयन के लाभ (Merits of Clonal Selection)

(1) कायिक जनित फसलों के लिए यह सरलतम चयन विधि है । क्लोनों में उपस्थित जीन्स की रूपरेखा में कोई ह्रास नहीं होता ।
(2) इस विधि के द्वारा क्लोन्स की शुद्धता को बनाये रखा जा सकता है ।
(3) संकरण विधि के साथ (कुछ परिवर्तन करके) भी इस विधि को उपयोग में लाया जा सकता हैं|

13.3.2.2 C-3 क्लोनीय चयन के अवगुण (Demerits of Clonal Selection)

(1) यह प्रक्रिया मात्र कायिक जनित फसलों के लिये ही है ।

(2) विधि द्वारा नई विभिन्नताएँ उत्पन्न नहीं हो सकती । विभिन्नताएँ उत्पन्न करने के लिए उत्परिवर्तन या संकरण आवश्यक है ।

13.3.2.2. C-4 क्लोनीय चयन की उपलब्धियाँ

(Achievements of Clonal Selection)

केले में हाई गटें एव ब्राइट यलो, आलू में कुफरी लाल एवं कुफरी सफेद (kufri red and kufri white), आम में युवराज ब्लड रेड (Yuvraj Blood Red), ko11,ko22 आदि क्लोनीय चयन भी प्रमुख उपलब्धियाँ हैं ।

13.3.2.2 संहति चयन तथा शुद्ध वंशक्रम चयन में तुलना

(Comparision Between Mass and Pureline Selection)

क्र. सं.	संहति चयन	शुद्ध वंश क्रम चयन
1	इस प्रक्रिया में चयनित पौधों की संख्या अधिक होती हे ।	चयनित पौधों की संख्या कम होती है ।
2	चयनित पौधों के बीजों को मिलाकर बोया जाता हैं ।	चयनित पौधों के बीजों को अलग - अलग बोया जाता है ।
3	यह प्रक्रिया स्वपरागित पौधों के लिये हैं परन्तु परपरागण पर प्रतिबंध नहीं है ।	यह प्रक्रिया स्वपरागित पौधों के लिए प्रयुक्त होती है परपरागण पर पूर्णतया नियन्त्रण होता है ।
4	संतति एवं मानक किस्मों का अलग - अलग तुलनात्मक परीक्षण नहीं किया जाता।	संतति एवं मानक किस्मों का तुलनात्मक परीक्षण किया जाता है ।
5	इससे प्राप्त किस्मों के लक्षण अधिक समय के लिए टिकाऊ नहीं होते ।	प्राप्त किस्मों के लक्षण अधिक समय तक टिकाऊ होते हैं ।
6	ये किस्में परपरागित होने के कारण बदलते हुये वातावरण में जल्दी ही अनुकूलित हो जाती है ।	प्राप्त किस्में बदलते हुये वातावरण के अनुकूल नहीं हो पाती।
7	इनसे प्राप्त पौधों के लक्षणों में समानता नहीं होती ।	प्राप्त किस्मों में लक्षणों में एकरूपता तथा समानता होती है ।

13.3.3 संकरण (Hybridization)

चयन विधियों से प्राप्त उत्तम गुण वाले पौधों में भी कई बार अवांछनीय गुण अप्रभावी जीनों के रूप में छिपे रहते हैं तथा समयुग्मजी अवस्था में अभिव्यक्त हो जाते हैं । ऐसे स्थिति में इन पौधों में सुधार के लिए कुछ और प्रक्रियाएँ अपनाई जाती है जैसे संकरण । संकरण द्वारा संतति पीढ़ी में विविधताएँ उत्पन्न होती है । ये विभिन्नताएँ किसी नये जीन के कारण नहीं होती अपितु जनक पीढ़ी के दोनों सहभागियों में पहले से उपस्थित जीवन के पुर्नसंयोजनों में नये जोड़े बनने से उत्पन्न होती है । "एक ही पादप प्रजाति के दो भिन्न जनक पौधों के मध्य क्रॉस या निषेचन द्वारा संतति पीढ़ी में नई पादप किस्म तैयार करने की प्रक्रिया को पादप संकरण कहा जाता है ।

उदाहरणार्थ : एक पौधे में रोग प्रतिरोधकता (disease resistance) तथा दूसरे में अधिक उत्पादन क्षमता (hight yielding capacity) हो तो इन दोनों जनकों से प्राप्त संतति पीढ़ी में संकर पौधों में दोनों जनकों के गुण होंगे अर्थात् संतति पीढ़ी में रोग प्रतिरोधकता तथा अधिक उत्पादन क्षमता दोनों वांछित गुण होंगे ।

13.3.3.1 संकरण के उद्देश्य

(1) इस विधि द्वारा ऐसी किस्म (variety) को बनाना है जिसमें वांछित गुणों की उपस्थिति हो जैसे रोग,व सूखा प्रतिरोधकता, अनुकूलनशीलता, अच्छी गुणवत्ता तथा अधिक उत्पादन ।

(2) संकर ओज (Hybrid vigour) की संतति पीढ़ी में उत्पन्न करना ।

(3) आनुवंशिक पुर्नयोजन (Genetic recombination) द्वारा गुणों में विभिन्नताएँ पैदा करना ।

13.3.3.2 संकरण के प्रकार

संकरण निम्न प्रकार का हो सकता है ।

(A) **अन्तराकिस्मीय संकरण** (Intra varietal hybridization) एक ही किस्म के दो पौधों के बीच संकरण अन्तराकिस्मीय संकरण कहलाता है । दोनों जनक पौधे एक ही किस्म के होने के बावजूद आनुवांशिक रूप से भिन्न होते हैं ।

(B) **अन्तरकिस्मीय** (Inter - varietal hybridization) एक ही प्रजाति वस्तु दो अलग - अलग किस्मों के मध्य संकरण अन्तरकिस्मीय संकरण कहलाता है । महत्वपूर्ण कृष्य पौधों (cultivated plants) बहुत सी किस्में इस विधि द्वारा ही विकसित की जाती है । इसे अन्तरजातीय संकरण (Intraspecific hybridization) भी कहते हैं ।

(C) **अन्तर्जातीय या अन्तरावंशीय संकरण** (Interspecific or Intragenic Hybridization): जब एक ही वंश की दो जातियों के मध्य संकरण करवाया जाता है तो उसे अन्तर जातीय या अन्तरावंशीय संकरण कहते हैं । इसमें महत्वपूर्ण लक्षणों के अभिव्यक्त करने वाले जीन एक प्रजाति से दूसरी प्रजाति के जनक में स्थानान्तरित हो जाते हैं इस प्रकार संतति ओज युक्त होती है । उदाहरणतः तम्बाकू, सरसों, कपास तथा गेहूँ में ।

(D) **अन्तर्वंशीय संकरण** (Inter-generic hybridization): दो भिन्न वंशों के पौधों के मध्य क्रॉस करवा कर नई किस्म तैयार की जाती है । यह एक दुर्लभ प्रक्रिया है । उदाहरण के तौर पर रेफोनोब्रेसिका (रेफेनस x ब्रेसिका)

13.3.3.3 संकरण की क्रियाविधि (Procedure of Hybridization)

संकरण से पूर्व पादप प्रजनन वैज्ञानिक को निम्न तथ्यों का ज्ञान होना चाहिये ।

(1) जनक पौधा एकलिंगी (Unisexual) या उभयलिंगी (Disexual)

(2) मादा व नर जनक पौधों की पूर्ण जानकारी

(3) पुष्प में स्वपरागण होता है या परपरागण

(4) पुष्प में परागकोष के परिपक्व तथा स्फुटित होने की अवस्था क्या है ।

सुविधा की दृष्टि से संकरण प्रक्रिया को निम्न चरणों में बाँटा गया है :

(A) **जनक पौधों का चयन** (Selection of Parent Plant) : जनकों का चयन किसी भी फसल में नई किस्म के वांछित गुणों के आधार पर किया जाता है । नर व मादा जनक पौधों का चयन स्थानीय पादप आबादी (local plant population) से किया जाता है, क्योंकि ये जनक पौधे पहले से ही उस वातावरण में अनुकूलित हो चुके हैं । साथ ही इन जनकों को चुनाव के बाद वांछित गुणों के लिए शुद्ध या समयुग्मजी बनाया जाता है । इसके लिए इन पौधों को अलग-अलग स्थानों पर उगा कर इनमें बार -बार स्वपरागण करवाया जाता है एवं समयुग्मजता प्राप्त की जाती है । जनक पौधों के पुष्पन एवं उनके परिपक्वन के समय का भी ध्यान रखा जाता है ।

(B) **विपुंसन**(Emasculation) : स्वनिषेचन को बाधित करने के लिए मादा जनक पौधों के पुष्पों से परागकोष या पुंकेसरों को हटाया जाता है । इस प्रकार इस प्रक्रिया को विपुंसन कहते हैं । इसमें पुष्प में केवल मादा जनन संरचनाएँ रह जाती है स्वनिषेचन की सम्भावना खत्म हो जाती है । पुंकेसरों को हटाने का कार्य उनके स्फुटन (dehiscence) से पहले किया जाता है । अत: विपुंसन पुष्प खिलने से पहले ही छोटी कलिका में कर लेना चाहिये ।

विपुसंन निम्न विधियों द्वारा किया जा सकता है ।

(1) **चिमटी या कैंची द्वारा हस्तविपुंसन** (Hand emasculation) : बड़े पुष्प वाले पौधों के लिए यह प्रक्रिया प्रयुक्त होती है । कलिकावस्था में ही पुंकेसरों को कैंची से या चिमटी से तोड़ कर हटा दिया जाता है । विपुंसन के समय पुष्पों में परागकण परिपक्व नहीं हो और न ही वर्तिकाग्र ग्राही हो ।

इसके लिए पुष्प कलिका को पहले निर्जमित चिमटी (sterilized forceps) द्वारा खोला जाता है । धीरे - धीरे चिमटी से दलपत्रों में थोड़ी जगह बनाते हुये पुंकेसरों को तोड़ा जाता है । इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि पुष्प के अन्य भागों (बाह्यदलपुंज व दलपुंज जायांग) को क्षति न पहुँचे । इस विधि को यांत्रिक विधि (mechanical method) भी कहते हैं ।

(2) **गर्म जल, ठण्डे जल या एल्कोहल उपचार द्वारा विपुंसन** (Emasculation by Hot Water, Cold Water and Alcohol Treatment) : एक बीजपत्री पौधों व अन्य पौघे

जिनमें पुष्प बहुत छोटे आकार के व द्विलिंगी होते हैं (चावल, ज्वार, बाजरा) उनमें विपुंसन के लिए पुष्प गुच्छकों को गर्म जल (40-45° C) में 1 से 10 मिनट तक डुबोया जाता है जिससे परागकोष मृत हो जाते हैं व अन्य संरचनाएँ अप्रभावित रहती है ।

इसी प्रकार ठण्डे जल में 0-6°C तक या 60% एल्कोहल में भी 10 सैकण्ड तक डुबोकर रखने से परागकोष मर जाते हैं परन्तु इसमें समयावधि बढ़ाने से पुष्प के अन्य भागों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तथा ये मर भी सकते हैं ।

ठण्डे जल का प्रयोग, गर्म जल की अपेक्षा कम प्रभावी होता है और ठण्डे जल में स्वपरागण की संभावना अधिक रहती है ।

(3) **नरबंध्यता एवं स्वअनिषेचता** (Male Sterility and Self Incompatibility) : कुछ पौधों में जैसे चावल, गेहूँ ज्वार व तम्बाकू भी आधुनिक किस्मों में नर बंध्यता या आत्मनिषेचता (male sterility and incompatibility) होने के कारण विपुंसन की आवश्यकता नहीं होती । इनके पुष्पों में पुंकेसर होते हैं परन्तु इनमें परागकण नहीं बनते । इसके अतिरिक्त नर बंध्यता को कृत्रिम रूप से 2, 4 D,NAA (2, 4 D naphthalene acetic acid), FW 450 तथा MA (malic hydroxide) जैसे रसायनों द्वारा अनखिली पुष्प कलियों (unopened flower buds) पर छिड़काव करके भी उत्पन्न किया जा सकता है ।

(4) **सक्शन दबाव द्वारा विपुंसन** (Emasculation Through Suction Pressure) : इस यांत्रिक विधि में पुष्प के परागकोष सक्शन दबाव द्वारा निकाल दिये जाते हैं । यह दबाव एक उपकरण निर्वात विपुसंक (vacuum emasculator) द्वारा उत्पन्न किया जाता है ।

विपुंसन क्रिया को संचालित करने के लिए कुछ सावधानियाँ का ध्यान रखना आवश्यक है:

(1) उपयुक्त आकार की अनखिली पुष्प कलियों को ही चुनना चाहिये क्योंकि परिपक्व पुष्प कलिकाओं में स्वपरागण की सम्भावना अधिक रहती है ।

(2) विपुंसन के बाद अन्य सभी पुष्प कलिकाओं (विपुंसिन कलिका को छोड़ कर) व फलों को हटा देना चाहिये ।

(3) पुंकेसरो को फिलामैन्ट के साथ गिन कर तोड़ना चाहिये ।

(4) विपुंसन का कार्य हमेशा सांयकाल में करना चाहिये जबकि जायांग का वर्तिकाग्र ग्राही (receptive) नहीं होता तथा पुंकेसर भी स्फुटनशील नहीं होते ।

(5) विपुंसन की पुष्प कलिका का चुनाव सदैव पर्याप्त संख्या में करना चाहिये ।

(6) विपुंसन के पश्चात् कलिका को हैंड लैन्स द्वारा देखकर इस बात की जाँच कर लेनी चाहिये कि इस पर कोई परागकण तो उपस्थित नहीं है ।

(C.) **विपुंसित पुष्प या पुष्पक्रम पर थैली लगाना, टैगिंग या लेबल लगाना** (Bagging,Tagging and Ladelling) : विपुंसित पुष्प कलिका को या पुष्पक्रम को शीघ्र ही बटरपेपर, पॉलीथीन प्लास्टिक या सेलोफेन की उपयुक्त आकृति व आकार की थैली से ढ़क दिया जाता है । इस प्रक्रिया को थैलीकरण कहते हैं । यहाँ नर व मादा दोनों प्रकार के पुष्पों को थैली से ढ़कना चाहिये ताकि नर पुष्पों का इसके परागकणों द्वारा संदूषण नहीं हो तथा थैली में ढ़के होने के कारण मादा पुष्पों का परागण अवांछित परागकण से नहीं हो पाये ।

थैलीकरण के बाद विपुंसित कलिका पर एक टैग या लेबल भी लगाया जाता है इस टैग या लेबलिंग कार्ड को थैली के साथ बाँध कर इस पर कुछ महत्वपूर्ण सूचनाएँ लिखी जाती है । जैसे क्रमसंख्या, विपुंसन तिथि, हस्त परागण तिथि, नर व मादा जनक का विवरण, पौधे का नाम, प्रजनन विज्ञानी का नाम आदि ।

(D.) पुष्पों के परागकणों का संग्रहण एवं संचयन (Collection and Storage of Pollen Grains) : नर पौधे से परिपक्व परागकणों (mature pollen grains) को ढ़के हुये पुष्पों के पुंकेसरो से पैट्रीप्लेट या डिश में संग्रहित किया जाता है ।

(E.) **परागण** (Pollination) : विपुंसित पुष्पों / पुष्पक्रमों की थैली को खोला जाता है व परागकणों को ब्रश की सहायता से ग्राही वर्तिकाग्र (receptive stigma) पर लगा दिया जाता है । इस प्रकार के परागण को हस्त या कृत्रिम परपरागन (hand / artificial cross pollination) कहते हैं । यह कार्य सुबह 9-12 बजे तक किया जाता है । इस समय पुष्पों के खिलने का समय होता है तथा वर्तिकाग्र भी ग्राही होती है । हालाँकि प्रत्येक फसल में यह समय अलग-अलग हो सकता है ।परागण कराने के बाद इन मादा पुष्पों या पुष्पक्रमों को वापस थैली से ढ़क दिया जाता है ।

(F.)संकर बीजों को एकत्रित कर F_1 पीढ़ी उगाना (Collection of Hybrid Seeds and Growing F_1 Generation) : मादा जनक में निषेचन के पश्चात् बीजों के परिपक्व होने पर बीजों को अलग - अलग लिफाफों में रखा जाता है । इन बीजों को अगले वर्ष उगाकर F_1 पीढ़ी तैयार की जाती है । F_1 पीढ़ी से प्राप्त पौधे आनुवांशिक रूप से समान होते हैं आकारिकी या बाह्य लक्षणों में भी समान होते हैं । इनमें संकर ओज स्पष्ट दिखाई देता है ।

(G.) पादप किस्म का किसानों में वितरण : इस प्रक्रिया में नई पादप किस्म का चयन, परीक्षण व नामकरण कर किसानों के उपयोग हेतु मुक्त किया जाता है ।

बोध प्रश्न - 2

1. पादप के एक किस्म का दूसरे किस्म से क्रॉस कराने को क्या कहते हैं?

……

……

2. पादप प्रजनन हेतु अच्छे गुण वाले पौधों से बीजों को अलग करते हुये इकट्ठा करने की क्रिया को क्या कहते हैं ।

……

……

13.4 सारांश (Summary)

1. पादप प्रजनन द्वारा मानव उपयोगी व आर्थिक महत्व के पौधों के उत्पादन में वृद्धि के साथ नई किस्मों को विकसित किया जाता है ।

2. पादप प्रजनन की अनेक विधियाँ है जैसे पादप पुरुस्थापन, दशानुकूलन, पादप चयन तथा संकरण ।

3. विभिन्न विधियों को अपनाकर इच्छित या वांछित गुणों युक्त उन्नत किस्म तैयार होने पर इनका नामकरण कर उनके बीजों को कृषकों के लिए मुक्त किया जाता है ।

13.5 शब्दावली (Glossary)

पुरुस्थापन (Introduction) : कृष्य पौधों का अपने पूर्वजीय स्थान से बिल्कुल नये वातावरणीय आवास में स्थानान्तरण ।

शुद्ध वंश क्रम (Pure line) : एक स्वपरागित पौधे के आनुवांशिक रूप से समान संतति ।

क्लोनीय चयन (Clonal selection) : कायिक जनन वाले पौधों में नई किस्म तैयार करना ।

संकरण (Hybridization) : पादप की किसी एक प्रजाति या किस्म का दूसरी प्रजाति या किस्म से क्रॉस कराना या विभिन्न लक्षणों वाले पादपों में क्रॉस कराना ।

13.6 संदर्भ ग्रन्थ

(1) पी. सी. त्रिवेदी, निरंजन शर्मा, इन्दुरानी शर्मा कोशिका विज्ञान, आनुवांशिकी एव पादप प्रजनन, रमेश बुक डिपो

(2) रवीन्द्र कुमार रघुवंशी, तनुजा वैध पादप प्रजनन, आनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन, कॉलेज बुक हाउस

13.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोधप्रश्न - 1

1. पादप पुरुस्थापन
2. National Board of Plant and Genetic Resources.

बोधप्रश्न - 2

1. पादप संकरण 2. पादपचयन

13.8 अभ्यासार्थ प्रश्न (Practice Question)

(1) पादप चयन की विभिन्न विधियों का संक्षिप्त विवरण लिखिये ।

(2) संहति चयन शुद्ध वंश क्रम चयन से किस प्रकार निम्न है विवेचना कीजिये ।

(3) संकरण की सामान्य विधि का वर्णन कीजिये ।

इकाई 14 : संकर ओज तथा अन्तःप्रजनन अवनमन बहुगुणिता एवं उत्परिवर्तनों का पादप प्रजनन में योगदान,भारत एवं विश्व के प्रमुख पादप प्रजनन वैज्ञानिक एवं योगदान, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय कृषि अनुसंधानकेन्द्र (Hybrid Vigour, and Inbreeding Depression, Importance of Polyploidy and Mutation in Plant Breeding, Plant breeding Scientists Of India and Abroad and their contribution, Major National and International Plant Breeding Centers)

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

1.4.1 प्रस्तावना

14.2 संकर ओज एवं अन्तःप्रजनन अवनमन

- 14.2.1 अन्त: प्रजनन के दुष्प्रभाव (Adverse effect of Inbreeding)
- 14.2.2 संकर ओज एवं हेटरोसिस (Hybrid Vigour and Heterosis)
  - 14.2.2.1 हेटरोसिस के प्रकार (Types of Heterosis)
  - 14.2.2.2 संकर ओज या घनात्मक हेटरोसिस की अभिव्यक्ति (मनीफेस्टटीओन ऑफ Hybrid Vigour or Positive Heterosis)
  - 14.2.2.3 अन्त: प्रजनन एवं संकर ओज (Inbreeding and Hybrid Vigour)
  - 14.2.2.4 संकर ओज के व्यवहारिक अनुप्रयोग एव बाधाएँ (Practical Applications and Limitations of Hybrid Vigour)

14.3 पादप प्रजनन में बहुगुणिता का महत्व (Importance of Polyploidy in Plant Breeding)

14.4 पादप प्रजनन में उत्परिवर्तन का महत्व (Importance of Mutation in Plant Breeding)

14.5 पादप प्रजनन वैज्ञानिक एवं उनका योगदान
(Contribution of Plant Breeding Scientists)
14.6 राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान केन्द्र
(National and International Plant Breeding Centres)
14.7 सारांश (Summary)
14.8 शब्दावली (Glossary)
14.9 संदर्भ ग्रन्थ
14.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
14.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

14.0 उद्देश्य

1. संकर ओज एव अन्तः प्रजनन का विस्तृत अध्ययन । संकर ओज या हेटरोसिस क्या है? संकर पौधों में यह किस प्रकार उत्पन्न होता है, इसकी विशेषताएँ, संकर ओज प्रकार एवं उपलब्धियाँ तथा बाधाएँ क्या है?
2. फसल पौधों में अन्तः प्रजनन अवनमन का वर्णन
3. फसलों की उन्नत किस्में बनाने में बहुगुणिता एवं उत्परिवर्तन किस प्रकार लाभदायक होता है ।
4. पादप प्रजनन के प्रमुख वैज्ञानिकों का कृषि विज्ञान में क्या योगदान रहा है एवं हमारे देश और विदेशों में कौन -कौन से कृषि अनुसंधान केन्द्र है, के बारे में अध्ययन करेंगे ।

14.1 प्रस्तावना

कृष्य फसलों के सुधार हेतु प्राचीन काल से ही पौधों में संकरण प्रणाली का प्रयोग होता रहा है । संकरण द्वारा विभिन्न फसलों कि उत्तम किस्में कृषकों को उपलब्ध कराई जाती है । इन संकर पादपों में कई उन्नत गुण होते हैं । संकर पौधों में अपने जनकों से उत्तम गुण होना संकर ओज कहलाता है । वैज्ञानिकों ने संकर ओज का विस्तृत अध्ययन कर ओज (तेजस्वी) होने की वजह, इसके प्रकार तथा लाभ आदि का अध्ययन किया है । कुछ फसल पौधों में अन्तः प्रजनन होता है तथा लगातार अन्तः प्रजनन की वजह से संकर ओज एक जनन क्षमता (fertility) में कुछ वर्षों में कमी आ जाती है । इसे अन्तः प्रजनन अवनमन (inbreeding depression) कहते हैं । अन्त : प्रजनन अवनमन का पौधों पर कई दुष्प्रभाव पड़ते हैं । फसलों की उन्नत किस्में विकसित करने में कई वैज्ञानिकों का योगदान रहा है । डॉ. नार्मन बोरलाग, डॉ. एम. स्वामीनाथन, डॉ. बी. पी. पॉल आदि मुख्य है । हमारे देश एव विदेशों में भी कृषि को सर्वोपरि माना दिया जाता है । जिसके फलस्वरूप कई राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय अनुसंधान केन्द्र की स्थापन की गई है । यहाँ निरन्तर शोध कार्यक्रम चलते रहते हैं ।

14.2 संकर ओज तथा अन्त: प्रजनन अवनमन(Hybrid Viogur and Inbreeding Depression)

अति प्राचीन काल से ही मनुष्य आर्थिक महत्व के पौधों में संकरण करता रहा है ।कालरयूटर (Kolreuter 1763) स्प्रैन्गल (Sprengel, 1793) एवं डारविन (Drawin 1876) के द्वारा पौधों में पर - परागण क्रिया से होने वाले फायदों का आने वाली पीढ़ियों में पर्यवेक्षण करने पर यह पाया कि पौधों को अपना अस्तित्व बनाये रखने के संकरण की आवश्यकता में होती है, जो प्रकृति में भी होती रहती हैं । अन्त: प्रजनन (Inbreeding) वाले एवं संकर ओज (Hybrid vigour) के निम्न महत्वपूर्ण तथ्य हैं :

(i) अन्त: प्रजनन के कारण पौधों की जीवन-क्षमता या ओज (Vigour) में कमी आती है, इस प्रक्रिया को अन्त: प्रजनन अवनमन (Inbreeding Depression) कहा जाता है ।

(ii) आनुवंशिक रूप से भिन्न पौधों में संकरण के पश्चात् आगे की पीढ़ियों के पौधे अधिक जीवनक्षमता वाले या ओजयुक्त (Robust or Vigour) होते हैं । संकरण के फलस्वरूप संतति पीढ़ी में ओज (Vigour) का होना संकर ओज (Vigour) कहलाता है।

अत: "पौधों में अन्त: प्रजनन (Inbreeding) के परिणामस्वरूप संकर ओज (Hybrid Vigour) एव जनन क्षमता (Fertility) में कमी का होना अन्त: प्रजनन अवनमन (Inbreeding Depression) कहलाता है " ।

14.2.1 अन्त: प्रजनन के दुष्प्रभाव (Adverse Effects of Inbreeding):

(i) **जनन क्षमता का ह्रास** (Loss of Fertility) : अन्त: प्रजनन के द्वारा पादपों की जनन क्षमता में क्रमिक ह्रास (Gradual loss) देखा जा सकता है । कई अन्त: प्रजात वंशक्रमों (Inbred lines) में जनन क्षमता इतनी कम हो जाती है, कि इन पौधों में प्रजनन नहीं होता कुछ फसलों में जनन - क्षमता बनी रहती है एव इनका उपयोग विभिन्न पादप प्रजनन प्रयोगों में किया जाता हैं |

(ii) **सजीवों में घातक जीनों का प्रकटीकरण** (Appearence of Lethal Genes in Organisms) : अनेक पौधों एवं प्राणियों में अति हानिकारक प्रभाव वाले जीन्स पाये जाते हैं । इन्हें घातक जीन्स (Lethal Genes) कहते हैं । ये घातक जीन अप्रभावी होते हैं, और विषमयुग्मजी अवस्था में पौधों या प्राणियों पर दुष्प्रभाव उत्पन्न करने में असमर्थ होते हैं । ये घातक जीन केवल समयुग्मजी (Homozygous) अवस्था में ही अभिव्यक्त होते हैं तथा घातक प्रभाव प्रदर्शित करते हैं ।

जनक पौधों में घातक जीन अप्रभावी प्रारूप (Recessive form) में या विषमयुग्मजी (Heterozygous) अवस्था में होती है । लेकिन अन्त: प्रजनन (Inbreeding) की वजह से संतति पीढ़ी में ये जीन्स के समयुग्मजी अवस्था में आ सकते हैं तथा समयुग्मजी अवस्था में ये जीन्स अपने प्रभावों को अभिव्यक्त करते हैं तथा अनेक घातक लक्षण प्रदर्शित होते हैं । फलस्वरूप पौधों एव प्राणियों में कई प्रकार की बीमारियाँ हो सकती हैं और अन्त में जीवों की

मृत्यु हो जाती है । उदाहरणार्थ घातक जीन्स के कारण नवांकुर पौधों में जड़ें विकसित नहीं हो पाती (Rootless seedlings) या पौधों की पत्तियों में क्लोरोफिल बिल्कुल नहीं बनता, अथवा कम मात्रा में बनता है, पौधों में पुष्प विरुपित या अव्यवस्थित (Deform) हो जाते हैं आदि । इन्हीं कारणों से पौधों की असमय मृत्यु हो जाती है ।

(iii) **पैदावार या उत्पादन में कमी** (Reduction in Crop Yield) : अन्त: प्रजनन अवनमन संकर ओज तथा के कारण प्राय: कृष्य पौधों के फसल उत्पादन में उल्लेखनीय कमी आती है । अनेक पर-परागित फसलों, जैसे प्याज, गाजर एव मक्का आदि में स्वपरागण की वजह से यह दुष्प्रभाव स्पष्टतया परिलक्षित होता है ।

(iv) **ओज या तेजस्विता का ह्रास** (Reduction in Vigour) : अन्त: प्रजनन या स्वपरागण के द्वारा इन वंशक्रमों (Inbred lines) के ओज में कमी (Reduction) स्पषटतया दृष्टिगोचर होती है । परिणामस्वरूप पौधे दुर्बल एवं छोटे रह जाते हैं । पौधों की पत्तियों, पुष्प एव फलों पर भी दुष्प्रभाव पड़ता है ।

14.2.2 संकर ओज एवं हेटेरोसिस (Hybrid Vigour and Heterosis)

भिन्न लक्षणों वाले पादपों के क्रॉस से प्राप्त संकर (Hybrid) कार्यिकी (Physiologically) एवं बाह्य लक्षणों में (Morphologically) जनकों से बेहतर होती है । संकर पौधे या जीव आकृति में बड़े अधिक रोग-प्रतिरोधी, जीवनक्षम एवं प्रबल जनन क्षमता से युक्त होते हैं । अत: "संकर पादपों की जनक पीढ़ी से श्रेष्ठता या उत्तम गुणवत्ता की अभिव्यक्ति को संकर ओज (Hybrid vigour) कहते हैं" । संकर ओज (Hybrid vigour) के लिए अन्य शब्द हेटेरोसिस (Heterosis) का बहुधा उपयोग किया जाता है । लेकिन दोनों शब्द एक-दूसरे का पर्यायवाची (Synonym) नहीं हैं । हेले(whaley 1944) के अनुसार "संकर ओज (Hybrid vigour) केवल हेटेरोसिस (Heterosis) की आभिव्यक्ति (Manifestation or Expression) कही जा सकती है " । डॉ. जी. एच. शल(G.H.Shull 1914) ने सर्वप्रथम हेटेरोसिस शब्द को प्रतिपादन किया । उनके अनुसार "संकर पौधों में ओज (Vigour) की वृद्धि को हेटेरोसिस कहते हैं " । हेटेरोसिस (Heterosis) का अर्थ है एक भिन्न अवस्था या जनक पीढ़ी से अलग हटकर लक्षणों को धारण करने की विशेषता । हेटेरोसिस (Heterosis) शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्दों क्रमश: Hetero = different (भिन्न) एवं osis = condition (अवस्था) से मिलकर बना है ।

पावेराई (Poweri 1944,1945) के अनुसार संकर पौधों में अच्छे या निम्न दोनों गुण हो सकते हैं । अर्थात् हेटेरोसिस दो प्रकार की होती है लाभदायक या धनात्मक (Positive) एव हानिकारक या ऋणात्मक (Negative Heterosis) । इनमें संकर पौधे क्रमश: ओजपूर्ण या दुर्बल होते हैं ।परन्तु इससे पूर्व शल (Shull 1909) ने यह प्रमाणित किया कि जब मक्का की दो किस्मों (Varieties) का क्रॉस या संकरण करवाया जाता है तो संतति पीढ़ी (Progeny) के पौधे उत्तम गुणवत्ता (Quality) लक्षणों वाले एव ओजयुक्त पौधे प्राप्त होते हैं ।

संकर ओज (Hybrid vigour) को अन्त: प्रजनन अवनमन के प्रभाव का विलोम लक्षणी (reverse) भी माना जा सकता है । यहीं नहीं, संकर ओज (Hybrid) में संतति पीढ़ी की जनक पौधों पर श्रेष्ठता का आकलन (Superiority over parents) किया जाता है, जबकि हेटेरोसिस में श्रेष्ठता एवं दुर्बलता (Inferiority) दोनों का ही विश्लेषण किया जाता है ।

14.2.2.1 हेटेरोसिस के प्रकार (Types of Heterosis)

पौधों की अनुकूलन क्षमता (Adaptability), जनन क्षमता (Fertility) एव प्रकृति के आधार पर हेटेरोसिस निम्न प्रकार की होती है :

I. **सत्य हेटेरोसिस** (Euheterosis) : यह एक प्रकार की आनुवांशिक हेटेरोसिस होती है, जो उत्परिवर्तनों (Mutations) या जीन पुनर्योजन के कारण विकसित हो सकती है, यह भी निम्म दो प्रकार की होती है

(a) उत्परिवर्तन यूहेटेरोसिस (Mutational Euheterosis) यह घातक या अप्रभावी जीन्स के कारण होता है ।

(b) संतुलित यूहेटेरोसिस (Balanced Euheterosis). इसमें जीन्स का संतुलित संयोजन (Combnation) होता है तथा पौधों में वातावरण के प्रति अनुकूलता एवं बेहतर उत्पादन क्षमता दर्शातें हैं । इसका प्रयोग किया जाता है पादप - प्रजनन विज्ञानियों द्वारा सकर पादप किस्मों के विकास में ।

II. **छद्म या कूट हेटेरोसिस** (Pseudo- heterosis): यदि पौधे में आनुवांशिक कारकों के अतिरिक्त अन्य किसी कारण से अस्थायी ओज (vigour) के गुण पाये जायें तो इसे छद्म हेटेरोसिस (Pseudohetosis) कहते हैं । जैसे - अन्तर्प्रजातीय क्रॉस द्वारा उत्पन्न संकर पौधों में प्रचुर कायिक वृद्धि (Luxrient vegetative growth) तो पाई जाती है, परन्तु ऐसे पौधे बन्धय (sterile) होते हैं । हेटेरोसिस की प्रक्रिया स्वपरागित एव परपरागित दोनों प्रकार के कृष्य पौधों में पाई जाती है, लेकिन स्वपरागित पौधों जैसे टमाटर एव मटर आदि में इसका समुचित उपयोग नहीं किया जा सकता है । परन्तु अनेक पर - परागित फसलों जैसे: कपास, मक्का व बाजरा में हेटेरोसिस का सफलतापूर्वक उपयोग कर नई सकर किस्मों (varieties) का विकास किया गया है ।

14.2.2.2 संकर ओज या धनात्मक हेटेरोसिस की अभिव्यक्ति (Manifestation of Hybrid Vigour or Positive Heterosis)

संकर ओज या हेटेरोसिस वाले संकर पौधे साइज, कायिक वृद्धि एवं उत्पादन क्षमता के अतिरिक्त, उत्तम लक्षण दर्शाते हैं । अत: संकर पौधे के बाह्य लक्षणों (Morphology) एवं कार्यिकी गतिविधियाँ (Physiological activities) दोनों गुणों में उत्तम होते हैं । जैसे - फूलगोभी का पुष्पक्रम मटर की फलियाँ एवं पालक तथा पत्तागोभी में पत्तियों की वृद्धि इत्यादि हेटेरोसिस को दर्शाते हैं । हेटेरोसिस प्रतिशत को निम्न रू से दर्शा सकते हैं :

$$\text{संकर ओज (हेटेरोसिस)} = \frac{F_1}{\frac{(P_1 + P_2)}{2}} \times 100$$

F_1 = F_1 संकर पीढ़ी का पौधा

P_1 = प्रथम जनक

P_1 = द्वितीय जनक

उदाहरणार्थ : यदि P_1 व P_2 जनक पौधों की लम्बाई क्रमश : 50 एवं 40 सेमी. है, तथा F_1 संकर पौधे की लम्बाई 70 सेमी. है, तो संकर ओज की लम्बाई ($\frac{70}{45}$ x 100 = 155.5 प्रतिशत होगी।

विभिन्न जीवों में हेटरोसिस का आंकलन तीन स्तरों पर किया जा सकता है -

I. परिमाणात्मक स्तर (Quantitative level): इसके निम्न लक्षण प्रमुख है :

(a) उच्च फसल उत्पादन (High Crop Yield)

(b) दूध का (दुधारू पशुओं में) एवं रेशम (रेशम कीटों में) का उत्पादन क्षमता

(c) जीवों में कोशिका विभाजन की दर बढ़ जाती है, व इनका माप भी बढ़ जाता है ।

(d) पौधों में शाखाओं पत्तियों, पुष्प, फल रख बीजों की संख्या में वृद्धि ।

II. कार्यिकी स्तर (Physiological level

(a) फसलों में रोग प्रतिरोधी एवं कीट प्रतिरोधी क्षमता का विकास, वातावरण के प्रति अधिक अनुकूलनशीलता (Adaptability) का प्रदर्शन, तथा ऐसे पौधों में विषम जलवायु के प्रति सहिष्णु (Tolerance) का होना।

(b) शीघ्र पुष्पन (Early flowering) एवं अधिक उत्पादन (high) ।

(c) बीजों का शीघ्र एव समान अंकुरण नवांकुरो (seedlings) की अधिक वृद्धि दर ।

(d) जनन क्षमता (Fertility) एवं जीवन क्षमता (Viability) में वृद्धि ।

III. **जैविक स्तर** (Biological level): हेटेरोसिस में जैविक क्षमता में पर्याप्त बढ़ोतरी देखी गई है, पौधों का जीवन -चक्र (Life cycle) लम्बा हो जाता है । ऐसे जीन की क्रियाशीलता भी बढ़ सकती है, जैसे खच्चर (Mule) में कार्य क्षमता का बढ़ जाना, या पौधों में सघनता का बढ़ जाना संकर ओज के जैविक स्तर के परिवर्तन के उदाहरण हैं ।

हेटेरोसिस का प्रभाव संकर पौधों में एन्जाइम की क्रियाशीलता तथा टमाटर, आँवला एवं मिर्च में विटामिन -सी की मात्रा एवं अन्य जैव रासायनिक गुणों पर भी पड़ता है ।

14.2.2.3 अंत: प्रजनन अवनमन एवं संकर ओज

(Inbreeding depression and Hybrid vigour)

पौधों में अन्त: प्रजनन अवनमन द्वारा उत्पन्न दुष्प्रभाव को, संकर ओज से दूर कर सकते है । पौधों में प्रजात वंशक्रमों (inbred lines) को आपस में क्रॉस या संकरण करवाने से, यह हानिकारक प्रभाव या अवनमन (Depression) दूर हो जाता है । वांछित लक्षणों में शुद्धता (Purity) बनाये रखने के लिए आंशिक रूप से अन्त: प्रजनन क्रियाओं को दोहराते हैं (Repeat)

लेकिन पुन: बेहतर गुणवत्ता स्थापित करने के लिए संकरण का उपयोग करते हैं । स्वपरागित कृष्य पौधों में अन्त: प्रजनन अवनमन दूर करने के लिए कृत्रिम चयन (Artificial selection) भी करते हैं, जिसमें प्रत्येक पीढ़ी ' सर्वश्रेष्ठ पौधों का चुनाव किया जाता है, एवं दुर्बल तथा अवांछित लक्षणों वाले पौधों को हटा दिया जाता है । प्रकृति भी अपने स्तर पर उत्तम पौधों का चयन करती है और वातावरण में अपने आप कमजोर पौधे नष्ट हो जाते हैं । फलस्वरूप इनकी वंशवृद्धि नहीं हो पाती । इसे प्राकृतिक चयन (Natural selection) कहते हैं । इसके द्वारा अप्रभावी (Recessive) एवं अपूर्ण प्रभावी लक्षणों पौधें की छँटनी हो जाती हैं, अत: इन लक्षणों का अभिगमन अगली पीढ़ी में नहीं होता । परपरागित फसलों में वांछित एव अवांछित लक्षणों के जीन्स विषमयुग्मजी अवस्था में पाये जाते हैं । तथा आने वाली पीढ़ी में जीन्स के लक्षण विभिन्न प्रकार से प्रभावी एवं अप्रभावी रूप में प्रकट होते हैं

संकर ओज एवं अन्त: प्रजनन अवनमन के कारण

(Causes of Hybrid Vigour and Inbreeding depression)

संकर ओज एव अन्त: प्रजनन अवनमन एक दूसरे से सम्बन्धित तथा प्रक्रियाएँ हैं । विभिन्न वैज्ञानिकों ने संकर ओज के लिए कई विचारधाराएँ प्रस्तुत की जिनको (i) आनुवांशिक एवं (ii) कार्यिकी आधारों पर समझा जा सकता है ।

(A) आनुवांशिक आधार

I. **प्रभाविता परिकल्पना** (Dominance hypothesis) इस विचार धारा को सर्वप्रथम डेवनपोर्ट (Davnport 1908)ने प्रस्तुत किया तथा इसका समर्थन एवं विस्तार ब्रूस (Bruce,1910) एव कीबल तथा पेली (Keeble and Pelle) ने किया । इसके अनुसार -

   (a) प्रभावी एव अप्रभावी जीन विकल्पी अलग - अलग बिन्दुओं (Loci) व्यवस्थित रहते हैं ।

   (b) प्रभावी जीन आने वाली पीढ़ी में उत्तम गुणवत्ता उत्पन्न करते हैं, परन्तु अप्रभावी युग्म - विकल्पियों की वजह से हानिकारक प्रभाव डालते हैं ।

   (c) विषमयुग्मजी अवस्था में, प्रभावी युग्मविकल्पी के लाभदायक प्रभाव के कारण हानिकारक प्रभाव छिप (Masked) जाते हैं ।

इस प्रकार F_1 संकर पीढ़ी में अच्छे गुण समाहित या एकत्र होते हैं जिसमें आज (Hybrid vigour) परिलक्षित होता है । यदि जनक पीढ़ी के माता एव पिता में अलग - अलग प्रभावी जीन हों तो ये सभी या इनमें से अधिकांश जीन संकर संतति पीढ़ी में आ जाते हैं । यही कारण है कि संकर संतति पीढ़ी में किसी भी जनक की तुलना में अत्यधिक प्रभावी जीन उपस्थित होते हैं ।

उदाहरणार्थ - किसी पौधों में प्रभावी जीन के कारण लम्बाई में 5 cm एव अप्रभावी जीन के कारण 2 cm की वृद्धि होती है, तो संकर संतति पौधे में निम्नांकित अवस्था प्रदर्शित होगी :

अन्त:प्रजात जनक I			×	अन्त:प्रजात जनक II		
(19cm लम्बा)				(16 cm लम्बा)		
AA bb CC dd EE				aa BB cc DD ee		
प्रभावी जीन	=	A + C + E		प्रभावी जीन	=	B + D = 2 × 5
	=	3 × 4 = 15			=	10 cm
अप्रभावी जीन	=	b + d		अप्रभावी जीन	=	a + c + e
	=	4 cm			=	3 × 2 = 6 cm
कुल लम्बाई	=	15 + 4		कुल लम्बाई	=	16 cm
	=	19 cm				

F_1 संकर पीढ़ी

AaBbCcDdEe

प्रभावी जीन= A+B+C+D+E=5×5=25 cm

(यहाँ अप्रभावी जीन, प्रभावी जीन्स की उपस्थिति के कारण अभिव्यक्त नहीं हो पाते, एव प्रभावी संकर ओज तथा जीनों के एकत्र होने से संकर की लम्बाई अधिक होती है ।)

इस उदाहरण से यह भी स्पष्ट होता है कि संकर पीढ़ी में एक जनक सहभागी में उपस्थित हानिकारक अप्रभावी जीन्स, दूसरे जनक के प्रभावी जीन्स की उपस्थिति में छिप जाते हैं अर्थात् अभिव्यक्त नहीं हो पाते । यह भी देखा गया है कि एक समान जीन प्ररूप (जीनोटाइप) के क्रॉस द्वारा उत्पन्न संकर पौधों में संकर ओज बहुत कम होता है । लेकिन अलग - अलग जीन प्ररूप (जीनोटाइप) के क्रॉस द्वारा उत्पन्न संकर ओज की मात्रा अधिक होती हैं |

प्रभाविता परिकल्पना के प्रमुख दोष :

(1) इसके अनुसार स भी इच्छित प्रभावी जीनों के समयुग्मजी पौधे प्राप्त करना सम्भव हो सकता है । ऐसे पौधों में F_1 पीढ़ी के समान या इससे भी अधिक ओज (Vigour) होना चाहिये लेकिन यह अभी तक देखा नहीं गया है ।

(2) यदि संकर पौधों में ओज की अभिव्यक्ति केवल प्रभावी जीनों की उपस्थिति के कारण है, तो इसके बाद F_2 पीढ़ी में ओज की उपस्थिति स्क्यूड वितरण (Skewed Distribution) के अनुरूप होनी चाहिये, क्योंकि F_2 पीढ़ी में प्रभावी एव अप्रभावी लक्षण -प्ररूपों की अवस्था 3 + 1 n सूत्र के अनुसार होना संभावित है (यहाँ n = जीनों की संख्या) । 4 4

जोन्स (Jones 1917) ने इस अवधारणा का संशोधन किया और इसे प्रभावी वृद्धि कारकों की सहलग्नता (Linkage of dominant growth factors) की अवधारणा कहा । इसके अनुसार गुणसूत्रों पर वृद्धि के लिए उपस्थित अनेक वांछित लक्षणों हेतु उत्तरदायी प्रभावी जीन्स के साथ अनेक हानिकारक अप्रभावी जीन्स की सहलग्न (linked) स्थिति में पाये जाते हैं, जिनका पृथक्करण (Seggregation) संभव नहीं होता । इसी कारण संकरण की प्रकिया में हमेशा संकर ओज प्रदर्शित नहीं होता है ।

II. **अतिप्रभाविता परिकल्पना** (Over- dominance hypothesis) : (शल Shull 1903) एवं (ईस्ट East 1908) शल के अनुसार विषमयुग्मजी जीन प्ररूप (Genotype), समयुग्मजी से

बेहतर होते हैं तथा जैसे - जैसे विषमकुमजता (Heterozygosity) की मात्रा बढ़ती है तो इसके साथ ही संकर ओज की बढ़ोतरी होती है । इसके अनुसार समयुग्मजी जीन प्ररूपों B_1 B_1व B_2B_2 की तुलना में विषमयुग्मजी प्ररूप B_1B_2 बेहतर होते हैं । यहाँ जीन B_1 एवं B_2 अलग - अलग लक्षणों को नियंत्रित करते हैं, इसीलिए अन्त: प्रजातों (Inbreds) की तुलना में विषमयुग्मजी अधिक ओज युक्त होते हैं । ईस्ट (East 1936) ने इस अवधारणा को संशोधित किया और "वृद्धि कारकों की अंतर्विकल्पी श्रृंखला की परिकल्पना" (Interallelic series of growth factors) के नाम से प्रस्तुत किया । इसके अनुसार $A_1A_2A_3$ एवं A_4 यदि बढ़ती हुई अपसारिता (increasing divergence) वाले युग्मविकल्पी हैं तो विषमयुग्मजी प्ररूपों की बेहतर गुणवत्ता में वृद्धि, इसमें भाग ले रहे युग्मविकल्पियों की अपसारिता के साथ ही अग्रसर होती है, जैसे A_1 A2 < A_1 A3 < A_1 A_4...... अर्थात् A_1 A_4 विषमयुग्मजी प्ररूप में सर्वाधिक संकर ओज होगा । संकर ओज की दोनों आनुवांशिक अवधारणाओं (सभाविता एवं अतिप्रभाविता परिकल्पना) में निम्न समानताएँ हैं :(1) अत: प्रजनन द्वारा अत: प्रजनन अवनमन की बढ़ोतरी (2) पर - परागण द्वारा संकर ओज एवं जनन क्षमता में वृद्धि (3) अधिकाधिक आनुवांशिक भिन्नताओं के कारण संकर ओज में वृद्धि ? भिन्नता यह है कि प्रभाविता परिकल्पना के अनुसार विषमयुग्मजी प्ररूप प्रभावी समयुग्मजी प्ररूपों (Dominat Homozygotes) के समान होते हैं, जबकि अतिप्रभाविता परिकल्पना के अनुसार विषमयुग्मजी प्ररूप सदैव ही समयुग्मजी प्ररूपों की तुलना में श्रेष्ठ होते हैं ।

(B) संकर ओज की कार्यिकी अवधारणाएँ
(Physiological concepts of Hybrid Vigour)

(i) **संतुलित उपापचय परिकल्पना** (Balanced metabolism hypothesis): इस परिकल्पना के अनुसार संकर पौधों में ओज की वृद्धि, इनमें वृद्धिकारी हॉर्मोन्स (Growth hormones), विटामिन्स एव एन्जाइम्स की संतुलित मात्रा के कारण है । रॉबिन्स (Robins 1952) ने संकरण प्रयोगों के अन्तर्गत दोनों जनक प्ररूपों के वृद्धिकारी हॉर्मोन्स, एन्जाइम्स एवं विटामिन का विश्लेषण किया तथा यह सिद्ध किया कि संकरण क्रिया में सहभागी जनकों में एक या दो वृद्धिकारी हॉर्मोन कम थे, परन्तु संकरण के पश्चात् संतति पीढ़ी में इनकी मात्रा सामान्य थी । अत: यदि नर जनक में हॉर्मोन A उपस्थित एवं B अनुपस्थित था और मादा जनक में हॉर्मोन B उपस्थित एवं A अनुपस्थित था, तो संकरण के बाद उत्पन्न संतति में AB दोनों ही हॉर्मोन उपस्थित थे । A के लिए जीन नर जनक, एवं B के लिए जीन मादा जनक से संकर संतति में प्राप्त हुआ ।

(ii) **वृहद् प्रारम्भिक पूँजी परिकल्पना** (Greater Intial Capital Hypothesis) : इस परिकल्पना को एश्वी (Asby 1930- 1940) ने प्रस्तुत किया । इस परिकल्पना के अनुसार संकरण के पश्चात् प्राप्त संतति पौधे में प्रारम्भिक भ्रूण की बड़ी साइज के कारण

संकर ओज की मात्रा अधिक होती है । अर्थात् भ्रूण की बढ़ी साइज के प्रारम्भिक लाभ (Greater Intial Capital) के कारण ही संकर ओज की मात्रा संतति पौधों में अधिकाधिक होती है । एश्वी ने मक्का एवं टमाटर के बीजों में बताया कि यदि बीज में भ्रूण की साइज बड़ी होती है तो उनसे उत्पन्न पौधों में संकर ओज ज्यादा होता है । परन्तु अनेक वैज्ञानिक इस विचारधारा से सहमत नहीं थे । ईस्ट (East 1936) के अनुसार कभी -कभी संकर पौधों में बीज की साइज, जनक पौधों में बीज के साइज से छोटी भी होती है ।

(iii) **कोशिकाद्रव्य केन्द्रकीय अन्योन्यक्रिया परिकल्पना** (Cytoplasm Nucleus Interaction Hypothesis) : कई वैज्ञानिकों जैसे लेविस (Lewis),शल (Shull) एवं माइकेलिस (Michaelis) के अनुसार पौधों में संकर ओज (Hybrid vigour) कोशिकाओं के कोशिकाद्रव्य एव केन्द्रकीय क्रियाओं के बीच अन्योन्यक्रिया (Interaction) के कारण होता है । यह ध्यान देने योग्य है कि मादा जनक के कोशिका द्रव्य में प्राय: आर. एन.ए. एवं माइटोकॉन्ड्रिया की मात्रा अधिक होती है तथा ये संरचनाएँ संतति पौधों में मादा जनक से आती है, अत: केन्द्रकीय गुणसूत्री जीन्स एवं कोशिकाद्रव्यी घटकों की परस्पर अभिक्रिया संकर ओज को विकसित करती है । इसका विस्तृत अध्ययन धवन एवं पालीवाल (Dhawan and paliwal) ने मक्का की फसल में संकर ओज के लिए किया है ।

14.2.2.4 संकर ओज की व्यावहारिक अनुप्रयोग एवं बाधाएँ

(Practical Application andLimitations Hybrid Vigour)

(i) **स्वपरागित फसलें संकर ओज में** (Hybrid Vigour in Self Pollinated Crop) : स्वपरागित फसलों में संकर ओज की महत्ता परपरागित फसलों की तुलना में कम होती है, क्योंकि इनमें हस्तविपुंसन एव हस्तपरागण जैसी प्रक्रियाएँ अत्यन्त खर्चीली एव श्रमसाध्य हैं । परन्तु पॉल एव सिक्का के विपुंसन की रासायनिक एवं आनुवांशिक विधियाँ के अनुप्रयोग द्वारा इस समस्या का हल आसान हो गया है ।

(ii) **परपरागित फसलों में संकर ओज** (Hybrid Vigour in Cross pollinated Crops) : संकर ओज का सर्वाधिक अनुप्रयोग पर-परागित फसलों में ही होता है, फिर भी पर-परागण एवं मेण्डलीय पृथक्करण के कारण आने वाली पीढ़ियों में संकर ओज का निष्पादन समान स्तर पर करना कठिन होता है । इसके समाधान के लिए अंत : प्रजात जनक पौधों का निष्पादन करना एवं किसानों द्वारा प्रति वर्ष फसल प्राप्ति के लिए ताजा बीजों की बुवाई की जानी चाहिये ।

(iii) **कायिक प्रवर्धित फसलें में संकर ओज** (Hybrid Vigour in Vegetatively Propagated Crops) : कायिक प्रवर्धित फसलों में विपुंसन एवं संकरण जैसी कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता क्योंकि इन पौधों में इच्छित लक्षणों का समावेश हो जाने के बाद इनका गुणन कायिक जनन द्वारा करते हैं । इनमें अवांछित

लक्षणों का समावेश केवल कायिक उत्परिवर्तन (Somatic Mutation) द्वारा ही हो सकता है ।

संकर ओज की उपलब्धियाँ (Achievements of Hybrid Vigour)

आजकल अनुसं धान केन्द्रों पर अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए पौधों एवं जन्तुओं में बड़े पैमाने पर संकर ओज का उपयोग किया जा रहा है । पौधों में इसका व्यावहारिक अनुप्रयोग बड़ी मात्रा में हो रहा है, कुछ उदाहरण इस प्रकार है :

(A) फसलोंवाले पौधों में उपलब्धियाँ (Achievements in Crops Plants)

(1) बाजरा (Penisetum typhoides) - संकर किस्म नं. 1, HB- 1, MBH- 110, व PHB-01

(2) कपास (Gossypiumhirsutum) - वरलक्ष्मी एवं H-4 किस्म ।

(3) ज्वार (Sorghum vulgare) - CSH-1 व CSH-2

(4) आलू (Solanum tuberosum) - की सभी संकर किस्मे ।

(5) बैंगन (Solanum melongena) - विजय किस्म ।

(6) मिर्च (Capsium annum) - चमत्कार किस्म ।

(7) मक्का *(*Zea mays) - जवाहर गंगा एव विकास किस्में ।

(8) आम (Mangifera indica) - आम्रपाली एव मल्लिका ।

(9) चारा उत्पादक घासों जैसे (Pusa Napier, Giant Grass एवं NB-21)

(B) पशुओं में उपलब्धियाँ (Achievements in Cattle) : गायों की जर्सी, आयरशायर साहीवाल, स्विस - साहीवाल, सिंधी आदि नस्लें रेशम के कीड़े (Sillkwrom). मुर्गियाँ, सूअर, घोड़ों आदि की नस्लों को भी संकर ओज द्वारा सुधार किया गया है ।

बोधप्रश्न - 1

1. अन्त: प्रजनन द्वारा प्रजनन क्षमता में कमी को क्या कहते है?

....
....
....

2. अन्त: प्रजनन के कोई दो दुष्प्रभाव क्या हैं?

....
....
....

3. हेटेरोसिस की परिकल्पना प्रस्तुत करने वाले किन्हीं दो वैज्ञानिकों का नाम लिखिये ।

....
....
....

14.3 पादप प्रजनन में बहुगुणिता का महत्व (Importance of Polyploidy in Plant Breeding)

पादप प्रजनन का अनेक पौधों एवं प्राणियों के विकास में बहुत महत्व रहा है । कृषि क्षेत्र में ऐसे अनेक पौधों की जातियों हैं जो बहुगुणिता के परिणामस्वरूप ही क्किसित हुई है ।

संकरण का जीव विकास में बहुत योगदान रहा है । यदि संकरण दो भिन्न -भिन्न जातियों के क्रॉस के फलस्वरूप बना है, तब यह संकर (hybrid) अपने वंशजों से बिलकुल भिन्न होता है । यह प्राय: बंध (sterile) होता है । इसमें लैंगिक जनन का अभाव होता है । अर्थात् इसमें युग्मक (gametes) बनाने की क्षमता नहीं होती है, क्योंकि इस संकर पीढ़ी के गुणसूत्रों में समजातता (homologous nature) नहीं हऐती । उदाहरणार्थ घोड़े एवं गधे के बीच संकरण (corss) से संकर खच्चर प्राप्त होता है । यह संकर खच्चर लैंगिक प्रजनन में असमक्ष होता है । यह बहुगुणिता के परिणामस्वरूप ही है ।

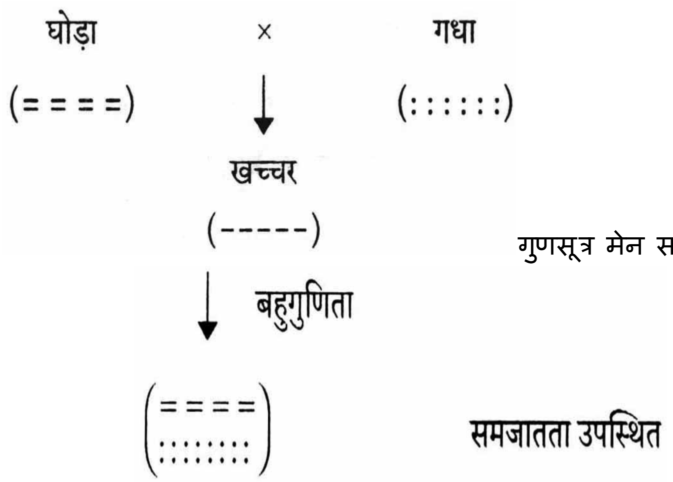

गुणसूत्र मेन समजातता अनुपस्थित

यदि संकर खच्चर में बहुगुणिता आ जाये तो इसमें गुणसूत्र समजात हो जायेंगे एवं खच्चर में लैंगिक जनन की क्षमता उत्पन्न हो जायेगी ।

पौधों में भी बहुगुणिता के अनेक उदाहरण है । इनके गुणसूत्रों के विश्लेषण से इनकी उत्पत्ति का पता चलता है । जैसे-

1. **गेहूँ का विकास** (Evolution of Wheat Triticum Vulgare): ट्रीटिकम वलगेर का विकास निम्न क्रॉस में हुआ है :

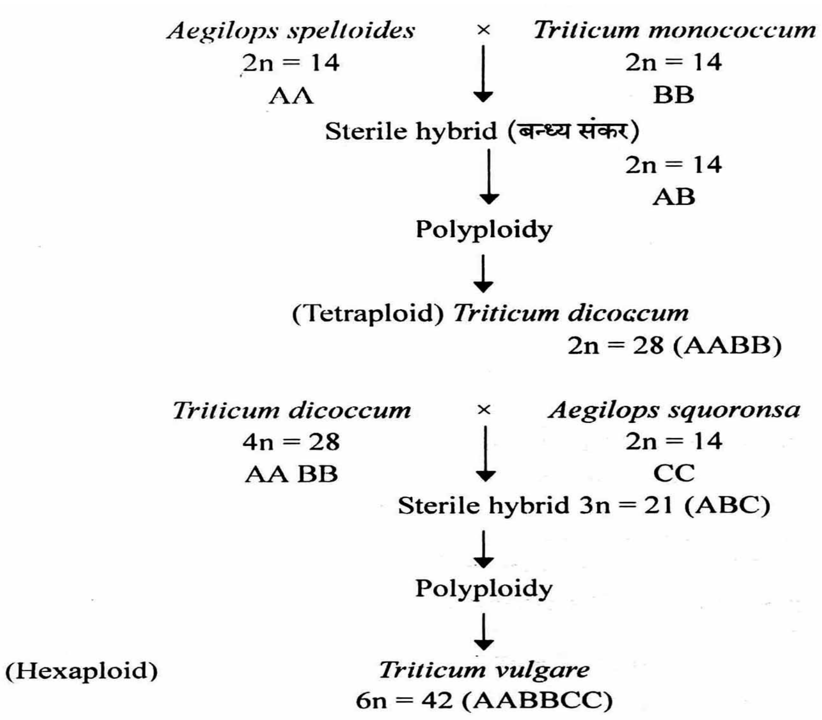

कृषि क्षेत्र में गेहूँ (Triticum vulgare) एक हेक्सप्लायड (अर्थात् षष्ठ शब्द गुणिता) है जिसका विकास ऊपर दिये गये क्रॉस से हुआ है ।

2. **डेल्फीनियम जिप्सोफाइलम** (*Delphinium gypsophilum*) का विकास : इसका विकास निम्न पादपों के क्रॉस से हुआ है :

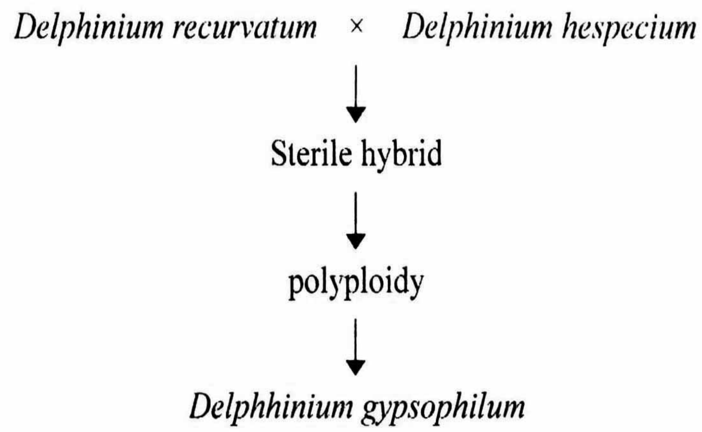

बहुगुणिता द्वारा वैज्ञानिकों ने पौधों की कुछ कृत्रिम नई जाति का भी विकास किया है । जैसे रेफेनो ब्रेसका एव ट्रिटीकेल ।

रेफ्रेनो ब्रेसिका (*Raphano brassica*) का विकास रेफेनस सेटाइवस (Raphanus sativus) एवं ब्रेसिका के क्रॉस से हुआ है ।

ट्रिटीकेल (Triticale) का विकास निम्न क्रॉस में हुआ है

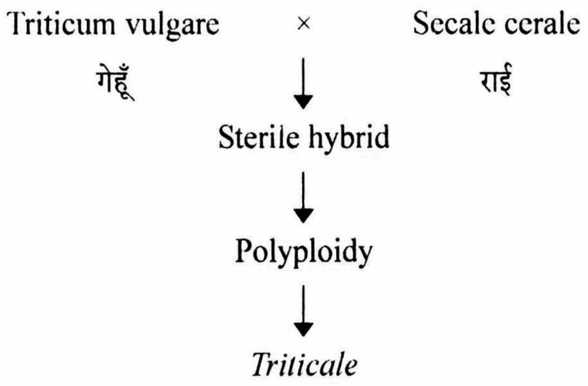

यह दो विभिन्न जातियों के पौधों के बीच क्रॉस से उत्पन्न नया पादप है । इस प्रकार पादप प्रजनन में नई किस्में एवं नई प्रजातियाँ भी विकसित की जाती है ।

14.4 उत्परिवर्तन का पादप प्रजनन में महत्व (Important of Mutation in Plant Breeding)

पौधों में उत्परिवर्तन भौतिक या रासायनिक विधियों द्वारा कराया जाता है । इसके लिए सर्वप्रथम पादप के बीजों को X- ray या रासायनिक पदार्थों जैसे इथाइल मिथेन सल्फेट (EMS) से उपचारित करते हैं । इन बीजों को उगाने पर प्राप्त पौधों के लक्षणों का अध्ययन करते हैं । इसे R_1 पीढ़ी कहते हैं । R_1 पीढ़ी से R_2 पीढ़ी एवं इसी प्रकार R_4R_5 पीढ़ी प्राप्त होती है । इन पीढ़ियों के पादपों में इच्छित लक्षणों वाले पौधों से बीज प्राप्त कर लेते हैं, तथा उन्नत जाति का विकास करते हैं ।

हमारे देश में उत्पीरवर्तन प्रजनन की सुविधायें निम्न स्थानों पर उपलब्ध है :

भारती कृषि अनुसंधान केन्द्र (IARI),New Dehli, बोस रिसर्च इन्स्टीट्यूट, कलकत्ता; भाभा एटोमिक भामा रिसर्च इन्स्टीट्यूट मुम्बई; टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ फन्डामेन्टल रिसर्च, मुम्बई ।

उत्परिवर्तन द्वारा प्रेरित लक्षणों को निम्न फसलों में प्रयुक्त किया गया है गेहूँ जो, चावल, गन्ना, आलू तम्बाकू, कपास, मूंग, जूट, सरसों आदि । गेहूँ में NP 836, सरबती सोनारा उत्परिवर्तनीय (Mutant variety)किस्में हैं ।

अन्य उत्परिवर्तनीय किस्में :

तम्बाकू में	–	क्लोरिनो हामाब्रिड
चावल में	–	P500.26
जौ में	–	पलास
कपास में	–	इन्दौर - 2
जूट में	–	JRO 514,JRO
सरसो में	–	APM
मटर में	–	स्ट्राल (stral)
रेप में	–	रेगिना II

बोध प्रश्न - 2

1. गेहूँ (ट्रिटीकम वल्गेर) में कितनी बहुगुणिता हैं ?

....

....

....

2. उत्परिवर्तित द्वारा प्राप्त किन्हीं दो क़िस्मों का नाम लिखिये|

....

....

....

3. कृत्रिम सीरियल क्या हैं ?

....

....

....

14.5 पादप प्रजनन वैज्ञानिक एवं उनका पादप प्रजनन में योगदान (Contribution of plant Breeding Scientists)

डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन इनका जन्म 7 अगस्त 1925 में तमिलनाडु के कुम्ब्रकोनम गाँव में हुआ । इन्हें हरित क्रान्ति का पितामह कहा गया तथा गेहूँ की हाई मिल्डिंग किस्मों के विकास केलिए दुनिया में जाने गये । ये एम.एस. स्वामीनाथन रिसर्च फाउन्डेशन के जनक एवं चेयरमेन भी है । इनका स्वप्न था कि वे किसी तरह भारत को भुखमरी से आजाद करायें । उन्होंने न केवल हरित क्रान्ति बल्कि सतत विकास, सतत कृषि खाद्दम सम्पूर्णताए वबायोडाइवर्सिटी (biodiversity)को महत्व दिया ।

डॉ. स्वामी नाथन ने मद्रास विश्वविद्यालय एवं कैम्ब्रिज से शिक्षा प्राप्त की । 1947 में IARI ,Delhi आ गये तथा आनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन में कार्य किया । इन्होंने पादप प्रजनन में कार्य किया । इन्होंने कई फसलों जैसे आलू ,गेहूँ चावल, जूट आदि पर कार्य किया । 1970 - 80 तक ICAR डायरेक्टर जनरल रहे । 1982 - 88 में इन्टरनेशनल राइल रिसर्च इंस्टीट्यूट फिलिपाइन्स के डायरेक्टर बहुगुणिता एव उत्परिवर्तनों का पादप प्रजनन में जनरल रहे । बाद में अन्य कई पदों पर कार्य किया ।

इन्होंने. नार्मन बारलाग जिन्हें नोबल प्राइज मिला है के कार्य किया गेहूँ की मेक्सीकन डवार्फ किस्म का विकास किया । इसी किस्म की वजह से भारत तथा अन्य देशों में अन्न की उपज राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय कई गुना बढ़ गई । 1987 में डॉ. स्वामीनाथन को वर्ल्ड फूड प्राइज मिला|

14.6 राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान केन्द्र

1. भारतीय कृषि अनुसधान केन्द्र (Indian Agriculture Research Institute ,Delhi)
2. पोटेटो रिसर्च इन्स्टीट्यूट, कूपरी शिमला (H.P)
3. सुगर केन रिसर्च इन्स्टीट्यूट, कोइबटूर (T.N)
4. सेन्ट्रल मैंगो रिसर्च इन्स्टीट्यूट, लखनऊ (उ प्र.)
5. सेन्ट्रल कोकोनट रिसर्च स्टेशन, केसर गोड (केरला)
6. सेन्ट्रल वेजिटेबल ब्रीडी स्टेशन, कुलु (H.P)
7. फोरेस्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट (FRI) देहरादून (उत्तरांचल)
8. सेंन्ट्रल राइस रिसर्च इन्स्टीट्यूट, कटक (उडीसा)
9. इन्डियन काउन्सिल ऑफ एग्रीकल्वर रिसर्च, (दिल्ली)
10. सेन्ट्रल एरिड जोन रिसर्च इस्यीदयूट, जोधपुर (राज)
11. टी (चाय) रिसर्च इन्स्टीट्यूट, कोइम्बटूर (T.N)
12. सेडल टयूबर क्रॉप रिसर्च इन्स्टीट्यूट, त्रिवेन्द्रम, केरला

अन्तर्राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान केन्द्र

1. इन्टरनेशनल क्रॉंप रिसर्च इन्स्टीट्यूट फॉर सेमी एरिड ट्रापिक्स (ICRISAT) हैदराबाद (आ.प्र.)
2. इन्टरनेशनल राइस रिसर्च इन्स्टीट्यूट फिलिपाइन्स
3. इनरनेशनल रबर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, मलेशिया
4. इन्टरनेशनल सोथबीन प्रोग्राम (U.S.A)
5. फूड एन्ड एग्रीकल्वर आर्गेनाइजेशन (FAU), रोम
6. यूनाइटेड स्टेट एग्रीकल्वर डिपार्टमेन (USDA), USA

बोध प्रश्न - 3

1. दो भारतीय कृषि वैज्ञानिकों का नाम लिखिये ।

   ....

2. किन्हीं 2 कृषि अनुसंधानों का नाम एव जगह लिखिये ।

   ....

14.7 सारांश (Summary)

पौधों एवं जीवों के विकास के लिए संकरण की आवश्यकता होती है । संकरण द्वारा जीवों में कई उन्नत लक्षणों का विकास होता है जिसमें कृषि पैदावार में बढ़ोतरी होती है । यहीं नहीं संकरण या क्रॉंस द्वारा नई जातियों का भी विकास होता है । जैसे गेहूँ (triticum vulgare), triticale आदि लेकिन अन्त : प्रजनन द्वारा पादपों या जीवों के गुणों में निरन्तर अवनमन होता है तथा संकर के ओज में कमी आ जाती है । अन्त :प्रजनन द्वारा पादपों मैं जनन क्षमता में कमी, घातक जीनों की उत्पत्ति, पैदावार में कमी एव ओज या तेजस्विता में कमी हो जाती है । इससे

पौधों पर कई दुष्प्रभाव पड़ते हैं । इसके विपरीत क्रॉस या संकरण द्वारा उत्पन्न संकर पौधों में कई उत्तम गुण विकसित होते इसे संकर ओज बहुत है इसे हेटरासिस भी कहा जाता है । यह सत्य हेटेरोसिस या कूट हेटेरोसिस प्रकार का हो सकता है । हेटेरोसिस के कारण एव एन्जाइम की गतिविधियाँ भी बढ़ जाती है । कृषि वैज्ञानिकों ने हेटेरोसिस के लिए कई विचार धाराएँ प्रस्तुत की हैं जिनमें प्रभाविता, अतिप्रभाविता परिकल्पना, सन्तुलित उपापचय परिकल्पना, वृहद प्रारंभिक पूंजी परिकल्पना साइटोप्लाज्म -न्यूक्लियर इन्टरएकश्न परिकल्पना आदि मुख्य है ।

पादप प्रजनन में बहुगुणिता एवं उत्परिवर्तन का भी अत्यन्त योगदान रहा है । इससे कई किस्में एव जातियों का भी विकास किया गया है । IRI,BARC, TIFR से आदि भारत के मुख्य अनुसंधान केन्द्र हैं ।

14.8 शब्दावली (Glossary)

संकर ओज (I Lybrid vigour) संकरण द्वारा संकर पीढ़ी में उत्तम गुणों का समावेश होना ।

अन्त : प्रजनन : एक ही जाति के भिन्न -भिन्न पौधों में लैंगिक जनन ।

अन्त :प्रजनन अवनमन (Depression) अन्त: प्रजनन द्वारा संकर ओज एव जनन क्षमता में कमी आना ।

घातक जीन (Lethal gene). वह जीन जिसके लक्षणों के प्रभाव से संतति मृत हो जाये ।

कूट हेटेरोसिस (Pseudo heterosis). आनुवांशिकी के अलावा किन्हीं अन्य कारणों द्वारा औज उत्पन्न होना ।

14.9 संदर्भ ग्रन्थ (Further Reading)

1. पी सी. त्रिवेदी, निरंजन शर्मा, इन्दुरानी शर्मा - कोशिका विज्ञान आनुवांशिकी एव पादप प्रजनन, रमेश बुक डिपो
2. पी. के. गुप्ता - कोशिका विज्ञान, आनुवांशिकी विकास एव पादप प्रजनन, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ

14.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

1. अन्त प्रजनन अवनमन
2. लीथल जीन की उत्पत्ति, जनन क्षमता में कमी
3. शल, डेवनपोर्ट

बोध प्रश्न - 2

1. हेक्साप्लॉयड
2. गेहूँ - सरबती सोनारा, कपास - इन्दौर - 2
3. ट्रिटिकेल (Triticale)

बोधप्रश्न-3

1. एम.एस. स्वामीनाथन, बी.एल. चोपड़ा

2. IARI, New Delhi ICRISAT, Hyderabed

14.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अन्त 'प्रजनन अवनमन क्या है? इसके दुष्प्रभाव का वर्णन कीजिये ।
2. हेटेरोसिस पर निबन्ध लिखिये?
3. संकर ओज क्या है? इसकी विभिन्न परिकल्पनाओं का संक्षिप्त वर्णन कीजिये ।
4. संकर ओज से आप क्या समझते हैं । इसके कारण रख उपलब्धियों का वर्णन कीजिये ।
5. निम्न पर टिप्पणियाँ लिखिये ।
   (i) पादप विकास में बहुगुणिता का महत्व
   (ii) पादप प्रजनन में किन्हीं दो वैज्ञानिकों का योगदान ।
   (iii) भारत में पादप प्रजनन के विभिन्न केन्द्र

इकाई 15 : हरित क्रान्ति, स्वपरागित परपरागित एवं कायिक - प्रवर्धित फसलों में पादप प्रजनन की विधियाँ (Green Revolution, Plant Breeding in Self Pollinated, Cross Pollinated and Vegetatively Propagated Crops)

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 हरित क्रान्ति
15.3 स्वपरागित फसलों में संकरण की विधियाँ
15.3.1 वंशावली विधि (Pedigree Method)
15.3.2 प्रपुन्त विधि (Bulk Method)
15.3.3 प्रतीक संकरण विधि (Back Cross Method)
15.4 परपरागित फसलों में संकरण की विधियाँ
15.4.1 अन्तःप्रजात वंशक्रम चयन (Inbred line Selection)
15.4.2 संहति चयन (Mass Selection)
15.4.3 पुनरावृत्ति चयन (Recurrent selection)
15.4.4 संकरण (Hybridization)
15.5 कायिक प्रवर्धित फसलों में संकरण
15.6 सारांश
15.7 शब्दावली
15.8 संदर्भ ग्रन्थ
15.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
15.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

15.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य:

1. हरित क्रान्ति का तात्पर्य, भारत में यह कब, क्यों और किस प्रकार हुई ।
2. स्वपरागित, परपरागित एव कायिक प्रवर्धित फसलों के उत्तम किस्में प्राप्त करने के लिए कौनसी विधियाँ पादप प्रजनन के काम में ली जाती है । इन विभिन्न विधियों का सम्पूर्ण विवरण तथा इनके फायदे एव दोष का अध्ययन करेंगे ।

15.1 प्रस्तावना

हमारा देश स्वतंत्रन्त्रता के 15 - 20 वर्षों बाद खाद्य सम्पन्नता की ओर अग्रसर होने लगे । यह सब हमारे वैज्ञानिक एवं कृषि अनुसंधान केन्द्रों के योगदान के वजह से हुआ । 1960 के दशक में हरित क्रान्ति आई गेहूँ की बौनी प्रजाति का विकास हुआ और देश गेहूँ पर आत्मनिर्भर हो गया । तत्पश्चात् कई कृषि अनुसंधान की स्थापना हुई और फसलों की उन्नत किस्मों का विकास हुआ । पादप फसलें स्वपरागित या परपरागित होती हैं । कुछ फसलों में प्रायः कायिक प्रजनन ही होता है । इन विभिन्न फसलों में उन्नत गुणों को उत्पन्न करना वैज्ञानिकों का उद्देश्य होता है । इन फसलों में उन्नत गुण जैल रोग प्रतिरोधी, सूखा या पाला सहिषुण्ता उच्चतम पैदावार आदि गुणों का विकास कर नई पादप किस्म कृषकों के लिए तैयार की जाती है । विभिन्न प्रकार की फसलों में, पादप प्रजनन की विधियाँ भी अलग -अलग होती हैं जिनका विस्तृत विवरण दिया गया है ।

15.2 हरित क्रान्ति (green Revolution)

आजादी से पूर्व भारत में 1943 में बंगाल (Bengal famine) का अकाल आया यह अकाल खाद्यान की पूर्ण रूप की कमी से हुआ मुख्यत : चावल की फसल पर ये ब्लास्ट बीमारी की वजह से हुआ । तकरीबन चार लाख लोग भूख की वजह से मर गये । यह अकाल पश्चिमी बंगाल में हुआ था । इसका दूसरा कारण यह भी था कि द्वितीय विश्वयुद्ध के समय ब्रिटिश शासित देशों में अन्न की सप्लाई बन्द कर दी गई थी । ब्रिटिसर्स के जाने के बाद आजाद भारत कई वर्षों तक अन्न की कमी को झेलता रहा तथा बंगाल अकाल को नहीं भूल पाया । भारतीय सरकार के लिए अन्न की उपज एव भुखमरी से मुक्त होना मुख्य उद्देश्य हो गया ।

इन सभी का ध्यान रखते हुये हरित क्रान्ति का उद्गम हुआ यह 1967 में 1978 तक चला । हरित क्रान्ति का मुख्य उद्देश्य अन्न की उपज को बढ़ाना था । जो अन्य कई देशों में भी चला पर भारत को सबसे अधिक सफलता मिली ।

हरित क्रान्ति में क्या था?

हरित क्रान्ति लाने की विधि में तीन बातें मुख्य थी:

(i) खेती को निरन्तर बढ़ावा

(ii) द्विफसली खेती (double cropping)

(iii) उच्च जीन लक्षणों वाले बीज का उपयोग फार्मिन एरिमास का निरन्तर विकास होता रहा पर फिर भी हरित क्रान्ति में कुछ कम रही । इसके लिए खेतों में दो फसले लगाने का काम चला । किसान एक खेत में दो बार फसल लगाता (double cropping) पहले केवल मानसून पर निर्भर निर्मित एक ही फसल उगाया जाता था ।

इण्डियन काउन्सिल ऑफ एग्रीकल्चर रिसर्च ने 1965 एव 1973 में हरित क्रान्ति का मुख्य उद्देश्य बनाया । वैज्ञानिकों ने चावल, मिलट, एवं मक्के की उच्च पैदावार वाली किस्मों का विकास किया। इसमें गेहूँ की K - 68 किस्म मुख्य है । इसका श्रेय डॉ. एम पी. सिंह को जाता है जिसे हरित क्रान्ति, का हीरो कहा गया|

हरित क्रांति की वजह से 1978-79 में 131 लाख टन की रिकार्ड उपज हुई |प्रतिशत बढ़ोतरी हुई भारत ने वर्ल्ड बैंक द्वारा लिये गये सभी ऋण चुका दिये । कई भारतीय वैज्ञानिकों को विदेश भेजा गया जो सही प्रशिक्षण प्राप्त कर सकें । हरित क्रान्ति में मुख्य भूमिका डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन की थी इन्हें हरित क्रान्ति का जनक (Father of green revollution) कहा गया) इन्होंने डॉ. नार्मन बोरलाग के साथ काम करते हुये गेहूँ की ड्वार्फ किस्म का विकास किया।

15.3 स्वपरागित फसलों में संकरण की विधियाँ (Methods of Hybridization in self pollinated crops)

आर्थिक महत्व के कृष्य पौधों (cultivated method) जैसे - गेहूँ जौ, चावल, तम्बाकू, कपास एवं मटर इत्यादि में स्वपरागण (self pollination) पाया जाता है । इनकी फसलों के सुधार हेतु संकरण एव पादप प्रजनन की निम्न उपयोगी विधियाँ प्रस्तावित की गई हैं.

15.3.1 वंशावली विधि (Pedigree method)

15.3.2 प्रपुंज विधि (Bulk method)

15.3.3 प्रतीप संकरण विधि (Back cross method)

15.3.1 वंशावली विधि (Pedigree method)

स्वपरागित पौधों में इस विधि का सर्वाधिक उपयोग किया जाता है । इन फसलों में दो या दो से अधिक जीन प्ररूपों से प्राप्त इच्छित लक्षणों को संयोजित करना संकरण प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य है । इस विधि में F_2व इससे अगली पीढ़ियों (F_2 $F_{4)}$ से कुछ पौधों का चुनाव किया जाता है । F_1 पीढ़ी के संकर पौधे, स्वनिषेचन (Selfing) द्वारा विसयोजित होकर F_2 पीढी बनाते हैं, जिसमें से श्रेष्ठ पौधों का चुनाव किया जाता है । पुनर्योजन या प्रेरित उत्परिवर्तनों (Recombination or Induced mutation) के द्वारा नवीन विविधताएँ भी उत्पन्न की जाती है ।

इस विधि में उत्तम एवं विविध लक्षणों वाले जनक पौधों को चयनित कर उनके बीच संकरण करवाया जाता है । इस विधि में जनक पौधों से संतति पौधों का पूरा रिकॉर्ड पीढ़ी दर पीढ़ी रखा जाता है त था इसके आधार पर यह मालूम कर सकते हैं कि दो पौधे आपस में समान हैं और क्या उनके जनक एक ही हें?

किसी एक पूर्वज पौधे से उत्पन्न संतति के विवरण को वंशावली (pedigree) कहते हैं ।

इस प्रक्रिया में प्रयुक्त विभिन्न चरागों का विवरण निम्न प्रकार हैं

प्रथम वर्ष (जनक पौधों का चयन एवं संकरण, cross). इसमें आनुवंशिक विविधता के आधार पर जनक पौधों का चयन किया जाता है तथा विभिन्न उपयुक्त संकरण विधियों के द्वारा उनमें सकरण करवाया जाता है । जनक पौधों के उचित चयन पर ही वंशावली विधि प्रक्रिया की सफलता निर्भर करती है । इस वर्ष जनक पौधों के संकरण द्वारा प्राप्त F_1 संकर बीजों को एकत्र कर लिया जाता है, इनको अगले वर्ष (F_1 पीढ़ी के पौधे) उगाने के लिए बोया जाता हैं|

वंशावली विधि की कार्यविधि : (Procedure of Pedigree method)

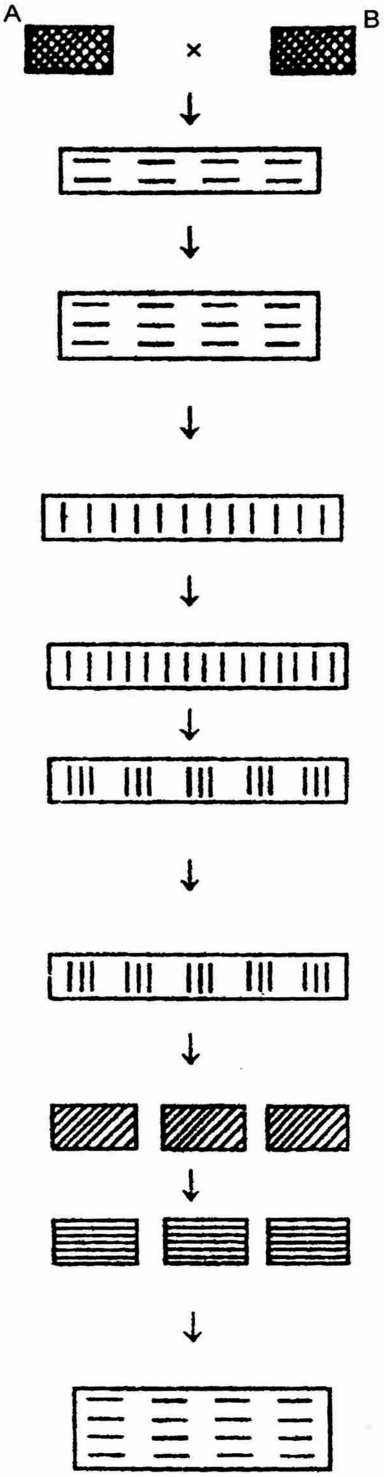

- प्रथम वर्ष – जनक पौधों का चुनाव एवं संकरण।
- द्वितीय वर्ष F_1 – 15-25 बीजों को बोना उनको एक साथ इकट्ठा करना।
- तृतीय वर्ष F_2 – (A) 2000-10000 पौधों को उगाना। (B) 100 से 150 श्रेष्ठ पौधों का चयन।
- चतुर्थ वर्ष F_3 – (A) प्रत्येक पौधे से संतति को उगाना। (B) श्रेष्ठ पौधों का चयन।
- पंचम वर्ष F_4 – उपरोक्त विधियों को दोहराना।
- छठा वर्ष F_5 – (A) अलग-अलग पौधे की संतति को क्यारियों में बहुत सी पंक्तियों में लगाना। (B) श्रेष्ठ पौधों का चयन।
- सातवाँ वर्ष F_6 – (A) उपरोक्त प्रक्रिया को दोहराना। (B) पैदावार परीक्षण
- आठवाँ वर्ष F_7 – (A) पैदावार परीक्षण (B) गुणवत्ता परीक्षण
- नौ से तेरह वर्ष F_x-F_{12} – (A) समाकलित (Coordinated) परीक्षण (B) रोगप्रतिरोधकता व अन्य परीक्षण
- चौदह वर्ष F_{13} – बीजों का गुणन

वंशावली विधि के विभिन्न सोपान - फ़्लो चार्ट

2. **द्वीतीय वर्ष (F_1 पीढ़ी)** : द्वीतीय वर्ष वर्ष F_1 पीढ़ी के बीजों को बोते हैं इस प्रकार F_1 पौधो को उत्पन्न किया जाता है तथा पर्याप्त मात्रा में F_2 पीढ़ी के लिए बीज प्राप्त कर लेते हैं ।
3. **तृतीय वर्ष (F_2 पीढ़ी)** : दूसरे साल में उत्पन्न F_1 पौधों के बीजों से F_1 पीढ़ी के पौधे तैयार किये जाते हैं । इसके लिए 2000 से 10000 पौधों को उपयुक्त दूरी पर बोया जाता है । गुणवत्ता एवं इच्छित लक्षणों के आधार पर इनमें से 100 से 150 पौधों का चयन किया जाता है । चयनित पौधों पर लेबल कार्ड लगाया जाता है । इस प्रकार रोग प्रतिरोधी पौधे जो वांछित लक्षण रखते हैं उनको चुना जा सकता है, इनके बीजों को अलग - अलग इकट्ठा किया जाता है तथा इन बीजों से आने वाले साल में F_3 पौधे तैयार किये जाते हैं ।
4. **चौथा वर्ष (F_3पीढ़ी)** : F_2 पीढ़ी से चयनित प्रत्येक पौधे के जो बीजों से F_3 पीढ़ी प्राप्त करते हैं । अलग - अलग पौधो से प्राप्त बीजों को अलग - अलग पंक्तियों में बोया जाता है । लगभग 30 से 100 पौधे प्रत्येक पंक्ति में पर्याप्त दूरी पर बोये जाते हैं । लक्षणों के आधार पर अलग -अलग पौधों का चयन कर, इनके बीजों को अगले वर्ष बुवाई के लिए अलग - अलग रखते हैं ।
5. **पंचम वर्ष (F_4 पीढ़ी)** : F_4 पीढ़ी में चौथे साल की प्रक्रिया को फिर से दोहराया जाता है लेकिन हय पीढ़ी में चयन का आधार श्रेष्ठ पंक्तियाँ होती है । क्योंकि प्रत्येक पंक्ति के अन्दर समयुग्मजता के कारण एकरूपता (uniformity) आ जाती है ।
6. **छठा वर्ष (F_5 पीढ़ी)** : F_4 पीढ़ी से F_5 संतति प्राप्त करते हैं । F_4 पीढ़ी के चयनित पौधे 3 - 4 पंक्तियों में लगाये जाते हैं, जिससे संततियों की आपस में तुलना की जा सकें, श्रेष्ठ पौधों का चयन करते हैं । उत्तम एवं समरूपता वाली संततियों के सभी पौधों के बीजों को मिला कर इकट्ठा कर लिया जाता है । इनकी उपज को प्रारंभिक मूल्यांकन परीक्षण (Initial evaluation test) के लिए उपयोग करते हैं ।
7. **सातवाँ वर्ष एवं इसके बाद** : F_6 पीढ़ी के बाद की पीढ़ियों में कोई पृथक्करण नहीं होता है । फिर भी अगर कोई पादप विसयोजन दर्शाता है तो उसे अमान्य कर देते हैं । समरूपी (unifrom)एव श्रेष्ठ संततियों का चुनाव कर इनके बीजों से एक साथ फसल उगाई जाती है मानक या जाँच किस्म (check variety) के साथ प्रतिरूप परीक्षणों (Replicated trials) के लिए बोकर उत्पादन क्षमता (yield) तथा अन्य गुणों के लिए मूल्यांकन किया जाता है । अधिक उपज देने वाले संतति का नामकरण करके नई पादप किस्म के रूप में किसानों को टगाने के लिए मुक्त कर देते हैं । श्रेष्ठतम संततियों का परीक्षण विभिन्न स्थलों पर कम से कम 6 -7 वर्ष के लिए किया जाता है ।

इस प्रकार वंशावली विधि द्वारा नई पादप किस्म को तैयार करने में लगभग 14 वर्ष लगते हैं ।

वंशावली विधि के गुण (Merits of pedigree method)

(1) यह विधि स्वपरागित फसलों के लिए सर्वथा उपयुक्त है ।

(2) यह विधि सरलता से पहचान किये जाने वाले गुणों के सुधार के लिए अच्छी है ।

(3) इस विधि में बल्क विधि की तुलना में कम समय लगता है ।

(4) एकल पौधों के चुनाव की दृष्टि से यह एक अच्छी विधि है, क्योंकि संतति के विवरण से गुणात्मक लक्षणों के बारे में जानकारी मिलती है ।

(5) यह विधि पादप प्रजननकर्ता को पौधों के बारे में आनुवांशिकी सूचनाएँ उपलब्ध करवाने में सहायता प्रदान करता है ।

वंशावली विधि के दोष (Demerits of pedigree Method) :

(1) इस विधि में प्रारंभिक पीढ़ियों में प्रत्येक चुने गये पौधे का वंशावली रिकॉर्ड अत्यन्त सावधानी से लेना होता है । यह श्रमसाध्य, लम्बी व खर्चीली प्रक्रिया है ।

(2) प्रजनन विज्ञानी अति निपुण होना चाहिये ।

(3) पादप पापुलेशन (Population) पर प्राकृतिक चयन कोई प्रभाव नहीं डालता ।

वंशावली विधि द्वारा अनेक फसलों मैं नई किस्में तैयार की जा चुकी हैं, जैसे गेहूँ में ओर NP - 120, NP- 52, K- 65, K- 68 व WL,- 711, चावल में जया, पद्मा व रत्ना कपास में लक्ष्मी एव टमाटर में पूसा, अर्ली ड्वार्फ इत्यादि ।

15.3.2 प्रपुंज विधि (Bulk Method)

नेलसन एहल (1908) द्वारा इस संकरण विधि का सर्वप्रथम उपयोग किया गया था । इसे संहति विधि या मास विधि (Mass method)भी कहते हैं । किसी फसल विशेष में प्राप्त करने के लिए विशिष्ट उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुये इस विधि का उपयोग किया जाता है । पादप किस्म प्राप्त करने में प्राय : 8 वर्ष या कुछ ज्यादा समय लगता है ।

प्रपुंज विधि का संक्षिप्त विवरण :

(1) **प्रथम वर्ष :** फसल में इच्छित गुणों के आधार पर जनक पौधों को चुना जाता है तथा इनमें सरल व जटिल प्रकार का संकरण करवाया जाता है ।

(2) **द्वितीय वर्ष** : संकरण द्वारा प्राप्त F_1 पीढ़ी के पौधों को उपयुक्त दूरी पर लाया जाता है एव इनसे उगे पौधों के बीजों को एकत्र कर आपस में मिला देते हैं ।

(3) **तृतीय वर्ष** (F_2 पीढ़ी) : इस वर्ष F_2 पीढ़ी में संतति पौधों को अधिकतम संख्या में लगाया जाता है तथा इन पौधों से प्राप्त बीजों को एक साथ इकट्ठा किया जाता है ।

(4) **चौथे से सातवें वर्ष तक** (F_3 से F_6 पीढ़ी) : इस वर्ष से F_2 पीढ़ी के लिए अपनायी गई प्रक्रिया को सातवें वर्ष तक लगातार दोहराया जाता है, अर्थात् F_3 से F_6 पीढ़ी के संतति पौधों को पर्याप्त जगह में बोया जाता है एवं इनसे प्राप्त बीजों को मिला देते हैं । प्रत्येक पीढ़ी में पौधों की संख्या बहुत अधिक होनी चाहिए ।

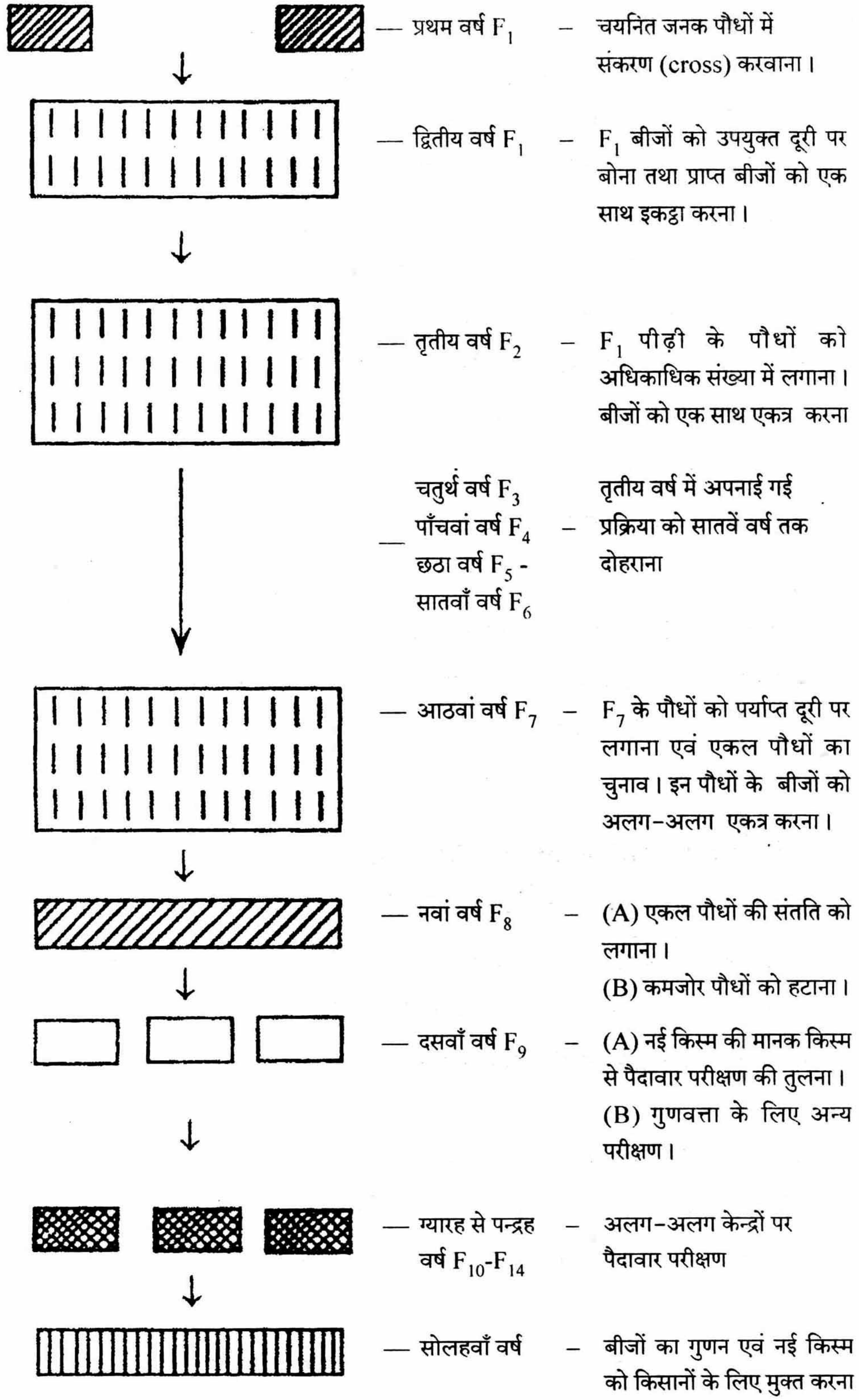

प्रपुंज (बल्क) विधि के विभिन्न सोपान -फ़्लो चार्ट

(5) **नवाँवर्ष** (F_8 पीढ़ी) : इस वर्ष में एकल पादप संतति के पौधों को हजारों की संख्या में लगाया जाताहै, पौधो को सदैव पर्याप्त दूरी पर लगाते है । इनमें से श्रेष्ठ पौधो को छांटा जाता है तथा कमजोर पौधो को हटाया जाता है । इनके बीजों को अलग-अलग एकत्र करते हैं । श्रेष्ठ पौधों का चुनाव बाह्य आकारिकी लक्षणों के आधार पर किया जाता है ।

(6) **दसवाँवर्ष** (F_9 पीढ़ी) : एकल पौधों से प्राप्त सतत पीढ़ी को एक या कई पक्तियों में लगाते हैं, इन संततियों के पादप अब इच्छित लक्षणों के लिए शुद्ध हो जाते हैं । छटि हुए पौधों के प्राप्त बीजों को मिला देते हैं । दुर्बल एवं हल्की गुणवत्ता वाले पौधों को हटा देते हैं । अब इन पौधों में से वांछित लक्षणों वाले और श्रेष्ठ पौधों को भविष्य के लिए बचा कर रख लेते हैं; गुणवत्ता फसल तैयार होने की अवधि, फसल की ऊँचाई आदि परीक्षण किये जाते है ।

(7) **ग्यारह से पन्द्रहवाँ वर्ष** (F_{10} से F_{14} पीढ़ी) : नई किस्म के श्रेष्ठ चयनित पौधों का पैदावार परीक्षण मानक या स्टेंडर्ड किस्म से तुलना अलग-अलग परीक्षण केन्द्रों पर करते हैं । श्रेष्ठ लक्षणों वाले पौधो को नई पादप किस्म का नाम दिया जाता है ।

(8) **सोलहवाँ वर्ष** : इस नई श्रेष्ठ पादप किस्म के असंख्य पौधो से बीजो को प्राप्त करके, इनका बारबारगुणन (Multiplication) करते हैं एवं इनकी संख्या बढ़ाई जाती है । फिर इन बीजों को किसानों के लिए उपलब्ध कराते हैं ।

बल्क विधि के गुण (Demerits of Bulk Method)

(1) यह सुविधाजनक, सरल एक कम खर्चीली विधि है ।

(2) इस विधि में प्राकृतिक चयन की भूमिका महत्वपूर्ण होती है, जिससे पादप समूह में श्रेष्ठ पौधों की संख्या में वृद्धि होती है ।

(3) F_2 पीढ़ी एवं इसके बाद की पीढ़ियो का ज्यादा ध्यान नही रखना पड़ता है ।

बल्क विधि के दोष (Demrits of Bulk Method):

(1) इस विधि में नई पादप किस्म का विकास करने में सोलह वर्ष का समय लगता है ।

(2) अंतिम पीढ़ी के पौधों को बहुत अधिक संख्या में छांटना पड़ता है । यह एक श्रमसाध्य कार्य हैं|

बल्क विधि का उपयोग कृष्य पौधों में कम देखा गया है । कुछ फसल जैसे जौ (barley) में जीन प्ररूप (genotype) के अध्ययन के लिए इस प्रक्रिया की सहायता ली गई है ।

प्रपुंज या बल्क विधि या वंशावली विधि का तुलनात्मक विवरण :

क्र. सं.	वंशावली विधि	बल्क विधि
(1)	F_2 व इसके बाद की पीढ़ियों में एकल पौधों तथा फल पौधों की ही संतति उगाई जाती है ।	F_2 व इसके बाद की पीढ़ियों में पौधों को छांटे जाते हैं,इकड्डा लगाते हैं ।
(2)	इस भूमिका में प्राकृतिक चयन की कोई भूमिका नहीं रहती ।	प्राकृतिक चयन का विशेष योगदान रहता है ।
(3)	कृत्रिम चयन इस प्रक्रिया का विशेष भाग है ।	कृत्रिम चयन की भूमिका केवल प्राकृतिक चयन की भूमिका केवल प्राकृतिक चयन के सहायक के

		रूप में होती है ।
(4)	पौधों की संख्या कम होती है ।	पौधों की संख्या बहुत ज्यादा होती है ।
(5)	इस विधि का उपयोग प्राय : किया जाता है ।	इस विधि का उपयोग बहुत कम होता है ।
(6)	पौधों की वंशावली का विवरण या रिकॉर्ड रखा जाता है ।	इस विधि में यह रिकार्ड नहीं रखा जाता ।

15.3.3 प्रतीप संकरण या संकर पूर्वज संकरण विधि (Back- cross Method) :

प्रतीय संकरण (Back -cross) F_1 पीढ़ी के पौधें एवं जनक पौधे (parent) का क्रॉस करवाने से है । F_2 पीढ़ी व बाद की पीढ़ियों के पौधों का लगातार क्रॉंस जनक पौधों से करवाया जाता है ।
प्रतीप संकरण में एक वंशागत (inheritable) लक्षण के एक किस्म से दूसरी पादप किस्म में स्थानान्तरण किया जाता है । जैसे अवांछनीय पादप किस्म में उपस्थित सूखा, पाला या रोग प्रतिरोधी गुण प्रतीप संकरण के द्वारा उत्तम गुणवता वाली पादप किस्म में स्थानांतरित करवाना । लगातार क्रॉंस करवाने 6 - 7 पीढ़ियों के बाद संतति पौधे, जनक पौधों के समान हो जाते हैं । अत : अच्छी उत्पाद. वाली किस्म में एक या दो इच्छित लक्षणों का विकास हो जाता है ।
प्रतीप संकरण विधि का उपयोग स्थानांतरित की जाने वाली जीन्स के प्रभावी (dominant)या अप्रभावी (recessive) अवस्था पर निर्भर करता है ।
प्रतीप संकरण को सर्वप्रथम हारलान एवं पोप (1922) ने पादप प्रजनन के लिए प्रस्तावित किया । इसका उपयोग ऐसी पादप किस्म के सुधार हेतु किया जाता है ।
उत्तम गुणवत्ता वाली किस्म (B) जिन लक्षणों का अभाव होता है, उसका क्रॉंस इच्छित लक्षणों वाली एक अन्य किस्म (A) (जैसे रोग प्रतिरोधी) से करवाया जाता है, किस्म (A) दाता किस्म (donar) कहलाता है । किस्म (A) व (B) के संकरण से प्राप्त संकर पौधों को बारम्बार श्रेष्ठ पादप किस्म (B) के साथ प्रतीप संकरणों द्वारा इच्छित लक्षण (A) से रोग प्रतिरोधी गुण) को उत्तम किस्म (B) में स्थानांतरित किया जाता है ।

अपुनरावर्ती जनक (B) Non Recurrent Parent	पुनरावृत्ति जनक (A) (Recurrent parent)		
RR	rr		प्रथम वर्ष (F)
RR × rr (50% A) ↓	(Recurrent parent) rr	→	द्वितीय वर्ष (F_1)
RR × rr (75% A) ↓	(Recurrent parent) rr	→	तृतीय वर्ष (BC_1)
RR × rr (87.5% A) ↓	(Recurrent parent) rr	→	चौथा वर्ष (BC_2)
RR × rr (93.7% A) ↓	(Recurrent parent) rr	→	पाँचवां वर्ष (BC_3)
RR × rr (96.8% A) ↓	(Recurrent parent) rr	→	छठा वर्ष (BC_4)
RR × rr (98.4% A) ↓	(Recurrent parent) rr	→	सातवाँ वर्ष (BC_5)
RR × rr (99.2% A) ↓	(Recurrent parent) rr	→	आठवाँ वर्ष (BC_6)
↓	स्वपरागण	→	नवाँ वर्ष (BC_6F_2)
↓	उपज परीक्षण	→	दसवाँ वर्ष (BC_6F_2)
↓	तुननात्मक परीक्षण	→	ग्यारहवाँ वर्ष
	बीजों का गुणन	→	बारहवाँ वर्ष

स्वपरागित फसलों के लिए प्रतीत संकरण- फ़्लो चार्ट

प्रतीप संकरण के लिए आवश्यक सामग्री

(1) इसके लिए उपयुक्त अपुनरावर्ती एवं पुनरावर्ती जनक उपलब्ध होना आवश्यक है ।

(2) पुनरावर्ती जनक का जीन प्ररूप (genotype) पुन: प्राप्त करने के लिए प्रतीप संकरण पर्याप्त संख्या में करवाये जाने चाहिए ।

(3) स्थानांतरण हेतु इच्छित जीन की अभिव्यक्ति बहुत अधिक होनी चाहिए जिससे कि विभिन्न प्रतीप संकरणों में विसंयोजन के अन्तर्गत उसके चयन में आसानी हो ।

प्रतीप संकरण की विधि (Method of Back Cross Hybridization)

(A) **संकरण** (Hybridization) : इसमें पादप किस्म A का क्रॉस B पौधे से करवाया जाता है । किस्म A को पुनरावृत्ति जनक (Recurrent parent)कहा जाता है, एवं इसका उपयोग मादा जनक के समान करते हैं । पुनरावृत्ति A किस्म अच्छी गुणवत्ता एवं उत्पादकता वाली होती है । परंतु इसमें रोग प्रतिरोधी गुण नहीं होता रोग प्रतिरोधी गुण अन्य पादप किस्म B में पाया जाता है जो कि अपुनरावर्ती जनक (non recurrent parent) या नरजनक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है । इस जनक पौधे से रोग प्रतिरोधी (disease rsistance) क्षमता को नियंत्रित करने वाली प्रभावी जीन का स्थानांतरण पादप किस्म A में किया जाता है ।

(B) F_1 पीढ़ी : इस पीढ़ी के संतति पौधे (Rr) जीन प्ररूप (genotype)प्रदर्शित करते हैं तथा ये पौधे रोग प्रतिरोधी क्षमता के लिए विषमयुग्मजी (heterozygous) होते हैं ।

(C) **BC_1पीढ़ी** : प्रथम प्रतीप संकरण द्वारा प्राप्त संतति पीढ़ी को BC_1 कहा जाता है । इस पीढ़ी की पादप संख्या के कुल पचास प्रतिशत पौधों में रोग प्रतिरोधी क्षमता पाई जाती है । BC_1 पीढ़ी के पौधों जनक A के लक्षणों से युक्त होते हैं । इन पौधों का A पौधों से दुबारा प्रतीप क्राँस करवाया जाता है ।

(D) **BC_6 पीढ़ी** : इच्छित लक्षणों की उपस्थिति के आधार पर इस पीढ़ी के पौधों को छाँटा जाता है एवं इनमें रोग प्रतिरोधी क्षमता पाये जाने पर इनमें स्वपरागण करवाया जाता है । इनसे प्राप्त बीजों को अलग - अलग रखते हैं ।

(E) **BC_6 F_2पीढ़ी** : उपरोक्त पीढ़ी में एकत्र बीजों से एकल पादप संतति प्राप्त की जाती है । इस प्रकार प्राप्त पौधों जिनमें जनक A के लक्षण एवं रोग प्रतिरोधी क्षमता युक्त श्रेष्ठ पौघों का चुनाव किया जाता है । प्रत्येक चयनित पौधे से बीजों को अलग - अलग एकत्र किया जाता हैं|

(F) **BC_6 F_3 पीढ़ी** : उपरोक्त विधि से बीजों को एक पादप के आधारपर अलग - अलग संतति के रूप में उगाया जाता है । उत्तम गुणवत्ता एवं रोग प्रतिरोधी क्षमता के आधार पर इनमें से सर्वश्रेष्ठ पौधों को छाँटा जाता है । आगे चलकर समान गुणों वाले संतति पौधों के बीजों को मिश्रित कर दिया जाता है । इन पौघों को नई पादप किस्म का नाम दे दिया जाता है । नई पादप किस्म के पौधों का जनक पादप किस्म 4 के साथ पैदावार परीक्षण किया जाता है, तथा अन्य गुणों का भी परीक्षण नई पादप किस्म के बीजों का गुणन करके इसे किसानों के लिए उपलब्ध कराया जाता है ।

प्रतीप संकरण के गुण

(1) नई पादप किस्म का जीन प्ररूप, पुनरावर्तीजनक पादप के जीन प्ररूप से काफी समान होता है |

(2) विकसित किस्म का अलग-अलग केन्द्रों पर परीक्षण आवश्यक नहीं होता है ।

(3) इस विधि में कम संख्या में पौधों की आवश्यकता होती है ।

(4) दो पृथक पादप प्रजातियो के बीच 1 या 2 जीन्स का स्थानातरण किया जा सकता है ।

प्रतीप संकरण के दोष

(1) स्थानांतरित गुण के अतिरिक्त इस विधि द्वारा विकसित नई पादप किस्म, जनक पादप किस्म की तुलना में बेहतर नहीं होती ।

(2) यह कठिन, ज्यादा समय लेने वाली एवं खर्चीली तथा श्रम साध्य प्रक्रिया है ।

(3) इसमें से नई जीन के साथ-साथ सहलग्न जीनो का (linked genes) स्थानांतरण भी हो सकता

(4) नई किस्म की गुणवत्ता चिरकाल नहीं होती तथा कुछ वर्ष पश्चात गुणवत्ता में कमी आ जाती

बोध प्रश्न - 1

1. किसी एक पूर्वज पौधेसे उत्पन्न उसकी संतति के विवरण को क्या कहते हैं?

....

....

....

2. किस विधि में पादप प्रजनन के समय बीजों को स्व साथ एकत्रित करते हैं?

....

....

....

प्रतीप संकरण में कोशिका द्रव्य स्थानांतरण भी संभव है । पादप प्रजनन विज्ञानियों के द्वारा सर्वप्रथम इस विधि का उपयोग गेहूँ में स्तंभकिट्ट एवं बाद में पर्णकिट्ट (leaf- rust) इत्यादि रोगों के विरुद्ध प्रतिरोधी क्षमता विकसित करने के लिए किया गया था । गेहूँ में KML-740 5 व कपास में दिग्विजय, BD98 किस्में बनाई गई है । रोग प्रतिरोधी जीन्स का स्थानांतरण गन्ना व चावल जैसी फसलों में भी इस विधि का उपयोग किया गया है ।

प्रतीन संकरण एवं वंशावली विधि द्वारा संकरण का तुलनात्मक विवरण :

क्र. सं.	वंशावली विधि (Pedigree method)	प्रतीप संकरण विधि (Back cross method)
1.	इसमें F_1 एवं इसके बाद की पीढ़ियों में स्वपरागण करवाया जाता है ।	इसमें परपरागण करवाया जाता है, क्योंकि F_1 तथा बाद की पीढ़ियों में पुनरावृत्ति जनक के साथ प्रतीप क्राँस करवाते हैं।
2.	नई किस्म के लिए बहुत सारे परीक्षण	अधिक परीक्षण की आवश्यकता नहीं होती ।

	करने पड़ते हैं ।	
3.	अनेक गुणों में नवविकसित पादप किस्म,जनक पौधों की तुलना में अलग होती है ।	स्थानांतरित लक्षण के अलावा नई किस्म के लक्षण पुनरावृत्ति जनक किस्म के समान होते हैं।
4.	इस प्रक्रिया में एक प्रजाति से दूसरी पादप प्रजाति में जीन स्थानांतरण नहीं होता ।	यह संकरण विधि है । जिसमें एक प्रजाति से दूसरी प्रजाति में जीन का स्थानांतरण करवाया जाता है ।
5.	इस संकरण विधि में उत्पादन एवं अन्य इच्छित लक्षणों को सुधारा जाता है ।	इस प्रक्रिया में पुनरावृत्ति जनक के एक या दो इच्छित लक्षणों की कमी को पूरा किया जाता है ।
6.	F_2एवं बाद की पीढ़ियों में बहुत ज्यादा प्रयुक्त होते हैं ।	इन पीढ़ियों में पौधों की संख्या अपेक्षाकृत कम संख्या में पौधे होती है

15.4 परपरागित फसल उत्पादक पौधों में पादप प्रजनन की विधियाँ (Methods of plant Breeding in Cross -Pollinated crops)

परपरागित फसलों के लिए पादप प्रजनन विधियाँ स्वपरागित से भिन्न होती है । यह विधियाँ निम्न प्रकार की हैं :

15.4.1 अंत :प्रजात वंशक्रम चयन (Inbred line selection)

15.4.2 संहति चयन (Mass selection,)

15.4.3 पुनरावृत्ति चयन (Recurrent selection)

15.4.4 संकरण (Hybridization)

15.4.1 अंत प्रजात वंशक्रम चयन

परपरागित फसलों, जैसे खरबूजा, मक्का, अरंडी एवं पपीता के गुणों का उपयोग अधिकांशतया स्वपरागित फसलों में नई पादप किस्में उन्नत करने के लिए ही होता है । परपरागित फसलों में अंत:प्रजात वंशक्रम विधि का नई किस्मों को विकसित करने के लिए बहुत कम उपयोग होता है । मक्का में अंत :प्रजात वंशक्रम चयन की प्रक्रिया निम्न प्रकार हैं :

1. मक्का के पौधों को मिश्रित पादप समूह में उगाया जाता है । इन पौधों से श्रेष्ठ गुणों के आधार पर 250 से 1250 पौधों के भुट्टे (ears) चुने जाते हैं ।
2. **दूसरे से छठा वर्ष :** भुट्टों के बीजों या दानों को निश्चित पंक्तियों में क्रमवार बोया जाता है तथा पौधों के उगने के बाद इनमें से श्रेष्ठ लक्षणों वाले पौधे छाँटे जाते हैं तथा इनमें स्वपरागण करवाया जाता है ।
3. **सातवाँ एवं आठवाँ वर्ष :** इन वर्षो में श्रेष्ठ भुट्टों या दानों के आधार पर उत्तम पौधों का चुनाव किया जाता है । इनको पंक्तिबद्ध क्रम में लगाया जाता है । पास -पास पंक्तियों

(sibs) वाले पौधों में संकरण करवाया जाता है व इनमें से उत्तम गुणवत्ता वाले पौधों को छाँटा जाता

4. **नवाँ वर्ष :** चुने हुए उत्तम गुणवत्ता वाले पौधों का विभिन्न केन्द्रों पर तुलनात्मक परीक्षण किया जाता है । उपरोक्त पौधों में से श्रेष्ठ संतति का चुनाव करते हैं ।
5. **दसवाँ वर्ष** : सर्वश्रेष्ठ सिब्स (sibs) को छांटा जाता है एव इनका उपयोग संश्लिष्ठ (synthetic) या संग्रथित (composite) पादप किस्म बनाने या संकर बीज विकास कार्यक्रम में अंत :प्रजात (inbred)के तौर पर किया जाता है ।

15.4.2 संहति चयन (Mass selection):

यह पादप चयन विधि स्वपरागित एवं परपरागित फसलों में एकसमान होती है । परपरागित फसलों में संहति चयन विधि का उपयोग सामान्यतया किया जाता है । इसके द्वारा पादप समूह में सुधार किया जाता है या नई पादप किस्में विकसित की जाती है । जिन पौधों में प्राकृतिक रूप से पर -परागण होता है, उनमें स्वतंत्र रूप से जीन्स का परिगमन (gene flow)भी होता रहता है । क्योंकि किसी एक फसल की मिश्रित पादप समूह में उपस्थित एकल पौधों में भी विषम युग्मजता (heterzygosity) पाई जाती है । अत : प्रत्येक पीढ़ी के गुणों में विविधताएँ मौजूद होती है । ऐसी स्थिति में परपरागित पौधों के लिए संहति चयन (purity) एक उपयुक्त पादप प्रजनन विधि है ।

संहति चयन गुण(Mass selection) :विधि का उपयोग:

1. यह परपरागित फसलों के लिए ज्यादा प्रभावी एवं सर्वाधिक उपयोगी है । क्योंकि प्राकृतिक रूप से परपरागण होने के कारण पौधों में लगातार जीनों का परिगमन, विनिमय एव मिश्रण होता रहता है ।
2. इस प्रक्रिया के द्वारा मिश्रित पादप किस्मों में गुणों की शुद्धता (purity) को प्राप्त किया जाता हैं |

संहति चयन के गुण :

1. इसमें -परागण, संतति परीक्षण एवं क्राँस प्रक्रिया नहीं होती है । यह एक सरल ,कम खर्चीली एवं आसान विधि है ।
2. इस विधि में अपेक्षाकृत बहुत कम समय लगता है एवं फसल या पादप किस्म में सुधार के साथ -साथ बीजों का गुणन (multiplication) भी होता रहता है ।
3. फसल की अवधि, पौधों व दानों की गुणवत्ता एवं उत्पादन की अपेक्षा के अनुरूप संश्लिष्ट (synthetic) और संग्रथित (compostie)किस्मों में आसानी से सुधारा जा सकता है ।

संहति चयन के दोष

1. पौधों का चयन उनके बाहय लक्षणों के आधार पर किया जाता है, इसलिए जिन गुणों में वंशागति में की क्षमता कम होती है, उनके सुधार हेतु यह प्रक्रिया उपयोगी नहीं है ।
2. इस विधि द्वारा विकसित नई पादप किस्में विषमयुग्मजी (heterozygous) होती हैं अत :चयन प्रक्रिया लगातार जारी रखनी होती है ।

3. कायिक जनन (vegetative propagation)या स्वपरागण वाले कृष्य पौधों के लिए यह विधि उपयोगी नहीं हैं ।

15.4.3 पुनरावृत्ति चयन (Recurrent)

पादप प्रजनन विज्ञानियों हेस एवं गार्बर (1919) तथा ईस्ट एवं जोन्स (1920) ने सर्वप्रथम इस विधि का उपयोग श्रेष्ठ अंत: प्रजात वंशक्रम (inbrd lines) को विकसित करने के लिए पादप व्यष्टि (population) के आनुवांशिक सुधार के लिए किया था । इसके बाद जेन्कन्स (Jenkins 1940) ने इस प्रक्रिया को संशोधित एवं विस्तारित (elaborate) किया ।

हल (1945) ने पुनरावृत्ति चयन का नामकरण किया था, एव इसे परिभाषित किया । इस विधि में जीन पुनर्योजन (genetic recombination) लिए प्रत्येक पीढ़ी के सर्वश्रेष्ठ पौधों का आपस में संकरण (hybridization) करवाया जाता है, एवं इससे उत्पन्न संतति पीढ़ी के सर्व श्रेष्ठ पौधों के गुणों के आधार पर छाँटा जाता है ।

इसमें श्रेष्ठ पौधों में स्वपरागण करवाकर बीज प्राप्त किये जाते हैं एवं इनसे उत्पन्न पौधों का आपस में संकरण करवाया जाता है । प्राप्त संतति संकर पौधों के समूह से श्रेष्ठ पौधों को छाँटा जाता हैं, एवं अगली पीढ़ी के लिए तैयार किया जाता है । इस प्रकार संकरण एवं चयन का यह क्रम प्रत्येक पीढ़ी में चलता है व इच्छित लक्षणों से युक्त सर्वश्रेष्ठ पौधों की प्राप्ति तक यह निरन्तर जारी रहता है ।

इस प्रक्रिया का विशेष महत्व यह है कि जीनों के श्रेष्ठ एवं अनुकूल पुनर्योजन (favorable Recombination’s) इच्छित लक्षणों के लिए प्रत्येक पीढ़ी की व्यष्टि (population) में प्राप्त होते हैं तथा इनके कारण आनुवांशिक भिन्नताएँ (genetic variation)बनी रहती है ।

इस विधि का उपयोग सर्वप्रथम मक्का की फसल में अंत : प्रजात वंशक्रम (inbred lines) बनाने के लिए किया गया जिससे कि संतति पीढ़ी में सर्वाधिक इच्छित जीन प्राप्त किये जा सकें, इसके बाद कपास में रेशे (fibre)की मजबूती एवं चुकन्दर में शर्करा (sugar) की मात्रा बढ़ाने के लिए पुनरावृत्ति चयन प्रक्रिया का उपयोग किया गया ।

पुनरावृत्ति चयन (recurrent selection) में मुख्यतया निम्न प्रक्रियाएँ होती है ।

(1) सरल पुनरावृत्ति चयन (Simple Recurrent selection) : यह प्रक्रिया संहति चयन का एक विस्तारित प्रारूप है एवं सरल विधि जो निम्न प्रकार से संपन्न करवाई जाती है ।

प्रथम वर्ष : कुछ परपरागित फसलों (cross- pollinated) : जैसे मक्का की मिश्रित व्यष्टि (Population) से लगभग 150 से 250 पौधे चुन कर उनमें स्वपरागण करवा कर पौधों से बीज प्राप्त करते हैं । इसके बाद इन बीजों से फसल तैयार की जाती है । फसल के परिपक्व होने पर इनमें से उत्तम पौधो को छाँट लेते हैं ।

द्वितीय वर्ष : दूसरे सवाल में छाँटे गये उत्तम पौधों का आपस में संकरण या क्रॉस (inter-cross) करवाया जाता है, तथा इनसे प्राप्त बीजों को पंक्तिवार उगाया जाता है व इनसे पौधे प्राप्त किये जाते हैं | (इस प्रक्रिया में एक जैसे पौधों का आपस में संकरण नहीं करवाते हैं) ।

संकरण के परिणामस्वरूप प्राप्त बीजों को एकत्र करके आपस में मिला देते हैं, तथा इनको अगले वर्ष के लिए उपयोग में लाया जाता है ।

तृतीय वर्ष : दूसरे वर्ष के संकरण के परिणामस्वरूप प्राप्त बीजों को बोकर पादप व्यष्टि तैयार की जाती है, तथा पिछले वर्ष अपनाई गई प्रक्रिया को फिर से दोहरा कर चयन एव सकरण का कार्य फिर से किया जाता है ।

चौथा वर्ष : अब पृथक -पृथक संततियों के आपसी संकरण से उत्पन्न बीजों से फसल तैयार करते है तथा इच्छित लक्षणों के आधार पर श्रेष्ठ पौधों को छाँट लेते हैं ।

चयन एव संकरण क्रम की यह प्रक्रिया प्रत्येक वर्ष तब तक जारी रखी जाती है, जब तक कि इच्छित लक्षणों से युक्त पौधे प्राप्त नहीं हो जाते । कुछ उदाहरणों जैसे रोग प्रतिरोधी क्षमता वाली जीन्स की पहचान यदि फसल पकने से पहले ही हो जाती है, तो उसी वर्ष अर्थात् प्रथम वर्ष में भी सकरण की प्रक्रिया को दोहराया जा सकता है ।

इस विधि में बाह्य आकारिकीय लक्षणों के आधार पर पौधों का चुनाव किया जाता है । पुनरावृत्ति चयन प्रक्रिया की सरल विधि है ।

(2) संयोजन क्षमता हेतु पुनरावृत्ति चयन : ' 'पादप संकरण की श्रृंखला में जीन्स के संयोजन या पुनर्संयोजन के गुण को संयोजन क्षमता कहते हैं जिसके कारण नये या इच्छित गुणों का विकास हो सकता है, तो इसे संयोजन क्षमता (combining ability) कहते हैं " ।

एक जीन की औसत संयोजन क्षमता को सामान्य संयोजन क्षमता कहते हैं । किसी भी कृष्य पौधे, या फसल में संयोजन क्षमता का विश्लेषण करने हेतु प्रयुक्त पुनरावृत्ति चयन की विधि के अन्तर्गत, मिश्रित पादप व्यष्टि में से कुछ उत्तम पौधों का चुनाव उनमें उपस्थित इच्छित लक्षणों के आधार पर किया जाता है । ऐसे पौधों को SO पौधे कहा जाता है । इनमें स्वपरागण करवाने के साथ -साथ ही, इनका विषमयुग्मजी (heterozygous) पौधों से संकरण भी करवाया जाता है। स्वपरागणन एवं इसके बाद संकरण से प्राप्त बीजों को प्रशीतन भंडार (cold storage) में रखते हैं । अगले वर्ष संकरित 50 बीजों से विकसित पौधों में सामान्य संयोजन क्षमता का परीक्षण करते हैं । ऐसे पौधों को तीसरे वर्ष में उगाते हैं, एवं बाद में इनमें आपस में संकरण करवा के इनके बीजों को आपस में मिला देते हैं । अब इन बीजों से फसल तैयार करते हैं, एव जरूरत पड़ने पर चयन एव संकरण प्रक्रियाओं को दोहराते हैं । इस सम्पूर्ण प्रक्रिया के पूर्ण होने में तीन वर्ष लगते हैं । इसमें एक वर्ष सामान्य संयोजन क्षमता के आकलन में लगता है ।

(3) **विशिष्ट संयोजन क्षमता परीक्षण हेतु पुनरावृत्ति चयन** (Recurrent Selection For Specific Combining Ability). हल (Hull 1945) ने सर्वप्रथम इस प्रक्रिया का उपयोग अनेक परपरागित फसलों में जीन्स की विशिष्ट संयोजन क्षमता के परीक्षण एवं सुधार के लिए किया था । इसकी प्रक्रिया सामान्य संयोजन क्षमता हेतु प्रयुक्त पुनरावृत्ति चयन के लगभग समान होती है, परन्तु यहाँ अत :प्रजनन द्वारा तैयार वंशक्रम परीक्षण (inbred test) हेतु प्रयुक्त होती है, जबकि हरित क्रान्ति, स्वपरागित पूर्वी प्रक्रिया में इस प्रकार की परीक्षण व्यवस्था उपलब्ध नहीं होती । संभवतः इसी कारण SO पौधों परपरागित एवं कायिक प्रवर्धित फसलों में पादप में आनुवांशिक विविधताएँ विशिष्ट संयोजन क्षमता के कारण प्रजनन के कारण ही होती हैं |

(4) **व्युत्क्रम पुनरावृत्ति चयन** (Reciprocal Recurrent Selection) सर्वप्रथम कॉमस्टॉक, रॉबिन्सन एव हार्वे (Comstock Robinson and Harvey 1949) ने विभिन्न प्रकार की परपरागित फसलों की दो अलग - अलग व्यष्टियों में सामान्य एवं विशिष्ट संयोजन क्षमताओं को सुधारने के लिए इस विधि का उपयोग किया । इस विधि का उद्देश्य यह है कि किसी एक परपरागित फसल में दो अलग - अलग प्रकार की पादप व्यष्टियां (population) क्रमश : A एवं B हैं, पादप व्यष्टि A, व्यष्टि (population) B के लिए एव B व्यष्टि के लिए परीक्षण स्रोत होता है । यह प्रक्रिया लगभग छ : (6) वर्षों में पूर्ण होती है । इस प्रक्रिया में दोनों पादप व्यष्टियाँ A व B आनुवांशिक प्ररूप में पूर्णतया भिन्न होनी चाहिए । प्रथम संकरण की प्रक्रिया में स्रोत A नर जनक का कार्य करता है, तो दूसरे संकरण में नर जनक की जिम्मेदारी स्रोत B के द्वारा निभाई जाती है । इसमें चयन एव संकरण क्रियाओं का क्रम निरंतर जारी रहता है । इसलिए इस प्रक्रिया को व्युत्क्रम पुनरावृत्ति चयन कहते हैं ।इस विधि का प्रमुख उद्देश्य दोनों प्रकार की संयोजन क्षमता वाली जीन्स का सुधार भी किया जाता है ।

15.4.4 परपरागित फसलों में संकरण (Hybridization in cross pollinated Crops)

इस संकरण की प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य इच्छित लक्षणों से युक्त दो जनक पौधों में क्रॉस करवाकर F_1 एव बाद की संतति पीढ़ियों के पौधों में वांछित लक्षणों की प्राप्ति एव इनकी गुणवत्ता एव उत्पादन में सुधार करने का होता है । संकरण के द्वारा प्राप्त संतति पौधे प्रत्येक क्षेत्र में जनक पौधों से बेहतर होते हैं । परपरागित कृष्य पौधों जैसे - मक्का, खरबूजा, सेब, कटहल, सरसों, आदि में संकरण की प्रक्रिया स्वपरागित फसलों की तुलना में भिन्न होती है । अंत :.प्रजात वंशक्रमों के पौधों की संकरण प्रक्रियाएँ निम्न प्रकार की होती है ।

(1) **एकल संकरण या क्रॉस** (Single Cross) : इस विधि में संकरण के अन्तर्गत दो अंत:प्रजात जनक पौधों का क्रॉस करवाया जाता है तथा संकरण के परिणामस्वरूप प्राप्त F_1 पीढ़ी के संकर पौधों या इनके बीजों को किसानों को उगाने के लिए दे देते हैं ।

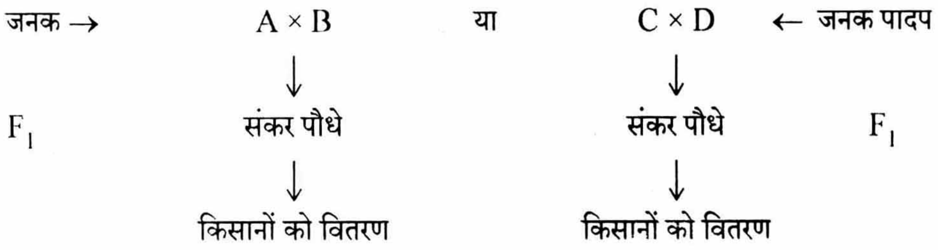

यदि अत :प्रजात जनकों की संख्या अधिक हो तो नीचे दिये सूत्र के द्वारा संभावित एकल संकरणों की संख्या ज्ञात कर सकते हैं ।

उदाहरण : यदि एकल संकरण की सख्या n है, एवं अंत :प्रजात की संख्या x है तो

$$n = \frac{x(x-1)}{2}$$

यदि x 5 है, अर्थात् अंतः प्रजात 5 है तो एकल संकरण की संख्या n निम्न प्रकार से होगी.

$$n = \frac{5 \times 4}{2} = \frac{20}{2} = 10$$

(2) **द्विक या दोहरा संकरण** (Double Cross) : इस विधि में दो एकल संकरणों से प्राप्त संतति पौधो या क्रॉस करवाया जाता है । इसे द्विक संकरण (Double cross hybridization) कहते हैं ।

जैसे उदाहरण -

I एकल संकरण या क्रॉस — II एकल संकरण या क्रॉस

जनक → A × B — C × D ← जनक

↓ — ↓

F_1 संतति → AB (संकर) — CD (संकर) ← F_1 संतति

×

↓

दोहरा क्रॉस संकर पौधे (Double Cross Hybrids)

(ABCD)

अंत : प्रजात (inbreds) की संख्या अधिक होने पर निम्न सूत्र द्वारा दोहरे क्रॉस की संख्या ज्ञात कर सकते हैं

दोहरा 'क्रॉस (Double cross) की संख्या = $\frac{x(x-1)(x-2)(x-3)}{8}$ यहाँ x = अंत प्रजातों (inbreds) की संख्या है । यदि 5 अंत :प्रजात क्रम है तो डबल क्राँस की संख्या निम्न होगी.

$$= \frac{5\ (5\ -1)\ (\ 5-2)\ (5-3)}{8}$$

या $= \frac{5 \times 4 \times 3 \times 2}{8}$

या $= \frac{120}{8} = 15$

अत : यहाँ डबल क्राँस की संख्या 15 होगी ।

(3) **थी - वे क्रॉस या संकरण** (three-way cross or Hybridization) संकरण (क्रॉस) की इस विधि में एकल संकरण के F_1 संकर (hybrids) पौधों का क्रास एक अत : प्रजात (inbred) के साथ करवाया जाता है, उदाहरण के लिये :

एकल संकरण (Single cross**)**

जनक I या P_1 → A × B

↓

F_1 संतति → (AB) — AB × Z — अंत:प्रजात (Inbred) (Z)

↓

ABZ

इस प्रक्रिया में 3 अंत : प्रजात (Inbreds) संकरण में प्रयुक्त होते हैं Z अंत : प्रजात (inbred)नर हरित क्रान्ति, स्वपरागित परपरगित एवं कायिक जनक (Male parent) व 48

संकर पौधे को मादा जनक (Female parent) के रूप में प्रवर्धित फसलों में पादप भाग लेते हैं । क्योंकि इस विधि में 3 अलग - अलग पौघे संकरण (Double cross) में भाग लेते हैं, । इसलिऐ प्रजनन की विधियाँ

पौधों की संख्या के आधार पर इसे थ्री - वे क्रॉस (Threee- वय cross) कहा जाता है ।

(4) **अंत : प्रजात संकरण या टॉप क्रास** (Inbred Hybridization on Top Cross) : इस विधि में एक पादप किस्म (variety) का क्रॉस एक अंत : प्रजात पौधे से करवाया जाता है, जैसे

जनक $P_1 \rightarrow$ V (पादप किस्म) × I (एक अंत:प्रजात Inbred)

$\downarrow$

VI (अंत:प्रजात Hybrid Inbred)

इस विधि -द्वारा प्रयुक्त पादप किस्म परपरागित (cross pollinated) होती है । इस क्रॉस या संकरण का प्रमुख उद्देश्य अंत :प्रजात (Inbred) की संयोजन क्षमता को ज्ञात करना है ।

यहाँ पादप किस्म (V) को मादा जनक (Female parent) एवं अंत :प्रजात (1) को नर जनक (Male parent) के रूप में काम में लिया जाता है । इस विधि को डबल टॉप क्रॉस (Double टॉप cross) भी कहा जाता है ।

(5) **संश्लिष्ट किस्म एवं संश्लिष्ट संकरण** (Synthetic cross and Synthetic Variety): इस अत : प्रजात (Inberds) पौधो की संख्या अपेक्षाकृत आइ धक अर्थात् 4 से 6 या क भी -क भी 10 तक भी हो सकती है । संकरण की इस विधि को प्रयुक्तकर अंत : प्रजात वंशक्रम (Inbred Lines) पौधों के विभिन्न इच्छित लक्षणों को एक पादप किस्म में एक साथ विकसित (Combine) किया जाता है । यह प्रक्रिया निम्न प्रकार से संपन्न होती है ।

(i) संकरण में प्रयुक्त अंत :प्रजात वंशक्रमों (Inbired Lines) के बीजों को समान मात्रा में आपस में मिला दिया जाता है तत्पश्चात् इन बीजों को अलग - अलग क्यारियों में बोया जाता है ।

(ii) बीजों से प्राप्त पौधों में प्राकृतिक परपरागण (Natural cross pollination) करवाते हैं एव इन पौधों से प्राप्त बीजों को एकत्र कर लेते हैं ।

(iii) उपरोक्त बीजों से प्राप्त पौधों को नई पादप किस्म का नाम दिया जाता है ।

इस प्रकार संकरण द्वारा विकसित पादप किस्म को संश्लिष्ट किस्म (Synthetic variety) कहते हैं । इस विधि का महत्वपूर्ण उपयोग यह है कि विभिन्न लक्षणों को नियंत्रित करने वाली जीन्स की संयोजन क्षमता (Combining ability) का परीक्षण भी हो जाता है ।

संश्लिष्ट पादप किस्में संकज ओज (Sythetic varities) अंत :प्रजात किस्मों की तुलना में बेहतर हैं, क्योंकि उनमें फसल उत्पादन (crop yield) अधिक होता है एवं ये अंत :प्रजात किस्म की तुलना में कम खर्चीली है । इनमें आने वाली पीढ़ियों में कोई कमी नहीं होती अत : किसान संश्लिष्ट या कृत्रिम किस्मों का उपयोग आगामी 9 पीढ़ियों तक कर सकती है । सामान्यतया संश्लिष्ट किस्में चारे वाली फसलों के लिए मुख्यत : विकसित की जाती है ।

संश्लिष्ट किस्मों में संकर ओज (Hybried vigour) भी पाया जाता है इसी वजह सेहेज एवं गार्बर (Hayes and Gaaber 1919) ने इन कृत्रिम किस्मों को व्यावसायिक प्रयोग के लिए बेहतर बताया ।

हरित क्रान्ति, स्वपरागित चारा पौधों के अतिरिक्त चुकंदर (चुकंदर), सूरजमुखी (Sunflower) रिजका (Clover) अल्फा में भी संश्लिष्ट किस्मों का विकास किया गया है । चुकंदर में Pant synthetic 3 एवं फूलगोभी (Cauliflower) में Synthetic -iii इत्यादि कुछ प्रमुख संश्लिष्ट कृष्य किस्में हैं ।

संश्लिष्ट किस्मों के उत्पादन दी विधि (Procedure of Synthetic varieties formation)

यह एक सुविदित तथ्य है कि संश्लिष्ट किस्म (Synthetic variety) को विकसित करने के लिए सर्वश्रेष्ठ क्षमता (Best combining ability) वाले अत : प्रजात वंशक्रम (Inbred line) का चुनाव जाता है, अत : इनमें संकरओज (Hybried vigour') का प्रथम वर्ष में पूरी क्षमता के साथ उपयोग होता है । इसके अतिरिक्त बाद की पीढ़ियों जैसे F_2, F_3 व F_4 एव आगे भी उत्पादन क्षमता के यथावत बने रहने की पर्याप्त संभावना होती है । यहाँ अंत : प्रजात (Inbreds) जो उपयोग में लाये गये हैं उनकी संख्या भी संकर ओज की उपस्थिति में सक्रिय भूमिका निभाती है ।

पादप प्रजननविज्ञानियों के लिए संश्लिष्ट किस्मों का विकास करने के लिए निम्न पहलुओं का ध्यान रखना आवश्यक होता है

I. वंशक्रमों का चयन एवं मूल्यांकन (selection and Evaluation of Lines) '

सबसे पहले कृत्रिम किस्म के उत्पादन के लिए उपयुक्त अंत : प्रजात वंशक्रमों को वांछित लक्षणों के आधार पर छोटा जाता है । तत्पश्चात् इनमें शीर्ष संकरण (Top cross) या बहुल संकरण (poly cross) कराते हैं । आने वाली पीढ़ियों में वांछित लक्षणों हेतु किये परीक्षणों के आधार पर सर्वश्रेष्ठ वंशाक्रमों का चुनाव किया जाता है । उपरोक्त चुने हुये वंशक्रमों में अन्य वंशक्रमों की तुलना में सामान्य संयोजन क्षमता (General combining ability) अधिक मात्रा में होती है । अत : प्रजनन (Inbreding) प्रक्रिया के द्वारा प्रारंभिक पीढ़ियों में सामान्य संयोजन क्षमता का आकलन किया जाता है । संयोजन क्षमता का परीक्षण टॉप क्रॉस की विधि के द्वारा किया जाता है । अन्त में सर्वश्रेष्ठ वंशक्रमों का आपस में क्रॉँस करवा कर संश्लिष्ट किस्म (Synthetic variety) को विकसित किया जाता

II. संश्लिष्ट किस्म का विकास (Development of Synthetic Variety)

उत्तम गुणों वाले चुने हुये वंशक्रमों में बहुल क्रॉस(Poly cross) करवाकर संतति पीढ़ी, उत्पन्न की जाती है तथा इनको अविचारित (Random) पद्धति का उपयोग करते हुए इनकी बहुल संकरण पौधशाला (Poly cross nursery) में उगाया जाता है । इस प्रक्रिया में कम से कम 10 प्रतिकृतियों (Replications) का उपयोग कर इनमें मुक्त परागण (open pollination) करवाया जाता है । फसल के पकने पर इनके बीजों को मिला दिया जाता है, तथा इनकी संयोजन क्षमता को ज्ञात किया जाता है ।

III. पूर्व स्थापित अंत: प्रजात किस्मों से संश्लिष्ट किस्मों का निर्माण

(Formation of Synthetic varieties from established inbreds)

इस चरण में 5 से 10 अंत : प्रजात वंशक्रमों में शीर्षक्रॉस (Top cross)करवाते हैं एव इनकी सामान्य संयोजन क्षमता को ज्ञात करते हैं । जिन वंशक्रमों में उच्च संयोजन क्षमता पाई जाती है उनका आपस में क्रॉस करवाया जाता है । इसके बाद इनके पौधों के इच्छित लक्षणों के लिए परीक्षण किये जाते हैं । हरित क्रान्ति, स्वपरागित अन्त में इस फसल का नवीन संश्लिष्ट किस्म के रूप में नामकरण करते हैं | परपरागित कायिक प्रवर्धित फसलों में पादप उपरोक्त परिक्रियाओं में से किसी भी एक विधि से प्राप्त में F_1 पीढ़ी के बीजों को बराबर मात्रा में

मिलाया जाता है व इन बीजों से पौधे उगाये जाते हैं । इन पौधों को Syn - 1 पीढ़ी के रूप में पहचाना जाता है । अविचरित परागण (Random pollination) के द्वारा इनमें Sym - 2 Syn - 3 पीढ़ीयाँ तैयार की जाती है ।

A. पौधशाला स्रोत (nursery source):

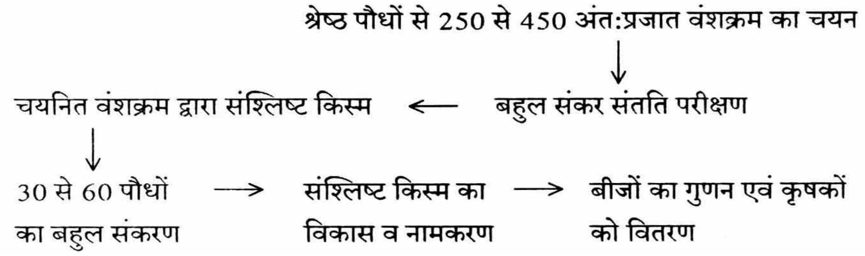

IV. बहुल संकरण प्रक्रिया द्वारा संश्लिष्ट किस्म का विकास : फ़्लो चार्टसंग्रथित किस्में (Compositive varieties)

संग्रथित या सम्मिश्र किस्मों का विकास दो किस्मों (varieties) या उपजतियों (Races) के संकरण द्वारा किया जाता है । इनके के क्रॉस के बाद उत्पन्न F_1 या F_2 पीढ़ी के पौधो से प्राप्त बीजों को उचित मात्रा में मिलाकर, इससे अगली पीढ़ी के पौधे तैयार करते हैं, इन पौधों को संग्रहित कहा जाता है ।

संग्रहित किस्मों के विकास या उत्पादन की संपूर्ण प्रक्रिया लगभग 5 - 6 चरणों में संपूर्ण होती है । इन चरणों का विधिवत् रूपरेखा इस प्रकार है :

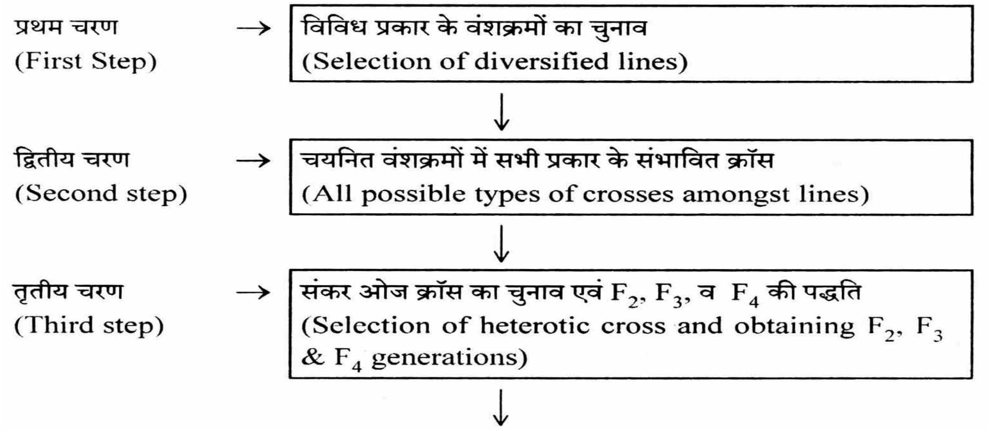

चतुर्थ चरण (Fourth step)	→	विभिन्न पीढ़ियों के पौधों का परीक्षण तथा इनकी सर्वश्रेष्ठ संकर या अन्य किस्मों से तुलना (Test of different generation plants and comparision with best hybrid and other varieties)
		↓
पंचम चरण (Fifth step)	→	उच्च उत्पादन युक्त संकरों का चुनाव (Selection of high yielding crosses)
		↓
छठा चरण (Sixth step)	→	चयनित वंशक्रमों से प्राप्त बीजों को मिलाना एवं उनसे उगाये पौधों में मुक्त परागण, नई किस्में विकसित कर कृषकों में वितरित करना। (Mixture of seeds, open pollination and release of variety for distribution)

परपरागित फसलों में लोकप्रिय एव बहुउपयोगी सम्मिश्र किस्में मक्का (Maize) में विकसित की गई हैं, विजय, अम्बर एव विकास ऐसी ही कुछ मक्का की सम्मिश्र किस्मों के उदाहरण है ।

बोध प्रश्न - 2

1. परपरागित फसलों में पादप प्रजनन की कोई दो विधियों का नाम लिखिये ।

   ....

   ....

   ....

2. F1 संतति को उसके किसी एक जनक से क्रॉस करने को क्या कहते हैं?

   ....

   ....

   ....

सर्वथा संकर किस्में (Exclusive hybrid varities)

प्राय : सकर किस्मों का विकास बहुधा परपरागित फसलों में किया जाता है । कुछ स्वपरागित पौधो, जैसे. मटर एव टमाटर इत्यादि में भी सकर किस्मों का उत्पादन किया गया है । स्वपरागित पौधों में संकर विधि में हस्तविपुंसन (Emasculation) एव कृत्रिम परागण (Arificial pollination) जैसे - चरण अत्यधिक खर्चीली एव श्रमसाध्य है । इसलिए इनके उत्पादन हेतु नरब्रध्यता क्रमों (Male sterile lines) का भी उपयोग किया जाता है ।

कई महत्वपूर्ण फसल उत्पादक पौधे, जैसे - कपास, ज्वार, गेहूँ में अनेक संकर किस्मों (Hybrid varieties) का विकास किया गया है । परन्तु प्रजनन (Inbreeding) के कारण विकसित स्वपरागित या परपरागित फसलों में संकर ओज (Heterosis) पाई जाती है । अत : F1 संतति

पीढ़ी में प्राप्त पौधे नर एवं मादा दोना जनक पौधों की तुलना में अनेक लक्षणों में उच्चतर (Superior) एवं जीवनक्षम हरित क्रान्ति, स्वपरागित (vigorous) होते हैं । इनकी उत्पादन क्षमता भी उच्च स्तर (High yielding) की होती है । F_1 संकर पीढ़ी में बेहतर गुणवत्ता स्पष्टतया परिलक्षित होने के पश्चात् ही, संकर पादप किस्मों का आगे निर्माण किया जा सकता है । स्वपरागित फसलों की तुलना में संकर पौधों का निर्माण परपरगित किस्मों में अधिक किया जाता है, क्योंकि इनमें परागण क्रिया मुक्त रूप (open pollination) से होता है ।

संकर, सम्मिश्र एव संश्लिष्ट नवविकसित पौधों में हालाँकि अनेक समानताएँ पाई जाती हैं, फिर भी उपरोक्त सभी किस्में अनेक महत्वपूर्ण लक्षणों में भिन्नता प्रदर्शित करती हैं । उपरोक्त तीनों पादप किस्मों का तुलनात्मक अध्ययन निम्न प्रमुख लक्षणों अथवा विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए कियाजा सकता है.

संकर किस्म, सम्मिश्र किस्म एवं संश्लिप्ट किस्मों का तुलनात्मक विवरण

क्र. सं.	संकर पादप किस्म (Hybried variety)	सम्मिश्र पादप किस्म(Composite)	संश्लिष्ट किस्म (Synthetic variety)
1.	पादप किस्म के विकास के लिए 2 से 4 जनक पौधे प्राप्त किये जाते हैं ।	जनक पौधों की संख्या 2 से अधिक होती है ।	जनक पौधे 4 से 10 होते हैं
2.	यहाँ अंतः प्रजात प्रकृति के जनक पादप उपयोग मे लाये जाते हैं ।	यहाँ संकर या विषय युग्मजी पादप जनक के रूप में काम लेते हैं |	जनक अंत: प्रजात (inbreds) होते हैं
3.	किस्मों के विकास मे परागण क्रिया को नियांत्रित किया जाता है ।	परागण मुक्तरूप से (openpollination) होता हैं |	अविचारित (Random) प्रकार की मुक्त परागण क्रिया होती है|
4.	संकर ओज (Hybrid vigour)की मात्रा अधिक होती है ।	संकर ओज,अपेक्षाकृत कम क्षमतावान होती है	संकर ओज की मात्रा बाकी दोनों की तुलना में निम्न होती है ।
5.	किस्मों के विकास में सामान्य संयोजन क्षमता का परीक्षण किया जाता है ।	प्राय: संयोजन क्षमता का परीक्षण नहीं होता ।	संयोजन क्षमता का परीक्षण किया जाता है ।
6.	इनमें केवल F_1 पीढ़ी के बीजोंका ही उपयोग किया जाता है ।	इनके विकास में F_4 पीढ़ी की संततियों के बीजों काउपयोग होता है ।	F_1 से F_4 पीढ़ियों तक केबीजों का उपयोग किया जाता है ।
7.	यहाँ प्रत्येक वर्ष बीजों को बदला जाता है, एवं	3 - 4 वर्ष बाद बीजों को बदला जाता है । व बीजों की कीमत	3 - 4 वर्ष बाद बीजों को बदला जाता है । व बीजों

	इनकी कीमत भी अधिक होती है ।	कम होती है	की कीमत सबसे कम होती है ।
8.	संकर किस्मों के विकास प्रक्रिया की देखभाल अपेक्षाकृत कठिन होती है।	देख भाल आसान होती है ।	देख भाल आसान होती है ।

15.5 कायिक प्रवर्धित फसलों में संकरण (Hybridization in vegetatively propagated crops)

कुछ पौधों में व्यावसायिक रूप से फसल का उत्पादन कायिक अंगों के प्रवर्धन द्वारा किया जाता है, जैसे. गन्ना, आलू व केला इत्यादि । इनमें संकरण निम्न प्रकार से होती है :

1. **प्रथम वर्ष** : सर्वप्रथम जनक पीढ़ी के पौधों का चुनाव किया जाता है । जनकों के चुनाव में इच्छित लक्षणों के आधार पर करते हैं । किसी विशेष लक्षण को आने वाली पीढ़ी में विकसित करने के लिए ही फसलों में संकरण (Hybridization) किया जाता है ।
2. **द्वितीय वर्ष :** सामान्यतया पुष्प युक्त कायिक जनन वाले उत्पादक पौधों में परम्परागत क्रिया पाई जाती है, अत : इस परागण क्रिया का उपयोग करते हुए, F_1 पीढ़ी के बहुसंख्य पौधे तैयार किये जाते हैं । जिनकी सख्या 6 से 11 हजार तक हो सकती है ।

   F_1 पीढ़ी के पौधों को उपयुक्त दूरी पर बोया जाता है, तथा इनमें से 600 से 1100 सर्वश्रेष्ठ पौधों को छाँटा जाता है । दुर्बल एवं अनिच्छित पौधों को हटा दिया जाता है । इस संपूर्ण प्रक्रिया में स्थान, कीमत एव समय की बचत का विशेष ध्यान रखते हैं ।
3. **तृतीय वर्ष** : सर्वश्रेष्ठ इच्छित लक्षणों से युक्त F_1 पीढ़ी के पौधों से अलग - अलग क्लोन्स (clones) तैयार किये जाते हैं । इन क्लोन्स के गुणों का परीक्षण मानक (standard) किस्म के साथ किया जाता है । परीक्षण के बाद 100 से 2500 सर्वश्रेष्ठ क्लोन्स को छाँटा जाता है ।
4. **चौथा वर्ष** : इस वर्ष में चयनित सर्वश्रेष्ठ क्लोन्स का प्राथमिक पैदावार परीक्षण (primary yield test) मानक किस्मों के साथ किया जाता है ।
5. **पाँचवें से नवाँ वर्ष** : सर्वश्रेष्ठ क्लोन्स को विभिन्न केन्द्रों पर तैयार किया जाता है, एवं उनकी उत्पादन क्षमता का आकलन भी किया जाता है । मानक किस्म (Standard variety)की तुलना में अधिक पैदावार देने वाले एवं अन्य गुणों में बेहतर क्लोन्स को छाँट कर एक नई किस्म का नामाकरण करते हैं ।
6. **दसवाँ भाग :** नामांकित किस्म के क्लोन्स का गुणन (Multiplication) कर इनको कृषकों के उपयोग हेतु मुक्त कर दिया जाता है ।

कायिक प्रवर्धित कृत्य पौधो के संकरण में मुख्य बाधाएँ :

(1) कायिक प्रवर्धित पौधों में पुष्पन (Flowering) कम होता है तथा अल्प जनन क्षमता (Fertility) वाले होते हैं ।

(2) इनका आनुवंशिक विश्लेषण (Genetic assessment) कठिन है ।

(3) इन पादपों का जीवन -चक्र बहु वर्षीय है ।

कुछ फसलों जैसे केला, सेब व आम आदि में तो पुष्पीकरण तो होता है परन्तु फल कम उत्पन्न होते हैं, इसलिए इनमें श्रेष्ठ क्लोन्स का उपयोग संकरण प्रक्रिया द्वारा नहीं कर सकते ।

क्लोन्स के विकास में संकरण का महत्व : कई प्रकार के अंतर्जातीय संकरण प्रयोगों का उपयोग हरित क्रान्ति, स्वपरागित क्लोन्स के द्वारा की जाने वाली कायिक प्रवर्धित फसलों को सुधारने में सफलतापूर्वक किया गया है ।अनेक नई पादप किस्मों की उत्पत्ति अंतरप्रजातीय संकरण(Interspecific hybridization) के द्वारा की गई हैं । जैसे आलू में कुफरी कुबेर किस्म का विकास सोलेनम कर्टीलोबम (Solanum curtilobum)के क्रॉस या संकरण के द्वारा किया गया है । इसी प्रकार अंतरजातीय संकरण द्वारा गन्ने में भी अनेक बेहतर किस्मों का विकास किया गया है ।

15.6 सारांश (Summary)

1. हरित क्रान्ति हमारे देश में डॉ. नार्मन बोरलाग एवं डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन द्वारा गेहूँ की बोनी किस्म विकसित होने पर हुई ।
2. . मानव उपयोगी पादप फसलों में विभिन्न प्रकार का प्रजनन होता है । जैसे स्वपरागण, परपरागण एवं कायिक प्रर्वध द्वारा ।
3. इन फसलों में उत्तम गुणों के विकास के लिए पादप प्रजनन किया जाता है । अच्छी पैदावार, रोग प्रतिरोधी आदि गुणों का एक पादप से दूसरे में स्थानान्तरण कराना वैज्ञानिकों का उद्देश्य रहता है ।
4. विभिन्न विधियों द्वारा इन पादपों में प्रजनन कराया जाता है एवं नई उन्नत किस्म तैयार होने पर इसका नामाकरण करके कृषकों के लिए नई किस्म के बीजों को मुक्त कर देते अर्थात् कृषकों को बोने के लिए उपगध कराया जाता है ।

15.7 शब्दावली (Glossary)

वंशावली (pedigree)किसी एक पूर्वज पौधे से उत्पन्न उसकी संतति का विवरण रखना

प्रतीक या पूर्वज संकरण (Back cross) पीढ़ी के पादपों का पुन : उनके किसी स्व जनक से क्रॉस करना ।

संकरण (Hybridization) पादप के किसी एक किस्म का उसके दूसरे किस्म से क्रॉस करना या एक ही प्रजाति के विभिन्न लक्षणों वाले पादपों में क्रॉंस कराना ।

संहति चयन (Mass selection)फसलों वाले पादप समूह में ऐसे उच्चतम गुणों वाले पादपों के बीजों को प्रजनन के लिए इकट्ठा करना ।

पुनरावर्ती चयन (Recurrent selection) : जीन पुनर्योजन (genetic recombination) के लिए प्रत्येक पीढ़ी के सर्वश्रेष्ठ पौधों का आपस में संकरण करना रख उससे उत्पन्न संतति पीढ़ी के सर्वश्रेष्ठ पौधों को गुणों के आधार पर छाँटा जाना

15.8 संदर्भ ग्रन्थ (Further reading)

1. पी. सी. त्रिवेदी शर्मा इन्दुरानी शर्मा - कोशिका विज्ञान, आनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन, रमेश बुक डिपो।हरित क्रान्ति, स्वपरागित परपरागित एवं कायिक प्रवर्धित फसलों में पादप प्रजनन कइ विधियाँ
2. पी. के. गुप्ता - कोशिका विज्ञान, आनुवांशिकी, विकास एव पादप प्रजनन, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ

15.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

1. वंशावली विधि (Pedegree method)
2. प्रपुंज विधि (Bulk mrthod)

बोध प्रश्न - 2

1. संहति चयन, पुनरावृत्ति चयन सकरण
2. प्रतीक या पूर्वज संकरण (Back cross)

15.10 अभ्यासार्थ प्रश्न (Practice question)

1. प्रतीक संकरण क्या है? इस प्रक्रिया का विवरण लिखिये ।
2. स्वपरागित फसलों में प्रजनन की विभिन्न व विधियों का सचित्र विवरण लिखिये ।
3. पादप प्रजनन की वंशावली विधि क्या है? इसका विवरण, गुण एवं दोष का वर्णन कीजिये ।
4. कायिक प्रर्वधी वाले फसलों में प्रजनन किस प्रकार संभव है । संक्षिप्त वर्णन लिखिये ।
5. परपरागित फसलों में प्रजनन की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिये ।